मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

*

(गोवा विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग में पी.एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध)

GOA UNIVERSITY LIBRARY GOA

2003-2004

Girish
23.1.04
Dr Gopeshwar Singh
External Examiner

All corrections suggested by referees have been incorporated in thesis
BKhare
23/01/04

शोधार्थिनी

श्रीमती. वृषाली सुभाष मांद्रेकर

वरिष्ठ व्याख्याता, हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

निर्देशक

डॉ. बी. के शर्मा 'रोहिताश्व'

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

891.43
MAN/MAR
T-267

गोवा विश्वविद्यालय, तालेगाँव, गोवा - 403206

DECLARATION

I the undersigned herself declare that this thesis entitled **"मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन"** *(Markandye Avam Pundalik Nayak Ke Anchalik Katha Sahitya Ka Tulanatmak Adhyayan) has been written exclusively by me and that no part of this thesis has submitted earlier for the award of this University or any other university*

GOA UNIVERSITY LIBRARY GOA

Date: 23 rd January 2004
Place: Taleigao Plateau

Mrs. Vrushali S. Mandrekar
Reseach Scholar
Department of Hindi
Goa University

CERTIFICATE

As per the Goa University ordinance, I certify that this thesis entitled "मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन" (Markandye Avam Pundalik Nayak Ke Anchalik Katha Sahitya Ka Tulanatmak Adhyayan) is a record of research work done by candidate herself during the period of study under my guidence and that it has not previously formed the basis for the award of any degree or diploma in the Goa University or elsewhere.

Date: 23 rd January 2004
Place: Taleigao Plateau

Research Guide
(Dr. B. K. Sharma 'Rohitashva)
Senior Reader & Head,
Department of Hindi
Goa University

प्राक्कथन

मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

भारत वर्ष के विभिन्न प्रांतों-प्रदेशों, क्षेत्रों-अंचलों में विभिन्न जनजातियों, धर्मों, आस्थाओं और जीवन दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं के लोक जीवन सक्रिय हैं। प्रदेश, भाषा और क्षेत्र के अंतराल के बावजूद हमारी भारतीय मनीषा एक है। हम 'वर्ण' और 'वर्ग' की विषमताओं के बावजूद सांस्कृतिक और दार्शनिक स्तर पर एक अलग मनःस्थिति में जीते हैं। विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखे गये आंचलिक उपन्यासों के अध्ययन से हमारी उपर्युक्त अवधारणाओं को पुष्टि मिलेगी, ऐसा विश्वास शोधार्थिनी को ''मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के कथासाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन'' की प्रक्रिया के अंतर्गत अर्जित हुआ है।

वास्तव में किन्ही दो रचनाकारों अथवा युगीन प्रवृत्तियों के साम्य-वैषम्य की जाँच करने के लिए सामान्य रूप से साहित्यिक-सांस्कृतिक स्तर पर तुलना की जाती है। वर्तमान दौर में विभिन्न विश्वविद्यालयों में इसके अध्ययन-अध्यापन के कार्य को विशेष महत्व दिया जा रहा है क्योंकि तुलनात्मक अध्ययन से सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण एवं तत्कालीन प्रवृत्तियों तथा विभिन्न दार्शनिक पद्धतियों को परखने का अवसर मिलता है। प्रस्तुत शोध कार्य में मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु कतिपय प्रतिमान निर्धारित किये हैं। समग्रता, क्षेत्रीयता, यथार्थ, लोकसंस्कृति, भाषा-शैली, शिल्प-विधान आदि प्रतिमानों के अंतर्गत मूल्यांकन कार्य

प्रस्तुत किया है।

सामाजिक मनुष्य तथा उसके जीवन को, बाह्य एवं आंतरिक घटकों को इकाई के रुप में साहित्य में चित्रित करना संपूर्णता का पर्याय माना जा सकता है। इस प्रतिमान के अंतर्गत दोनों रचनाकारों के भिन्न-भिन्न समाज और उनमें बसे हुए मनुष्य और उनकी जिजीविषा, उनकी स्थितियाँ एवं घटनाओं में परस्पर सामंजस्य आदि को एक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया है। गोवा में प्रदीर्घ काल तक पुर्तगीजों का शासनकाल रहा है। जिसके फलस्वरूप गोवावासियों के रहन-सहन, आचार-विचार, वेशभूषा-खानपान संस्कारों में थोड़ा बहुत परिवर्तन आया है। अन्यथा भारतीय संस्कृति का चित्रण दोनों रचनाकारों के कथासाहित्य में समांतर रुप से उपलब्ध है। दोनो रचनाकार आंचलिक परिवेश, पात्र, घटनाओं का समग्रता में चित्रण कर रहे हैं।

आंचलिक कथासाहित्य के लिए विशिष्ट क्षेत्र चुना जाता है क्योंकि आंचलिकता का अर्थ है क्षेत्रविशेष का उद्घाटन करना; जो परिवेश विशेष का नहीं वरन् उस खण्ड की समग्र क्षेत्रीयता का प्रतीक है। क्षेत्रविशेष के निश्चित स्थल में दैनंदिन कार्यप्रणाली को बारीकी से उभारा जाता है। आंचलिक कथासाहित्य में जीवन स्थितियों को गहराई से चित्रित करने से यथार्थ का आभास होता है।

आंचलिक कथासाहित्य की यथार्थपरकता लोकसंस्कृति तथा लोकभाषा पर आधारित होती है। लोकसंस्कृति क्षेत्रीय जीवन में बसे लोगों की संस्कृति है, वहाँ की धार्मिक सामाजिक मान्यतायें, लोकविश्वास, रीतिरिवाज, वेशभूषा मनोरंजन के साधन आदि लोकसंस्कृति के अंग है। लोकसंस्कृति में जीवंतता लाने हेतु लेखक को लोकभाषा से जुड़कर रचना करनी पड़ती है। बिना क्षेत्रीय भाषा के अंचल के स्वरूप की अभिव्यक्ति सहज संभव नहीं है।

इस प्रकार किसी विशेष भाग या क्षेत्र की संस्कृति रीतिरिवाज, सुख-दुःख, जीवनप्रणाली, आचार-विचार, समस्याएँ, परम्पराएँ एवं मान्यतायें होती है। अपने भौगोलिक एवं प्राकृतिक परिवेश में भिन्नता के फलस्वरूप एक अंचल दूसरे अंचल से प्रकारान्तर से अलग है।

प्रस्तुत अध्ययन के विवेचन में प्रथम अध्याय 'तुलनात्मक अध्ययन के प्रतिमान' में तुलनात्मक अध्ययन की परिभाषा, स्वरूप एवं क्षेत्र पर प्रकाश डालते हुये उसकी प्रविधि तथा प्रतिमानों को निर्धारित किया गया है। प्रविधि के अंतर्गत युगीन परिवेश एवं प्रभाव, जीवनसंघर्ष से प्रभावित विचारधारा की चर्चा की गयी है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए समग्रता क्षेत्रीयता, यथार्थ, लोकसंस्कृति, भाषाशिल्प आदि प्रतिमान निर्धारित किये गये हैं। जिससे इस अध्ययन की एक सुनिश्चित दिशा निर्दिष्ट हुयी है।

द्वितीय अध्याय 'आंचलिक कथा साहित्य : परम्परा और अद्यतन विकास में आंचलिकता की परिभाषा-स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आंचलिक कथासाहित्य के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दी की 'देहाती दुनिया', से 'अल्मा कबूतरी' तक

तथा कोंकणी के कथासंग्रह 'वोंवळा' से 'काळीगंगा' का विकास रेखांकित किया है।

तृतीय अध्याय 'मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के व्यक्तित्व एवं सृजन' में दोनों लेखकों के संपूर्ण कथासाहित्य का संक्षिप्त रुप से मूल्यांकन किया गया है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक पहलुओं में कथासाहित्य का वर्गीकरण तथा उसके महत्व को रेखांकित किया है।

चतुर्थ अध्याय 'मार्कण्डेय का कथासाहित्य आंचलिक परिवेश एवं लोकजीवन' हमारे शोधप्रबंध के विषय की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रत्येक रचनाकार की आंचलिक कथासाहित्य लिखने की अपनी प्रणाली होती है। जिसके तहत् अंचल के परिवेश एवं लोकसंस्कृति के विभिन्न अंगों को रेखांकित किया जाता है। मार्कण्डेय गांव से जुड़े होने के फलस्वरूप अवध जौनपुर की परिस्थिति, परिवेश, किसान जीवन उनकी समस्याओं से वाकिब है। जाति-प्रथा, रीतिरिवाज प्राकृतिक सुषमा का नष्ट होना, विविध योजनाओं के विविध परिणाम, राष्ट्रप्रेम की भावना कृषिक्षेत्रों में परिवर्तन, आदि विभिन्न पहलुओं को परिवेश में चित्रित किया है। इसी अध्याय के अंतर्गत लोकसंस्कृति के विभिन्न तत्त्वों धार्मिक, रीतिरिवाज अंधविश्वास उनके दुष्परिणाम, रुढ़ि, लोकोत्सव, लोकगीतों आदि की भी सम्यक चर्चा की गयी है।

पंचम अध्याय 'पुंडलीक नायक का कथासाहित्य - आंचलिक परिवेश एवं लोकजीवन' में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश को चित्रित किया है। गोवा में स्वातंत्र्योत्तर समाज में 1962 के बाद में तेजी से परिवर्तन आये है। खेती-बाड़ी का स्थान उद्योग धन्धों ने लिया, खदान-माईन्स व्यवसाय ने ग्रामीणांचल को प्रभावित किया है। राजनीतिकों द्वारा बनायी हुयी विभिन्न सुधार योजनाएँ निम्न वर्गीय जनता तक पहुँचने से पूर्व ही हड़प ली जाती है तथा भ्रष्टाचार, भेदभाव आदि से सामान्य जनता का जीवन जीना मुश्किल हो गया है। इस परिवेश में चित्रित साहित्य में अंचल के विशिष्ट लोगों तथा उनके रीतिरिवाज, लोकविश्वासों अंधविश्वासों आदि का पुंडलीक नायक ने संवेदनापूर्ण चित्रण किया है। गोवा के अंचल, त्यौहार, उत्सव तथा मेलों के जमघट हैं, हर मास में कोई ना कोई त्यौहार अथवा उत्सव मनाया जाता है। ग्रामीणांचल में इन सबकी अपनी-अपनी परंपरा एवं महत्व है जिनका प्रभाव एवं प्रदेय पुंडलीक नायक ने कथासाहित्य द्वारा प्रतिपादित किया है।समस्त लोक की अनुभूति के पर्याय 'लोकगीत' गोवा की परंपरा का अभिन्न अंग है। पुंडलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में धालोगीतों का समावेश हुआ है। उसकी लय-ताल में गोवा की नारियाँ अपने सारे दु:ख, अवसाद एवं अत्याचारों को भूल जाती हैं।

मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक का कथासाहित्य: समानता एवं विषमता' नामक षष्ठ अध्याय में प्राकृतिक परिवेश, चरित्र की विशिष्ट मन:स्थितियाँ तथा अंचल के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण आदि को स्पष्ट किया गया हैं। विभिन्न आधुनिक परिवेश में जीनेवाले कथाकार द्वय मूलत: भारतीय संस्कृति से जुड़े रहे हैं , इसलिये साम्यता कथासाहित्य में ऊभरकर आयी है और विषमता विचारों की भिन्नता एवं लेखकीय दृष्टि पर निर्भर है। विषय

तथा ग्रामीण आंचल की ओर देखने का दृष्टिकोण पार्थक्य-भाव सिद्ध करता है।

सप्तम अध्याय - भाषा-शिल्प एवं शैली विधान से सम्बन्धित है। शैली-शिल्प के अंतर को स्पष्ट करने के साथ-साथ दोनों लेखकों के कथासाहित्य में प्रयुक्त भाषा एवं शिल्प को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। कहना न होगा पुंडलीक नायक ने लोकभाषा के माध्यम से लोकसंस्कृति को उजागर किया है।

इस शोध प्रबंध के लिए विभिन्न संदर्भग्रंथ, आलोचना, पत्र-पत्रिका, शोधप्रबन्ध, शोधालेख आदि की सहायता ली गयी है। अत: सर्वप्रथम उन सभी विद्वानों रचनाकारों की ऋणी हूँ जिनकी रचनाओं, विचारों, शोध-तथ्यों का बहुमूल्य लाभ मुझे प्राप्त हुआ है। मेरे शोधप्रबंध के मार्गदर्शक डॉ. बी.के. शर्मा 'रोहिताश्व' रहे हैं, समय-समय पर उनके निर्देश मेरे लिये दिशानिर्देशक प्रमाणित हुए है, जिनके प्रति मैं श्रद्धानत हूँ। श्रीयुत पुंडलीक नायक, प्रो. शिवकुमार मिश्र, प्रा. नामवर सिंह, डॉ. सुब्रत लाहिड़ी, श्री. नागेश करमळी, श्री. दामोदर मावजो, श्री रमेश वेळुस्कर, डॉ. तानाजी हळ्णकर आदि महान विभुतियों के साथ विचार-विमर्श करने के उपरांत शोध-प्रबंध की दृष्टि से जो दिशा-निर्देश प्राप्त हुआ, इसके लिए मैं इन विद्वानों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ। गुरुवर डॉ. आदित्यप्रसाद त्रिपाठी तथा डॉ. बी.डी.मिश्र के प्रति मैं श्रद्धानत हूँ। हिन्दी विभाग के अन्य सदस्यगण रवीन्द्रनाथ मिश्र, डॉ. इशरत खान तथा डॉ. रवीन्द्र कात्यायन आदि का स्नेह सहयोग मेरा सम्बल रहा है। विश्वविद्यालय के मेरे सहकर्मी सौ. प्रिया, डॉ. प्रतिमा तथा छात्रों ने इस सारस्वत कार्य में अपना सहयोग दिया हैं।

मेरी आदरणीय माता स्व.सौ. सुशीला, पिताजी श्री शंभु चोडणकर, स्व. भाई श्री गुरूदास, ननद सुश्री रजनी मान्द्रेकर तथा परिवार के अन्य सदस्य, जीवन के प्रेरक श्री सुभाष मान्द्रेकर, एवं भविष्य के सेतु चि. वरूण एवं चि. विभांषु भी इस कार्य में सहयोगी रहे हैं। कहना न होगा कि गोवा विश्वविद्यालय के ग्रंथपाल डॉ. कोन्नुर एवं अन्य पुस्तकालय के कार्यकारी सदस्यों ने शोधसामग्री संचयन में सहायता दी है। हमारे विभाग की लिपिक श्रीमती प्रार्थना नाईक एवं यशवंत नाईक का भी सहयोग प्राप्त हुआ है उन सब के प्रति आभार। सौ. स्मिता ने समय-समयपर मुझे कार्य की पूर्णता के लिए चेतावनी दी है अत: उसे भी मेरा प्रेम भरा स्मरण। साथ ही टंकण क्रिया सम्पन्न करने के लिए श्रीमती गौरी एवं श्री. मनमोहन केलकर को धन्यवाद देती हूँ।

मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत शोधकार्य भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक एकता को प्रमाणित करने में सहायक सिद्ध होगा और विभिन्न अंचलों में परिव्याप्त भारतीय जनजीवन की विभिन्नता को भी रेखांकित कर सकेगा इसी कामना के साथ यह शोधकार्य अपनी सीमा में विद्वजनों के समक्ष प्रस्तुत है।

निवेदक

दिनांक - 25/04/2003

श्रीमती वृषाली मांद्रेकर

मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

1.	तुलनात्मक अध्ययन के प्रतिमान	1
1.1	तुलनात्मक अध्ययन : स्वरूप एवं क्षेत्र	3
1.2	तुलनात्मक अध्ययन की प्रविधि एवं प्रारुप	20
1.3	तुलनात्मक अध्ययन के प्रतिमान	27
2.	आंचलिक कथासाहित्य : परम्परा और अद्यतन विकास	51
2.1	आंचलिकता की परिभाषा	52
2.2	हिन्दी का आंचलिक कथासाहित्य	56
2.3	कोंकणी आंचलिक कथासाहित्य	73
3.	मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक : व्यक्तित्व एवं सृजन	88
3.1	मार्कण्डेय का जीवन एवं व्यक्तित्व	89
3.2	मार्कण्डेय का सृजनात्मक लेखन	92
3.3	पुंडलीक नायक का जीवन एवं व्यक्तित्व	133
3.4	पुंडलीक नायक का सृजनात्मक साहित्य	136
4.	मार्कण्डेय का कथासाहित्य : आंचलिक परिवेश एवं लोकजीवन	178
4.1	मार्कण्डेय का आंचलिक कथासाहित्य : जीवन परिदृश्य	182
4.2	मार्कण्डेय का आंचलिक कथासाहित्य : लोकसंस्कृति संबंधी विवेचन	202
5.	पुंडलीक नायक का कथासाहित्य : आंचलिक परिवेश एवं लोकजीवन	216
5.1	पुंडलीक नायक का आंचलिक कथासाहित्य : जीवन परिदृश्य	219
5.2	पुंडलीक नायक का आंचलिक कथासाहित्य : लोकसंस्कृति	235

6. मार्कण्डेय और पुण्डलीक नायक का कथा साहित्य:
समानता एवं विषमता 250
- 6.1 युगीन परिवेश : समानता एवं विषमता 254
- 6.2 पात्र एवं चरित्र की विशिष्ठ मन:स्थिति 262
- 6.3 आंचलिक जनजीवन और रचनागत प्रतिबद्धता 267

7. भाषा-शैली एवं शिल्प-विधान 281
- 7.1 भाषा एवं शैली विधान 283
- 7.2 शिल्पविधान संबंधी विवेचन 301
- 7.3 बिम्ब एवं प्रतीक विधान 313

उपसंहार 324
परिशिष्ट-1 336
परिशिष्ट-2 340
परिशिष्ट-3 342

वृषाली मांद्रेकर
हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय

1 तुलनात्मक अध्ययन के प्रतिमान

मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करना शोध प्रक्रिया के अंतर्गत अनुसंधान कत्री का प्रमुख ध्येय है। मार्कण्डेय वर्तमान दौर के एक समर्थ एवं महत्वपूर्ण रचनाकार है। हिन्दी साहित्य जगत् में फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कण्डेय, रामदरश मिश्र, शिवप्रसाद सिंह और उदयशंकर भट्ट का नाम आंचलिक रचनाकारों के रूप में समादृत है।

उत्तर प्रदेश की जनसंस्कृति में मार्कण्डेय एक समर्थ, महत्वपूर्ण और समादृत रचनाकार है। आंचलिक उपन्यास एवं कहानी जगत् में जिनका प्रभाव परवर्ति पीढ़ी पर भी पड़ा हैं जिसका साक्ष्य नामवर सिंह, अमृतराय, रामविलास शर्मा, शिवकुमार मिश्र और राजेन्द्र यादव जैसे प्रभूति विद्वानों ने दिया है। हिन्दी के उपन्यास साहित्य में मार्कण्डेय, का नाम जितने गौरव से लिया जाता है उतनेही गौरव से कहानी साहित्य में उनका नाम कम स्पृहणीय नहीं है। उनकी 'हंसा जाई अकेला' और 'महुए का पेड़' आदि कहानियाँ अविवादास्पद रूप से हिन्दी जगत में मील का पत्थर मानी जाती हैं। जिस प्रकार 'सेमल का फूल' और 'अग्निबीज'

उपन्यास आंचलिक कथासाहित्य में रोमाण्टिक अवधारणा और ग्रामीण जनजीवन के यथार्थ को रेखांकित करते हैं उसी प्रकार कोंकणी कथा साहित्य में पुंडलीक नायक की कथात्मक रचनायें जीवन-संघर्ष, जीवन-यथार्थ, सकारात्मक चरित्र, एवं शिल्प-प्रयोग के धरातल पर अप्रतिम है।

पुंडलीक नायक ने गोवा के आंचलिक जीवन एवं समुद्रतटीय परिवेश को, मछुआरों, किसानों और सामान्य पात्रों आदि को दृष्टि में रखकर अपनी रचनाओं- 'कासय', 'माड़', 'पाज्ज' (कहानियाँ) तथा 'अच्छेव', 'बांबर', 'वसंतोत्सव आनि दायज' आदि (उपन्यास) को सिरजा हैं।

तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत विभिन्न भाषाओं, देशों, संस्कृतियों और विचारधारा-दर्शन के प्रतिनिधि रचनाकारों की युग सापेक्ष्य संदर्भों में तुलना की जाती हैं। प्रस्तुत विवेचन के संदर्भ में यह ध्यातव्य है कि मार्कण्डेय उत्तरप्रदेश की लोकसंस्कृति, लोकचेतना और लोकसंघर्ष के संवाहक है। जिन्होंने विगत 50 वर्षों से न केवल गांधीवादी विचारधारा और प्रगतिशील विचारधारा की कशमकश को ही नहीं देखा है बल्कि वे विचारधारा और दर्शन के विद्यार्थी होने के नाते गांधीवादी और मार्क्सवादी दर्शन की आंतरिक सीमाओं को भी जानते है। इसीलिए उनके पात्रों में वैचारिक संघर्ष, आंतरिक तनाव, विडंबना और अंत:संघर्ष की स्थिति पायी जाती है। समूचे भारत में उत्तरप्रदेश बहुसंख्यक जनता का प्रतिनिधित्व करता है जिसने इस देश को तीन-तीन प्रधानमंत्री दिए हैं। उत्तर प्रदेश में एक ओर जहाँ अभिजात्य वर्ग है, वहाँ दूसरी ओर निम्नवर्ग भी अपनी गरीबी, दीनता और भुखमरी की सीमांत रेखाओं को झेलता हैं।

प्रोफेसर शिवकुमार मिश्र और रोहिताश्व के विचारानुसार समय, काल और परिवेश- भूगोल की दृष्टि से मार्कण्डेय का कथा साहित्य न केवल स्वातंत्र्यपूर्ण काल का साहित्य है बल्कि वह स्वातंत्र्योत्तर दौर में नवीन भारत के निर्माण की भावना वर्गीय और संक्रमण का भी साक्ष्य है। प्रसंगानुसार पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में पुर्तगीज शासन के प्रभाव को देखा जा सकता है, जिसकी अपनी शोषण और दोहन प्रक्रिया रही है। गोवा प्रदेश के निवासियों का स्वातंत्र्य संघर्ष तथा स्वातंत्र्योत्तर दौर में नव्य समाज-निर्माण की जिजीविषा की आंतरिक छटपटाहट को देखा जा सकता है।

प्रस्तुत शोधप्रबंध की सीमाओं में प्रगतिशील आलोचना दृष्टि, समाजशास्त्रीय पद्धति और सौंदर्यबोधी अनुशीलन की प्रविधि को अपनाते हुए हम न केवल भारतवर्ष के दो विभिन्न सांस्कृतिक-राजनीतिक केंद्र- उत्तरप्रदेश एवं गोवा को मार्कण्डेय एवं पुण्डलीक नायक के कथासाहित्य के पात्र एवं परिवेश के आधार पर रेखांकित

करना चाहेंगे; बल्कि भारतवर्ष के दो विभिन्न प्रदेशों की लोकसंस्कृति और जीवन शैली को भी कथात्मक धरातल पर विवेचित करना चाहेंगे, जिसमें यूरोपियन तुलनात्मक पद्धति-रशियन, फ्रेंच, जर्मन, और अमेरिकन स्कूल की अवधारणाओं का प्रयोग करना चाहेंगे। साथ ही साथ भारत के प्रगतिशील एवं समाजशास्त्रीय आलोचकों की तुलनात्मक पद्धति को भी आत्मसात करते हुए विवेच्य कार्य पूर्ण करना चाहेंगे।

तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में यद्यपि बहुत कम कार्य हुआ है यह विश्वस्तर पर अभी प्रतिमान-निर्धारण की प्रक्रिया में है जिसकी स्वरोक्ति इंद्रनाथ चौधुरी, नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, मॅनेजर पाण्डेय, शिवकुमार मिश्र, आनंद पाटील, सूर्यप्रसाद दीक्षित एवं रोहिताश्व आदि ने दी है। कोचीन के अरविन्दाक्षण, आंध्र प्रदेश के भीमसेन निर्मल, महाराष्ट्र के चंद्रकांत बांदिवडेकर और नारायण शमी तथा पश्चिमी बंगाल के सुब्रत लाहिड़ी आदि ने तुलनात्मक कार्य के ऐतिहासिक महत्व को स्वीकारा है, तथा अंतर्विद्यावर्तीय अनुशासन के रूप से तुलनात्मक प्रवृत्ति को सम्यक रूप में अपनाने की सलाह दी हैं। प्रस्तुत शोधप्रबंध इसी दिशा में एक सारस्वत प्रयास है।

साहित्यालोचन के धरातल पर प्राय: तुलनात्मक प्रविधि को अपनाया जाता है परंतु एक विधिवत अनुशासन के रूप में इस प्रक्रिया को विगत् तीस वर्षों में अपनाया गया है। 19 वीं शताब्दी में देव और बिहारी, मतिराम और घनानंद, वाल्मिकी रामायण एवं तुलसीगत् रामायण की तुलना की गयी थी। परंतु स्वातंत्र्योत्तर दौर में उस्मानिया विश्वविद्यालय, कोचीन विश्वविद्यालय, मराठवाडा विश्वविद्यालय, मुंबई विश्वविद्यालय और गोवा विश्वविद्यालय आदि में तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन को विशेष रूप से परिश्रय मिला है जो हमारी भारतीय संस्कृति की 'विविधता में एकता' और 'एकता में विविधता' की धारणा को पुष्ट करता है। भारत विभिन्न जातियों धर्मों, वर्गों, मान्यताओं और परिवेश में बँटा हुआ देश है; अत: तुलनात्मक अध्ययन हमारी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक आवश्यकता को पूर्ण करता है।

1.1 तुलनात्मक अध्ययन : स्वरूप एवं क्षेत्र

सामान्यत: किन्ही दो वस्तुओं के साम्य एवं वैषम्य को मालूम कराने हेतु तुलना की जाती है। इन्द्रनाथ चौधुरी के अनुसार "तुलनात्मक शब्द में तुलना करने की प्रक्रिया जुड़ी हुई है और तुलना में वस्तुओं को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, जिससे उनमें साम्य या वैषम्य का पता लग सके।"(1) वर्तमान दौर में साहित्य के धरातल पर भी तुलना का पलड़ा भारी है, अन्य शाखाओं से तोलने पर हमारी धारणा यह बनती है कि बिना तुलना के साहित्य अध्ययन करना मुश्किल है, मुक्तिबोध और धूमिल को पढ़ते वक्त कबीर याद हो आते हैं,

मन ही मन कहीं दोनों की तुलना होती रहती है, रामचरितमानस की याद वाल्मि कि रामायण पढ़ते वक्त होती है,तो कहीं-कहीं पर नामदेव, मॅक्सिम गोर्की, प्रेमचन्द में समानता दिखाई देती हैं, इन सब पर गंभीरता से सोचे तो हम यह महसूस कर सकते हैं कि बिना तुलना-प्रविधि के हमारा ज्ञान अधूरा है, चाहे वह साम्य या वैषम्य के धरातल पर तुलना हो अथवा सांस्कृतिक-ऐतिहासिक धरातल पर, अबोध बालक से लेकर महान व्यक्ति भी तुलना से बहुत कुछ सीखता है, इसके माध्यम से अच्छे-बुरे की पहचान होती है। तर्क-वितर्क करने के लिए तुलना प्रवृत्त करती है।

वस्तुओं के साम्य तथा वैषम्य, उन दोनों वस्तुओं को एक मानना तथा दूसरी तरफ से उन दोनों के भेद को दर्शाना ही तुलना है। तुलना में जो समान गुणधर्म होते है उनको तो स्पष्ट रुप से दिखाया जा सकता है, साथ ही साथ दोनों के साम्य में भी भेद होते है जो ऊपरी तौर पर नज़र नहीं आते, लेकिन गहराई से देखने पर पता चलता है कि दोनों में यह भेद हैं। जैसे उदाहरण के लिए समाचार पत्रों में कभी-कभी बच्चों के लिए दो समान चित्र दिए जाते हैं, लेकिन उसके ऊपर लिखा रहता है कि इसमें पाँच भेदों को दर्शाना हैं, तब कहीं दोनों चित्रों में असमानता नज़र आने लगती हैं।

तुलना सिर्फ देखकर की जाती है ऐसा नहीं है वह इंद्रिय गम्य भी है- नमक एवं पिसी हुई शक्कर दोनों दृश्य धरातल पर समान है लेकिन चखने के बाद ही दोनों में फर्क नज़र आता है। मैदा एवं चावल का आटा दोनों देखने में समान है, पर ऊँगलियों में मसलने बाद भेद पता चलता है। स्वरसम्राज्ञी लता मंगेशकर एवं अनुराधा पौड़वाल के गानों का अलगाव सुनने के बाद ही पता चलता है ऐसे अनेक उदाहरण है जिनकी तुलना हम इंद्रियबोध से करते हैं।

इंद्रियगम्य अनुभवों से ही शाब्दिक तुलना होती है जिसमें हम तुलनाओं को शब्दरूप देते है- इस तुलना में भाषा का स्थान महत्वपूर्ण है, एडमण्ड बर्क के मतानुसार 'शब्दबद्ध तुलना इंद्रियगम्य अनुभव एवं निर्णय से ही विकसित होती है।' इससे आगे शास्त्रीय प्रणाली है जिसमें हम इंद्रियगम्य बोधों को शब्दरूप देने के लिए शास्त्रीय तुलना प्रक्रिया का आधार लेते हैं। यहाँ तुलना सुसंबद्ध तथा नियमों के अनुसार विकसित होती है।

1.11 तुलना : परिभाषा

तुलना शब्द संस्कृत की 'तुल' धातु से बना है जिसका अर्थ है तोलना, माँपना, दो चीजों की बराबरी करना, उनमें साम्य-वैषम्य ढूंढना और साथ-साथ

उनकी विशेषताओं को भी परखना, अर्थात् दो चीजों, व्यक्तियों, तथ्यों एवं स्थितियों के बीच साम्य-वैषम्य तथा उनके गुण-धर्मों को तोलकर उनकी समतुल्यता की परीक्षा करने का कार्य तुलना का है। शुरू में साहित्य के संदर्भ में उसका उपयोग व्यापक धरातल पर नहीं हो रहा था। डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन ने इसे नदी की धारा का प्रतीक देकर कहा है- ''एक नदी की दो धाराएँ जो कालान्तर में पर्याप्त दूर एवं भिन्न हो गयी है, उनके भेदक कारणों का विश्लेषण कर उनकी मूलभूत एकता स्थापित करना है।''(2)

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में तुलना को इसतरह स्पष्ट किया गया है- "The action or an act of comparing likening or representing as similar to compare, to match to represent as similar to mark the similarities and differences of to brining together for the purpose of nothing these comparison comparable conditions or charactor the action or an act of nothing similarities and differances comparison may sometimes illustrate but prove nothing" (3)

किन्हीं दो वस्तुओं के समान गुणों एवं अन्तरों के उद्घाटन अथवा प्रस्तुतीकरण अथवा इन्हीं विशेषताओं के संयोजन को तुलना कहा गया है, तुलना कभी-कभी आरम्भ में संभावनापूर्ण लग सकती है पर अन्ततः उससे कुछ भी सिद्ध न हो सके यह भी होता है।

तुलना का सामान्य अर्थ इसप्रकार है - किन्हीं दो वस्तुओं का कतिपय समान गुणों के आधार पर पूर्णतया जानने के लिए परीक्षण या तुलना करना या तोलना, अर्थात् यह भी कहा जा सकता है - दो या दो से अधिक वस्तुओं के समान एवं असमान तत्वों को ज्ञात करने के लिए उन्हें साथ रखकर परीक्षित करना। दो वस्तुओं की असमानता की मात्रा का पता लगाने हेतु भी तुलना की जाती है। प्रसिद्ध विश्वकोशकार बेब्सटर के आधारपर यह कहा जा सकता है कि '' दो वस्तुओं के साम्य - वैषम्य की निष्पक्ष जाँच के लिए तथा निष्कर्ष प्राप्ति के लिए भी तुलना की जाती है।''(4)

1.111 तुलनात्मक साहित्य :

तुलनात्मक साहित्य अंग्रेजी के 'कम्पॅरेटिव लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद है। एक स्वतंत्र विद्याशाखा के रुप में विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में इसके अध्ययन- अध्यापन के कार्य को विशेष महत्व दिया जा रहा है। अंग्रेजी कवि एवं समीक्षक मैथ्यू आर्नल्ड ने सन् 1848 में अपने मित्र को लिखे पत्र में सबसे पहले 'कम्पॅरेटिव लिटरेचर' पद का प्रयोग किया था, जिसमें उसके विविध अंगों

पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् हुत्सेसन मेकॉले पासनेट ने ' द सायन्स ऑफ कंम्पॅरेटिव लिटरेचर (1886) नामक लेख में इस नूतन शास्त्र के तत्वों एवं पद्धतियों का विवेचन किया है। फिर भी फ्रान्स तथा जर्मनी के बाद ही यह संज्ञा अंग्रेजी में प्रयुक्त होने लगी।

तुलनात्मक साहित्य को व्याख्यायित करने का श्रेय फ्रेंच तुलनाकारों को जाता है पॉल वॉन टिघेम का कहना है ''तुलनात्मक साहित्य का उद्देश्य मूलत: विभिन्न साहित्यों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन है।'' एम. एफ. ग्यूयर्द ने तत्व एवं आशय यहीं रखकर तुलनात्मक साहित्य को 'अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक संबंधो का इतिहास' कहा। जे. एम. कॅरे के अनुसार तुलनात्मक साहित्य साहित्येतिहास की एक शाखा है, तथ्यानुपरक संपर्को के आधार पर तुलनात्मक साहित्य का अर्थ है - उसकी परिधि से साहित्यालोचन को हटा कर मात्र विषय संग्रह को तुलनात्मक साहित्य मान लेना।(5)

फ्रेंच तुलनाकारों से अमरीकी तुलनाकारों का दृष्टिकोण पृथक है। हेन्री एच. रेमाक ने सन् 1961 में तुलनात्मक साहित्य की विस्तृत व्याख्या की - comparative literature is the study of literature beyond the confines of on particular country and the study of the relationship between literature on the one hand and other areas of knowledge and belief such as the arts, (painting, sculpture, architecture, music,) philosophy, history the social science the sciences of religion etc, on the other. (6)

अर्थात् तुलनात्मक साहित्य एक राष्ट्र के साहित्य की परिधि के परे दूसरे राष्ट्रों के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन है। उसमें एक ओर से साहित्य के परस्पर संबंधों का तो दूसरी ओर कला (चित्र, शिल्प, वास्तुरचना, संगीत) तत्वज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र के विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंधों का अध्ययन है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि साहित्यकार सदैव विश्व की अनेकता में एकता खोजने के लिए प्रयत्नशील रहता है। तुलनात्मक अध्ययन का भी यह एक प्रक्रियागत मूल्यान्वेषण रहता है कि वह विभिन्न राष्ट्रीय साहित्यों में एकता स्थापित करने का प्रयास करें। यह भी कहा जा सकता है कि तुलनात्मक साहित्य देश के साहित्य और संस्कृति को अन्य देशों के साहित्य और संस्कृति से संबद्ध करता है। सामान्यत: तुलनात्मक साहित्य दो देशों के साहित्यों या दो विभिन्न राष्ट्रों के लेखकों के तुलनात्मक संबंधों का अध्ययन करता है। डॉ. आनंद पाटील ने भारतीय संदर्भों को ध्यान में रखते हुए तुलनात्मक साहित्य को इस प्रकार परिभाषित किया है कि ''तौलनिक साहित्य म्हणजे अभ्यासकाच्या समकालीन, संस्कृति सापेक्ष

स्वत्वाच्या प्रादेशिक आधाररेषा प्रथम पक्या आखून सांस्कृतिक, राष्ट्रीयता व भाषांच्या सीमा छेदणारी वाङ्मय आणि इतर कला, साहित्य आणि शास्त्रे-विज्ञाने, साहित्य आणि नवी-जुनी ज्ञानक्षेत्रे तसेच अभिव्यक्ति - पद्धतींच्या परस्पर व्यामिश्र संबंधाची अनेक विद्याशास्त्रीय दृष्टिकोन वापरून विविध पातळ्यांवर केलेली तुलनात्मक चिकित्सा होय''(7) अर्थात् तुलनात्मक साहित्य से तात्पर्य है कि अध्ययनकर्ता, अथवा सहृदय, समकालीन संस्कृति-सापेक्ष भावना से प्रादेशिक विशेषताओं की आधाररेखाओं को आत्मसात करते हुए (प्रादेशिक) राष्ट्रीय एवं विभिन्न भाषा-भाषी सीमाओं को उभारकर ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करता है। सामान्यत: साहित्य और अन्य कला- साहित्य (स्थापत्य, चित्रकला, संगीत, नृत्य) तथा अन्यान्य शास्त्र विज्ञान, (साहित्य एवं नये-पुराने ज्ञानक्षेत्र) वैसे ही मानव अभिव्यक्ति की पारस्परिक पध्दतियों के विविध विद्याशाखाओं का दृष्टिकोण अपनाते हुए विभिन्न धरातलों पर की गयी तुलनात्मक आलोचना है।

कतिपय विद्वानों की राय में साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन और तुलनात्मक साहित्य दो भिन्न पद्धतियाँ है- पॉल वॉन टिघेम ने साहित्य के अध्ययन की तुलनात्मक और सामान्य पद्धति में फर्क महसूस किया। उनके अनुसार ''तुलनात्मक साहित्य के अन्तर्गत दो या अधिक साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। और यह अध्ययन पारस्परिक सम्बन्ध, विकास स्वरूप-विवेचन, काव्यशास्त्रीय आदि होता है। सामान्य साहित्य के अन्तर्गत वे साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, आलोचना और पद्धतियाँ आदि विवेचित होती हैं, जो अनेक साहित्यों को समान रूप से प्रभावित करती है।''(8) तुलनात्मक अध्ययन साहित्य की विभिन्न रचनाओं, प्रवृत्तियों, युग-विशेषताओं, संस्कृतियों को व्यापक दृष्टि से देखने की एक आलोचनात्मक प्रक्रिया है, जो दो साहित्यों के परिप्रेक्ष्य से प्रारंभ होकर अनेक साहित्यों से प्रवाहमान होती हुयी, काल की सीमाओं को तोड़ती हुई, विश्व-साहित्य के व्यापक एवं गहरे संदर्भ में प्रतीयमान होती है। सेंट्सबरी ने 'तुलनात्मक साहित्य' की अपेक्षा 'तुलनात्मक आलोचना' नाम अधिक संगत माना है।

''ग्योएथेने सन् 1827 में 'वर्ल्ड लिटरेचर' संज्ञा का प्रयोग किया था- 'युरोप का साहित्य ही विश्वसाहित्य है' ऐसी रुपरेखा उनके सामने थी।''(9) भारत वर्ष में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, ने सन् 1907 में तुलनात्मक साहित्य के लिए 'विश्वसाहित्य' शब्द का प्रयोग किया था अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि- ''यदि हमें उस मनुष्य को समझना है जिसकी अभिव्यक्ति उसके कर्मों, प्रेरणाओं तथा उद्देश्यों में होती है, तो संपूर्ण इतिहास के माध्यम से हमें उसके अभिप्रायों से परिचित होना है। मनुष्य लगातार अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए काम करता रहता है और अपने

को सबके साथ संबद्ध करने के लिए प्रयत्नशील होता है।''[10]

इसपर सिसिर कुमार की टिप्पणी महत्वपूर्ण है, यथा ''अस्सी बरसपूर्व रवीन्द्रनाथ टागोर 'तुलनात्मक साहित्य' पर विचार व्यक्त कर चुके थे, वह विद्याशाखा आज भी 'स्व' की खोज में है, उसे पाश्चात्य देशों में अभी तक मान्यता मिली नहीं, वैसे भारत में उसका अस्पष्ट रुप है।''[11] लेकिन विगत अस्सी वर्षों में गंगा, जमुना और माण्डवी नदी में काफी पानी बह चुका है। वैश्विक संरचना में संचार माध्यमों की विस्फोटक स्थिति में पूरे विश्व को एक विशाल गाँव में Village Structure में तब्दील कर दिया है। अत: तुलनात्मक साहित्य भी संचार माध्यम के अभूतपूर्व प्रभाव प्रयोग एवं परिवर्तन के कारण विभिन्न राष्ट्रों, भाषाओं और साहित्य शास्त्रों की अन्तर्वर्ती प्रक्रिया से अभिनव स्वरूप अख्तियार कर रहा है। अत: प्रेमचंद (भारत) और गोर्की (रूस) पाब्लो नेरूदा(अमेरिका) और निराला(भारत) गिरीश कर्नाड(कन्नड), और विजय तेंडुलकर (मराठी) के रचनाकारों की पारस्परिक तुलना हमारे सांस्कृतिक अध्ययन का सशक्त आधार कार्य है।

1.12 तुलनात्मक साहित्य के तीन स्कूल

तुलनात्मक साहित्य का इतिहास खंडित है उसे एक साथ बाँधना मुश्किल है, तुलनात्मक साहित्य की शुरूआत फ्रान्स में दूसरे-तीसरे दशक में हुई। फ्रान्स तथा जर्मन दोनों देश इस क्षेत्र में आगे थे। तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन करनेवाले तीन स्कूल थे -

1.121 फ्रेंच, जर्मन तथा अमरीकन स्कूल:

फ्रेंच स्कूल - तुलनात्मक साहित्य का मूल क्षेत्र फ्रान्स है, लौकिक एवं प्रसिद्धि अध्ययन फ्रेंचों को प्रिय है, वे सौंदर्यशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक विवेचन को महत्व देते हैं। लेखक उसकी साहित्यकृतियों की परिस्थिति एवं मनोविज्ञान के बीच उत्पन्न संवेदनात्मक संबंधों का अनुसंधान फ्रेंचों ने किया हैं। फ्रांसीसी तुलनावाद का स्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के प्रत्यक्ष वाद के आधार पर निर्मित हुआ। उनकी बुनियादी मान्यताओं के बारे में प्रोफेसर रेमाक का कथन है कि- ''तुलनात्मक साहित्य एक ऐतिहासिक न कि कलात्मक अनुशासन है। वह ठोस यथार्थ से संबद्ध है। यहीं होना भी चाहिए कि वह विभिन्न राष्ट्रों के लेखकों, ग्रंथों, पाठकों तथा दर्शकों के बीच तथ्यात्मक, सचेत और ज्ञातव्य-संपर्क-संबंधों पर आधारित रहे।''[12]

सीमित, संकीर्ण दृष्टिकोणों को त्यागकर सारबोन ने, फ्रांसीसी विद्वान रेने एतियेम्बिल ने तुलनात्मक अध्ययन की सीमाओं का विस्तार किया, उन्होंने तुलनात्मक साहित्य के इतिहासोन्मुख अनुशासन में सौंदर्यशास्त्र के समावेश का विरोध नहीं किया। उन्होंने यूरोपीय विद्वानों का ध्यान पूर्वी साहित्य के अनछूए क्षेत्रों की ओर आकर्षित किया।

इन विद्वानों के वक्तव्यों में तथा विचारों में जो कमियाँ थी, उनको ध्यान में रखते हुए तुलनात्मक साहित्य के संशोधक नये तौर पर विचार विमर्श करने लगे। ऐतिहासिक संबंधों को प्रस्थापित करने का दुराग्रह त्यागकर वे वैश्विक रूप विचार, कल्पनाओं का इतिहास, अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक इतिहास को अपनी कक्षा में नियोजित करने लगे। क्लॉड पिश्वॉ (Pichois) एवं आन्द्रें एम. रुसो की व्याख्या, हेन्री एच्. रेमाक (पीछे दी गयी तुलनात्मक साहित्य की व्याख्या) के सामने रखने से अमरीका एवं फ्रेंच स्कूल की मान्यताओं में साम्य एवं भेद दर्शाये जा सकते हैं।

रूसो की व्याख्या इस प्रकार है- ''तुलनात्मक साहित्य एक प्रणालीबद्ध कला है, सहजसाधर्म्य, रिश्ते-नाते अथवा वह प्रभाव के बंध ढूँढती है, अभिव्यक्ति अथवा ज्ञान के अन्य प्रांतों से वह साहित्य का संबंध जोड़ती है अथवा साहित्यिक यथार्थ और संहिताओं का गठबंधन करती है। लेकिन भिन्न भाषा अथवा संस्कृतियों के अंतर्गत संहिताओं का होना जरूरी है वह एक ही परंपरा से हो तो भी निर्वाह हो सकता है, उनका अच्छा वर्णन करना, उनको अच्छी तरह समझना और उनका बखूबी से सारग्रहण करने के लिए यह पद्धति अपनायी जाती है।''(13)

इसप्रकार फ्रान्सीसी स्कूल के विचारकों ने संप्रेषण की विधियाँ स्वीकृति, सफलता और प्रभाव स्रोत विदेश यात्रा, अन्य देश के साहित्य में किसी देश-विशेष की छवि आदि परंपरागत विषयों तथा अन्य विषय जैसे परकीय संहिता भिन्न भाषी देशों की संस्कृति आदि पर विचार-विमर्श किया हैं।

1.122 जर्मन स्कूल -

जर्मन में 'कम्पॅरेटिव' शब्द का अनुवाद शास्त्रीय धरातल पर Vergleichend हुआ उस के साथ Grammatik शब्द का प्रयोग फ्रेडरिक शेगेल ने सन् 1808 में अपने ग्रंथ के शीर्षक में किया।

तुलनात्मक साहित्य अध्ययन की दिशा में प्रयत्नरत फ्रेंच तथा अमेरिकन स्कूल की परंपराओं पर आक्षेप न करते हुए नये दृष्टिकोणों को स्वीकारता है।

उनके अनुसार तुलनात्मक साहित्य अन्तर्विद्यावर्ती सम्बन्धों का इतिहास है। साहित्य-सिद्धांतो में एक से अधिक प्रदेशों या राष्ट्रों के साहित्यों पर विचार होना चाहिए। परन्तु साहित्य पर विचार सामाजिक एवं ऐतिहासिक संदर्भों में ही होना चाहिए वह शाश्वत कालातीत तथा रहस्यवादी नहीं होना चाहिए। यह तुलनात्मक अध्ययन की महत्वपूर्ण आधार-शर्त है। सामान्यत: सिद्धान्तों की अपेक्षा अध्ययन पद्धती की बुनियाद पर तुलनात्मक अध्ययन की अलग विधा निर्मित की जा सकती है। वैसे विभिन्न विचार मुद्दों को सर्वसामान्य जर्मन तथा तुलनात्मक साहित्य संघटन द्वारा सन् 1970 में आयोजित मेले के चर्चानुसार तय किया गया। उसमें इर्विन कोपेन ने यहाँ तक कहा था कि, ''किसी भी राष्ट्रीय साहित्य के अध्येता द्वारा की गयी तुलना अगर तुलनात्मक पद्धति से की गयी हो तो उसका 'तुलनात्मक' नामकरण होना चाहिए, उसमें अनुवाद यह स्वतंत्र साहित्य विधा न समझते हुए उसका तुलनात्मक साहित्य में समावेश किया गया।''(14)

ग्योएथे की विश्वसाहित्य की संकल्पना (1927) प्रभावकारी बनाने का प्रयत्न जर्मन स्कूल ने किया। उनके आधारभूत सिद्धान्त में एक समन्वित साहित्य की धारणा प्रस्तुत की गयी है जिसमें विभिन्न साहित्य अपनी भिन्नताओं तथा स्व-पहचान को काव्य के आस्वाद की समन्वित चेतना में अंतर्भूत किया है। अपने राष्ट्रीय साहित्य के साथ-साथ अन्य देशों के राष्ट्रीय साहित्यिक परंपराओं को ध्यान में रखना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि विलुप्त होने वाली परंपराओं का पुनर्जीवन; आंचलिक अध्ययन में आयी हुई संकुचित दृष्टि का निराकरण, आध्यात्मिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए एक साथ संश्लिष्ट दृष्टि से कार्य करना जरूरी है। दूसरे महायुद्ध के बाद कौन्स्तांस स्कूल में फ्रेंच तथा पश्चिम जर्मनी के तुलनात्मक अध्ययन कर्ताओं के संयुक्त प्रकल्प शुरू हुए।

1.123 अमरीकन स्कूल :-

आरंभिक अवस्था में रेनेवेलेक, हेरी लेविन, डेविन मेलोन, जैसे विद्वानों ने अमरीकी तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन किया। लायोनेल ग्रॉसमन और मिहाई आय् स्पॅरीअस द्वारा संपादित 'बिल्डिंग अ प्रोफेशन : ऑटोबायोग्राफिकल पर्स्पेक्टिव और द बिगनिंगज् ऑफ कम्पॅरिटिव लिटरेचर इन द युनायटेड स्टेटस' (1994) और चार्ल्स बर्नहाइमर द्वारा संपादित 'अमरीका के तुलनात्मक साहित्य' संबंधी आज की स्थिति पर अपनी टिप्पणी तथा उसपर की गयी प्रतिक्रियाओं स्वरूप मँगवाये लेखों को 'कम्पॅरिटिव लिटरेचर इन द एज ऑफ मल्टिकल्चरॅलिजम' (1995) में

संग्रहित किया गया है। उन लेखों से अमरीकी तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अच्छी स्थिति दिखाई देती है।

अमरीकी स्कूल की रुपवादी आलोचना काव्यशास्त्रीय, सौन्दर्यशास्त्रीय, कलापरक तथा विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि को महत्व देती है, अर्थात् वहाँ सिध्दान्त अभिमुखी काव्यशास्त्र तथा कृति-अभिमुखी साहित्यालोचन के आधारपर तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन होता है। समानताओं, मूल अभिप्रायों, शैलीगत तत्वों, काव्य-विधाओं, आंदोलनों और परंपराओं के तुलनात्मक अन्वेषण को प्रोत्साहन इन्ही विद्वानों ने दिया तथा इस प्रक्रिया में साहित्यिक रचना के कलात्मक वैशिष्ट्य का भी उद्घाटन किया। रेनेवेलेक का कहना है कि ''तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन-उसके परिप्रेक्ष्य एवं भाव के द्वारा परिभाषित तथा समर्थित किया जा सकता है।''(15)

उपर्युक्त स्कूलों के अतिरिक्त अन्य देशों में भी प्रयत्न हुए हैं- रूसी तुलनात्मक साहित्य की शुरुआत ए. एन. वेसेलोव्हस्की से होते हुए व्ही. एम्. झिर्मुन्सकी तथा वायुरिशिन तक दिखाई देती है। वेसेलोव्हस्की ने 'ऐतिहासिक काव्यशास्त्र' (Historical Poetics) नामक ग्रंथ में ऐतिहासिक-तुलनात्मक सौंदर्यशास्त्र निर्माण करने का प्रयत्न तथा काव्य में सामाजिक परिवर्तन प्रतिबिंबित हुआ है। साहित्य जीवन में परिवर्तन लाता है, यह उनके प्रतिपादन का मुख्य विषय था। झिर्मुन्सकी के 'तुलनात्मक साहित्याध्ययन का सिद्धांत और साहित्यिक प्रभावों की समस्या' (1936) तथा 'पुश्किन' पर लिखा ग्रंथ प्राप्त होते हैं।

तुलनात्मक आलोचना में स्लोवाक के दीओनिझ् दायुरिशिन का स्थान महत्वपूर्ण है। उन्होंने तुलनात्मक साहित्य को स्वतंत्र विद्याशाखा के रुप में स्वीकार ही नहीं किया बल्कि उसको संघटनात्मक घटक माना है। इसी प्रकार रुसी तुलनात्मक साहित्य की समाजशास्त्रीय, संस्कृतिपरक-यथार्थवादी दृष्टि विभिन्न, वर्गों में व्याप्त सामाजिक जीवन में घटित होनेवाले समस्तरीय ऐतिहासिक परिवर्तनों एवं अंशतः उनके आपसी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक अन्यान्य क्रिया के आश्रय से अध्ययन करती है। प्रकारान्तर से व्यक्तिगत धरातल पर सुझन बॉस्नेट कृत 'कम्पॅरिटिव लिटरेचर : ए क्रिटिकल इन्ट्रोडक्शन' (1993) कम्पॅरेटिव लिटररी स्टडीज के संपादक- मार्सेल शोकोत्यु तथा केनेथ युर्विन आदि के सृजनात्मक प्रयत्न दृष्टिगोचर होते हैं।

भारतीय तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अमिय देव, सिसिरकुमार दास, नगेन्द्र, इन्द्रनाथ चौधुरी, अय्यप्पा पणिकर आदि के प्रयास प्रशंसनीय है। अमिय देव ने 'आयडिया ऑफ कम्पॅरिटिव लिटरेचर इन इंडिया' (1984) नामक ग्रंथ में तुलनात्मक साहित्य की प्रविधि तथा तुलनात्मक भारतीय साहित्य क्या

है? इन संदर्भों पर विचार किया है। तुलनात्मक अध्ययन विश्वसाहित्य की एक शाखा है, या फ्रेंच, अमरीकन अथवा रुसी की प्रशाखा है? क्या तुलनात्मक अध्ययन यह एक वैध विधि है? क्या यह विधि एकल साहित्य के लिए प्रयुक्त विधि से स्पष्टत: भिन्न है? आदि विविध प्रश्नों को उन्होंने सम्यक रूप से तथा तार्किक रूप से विचारार्थ रखा है। उन्होंने तत्कालीन संदर्भों को ध्यान में रखते हुए तत्संबंधी प्रश्नों के उत्तर दिए है। यह भी कहा है कि- ''संभवत: यह सच है कि तुलनात्मक साहित्य का अपना कोई साहित्यिक सिद्धांत नहीं है। ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है, जो एकल साहित्यों से नितांत भिन्न हो। किंतु यह भी निभ्रान्त सत्य है कि तुलनात्मक साहित्य की एक निजी पद्धति है- एक ऐसी पद्धति जो एकल साहित्यों से पूर्णतया भिन्न है।[16]

सिसिरकुमार दासने - तुलनात्मक भारतीय साहित्य क्यों? नामक प्रश्नार्थक लेख में अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार तुलनात्मक पाश्चात्य साहित्य, प्रकारान्तर से विभिन्न राष्ट्रीय साहित्य का अध्ययन है। प्रसंगवश तुलनात्मक भारतीय साहित्य का मतलब है- एक राष्ट्र के अनेकमुखी साहित्य का अथवा अन्यों के मतानुसार विविध भाषाओं में रचे हुए एक ही राष्ट्रीय साहित्य का अध्ययन है।

के. अय्यप्पा पणिकर ने भी भारतीय विश्वविद्यालयों का तुलनात्मक अध्ययन विषय पर लिखे गये ब्यौरों में कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। उन्होंने अपने अध्ययन के आधारपर पाश्चात्य एवं भारतीय विश्वविद्यालयों के तुलनात्मक साहित्य अध्ययन की समानता दशनि की कोशिश की है।

(1)ज्यादा से ज्यादा तुलनात्मक सिध्द्रान्तों की आवश्यकता है और उसमें उसके इतिहास का समावेश जरूरी है।

(2) सामान्य साहित्य के सिध्द्रान्तों को भी महत्व देना चाहिए।

(3) अभिजात साहित्य का अध्ययन जरूरी है।

(4) राष्ट्रीय और देशीय भाषाओं के साहित्य के अतिरिक्त तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक अथवा दो साहित्यकृतियों का होना जरुरी है।

(5) तुलनात्मक अध्ययन हेतु अनुवाद की आवश्यकता महसूस की जाती है, इसलिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से अनुवाद ग्रंथों का अभ्यासक्रम में सहभाग होना चाहिए।

(6) भारतीय विश्वविद्यालयों में पाश्चात्य साहित्याध्ययन को विशेष महत्व दिया गया है, लेकिन अमरीका तथा एक दो विश्वविद्यालयों के

अलावा भारतीय साहित्य को तुलनात्मक अध्ययन कक्ष (एवं प्रक्रिया) से परे रखा गया है।

उपर्युक्त मुद्दों के आधारपर पणिकर ने कहा था कि "भारतीय विश्वविद्यालयों के तुलनात्मक साहित्याध्ययन को ठोस भारतीय बुनियाद होनी चाहिए। विश्वविद्यालयों के देशीय भाषा साहित्य की नींव पर उसकी रचना करना कठिन नहीं हैं, वह होनी चाहिए।"(17) प्रसंगवश सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, श्रीराम शर्मा, इन्द्रनाथ चौधुरी, स्वपन मुजुमदार, नगेन्द्र, सुव्रत लाहिडी, नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव आदि के तुलनात्मक साहित्य पर लेख पाये जाते हैं।

1.13 तुलनात्मक अध्ययन का क्षेत्र

आज तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन का क्षेत्र असीम है, बहुसंस्कृति के युग में नये-नये तुलनात्मक क्षेत्रों का आगमन हो रहा है, नित्य नये स्वरूप में वह तुलनाकारों के समक्ष अपनी सीमाओं को परिव्याप्त कर रहा है।

आल्ड्रीज ए ओवेन ने 'कॅम्पॅरिटिव लिटरेचर : मॅटर ॲण्ड मेथड' में प्रमुख पाँच क्षेत्रों का चुनाव किया था-

"(1) साहित्यिक समीक्षा और सिद्धांत

(2) साहित्यिक क्रांतियाँ

(3) साहित्यिक आशय कल्पना

(4) साहित्य प्रकार

(5) साहित्यिक संबंध"(18)

इन क्षेत्रों के चुनाव में उनके उद्देश्य अलग-अलग थे, जैसे दिशा निर्देश करना, समस्याओं को सुलझाना तथा उपयुक्त आशयों की पूर्ति करना आदि।

कभी-कभी ग्रंथ संहिताओ के संबंध को स्पष्ट करना भी तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का प्रमुख क्षेत्र रहा है। बहुभाषी देश की स्थिति को ध्यान में रखते हुए तुलनात्मक अध्ययन विभिन्न साहित्यों के साथ प्रतीति एवं ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों का अध्ययन है, जिसमें दृष्टि उद्देश्य तथा कार्यान्वियन का तुलनात्मक होना जरूरी है। यह कला, इतिहास समाजविज्ञान, विज्ञान, धर्मशास्त्र आदि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंधों का भी अध्ययन है। आम तौर पर तुलनात्मक अध्ययन एक भाषा, दो देशों के साहित्यों या दो विभिन्न राष्ट्रों के लेखकों के तुलनात्मक संबंधों का अध्ययन है। इस आधार पर इस अध्ययन को छः भागों में विभाजित कर सकते है-

(1) एक भाषा के दो साहित्यकारों की तुलना जैसे देव-बिहारी की समान अवधारणाओं तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों की तुलना की जा सकती है।

(2) एक ही साहित्यकार की किन्हीं दो रचनाओं की तुलना जैसे तुलसी कृत 'रामचरितमानस और विनयपत्रिका' का तुलनात्मक अध्ययन।

(3) दो लेखकों अथवा कवियों की तुलना-जैसे 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एवं कोंकणी लेखक नागेश करमली का तुलनात्मक अध्ययन' (रामकृष्ण हलर्णकर ने इसी विषय पर गोवा विश्वविद्यालय में शोध कार्य किया है।)

(4) दो प्रवृत्तियों की तुलना-जैसे अंग्रेजी एवं हिन्दी के स्वच्छंदतावाद की तुलना (उदाहरणतः राजकुमारी सिंह अंग्रेजी एवं हिन्दी के आंचलिक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन)

(5) दो भाषाओं की दो युगधाराओं की तुलना - आधुनिक हिंदी और मराठी गीतकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन.

(6) दो विधाओं की तुलना- जैसे हिन्दी और तेलगु के रुपकों का अध्ययन, हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन आदि।

इसप्रकार तुलनात्मक अध्ययन से सामाजिक, सास्कृतिक वातावरण एवं तत्कालीन प्रवृत्तियों, विभिन्न दार्शनिक पध्दतियों का ज्ञान प्राप्त होने में मदद मिलती है तथा साहित्यिक धारा या विधा की विभिन्न प्रवृत्तियों को परखने का अवसर भी प्राप्त होता है।

अपनी-अपनी मान्यताओं के आधार पर अन्य क्षेत्र भी निर्धारित किए जा सकते है - जैसे एक भाषा की दो अलग-अलग प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन, भारतीय एवं युरोपीय अनुवाद के दृष्टिकोण से अनुवाद के सिध्दांत, काव्यशास्त्र, संगीत, भारत एवं पाश्चात्य देशों के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संबंध, भारतीय साहित्येतिहास का अध्ययन । इन्द्रनाथ चौधुरी ने इसकी ओर संकेत करते हुए कहा है कि ''भारतीय साहित्येतिहास का अध्ययन भारतीय तुलनात्मक साहित्य का एक बहुत ही प्रमुख क्षेत्र है। एकक व्यवस्था-स्तर पर एकल साहित्य के रुप में भारतीय साहित्य के इतिहास की अवधारणा का निर्माण बहुत ही जरुरी है। हमारी साहित्यिक परंपरा के ऐतिहासिक पुनःनिर्माण को हम अभी तक पूरा नहीं कर पाये है। वस्तुतः तुलनात्मक साहित्य के पध्दति-विज्ञान के आश्रय से भारतीय साहित्य के तुलनात्मक साहित्यिक इतिहास की एकक अवधारणा बन सकती है।''(19)

इस प्रकार भारतीय साहित्य का तुलनात्मक इतिहास लिखने की आवश्यकता महसूस की जाती है। यह तभी संभव होगा जब प्रादेशिक भाषाओं में भी साहित्य के तुलनात्मक इतिहास लिखे जायेंगे। वर्तमान दौर में इसी प्रकार के अनुसंधानात्मक कार्य संपादित हो रहे है।

भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन और भी लाभदायी हो सकता है। यथा ''तुलनात्मक अध्ययन एक भाषा के अंतर्गत हो सकता है। द्विभाषीय या भारत जैसे देश में अनेक भाषाओं के साहित्य तक इसकी व्याप्ति है। अथवा अपनी परिधि के बाहर भी अन्य कलाओं एवं शास्त्रों के परिप्रेक्ष्य में साहित्य का आकलन किया जा सकता है।''(20)

प्रसिद्ध प्राच्य विद्याविद् मैक्समूलर की उक्ती से तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व को जाना जा सकता है। ''सभी उच्चतर ज्ञान तुलना से प्राप्त होता है और तुलना पर ही अवलम्बित होता है।''(21)

सारांशत: भारत बहुभाषी देश है, लोगों के रहन-सहन, व्यवहार, भोजन वस्त्रधारण आदि में भिन्नता होते हुए भी सांस्कृतिक एकता है। संपर्क भाषा हिन्दी के माध्यम से क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य को विकसित किया जा सकता है। विभिन्न प्रांतों के साहित्य के माध्यम से या तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा विभिन्न प्रकार के जन-समुदाय को एक सूत्र में बाँधा जा सकता है। किसी विशेष दृष्टि से सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि आधुनिक साहित्य की विविध विधाओं का अध्ययन करने के लिए तुलनात्मक अध्ययन की ऐतिहासिक आवश्यकता को महसूस किया जा सकता है।

तुलनात्मक साहित्य की ऐतिहासिक आवश्यकता इसलिए भी है कि प्रत्येक भाषाभाषी में तीन-चार भाषाओं को समझने की क्षमता होती है, उसके बाहरी क्षेत्रों में अनेक घटनायें ऐसी घटती हैं, जो उसके सामाजिक जीवन को झकझोर कर देती है, उन घटनाओं का प्रभाव साहित्य पर कमोवेश रुप में पड़ता है। साहित्य जीवन का दर्पण होने के कारण उन परिस्थितियों के अनुसार लिखा गया साहित्य दूसरी जगहों पर अन्य परिस्थितियों में लिखे गये साहित्य से बहुत ही मेल खाता है, इसलिए भाषागत विभिन्नतायें होते हुए भी अनेकता में एकता का अनुभव हम कर सकते है। प्रसंगवश यह कहा गया है कि- ''भाषागत विभिन्नताओं, विलक्षणताओं के होते हुए भी भारतीय मनीषी ने 'अनेकता में एकता' को अनुभव करने में ही जीवन की सार्थकता मानी है इस तथ्य को उभारकर भावनात्मक एकता को जागृत कर समस्त भारत की चिंतन धारा को एक सूत्र में पिरोने की क्षमता तुलनात्मक अनुसंधान में ही है।'' (22)

तुलनात्मक साहित्य अध्ययन एक ऐसी शाखा है जो प्रत्येक देश और काल की साहित्यिक अभिव्यक्ति की मूलभूत संरचना से संबद्ध है। इसीलिए किसी भी साहित्यिक संघटना की सार्वभौमिकता और सार्वजनिकता से इसका सरोकार है। अपनी विशिष्ट प्रक्रिया के द्वारा विश्व मन, विश्व मानव, विश्व साहित्य तथा अंतर्राष्ट्रीय समीक्षा में सहायक तुलनात्मक अध्ययन जरुरी है। जाति, धर्म, संप्रदाय, भाषा, बोली, दल, प्रांत, देश, खण्ड आदि भेदों के बीच शाश्वत रुप से अखण्ड कालातीत प्रवाह में बहकर विश्वमानव के मन का पुनःप्रदर्शन करने के लिए यह अध्ययन आवश्यक है, परस्पर परिचय का, प्रत्यक्ष संपर्क का प्रयत्न तुलनात्मक अध्ययन कर सकता है और इस दिशा में यह कारगर औजार है-"तुलनात्मक अध्ययन साहित्य की रचनाओं, प्रवृत्तियों, युग विशेषताओं को व्यापक दृष्टि से देखने की एक समीक्षात्मक प्रक्रिया है, जो दो साहित्यों के परिप्रेक्ष्य में प्रारम्भ होती हुई, अनेक साहित्यों में विस्तारित होती हुई, अवकाश और समय को अतिक्रान्त करती हुई, विश्व-साहित्य के व्यापकतम और गहनतम परिप्रेक्ष्य में पर्यवसित होती है।"(23)

वर्तमान दौर में भारत की भाषाओं एवं साहित्यरुपों में ही नहीं अपितु विश्व की अन्य भाषाओं एवं साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। विश्व के प्रतिष्ठित कवियों एवं साहित्यकारों ने अपने-अपने देश की कालजयी कृतियों में मानव-मनोभूमि की एकरूपता का प्रतिपादन किया है। अतः इसी विश्व-मानवात्मा के ऐक्य परक, समानतापरक तथ्यों को, मानवचेतना की अखण्डता विराटता एवं सह जिजीविषा को तुलनात्मक अनुसंधान द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। डॉ. सरयु कृष्णमूर्ति ने आज के तुलनात्मक शोध की निराशाजनक स्थिति की ओर संकेत करते हुए कहा है- विश्वविद्यालय शोधकार्य के सड़े पत्तों एवं अधखिले फूलों का संग्रहालय न बने, फिर भी उनके मन में आशा की किरणें हैं। जिसको उन्होंने सुन्दर रुपक में बांधा है- "तुलनात्मक अध्ययन समकालीन साहित्यकारों के परिप्रेक्ष्य में संपन्न हो तो वह युग की मात्र सापेक्षता तथा युग-युगीनता की सुभग किरणों से अनुरंजित होकर साहित्य, समाज तथा युग की मातृभूमि के उदात्तीकरण, मन के परिष्करण, शाश्वत जीवनमूल्यों के आविष्करण, सत्य के पुष्पीकरण, सौंदर्य के फलीकरण तथा शिव के अवतरण में सहायक सिद्ध होगा।"(24)

अतः तुलना से अध्ययन को पूर्णता प्राप्त होती है। भाषायी, क्षेत्रीय एवं कालगत सीमाओं से उपजी संकीर्णता से छुटकारा भी मिलता है, नई स्फूर्ति, नवचेतना एवं शक्ति का संचार करके साहित्य एवं मानव के लिए अधिकाधिक सक्रियता प्रदान करती है। वस्तुतः तुलनात्मक अध्ययन की विस्तृत परिधि अनुवाद

प्रक्रिया को भी समाये हुए है जिसका उद्देश्य साहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रबोधन तथा विस्तृत परिप्रेक्ष्य का अध्ययन करना है, इसके द्वारा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं की शब्द सम्पदा, उसमें निहित भाव-राशि एवं ज्ञान के प्रकाश को फैलाया जा सकता है जिसके माध्यम से अन्य कृतियों का अभिज्ञान तथा रसास्वादन भी पाठक कर सकता है। इस प्रकार अनुवाद की प्रक्रिया स्वभाषा को तो श्रेष्ठ बनाती ही है तथा अन्य भाषाओं की समृद्धि का भी माध्यम बन सकती है। परन्तु इस सन्दर्भ में न तो अनुवाद की सीमाओं को नजरंदाज करना उचित होगा और न ही तुलना के वैशिष्ट्य से विमुख होना चाहिए। अनुवाद के तुलनात्मक अध्ययन में महत्व के कारण हम उस नये बिंदु तक पहुँचे है- We are now reached the point at which a new start for the relationship between translation and comparative literature is possible for that new start to be productive it is necessary to avoid further ambiguity [25]

आज के साहित्य-जगत् में फैली हुई परस्पर विरोधी (विचार) प्रवृत्तियों को देखकर यह प्रतीत होने लगा है कि साहित्य के प्रति समग्र और व्यापक दृष्टिकोण का विकास तुलनात्मक अध्ययन से ही किया जा सकता है। उसका यह भी महत्व है कि विखंडित मानवता के सामने कुछ ऐसे मूल्यों एवं अवधारणों की स्थापना करें जिनका एक सीमा तक ग्रहण करना सबके लिए आसान हो।

तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन एवं अध्यापन को महत्व बाह्य कारकों जैसे तथ्यों,स्त्रोतों तथा प्रभाव के माध्यम से विविध संबंधों का अनुसंधान करना है। जिन साहित्यिक कृतियों में समानताएँ देखने को मिलती है वह कभी-कभी क्षेत्रीय सीमाओं को पार करती है। टैगोर की रचनाओं में कबीर के प्रभावसूत्र खोजने का कार्य तुलनात्मक अध्ययन से ही संभव है। इंद्रनाथ चौधुरी के अनुसार- ''तुलनात्मक साहित्याध्ययन में प्रभावसूत्रों का अध्ययन किया जाता है, प्रभावसूत्रों के अध्ययन में तुलनात्मक पध्दृति मात्र स्त्रोतों या माडलों की खोज नहीं करती है, इसका मुख्य कार्य यह विश्लेषित करना है कि प्रापक लेखक ने अपने मॉडल को नया रुप दिया है तथा कौन-सी नई काव्यात्मक क्रिया को उसमें जोडा है।''[26]

तुलनात्मक अध्ययन में सीमाओं का विस्तार करना भी जरुरी है क्योंकि उसके पीछे लक्ष्य होता है- प्रस्तुत विषय का अधिक सार्थक रीति से अवबोध किया जायें। साहित्यिक रचनाओं में प्राय: शैली, रचनाशिल्प मन:स्थिति या विचारगत समानताएँ दृष्टिगत होती है, उनमें ऐतिहासिक दृष्टि से सामान्य संबंध सूत्र भी बना रहता है, उसका आकलन हमें तुलनात्मक अध्ययन से होता है।

प्रक्रिया को भी समाये हुए है जिसका उद्देश्य साहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रबोधन तथा विस्तृत परिप्रेक्ष्य का अध्ययन करना है, इसके द्वारा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं की शब्द सम्पदा, उसमें निहित भाव-राशि एवं ज्ञान के प्रकाश को फैलाया जा सकता है जिसके माध्यम से अन्य कृतियों का अभिज्ञान तथा रसास्वादन भी पाठक कर सकता है। इस प्रकार अनुवाद की प्रक्रिया स्वभाषा को तो श्रेष्ठ बनाती ही है तथा अन्य भाषाओं की समृद्धि का भी माध्यम बन सकती है। परन्तु इस सन्दर्भ में न तो अनुवाद की सीमाओं को नजरंदाज करना उचित होगा और न ही तुलना के वैशिष्ट्य से विमुख होना चाहिए। अनुवाद के तुलनात्मक अध्ययन में महत्व के कारण हम उस नये बिंदु तक पहुँचे है- We are now reached the point at which a new start for the relationship between translation and comparative literature is possible for that new start to be productive it is necessary to avoid further ambiguity (25)

आज के साहित्य-जगत् में फैली हुई परस्पर विरोधी (विचार) प्रवृत्तियों को देखकर यह प्रतीत होने लगा है कि साहित्य के प्रति समग्र और व्यापक दृष्टिकोण का विकास तुलनात्मक अध्ययन से ही किया जा सकता है। उसका यह भी महत्व है कि विखंडित मानवता के सामने कुछ ऐसे मूल्यों एवं अवधारणों की स्थापना करें जिनका एक सीमा तक ग्रहण करना सबके लिए आसान हो।

तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन एवं अध्यापन को महत्व बाह्य कारकों जैसे तथ्यों,स्त्रोतों तथा प्रभाव के माध्यम से विविध संबंधों का अनुसंधान करना है। जिन साहित्यिक कृतियों में समानताएँ देखने को मिलती है वह कभी-कभी क्षेत्रीय सीमाओं को पार करती है। टैगोर की रचनाओं में कबीर के प्रभावसूत्र खोजने का कार्य तुलनात्मक अध्ययन से ही संभव है। इंद्रनाथ चौधुरी के अनुसार- ''तुलनात्मक साहित्याध्ययन में प्रभावसूत्रों का अध्ययन किया जाता है, प्रभावसूत्रों के अध्ययन में तुलनात्मक पध्द्ति मात्र स्त्रोतों या माडलों की खोज नहीं करती है, इसका मुख्य कार्य यह विश्लेषित करना है कि प्रापक लेखक ने अपने मॉडल को नया रुप दिया है तथा कौन-सी नई काव्यात्मक क्रिया को उसमें जोडा है।''(26)

तुलनात्मक अध्ययन में सीमाओं का विस्तार करना भी जरुरी है क्योंकि उसके पीछे लक्ष्य होता है- प्रस्तुत विषय का अधिक सार्थक रीति से अवबोध किया जायें। साहित्यिक रचनाओं में प्रायः शैली, रचनाशिल्प मनःस्थिति या विचारगत समानताएँ दृष्टिगत होती है, उनमें ऐतिहासिक दृष्टि से सामान्य संबंध सूत्र भी बना रहता है, उसका आकलन हमें तुलनात्मक अध्ययन से होता है।

प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक चॉम्स्की की आंतरिक संरचना विषयक अवधारणा से तुलनात्मक समीक्षा को नवीन प्रेरणा मिल सकती है क्योंकि इससे ऐसी रचनाओं की तुलना में आसानी होगी जिनकी बाह्य संरचानाएँ असमान हो।

तुलनात्मक समीक्षा तुलनात्मक अध्ययन की सहायता से की जाती है तो तुलनात्मक आलोचना की मदद से साहित्यिक मूल्यांकन तथा साहित्य के समाजशास्त्रीय एवं सौन्दर्यबोधी अध्ययन की नाना समस्याओं का उत्तर दिया जा सकता है। विभिन्न संस्कृतियों और परंपराओं के आपसी संघर्ष या संश्लेषण के अध्ययन के लिए यह पद्धति तुलनात्मक आलोचक से भाषिक तथा सांस्कृतिक तैयारी और ज्ञान की विविधता की मांग करती है। जो साधारण साहित्यालोचक से अपेक्षा नहीं की जाती। उदाहरण के लिए काव्य तथा दर्शन का पारस्परिक संबंध बहुत ही जटिल प्रसंग है और साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में किए गए तुलनात्मक अध्ययन इस दिशा में हमें व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं। तुलनात्मक अध्ययन के महत्व को स्पष्ट करते हुए यह कहा जाए तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी- ''तुलनात्मक साहित्य सांस्कृतिक इतिहास तथा व्यावहारिक आलोचना के बीच समन्वय का प्रयत्न करता है, विस्तार तथा घनत्व में संतुलन स्थापित करता है और राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीयता के बीच एक प्रकार के द्वन्द्वात्मक संतुलन का उद्घाटन करता है।''[27]

तुलनात्मक अध्ययन में आलोचना के सिध्दान्तों के साथ-साथ विभिन्न काव्य-रुपों (genres) और काव्य शैलियों (styles) का विवेचन भी किया जा सकता है। कहना न होगा कि साहित्य की चरम परिणति अन्तर्राष्ट्रीय या विश्वसाहित्य के अध्ययन में परिणत होती है।

इस प्रकार तुलनात्मक साहित्याध्ययन आज एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। उसकी सर्जनात्मक प्रक्रिया, कलाकृतियों के मूल, दूसरे साहित्य तथा भाषाओं के सम्पर्क बननेवाली शक्ति के रुप में प्रकाश डाला जा सकता है, दूसरी ओर तुलनात्मक अध्ययन एक संस्था के माध्यम से भी साहित्यालोचना पर दृष्टि डालता है।

तुलनात्मक अध्ययन के महत्वपर दृष्टि डालते हुए हेच. एस पासनेट ने कहा है- ''तुलनात्मक साहित्य का अनुशीलन विविध जातियों को निकट लाकर उनके सृजनात्मक भाव विकास में सहयोग देता है।''[28] किसी भी एक लेखक को जानने के लिए उससे साहित्य का अध्ययन काफी नहीं होता है इसके लिए दूसरे प्रदेशों, राष्ट्रों का संपर्क, एवं उसकी संस्कृति को जानना जरुरी है और इन सबसे अवगत होने के लिए तुलनात्मक अध्ययन की ऐतिहासिक आवश्यकता महसूस

की जाती है।

कहना न होगा कि तुलनात्मक अध्ययन से सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण एवं तत्कालीन प्रवृत्तियों, विभिन्न दार्शनिक पध्दतियों का ज्ञान प्राप्त होगा तथा साहित्यिक धारा या विधा की विभिन्न प्रवृत्तियों को परखने का अवसर मिलेगा। महाकवि वर्डस्वर्थ के कथनानुसार ''स्थल और वातावरण, भाषा, रहन-सहन, शासन और रीति-रिवाज आदि में भिन्नता होते हुए भी सदा से विश्व में व्याप्त विशाल मानव समाज के साम्राज्य को कवि अपने आवेग और ज्ञान के सूत्र से बांध देता है।''(29) इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों की तुलना से ज्ञानवृद्धि जरूरी होती है।

तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता साहित्य के अध्ययन में अर्वाचीन पद्धति के रुप में महसूस की जाती है। इन्द्रनाथ चौधुरी के मतानुसार -''संस्कृत तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के तुलनात्मक पर्यविक्षण के द्वारा ही एक लाभदायक सर्वभारतीय आलोचनात्मक सिद्धान्त-भाषा का निर्माण किया जा सकता है जिससे ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय तथा काव्यशास्त्रीय सौंदर्यपरक दृष्टि की सहायता से तुलनात्मक भारतीय साहित्य के नाना आयामों का मूल्यांकन संभव है। मगर मूल्यांकन के लिए तुलनात्मक पध्दति को अंतर्विधावर्ती होना जरुरी है।'' संस्कृत काव्यशास्त्र के साथ पाश्चात्य काव्यशास्त्र को जोडकर निर्मित अधिभाषा संबंधी अंतर्विधावर्ती दृष्टि की सहायता से तुलनात्मक भारतीय साहित्य के अध्ययन का वास्तविक प्रसार और मूल्यांकन कार्य संभव हो सकता है। इस प्रकार के अध्ययन से ही विभिन्न साहित्यों में एक 'कॉमन आइडेंटिटी' (सार्वभौमिक अस्मिता) को तलाश कर पाना संभव है जिससे अन्ततोगत्वा एकता और विविधता के धरातल पर भारतीय साहित्य के एकक-साहित्यरूप' की अवधारणा का निर्माण संभव है।

साहित्यरूप की अवधारणा के निर्माण में तुलनात्मक अध्ययन से लाभ हो सकता है लेकिन विगत् बरसों से दर्शन भाषाविज्ञान, मानवविज्ञान, इतिहास, मार्क्सवाद; नारी आंदोलन मनोविज्ञान, धर्म, अन्य अनेक वाद, क्षेत्रीय दृष्टि, सांस्कृतिक मूल्यों में आयी गिरावट के कारण विविध समस्यायें जन्म ले रही हैं।

प्रकारान्तर से नरेश गुह ने अपने लेख 'तुलनात्मक साहित्य अर्थ और स्वरूप' में 'तुलनात्मक साहित्य' नाम पर आक्षेप लेते हुये उसे अपर्याप्त एवं अस्पष्ट कहा है। उनके अनुसार ''अपने आप में तुलना निश्चय ही (आलोचना) पध्दति का कोई विशिष्ट प्रस्थान बिंदु नहीं हो सकती, साहित्य के समुचित अध्ययन में उसे अंतर्भुक्त होना चाहिए, चाहे वह एक साहित्य का अध्ययन हो या अनेक का।

इसकी स्थापनाओं से ही मतभेद शुरु होते हैं। किसी एक साहित्य के संदर्भ का क्षेत्र उसका वहीं विशिष्ट साहित्य होता है जबकि तुलनात्मक साहित्य अनिवार्य रुपसे एकाधिक साहित्यों का हवाला देता है।''(30)

साहित्यिक कृतियों के संरचनात्मक या पारस्परिक संबंधों का उद्‌घाटन करने के लिए व्यक्तिगत, प्रांतीय, देशीय एवं वैश्विक धरातल पर तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है जिसकी और हैन्केल ने संकेत किया है। उन्होंने काबुल विश्वविद्यालय में दिसंबर 1949 तथा जनवरी 1950 में तीन भाषण दिए है, जो सन् 1952 में पुस्तकरूप में प्रकाशित हुए थे। उसमें तुलनात्मक अध्ययन के व्यापक क्षेत्र पर प्रकाश डालते हुए आनेवाले वर्षों में वे साहित्यिक अध्ययन में समन्वित दृष्टिकोण विकसित करने का महत्व रखते हैं। उन्होंने निम्न रुप से अपने विचार व्यक्त किए है ''इस पार्थिव युग में मानवजाति का विकास तभी संभव है जब विभिन्न संस्कृतियों का विनिमय संगम हो, राष्ट्रीय सीमाओं का सचेष्ट रुप में और निश्चयपूर्वक अतिक्रमण किया जाए और व्यक्तिवादी आधार का विकास किया जाय। बौद्धिक उपलब्धियों के सुदूर क्षेत्रों तक हमारी समझ-बूझ की पहुँच होनी चाहिए। तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन भले ही सार्वजनिक आंदोलनों से अनिवार्यतः दूर होगा वह उच्च-शिक्षितों के लिए ही संभव होगा, पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की वृद्धि का वह एक अद्‌भुत साधन बन सकेगा।''(31)

1.2 तुलनात्मक अध्ययन की प्रविधि एवं प्रारुपः

तुलनात्मक अध्ययन की प्रविधि शोधकर्ता को शोध कार्य की अन्तर्वस्तु तक पहुँचानेवाली, उससे उसका साक्षात्कार करानेवाली तथा मार्गदर्शन करानेवाली प्रक्रिया है। यह प्रविधि जिस प्रकार शोधकर्ता को संगत तत्वों तक पहुँचाने में, आवश्यक सामग्री के संचयन एवं व्यवस्थापन में मदद करती है उसी प्रकार शोध के सारे आयामों के साथ अपनी संपूर्ण प्रक्रिया में समस्याओं के निराकरण करने में भी सहायक होती है।

आधुनिक साहित्य के प्रत्येक पक्ष-विपक्ष, विधा-कथ्य या प्रवृत्ति में कुछ तुलनात्मक अंश अवश्य विद्यमान रहते है मगर तुलनात्मक अध्ययन की प्रविधि के लिए यह आवश्यक है कि वह तुलनात्मक विश्लेषण एवं विवरण के अंतर को प्रकट करते हुए अध्ययन का प्रसार करें। हर शोध सामग्री का विवरण कहीं न कहीं अप्रत्यक्ष रुप से तुलनात्मक होता ही है अगर किसी एक पद्धति, ढाँचा या प्रतिमान के आश्रय से किया गया प्रत्येक विश्लेषण ऐसा नहीं होता। इसीलिए

तुलनात्मक साहित्य की समस्याओं को समझते हुए प्रविधि के रुप में तुलना के प्रयोग में बहुत ही सावधानी अपनानी पड़ती है।

तुलनात्मक साहित्याध्ययन, तथा अध्ययन प्रकारान्तर से सादृश्य संबंधात्मक प्रविधि, परंपरा प्रविधि; प्रभावसूत्रों की प्रविधि तथा स्वीकृति प्रविधि के अंतर्गत होता है। यह साम्य या वैषम्यमूलक हो सकता है मगर दोनों ही स्थितियों में इस अध्ययन का गहन या सुव्यवस्थित होना आवश्यक है। सादृश्यमूलक पद्धति में विभिन्न सामाजिक एवं ऐतिहासिक परिप्रक्ष्यों से, युक्त साहित्य का विवेचन एवं अध्ययन शैली संरचना या अवधारणाओं का सादृश्य तलाशा जाता है।

परंपरा प्रविधि में सामाजिक या ऐतिहासिक परंपराओं से जुड़कर अध्ययन किया जाता है। प्रभावसूत्रों को तुलनात्मक साहित्याध्ययन के केन्द्र में माना जाता है। इस प्रविधि में साहित्य या साहित्यकार पर दूसरे साहित्यकार या कृति के प्रभाव का विवेचन स्थापित कर कारण-कार्य सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। कहना न होगा कि तुलनात्मक अध्ययन परिवेश, लेखक, पाठक समीक्षक सबको अपने अध्ययन का विषय बना लेता है तथा इसमें अनुवादकों का कार्य और आलोचकों का योगदान भी अपना महत्व रखता है।

1.21 युगीन परिवेश एवं प्रभाव

जिस प्रकार किसी भी कृतिकार की रचना और उसमें व्यक्त विचार उस काल देश की परिस्थिति से प्रभावित होते हैं उसी प्रकार तत्संबंधी परिवेश में ही उसका सहीं मूल्यांकन संभव है। दो परिवेशों में रचित दो प्रकार के जीवनमूल्यों को प्रतिष्ठित करने वाली रचनाओं की तुलना करते समय दोनों के परिवेशों को ध्यान में रखना जरुरी है।

प्रकारान्तर से बाह्य भौगोलिक तथा सामाजिक स्थितियों का जायजा लेकर कथावस्तु तथा चरित्रों के विकास एवं ह्रास की स्थितियों को उजागर किया जा सकता है। कथासमीक्षा में देश-काल-वातावरण एवं परिस्थितियाँ ये सभी महत्वपूर्ण तत्व हैं, लेकिन आजकल आलोचना की शब्दावली में इसे परिवेश कहा जाता है। साहित्य में विश्वसनीयता तथा जीवंतता लाने हेतु इसका इस्तेमाल महत्वपूर्ण अस्त्र के रुप में किया जाता है।

मार्कण्डेय के कथासाहित्य का परिवेश व्यापक है। स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर गाँवों की स्थितियों को तथा परम्परागत स्वरूप, आवर्तन-परिवर्तनों, को उन्होंने स्वयं भोगा है। जनजीवन की आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, आर्थिक

विषमताओं के जंजाल में उलझे हुये ग्रामीण लोगों को उन्होंने बहुत नजदीकी से महसूस किया है। गुलामी की जंजीरों को तोड़ने का दर्द उन्होंने अपने बाबा के माध्यम से अनुभव किया। बाबा के उद्‌गारों की पीड़ा आजतक उनके मस्तिष्क में घूम रही है - ''भला वह कौन सा दिन होगा जब अपनी मातृभूमि आजाद होगी। पता नहीं हमारे भाग्य में स्वतंत्र भारत को देखना लिखा भी है या नहीं... अन्याय शोषण और गुलामी के खिलाफ एक आवाज एक दूर-दूर तक पहुँचाती हुई पुकार की तरह वे मेरे मन में बस गये थे।''(32)

सुधी जन जानते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर परिवेश, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, राजनीतिक षड्‌यंत्र, अव्यवस्था, मूल्यहीनता की चपेट में आ गया है। समाज में व्याप्त वर्ग विषमता, आर्थिक विषमता-निर्धनता, अंधविश्वास, रुढ़ियों ने आम जनजीवन को खोखला बना दिया। गांवों के सुधार के लिए ग्रामोद्धार, ग्राम स्वराज्य, ग्रामीण विकास की योजनायें भारत सरकारने बनायी है लेकिन उसका फायदा प्रशासनिक स्तर पर ही लोग उठाते रहे हैं। सामाजिक एवं शैक्षणिक उन्नति की योजनायें फाइलों में ही बंधकर रह जाती है। इस प्रकार के अभावों से संत्रस्त परिवार तथा परिवेश की घातक स्थितियाँ, आदर्शहीन क्रियाकलाप, विकासहीन दिशा की ओर उन्मुख योजनायें आदि से अनास्था एवं अस्वीकार की पीढ़ी ने जन्म लिया है। फिर भी वह महसूस किया गया कि ग्रामीण परिवेश में अभी भी भारतीय संस्कार जीवित है। भौतिक पिछड़ेपन के बावजूद खान-पान, रहन-सहन, भाषा बोली, तीज-त्यौहार आज भी कायम है और उनको ढूंढने तथा उनसे उर्जा ग्रहण करने का कार्य आंचलिक कथाकार मार्कण्डेय ने किया है। शोषित मनुष्य के प्रति अपनी पक्षधरता, दलित एवं पीड़ित मनुष्य के प्रति सहृदयता उनको बेहतर जिंदगी देने के लिए लड़ना आदि कर्म तत्संबंधी परिवेश की उपज है जो मार्कण्डेय की साहित्य की जान है।

'गुलरा के बाबा'(33) कहानी के बाबा, 'अग्निबीज'(34) उपन्यास में साधोकाका आदि चरित्रों पर 'बाबा' का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उनके विचार गाँववालों की शक्ति रहे हैं, उनके हकों के लिए लड़ने का उत्सबिंदू वास्तव में उनके बाबा थे जिसका प्रतिरूप 'गुलरा के बाबा' एवं 'साधोकाका' का चरित्र है। दुःखी, प्रताड़ित औरत अपना सबकुछ खोने के बाद 'महुएँ के पेड़' में सर्वस्व देखनेवाली 'दुखना', शोषित जनता, पढ़े लिखे बेकार नवयुवक का पलायन यह सब कुछ उसी भोगे हुए परिवेश की देन है।

'शवसाधना' कहानी ढोंगी-पाखण्डी, साधु-संन्यासियों की वास्तविकताओं का पर्दापाश करती है, अज्ञानी भोले-भाले अंधविश्वासी, लोग साधु के जाल में

फँसकर सब कुछ लुटा देते है। लेकिन साधुबाबा भोलीभाली युवतियों को अपनी वासना का शिकार बनाता है। घेंचु की पत्नी सुखी जो उनसे गर्भ धारणा कर चुकी है, उसे लेकर भागने की तैयारी करता है, यह प्रभाव मार्कण्डेय की कहानी पर अपने युगीन परिवेश के कार्य-कारण स्वरूप है, ऐसे स्वार्थी बाबाओं का उस जमाने में बहुत बोलबाला था। लोगों के भोले-भाले दिलों के विश्वास का फायदा लेकर उन्हें लूटना उनकी विशेषता रही है।

आज के जीवन में लेखक को सच्चाईयों का सामना करना होगा। आज की बाह्य एवं आन्तरिक परिस्थितियों को जानने की क्षमता लेखक में हो, नये परिवेश की समझ हो, यही उनकी कामना रही है। कथाकार मार्कण्डेय के अनुसार 'विकासशील विचार-परम्परा ने आज के लेखक को एक ऐसी जगह ला खड़ा किया है जहाँ से विमुख होने का अर्थ है उसकी रचनाशक्ति का ऱ्हास। बात आग्रह की है लेकिन संदर्भ इतना भिन्न है कि कोई इसका प्रयोग आरोपित आग्रह के लिए नहीं करेगा। विज्ञान और दर्शन की प्रगति ने हमारी परम्परागत मान्यताओं को एक नये परिवेश में ला खड़ा किया है जहाँ हर अनुभूति को कार्यकारण की कसौटी पर खरा ही उतरना पड़ता है, (आम आदमी तो) तर्क और बुद्धि से परे सिर्फ भावुकता कंधों पर उठाए हुए है।'[34]

मार्कण्डेय के समानधर्मी आंचलिक कथाकार पुण्डलीक नायक को गोवा की मुक्तिपूर्व परिस्थितियों का अहसास घरवालों के माध्यम से हुआ। गोवा में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनीतिपूर्ण दुर्व्यवहार, सामाजिक वर्ग-विषमता आदि परिवेशगत प्रवृत्तियों को पुण्डलीक नायक ने स्वयं भोगा है। खेती, कुळागर, बैल, किसान झोपड़ियाँ झरने, पेड़, पौधे आदि उनके कथाओं के विषय हैं। शोषित और शोषक, शोषितों की मजबूरियाँ, पीडायें आदि को उन्होंने गहन अभिव्यक्ति दी हैं। पुंडलीक नायक की कहानियों में गोवा का प्राकृतिक परिवेश, विविध भावनाओं के अनुरूप मुखरित होता है। 'बळार', 'माड', 'पारज' आदि कहानियों में प्रकृति एवं जीवन संघर्ष के विभिन्न रुपों का दर्शन हमें होता हैं।

'बळार'- (बगुला) कहानी में वह येसुलों के खेत में खड़ा होकर सोचता है कि मेहनत से कसी हुई जमीन जो उसके पिता के लिए सर्वस्व थी। मेहनत के अभाव में येसुलो उसे गवाँ रहा है। उसको धान के लिए उपजाऊ न बनाकर बिना मशक्कत किए जमीन को बंजर छोडना, येसुलो की श्रमहीनता को दर्शाता है। आज लोग कम मेहनत कर बहुत कुछ पाना चाहते हैं। 'बळार' कहानी में बंदूक की गोली का निशाना साधकर बगुले को मारकर खाना भी येसुलो की प्रमाद-प्रवृत्ति को उजागर करता है। शिकार साधने पर तुरंत फलप्राप्ति की चाहत से वस्तुत:

पूंजीपतियों की शोषण वृत्ति का आजकल साधारण लोगों में भी उभरकर आने का प्रमाण हैं। प्रस्तुत 'बळार'[35] कहानी इसी मनोवृत्ति का मनोविश्लेषणात्मक निरूपण है।

आधुनिक युग में आर्थिक भीषणता की चपेट में परिवार विघटित हो रहे हैं। सामाजिक व्यवस्था भीतर से खोखली एवं जर्जर हो गयी है। संयुक्त परिवार के टूटने के बाद अपनी मिट्टी के घरौंदे जैसे घर को बचाने का अटूट प्रयास पुंडलीक नायक की कहानी 'घर' में किया गया है। दो शादी-शुदा लड़के तथा एक बिन ब्याहे पढ़नेवाले लड़के और माँ के संघर्ष को 'घर'[36] कहानी सशक्त रूप से व्यक्त करती है। पुंडलीक नायक की 'भागेलपण' नामक कहानी भाटकारों (जमींदारो) के अत्याचार तथा धोखाधड़ी के साथ-साथ अपनढ़ो को पढ़े-लिखे वर्ग द्वारा ठगे जाने को अभिव्यक्त करती है। कहानी के अंत में गोदुलों को अपने लड़के को पढ़ाने हेतु 'पार्टनरशिप' छोड़कर उस गाँव से अपनी पत्नी के साथ सीमा लाँघना रचनाकार की प्रगतिशील दृष्टि का परिचायक कार्य है। बाबासाहेब आंबेडकर, राममनोहर लोहिया के विचारों से उस समय का परिवेश जाग्रत हो चुका था। स्वतंत्र गोवा में भाऊसाहेब बांदोडकर ने शिक्षा प्रसार के लिए गाँव-गाँव में पाठशालायें खोली थी और निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक के लड़के-लड़कियाँ कक्षाओं में एक साथ पढ़ते थे। उसी परिवेश एवं विचारों की देन यह कहानी है।

पुंडलीक नायक ने जिस भौगोलिक परिवेश को देखा तथा जिस सामाजिक व्यवस्था में जो जीवन जिया है, जहाँ-जहाँ उनकी दृष्टि गयी वह जगह, वह व्यक्तिरेखा जीवंत होकर उनकी रचनाओं में अभिव्यक्ति पाने लगती है। जिससे यह महसूस होने लगता है कि इन विविध छटाओं का परिवेश तो कहानियों को पढ़ने से पूर्व हमनें महसूस ही नहीं किया है।

1.22 युगीन परिवेश : जीवन संघर्ष से प्रभावित विचारधारा

प्रत्येक लेखक युगीन विचारधाराओं तथा परिवेश आदि से प्रभावित होता है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिवर्तनों से, उनकी संरचनात्मक प्रणालियों से लेखक की चेतन-अवचेतन मानसिकता भी उद्वेलित होती रहती है। किसी भी विषय पर लेखन करने से पूर्व वह अपनी मानसिकता एवं जीवन मूल्यों से सोच-विचार कर किसी विचारधारा का पक्ष या विपक्ष ग्रहण कर लेता है। उदाहरण स्वरूप मार्कण्डेय आचार्य नरेन्द्रदेव की सभा में जाने के कारण समाजवादी विचारों

से काफी प्रभावित रहे हैं। कॉलेज शिक्षण के दौरान 'मार्क्सवाद' शिक्षण (Marxist study group) की कक्षाओं ने भी उनके जीवन में काफी हलचल पैदा की। मार्क्स एवं लेनिन की जीवनियों ने उनके सामने रोशनी एवं अंधेरे की पहचान का रास्ता खोला। बचपन से उन्होंने शोषितों के अत्याचारों, जीवन की विसंगतियों एवं अन्यायों, गुलामी आदि को महसूस किया था। उसके खिलाफ आवाज उठाने के लिए बेहतर जिन्दगी के स्वप्नवाली मार्क्सवादी विचारधारा का तेज-तर्रार अस्त्र मिला। जिसका सहारा लेकर समाज को बदलने के कार्य में वे पूरी ईमानदारी एवं प्रतिबद्धता से जुट गये। शिवकुमार मिश्र के अनुसार ''मार्क्सवादी दर्शन के कारण युगीन परिवेश, मार्क्सवादी विचारधारा तथा रचनात्मकता के अंत:सम्बन्धों का ज्ञान किताबी स्तर पर नहीं वरन् ठेठ जिंदगी के भीतर धँसकर प्राप्त होता है।''(37)

प्रसंगानुसार तत्कालीन युगीन परिवेश एवं राजनीतिक हलचलों से गांधीवादी विचारधारा के कुछ अंशो का भी प्रभाव मार्कण्डेय पर रहा है। अत: शोषितों के प्रति, अन्याय के प्रति आवाज उठानेवाले गांधीवादी तत्वों से उनकी रचनाशीलता प्रभावित हुई है । जिसका प्रभाव 'हंसा जाई अकेला' एवं 'अग्निबीज' आदि के पात्रों में देखा जा सकता है।

लेकिन जहाँ गांधीवादी विचारधारा उनके प्रगतिशील रूझानों में बाधक बनकर आयी है वहाँ उसे उन्होंने स्पर्श तक नहीं किया है। उदाहरण के लिए गांधीवादी चिन्तक शोषकों को हृदय-परिवर्तन की अभिशंसा रखते है, परंतु मार्कण्डेय सामंती-पूँजीवादी व्यवस्था के अंत तथा वर्गहीन समाजव्यवस्था की स्थापना की लालसा रखते है। इसलिए उनका कथासाहित्य इसी दिशा में सकारात्मक रूप से अग्रसर रहा है, 'हंसा जाई अकेला' कहानी में गांधीवादी विचारधारा की निष्क्रियता 'हंसा' के संबंध में हमारे अभिमत का प्रमाण है। तथा 'अग्निबीज' के पात्र भाई और भागो बहन के कार्यों में भी गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

चेतना एवं वर्गीय संघर्ष से उपजी संवेदना के आधारपर मार्कण्डेय मार्क्सवादी रचनाकार कहे जाते है। यह विचारधारा भाववादी न होकर पूर्णत: यथार्थवादी एवं भौतिकवादी है। वे कहीं भी अपने साहित्य में ईश्वर का हवाला देकर उन्हें अपने पात्रों की स्थितियों का जिम्मेदार नहीं मानते है और न ही ईश्वर में आस्था रखने के कारण पात्रों की विकसित अवस्था को दर्शाते हैं। पूर्णत: परिवेशगत आयी हुई जिम्मेदारियों को संभालने की शक्ति तथा उनसे जूझते हुए विकासमान होने की सकारात्मक कोशिश उनके पात्र करते रहते हैं।

गोवा क्षेत्र के यशस्वी प्रगतिशील कथाकार पुंडलीक नायक सावईवेरे,

रुमड, वळवई आदि गावों की भूमि से जुड़े हुये है। वे गोवा के आंचलिक क्षेत्र में हर एक वर्ग की सुख-सुविधा, व्यथा एवं दुःखों से वे परिचित हैं। वैसे भी साधारण मनुष्य को सुख पाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। बिना प्रयत्न किये उसको फलप्राप्ति नहीं होती। निम्नवर्ग मजदूर, किसान हमेशा मध्यवर्ग में और मध्यवर्ग अपने प्रयत्नों से पूँजीपतियों तथा उद्योजकों की अभिजात्य श्रेणी में जाना चाहता है। वर्तमान दौर में पूँजीपतियों की धनलिप्सा ने मनुष्यता तथा सुख-सुविधा भोगी जिंदगी जीने के चक्कर में निजी मान-मर्यादाओं को बलि चढ़ाया है। निम्न मध्यवर्ग द्वारा कम से कम समय में धन कमाने की लालसा को तथा उसके संघर्ष को लेखक ने संवेदनात्मक स्तर पर महसूस किया है और अपनी समाजवादी यथार्थपरक दृष्टि से समाज के एक-एक रेशे को खोलने का प्रयास किया हैं, जिससे बर्बर, घृणित एवं जटिल सत्य का उद्‌घाटन हुआ है। सुधी विद्वानों को ज्ञात है कि पूँजीवादी व्यवस्था के नारों ने मानवीय मूल्यों का खात्मा किया है। मार्क्स के अभिमत है कि पूँजीवादने एक शब्द में, धार्मिक तथा राजनीतिक भ्रान्तियों से अवगुंठित शोषण को उखाड़कर इसने नंगा, बेशर्म, प्रत्यक्ष और बाहरी शोषण कायम कर दिया है। इसने डाक्टर, पुरोहित, कवि, वैज्ञानिक-सभी को मजदूरों में बदल दिया है।''[38]

समाजवादी यथार्थवाद भी यही चाहता है कि लेखक वस्तुगत यथार्थ को उसकी संपूर्णता में उभारकर प्रस्तुत करें। पूँजीवादी सभ्यता की बढ़ती हुई विकृति के साथ वातावरण का दबाव मानव मन तथा मानव स्वभाव पर पड़ा हैं। परिणाम स्वरूप जटिल संघर्षपूर्ण तथा उग्र से उग्रतर होती हुई स्थितियाँ पैदा हुई हैं। जिसका प्रभावशाली और सशक्त चित्रण पुण्डलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में पाया जाता हैं। समाजवादी विचारधारा एवं यथार्थवादी अभिरूचि के लेखक होते हुए भी अंत में पुण्डलीक नायक परिस्थिति के सामने हताश मनुष्य समुदाय को चित्रित करते हैं। मनुष्य को उसके परिवेश से पूर्णतः परिचित कराते हुए वे उसे विद्रुपता और दुर्व्यवस्था के प्रति सजग कराते हैं; ताकि वह पाठक एवं प्रतिबद्ध मनुष्य होने के रूप में सक्रिय हो सके।

पुण्डलीक नायक कृत 'अच्छेव' उपन्यास के आधारपर हम यह कह सकते है कि वे गोवाप्रांत के समाज में खनिज व्यवसाय (mines) के कारण आये हुए मूल्य परिवर्तन को वे विभिन्न पात्रों के माध्यम से चित्रित करते है। पूँजीपतियों जैसी धन कमाने की लिप्सा वर्तमान मनुष्य समाज को किसी प्रकार अंधेरे के गर्त में ढकेल रही है। इसका मार्मिक विश्लेषण उनके कथा साहित्य में पाया जाता है। वे 'अच्छेव' उपन्यास में व्यवस्थाजन्य विकृतियों का उद्‌घाटन कलात्मक रुप

में करते है। 'पंडरी' और 'रूक्मिणी' जैसे पात्रों के माध्यम से गोवा के आंचलिक जीवन का यथार्थ वे 'समग्रता' के दृष्टिकोण से उकेरते हैं।

1.3 तुलनात्मक अध्ययन के प्रतिमान

किसी भी देशकाल के साहित्य का मूल्यमापन करने के लिए समीक्षा पद्धति में संभावित प्रतिमानों की आवश्यकता महसूस की जाती है। प्रतिमानों के बिना मूल्यांकन कार्य असंगत प्रतीत हो सकता है। सामान्यतः प्रतिमान वह है जो निर्णय करने के संदर्भ में एक सिद्धांत के रुप में प्रयुक्त होता है। आदर्श से जुड़े नियम भी नॉर्म्स या प्रतिमान कहे जाते हैं। कुछ विद्वान मूल्य और प्रतिमान में अन्तर नहीं मानते हैं। प्रभाकर माचवे ने दोनों को एक माना है- मूल्य और प्रतिमान समानार्थी शब्द हैं, दोनों ही मानवनिर्मित निकष या कसौटियाँ है....[39] कुमार विमल का भी यहीं मत रहा है कि ''मूल्य का अर्थ जीवनदृष्टि या स्थापित वैचारिक इकाई जिसे हम सक्रिय नार्म भी कह सकते हैं।[40] ध्यान से देखा जाय तो दोनों में अन्तर नजर आता है मूल्य की सत्ता प्रतिमान से थोड़ी पृथक है। डॉ रमेश कुन्तल मेघ ने मूल्य और प्रतिमान के सूक्ष्म अंतर को रेखांकित किया है - वे मूल्य को काम्य की धारणाएँ मानते हैं और प्रतिमान को काम्य आचरण का रुपबंध या पैटर्न कहकर संबोधित करते है।[41]

'इंटर नेशनल इन्साइक्लोपीड़िया आफ द साइंसेज' में भी इस भिन्नता को स्पष्ट किया गया है- Values are not the same as norms for conduct norms are rules for teaching they say more or less specifically what should or should not be done by particular types of actors in given circumstances. Values are standards of desirability that are more nearly independent of specific situations.[42]

इस प्रकार प्रतिमान व्यवहार के वे नियम है, जो सामाजिक चेतना के हलचलों पर नियंत्रण रखते है। साहित्य के व्यवहार के भी अपने कुछ नियम होते है, तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के संभावित प्रतिमानों को साहित्य विवेचन क्षेत्र की व्यापकता और उपयुक्तता के आधारपर तय किया जाता है।

हमारे शोध का विषय ''मार्कण्डेय एवं पुण्डलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन'' संबंधी विश्लेषण है। इस दिशा में कथा साहित्य संबंधी प्रतिमानों का मूल्यांकन मानक निर्धारित करना है। दोनों के सामाजिक

परिवेश, संस्कार मान्यताओं मे विभिन्नता होते हुए भी विचारगत समानतायें पायी जाती है। मराठी, हिन्दी कोंकणी आदि भाषाओं में स्वतंत्रतापूर्व काल में समाज में स्वाधीनता प्राप्ति के लिए जोश एवं उत्साह का संचार करने हेतु साहित्य का निर्माण हो रहा था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विविध आशाएँ दिल में समायी थी। उस उज्वल भारत की जो कल्पना लोगों के मनमस्तिष्क में थी उसको कविता तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब जन-जागृति आग्रह बढ़ा तो देश की प्रबुद्ध चेतना का ध्यान देश के उपेक्षित भू-खण्डों और विस्मृत तथा तिरस्कृत वर्गों एवं जातियों की ओर गया। साहित्यकार अपनी जिम्मेदारी को पहचानकर जागरूक हुआ और अपने ग्रामीण अंचल से लेकर शहरी जीवन की विभिन्न जीवन रुपों तथा अनुभवों को व्यक्त करने की कोशिश में लगा। नयी चेतना से संबंद्धित लेखक वर्गों ने साधारण जीवन की समस्या उनका समाधान तथा प्रेम एवं यौनपरक कुंठाओं को कथासाहित्य का विषय न बनाकर गाँव के विशिष्ट अंचल या विशिष्ट जाति को विषय वस्तु के रुप में चुना यह उनकी प्रेरक शक्ति है।

हिन्दी के समानांतर अन्य भारतीय भाषाओं में आंचलिक कथासाहित्य का विकास जरूर हुआ है लेकिन कोंकणी में यह विकास परम्परा हिन्दी के समानान्तर रूप से नहीं दिखाई पडती, कारण दोनों के स्वातंत्र्यप्राप्ति काल में फर्क है। भारत के विभिन्न हिन्दी व अहिन्दी प्रदेश ब्रिटिश उपनिवेशवाद से संघर्ष करते हुए 15 अगस्त 1945 में स्वाधीनता प्राप्त कर चुके थे, जबकि गोवा प्रांत में पुर्तगीज उपनिवेशवाद से मुक्ति 19 दिसम्बर 1961 में प्राप्त हुई। अतः पुंडलीक नायक के कथा साहित्य से ही गोवा के आंचलिक लेखन की सहीं शुरूवात हुई ऐसा अभिमत नागेश करमली ने प्रकट किया है''[(43)]

जिसकी परवर्ती परम्परा महाबळेश्वर के उपन्यास 'काळी गंगा' एन् शिवदास की 'पोसको' एवं 'गळसरी' आदि कहानियों के माध्यम से पाठकों के सामने उजागर है। तुलनात्मक कथासाहित्य के वैविध्यपूर्ण फैलाव की समीक्षा, उसके स्वरुप की निजता के अनुसार करनी होगी

तुलनात्मक कथासाहित्य की सही पहचान और परख उसके अपने आधार पर करनी होगी। उसकी आन्तरिकता के सूक्ष्मतम पहलुओं को पहचान कर उसकी समीक्षा के लिए प्रतिमान तैयार करने होंगे। आंचलिक कथासाहित्य का मूल्यांकन करने हेतु कथावस्तु चरित्रचित्रण वातावरण आदि मानदण्ड नये संदर्भों में ग्रहण करने की जरुरत है। इस अध्ययन के लिए निम्नलिखित प्रतिमान उपयुक्त हो सकते है-

1.31 आंचलिकता तथा क्षेत्रीयता
1.32 यथार्थ का कलात्मक प्रतिबिम्बन
1.33 वर्ग-संदृष्टि
1.34 लोकसंस्कृति
1.35 भाषा-शैली एवं शिल्प-विधान
1.36 समग्रता
1.37 सौन्दर्य बोध

1.31 आंचलिकता तथा क्षेत्रीयता

विशिष्ट रचनाकार द्वारा क्षेत्र विशेष की पहचान किसी वृहत प्रान्त अथवा देश के संदर्भ में व्यक्त हुआ करती है। प्रसंगवश ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में 'रीजन' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ है, "भूमि का एक बड़ा भाग, देश की किसी सीमा तक परिभाषित पृथ्वी की सतह का भाग जो कुछ विशेष प्राकृतिक रुपों जलवायु सम्बन्धी दशाओं, जीव वनस्पति आदि के कारण विशिष्टता रखता है।"(44)

द अमेरिकन कालेज एनसाइक्लोपीडिया में 'रीजन' को "शहर या राज्य का प्रशासनिक विभाग"(45) कहकर परिभाषित किया गया है। कहीं-कहीं क्षेत्र तथा अंचल दोनों समान अर्थों में प्रयुक्त होते है तो कहीं-कहीं क्षेत्र का आधार भौगोलिक न होकर प्रशासनिक, आर्थिक, व्यापारिक अथवा औद्योगिक हुआ करता है। क्षेत्र शब्द की अवधारणा व्यापक अर्थव्यंजना रखती है लेकिन उतनी सघन अर्थगर्भित इकाई नहीं है जितनी की 'अंचल' विशेष की होती है। क्षेत्रीयता का आधार मुख्यतः स्थूल भौतिक, भौगोलिक ही हुआ करता है तथा उसमें लोकजीवन की गहराई भी समाहित रहती है।

आंचलिक कथासाहित्य के लिए एक विशिष्ट क्षेत्र चुना जाता है। जो विशिष्टताएँ पिछडे हुए जनजीवन या जातियों तथा अपेक्षाकृत अज्ञान, अनदेखे क्षेत्रों में भी परिव्याप्त है। इसलिये इस साहित्य का सम्बन्ध पिछडे या अज्ञात क्षेत्र और जातियों से है। आंचलिक कथासाहित्य के केंद्र में परिवेश क्षेत्रीय जीवन तथा क्षेत्रीय भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग स्थापित किये जा रहे है। अपने गहन अनुभव के आधार पर विश्व को अपने विशिष्ट लक्ष्य अथवा उद्देश्य के अनुसार अभिव्यक्ति प्रदान करने का कार्य आंचलिक कथाकार कर रहे हैं। सामान्यतः आंचलिकता का अर्थ है- क्षेत्र विशेष के सत्य का उद्घाटन करना जो किसी एक परिवेश विशेष नहीं वरन् उस खण्ड की समग्र क्षेत्रीयता का प्रतीक है। प्रेमचन्द ने उत्तरभारत ग्रामीण परिवेश को चित्रित किया है, उत्तर भारत के कृषक वर्ग की समस्यायें किसी क्षेत्र विशेष

की समस्यायें नहीं है, इसलिए 'गोदान' उपन्यास आंचलिक नहीं हो सकता है। किसी अंचल के भौगोलिक या सांस्कृतिक सीमा बद्ध खास क्षेत्र के सामान्य जीवन सत्यों का उद्‌घाटन निम्नलिखित मुद्दों पर किया जा सकता है। देशकाल, जाति, धर्म, भौगोलिक स्थिति, आर्थिक-सामाजिक प्रणाली, राजनीति स्थानीय भाषा के प्रयोग आदि। इन मुद्दों की चर्चा हम बाद में करेंगे। चरित्र के रुप में परिवेश ही केन्द्रीय पात्र की भूमिका निभाता है। मार्कण्डेय और पुंडलीक नायक ने महानगरों की बिलबिलाती भीड़ से दूर बसे ग्रामीण जीवन की रमणीयता को उभारकर जीवन में नई संजीदगी को भोगने का अहसास अपने केन्द्रीय पात्रों व परिवेश के माध्यम से कराया है। इस साहित्य में भीड़ एवं आधुनिक यांत्रिकता से ग्रस्त महानगरीय परिवेश की भयावहता कुछ हद तक अवश्य टल जाती है। परिवेश या दूसरे शब्दों में कहे तो क्षेत्रीय जीवन को सर्वसमावेशी तत्व में ही आंचलिक रचना का यश विद्यमान है। ग्राम जीवन के समस्त पहलुओं विविध कोणों और आयामों को परिवेश के यथार्थ धरातल पर चित्रित करने के फलस्वरूप इस साहित्य ने नई संचेतना एवं दिशानिर्देशन किया है। डॉ. ब्रजभूषणसिंह ने इस महत्व को इसप्रकार रेखांकित किया है- ''उपन्यास की महत्वपूर्ण क्षेत्रीय संवेदना आंचलिक उपन्यासों के कलात्मक यथार्थवादी शिल्प में वहाँ (क्षेत्रविशेष) के अनछुए मार्मिक सौंदर्य और उसकी परंपरा से जुड़ी हुई अनेक घटनाओं, वहाँ के जीवन आदर्शों का सहज स्वाभाविक अद्‌भुत चित्रण करती हैं। आंचलिक उपन्यासकार प्राय: अंचल विशेष को ही अपनी कृति में रुपायित करते हैं। इस प्रकार उनकी संवेदना मातृभूमि के विशेष महत्व से आवेष्टित एवं अनुभूत होती है।... अतएव ऐसे उपन्यासों की क्षेत्रीय मौलिकता उन्हें क्षेत्रीय एवं देशीय अथवा राष्ट्रीय लोकप्रियता का विशिष्ट उपहार देती है।''(46)

एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र से अलगाने में भूमि, जन और संस्कृति तीनों धारायें कार्यरत है। क्षेत्र के सत्य को उद्‌घाटित करने हेतु लेखक चुनिंदा पात्रों के स्थान पर सम्पूर्ण जनजातियों को लेता है। इसलिए उसके पात्र एक इकाई न बनकर विशेष वर्ग होते है। यह वर्ग विशेष जाति जीवन प्रथाओं के विभिन्न स्तरों आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक प्रणालियों को व्यक्त करते हैं। जैसे कहा गया है- क्षेत्रीय जीवन की प्रमुख धारा भूमि है। हमारी जन्मभूमि का सम्मान माँ के समान किया जाता है - 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ' कहा जाता है कि लेखक अपनी साहित्यिक अनुभूतियों को अपनी मिट्टी से जोड़ता है। उत्तरप्रदेश की माटी में जन्में मार्कण्डेय एवं गोवा की सौंधी 'माती' में जन्में पुंडलीक नायक (माटी तथा माती (कोंकणी शब्द) की समानता महसूस कर सकते है।) अपने अंचल को व्यक्त करने हेतु अपनी जन्म भूमि का आधार लेते है। उन्होंने भौगोलिक क्षेत्र

पेड़-पौधे बदलते रुप रंग, वातावरण आदि को क्षेत्रीय जीवन को रुपायित करने के लिए चुना है। मार्कण्डेय जहाँ 'महुए का पेड़' उत्तर प्रदेश की भूमि के उपजीविका का साधन विषय पर कहानी लिखते है तो पुण्डलीक नायक गोवा की प्राकृतिक सुषमा तथा उदर-निर्वाह के साधन 'माड' (नारियल-पेड) संबंधी रचना करते है। गोवा में एक कहावत है 'एक माड़ एकल्याक पोसतां' याने एक नारियल पेड़ एक व्यक्ति की जीविका का साधन है। इस तथ्य से आप अनुमान लगा सकते है कि दोनों भिन्न प्रदेशों के साहित्यकार क्षेत्रीय जीवन के स्तर पर समानान्तर रुप से सक्रिय है।

'महुआ' दुखना का जैसे कभी बच्चा है तो कभी वह अपने आप को उसके विशाल पौरुष की छाया मे संरक्षित समझती है। मार्कण्डेय महुए का वर्णन करते हुए कहते है- ''इस महुए के फल क्या होते है, जैसे मिश्री के दानें। गाँव के लोग उसे मिसिरिहवा कहते है, नन्हें, नन्हें मधूक के उजले फूलों में वैसे ही मोती की आभा होती है पर इसकी सफाई और छोटाई में तो जैसे मोती भी मात हो।''(47)

गोवा के एक गांव उसगाँव के रुमड फ्लॉट के हायग्रेड मीन (लोह मिश्रित पत्थर) के कारण वहाँ की प्राकृतिक सुषमा का विकृतिकरण हुआ है। इससे 'माड' भी अछूता नहीं रह पाया उसकी छत्र-छाया में दोपहर में भी किसी को छाँव देनेवाला माड आज मीन-पत्थरों के व्यवसाय से अपनी शक्ति खो चुका है। पुण्डलीक नायक ने इसप्रकार वर्णन किया है- ''एक दीस कंवळे पोयेंतल्यान शेलूक भायर पडले, कचकचीत बोंड्यासकट आनी दोन दिसांनी दुदयाचे तोरे कशे धगळून गेले. काळोख पोसवल्या झाडाच्या आंगावयल्यान गळतात काजुलें तशे झडून गेले बोंडे.''(48) जिसका भावार्थ यह है कि ''नारियल के कच्चे फल नारियल के पेड में दिखाई पड़े और दो दिन के बाद दूदी (काशीफल) के फलों की तरह गिर पड़े। जैसे अंधेरी रात के पेड के बदन से जुगनू झरते है।''

अपने क्षेत्रीय जीवन सत्य को उद्घाटित करने हेतु दोनों लेखक प्राकृतिक सुषमा को, तथा उसके अन्य अंगों को कहानी का विषय बनाकर प्रस्तुत करते हैं। जिसमें कल्पना का स्थान न के बराबर है। इसप्रकार क्षेत्रीय जीवन के रुपायन द्वारा लेखक अपनी संवेदना को तीव्रता और गहनता से संप्रेषित कर उपलब्धि के नये शिखर पर पहुँचा देता है।

1.32 यथार्थ का कलात्मक प्रतिबिम्बन

अंचल की समग्र क्षेत्रीयता को चित्रित करने हेतु देश काल के यथार्थ वातावरण के अनुरूप आंचलिक साहित्य लिखा जाता है। वैसे तो नयी कहानी आन्दोलन भी यथार्थमूलक प्रवृत्ति का आंदोलन रहा है। उसमें जीवन की कटुता, निराशा, घुटन और टूटन का सजीव चित्रण उपलब्ध है, जबकि आंचलिक कथासाहित्य के यथार्थ में आशा, सरलता, सहजता, निश्चलता तथा भावुकता के दर्शन होते है।

आंचलिक कथासाहित्यकार अंचल विशेष की प्रकृति, भौगोलिक वातावरण चरित्रांकन से आम पाठकों के हृदय से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। सुधी विद्वानों को ज्ञात है कि भारतीय संस्कृति मूलतः एक होते हुए भी अनेक खण्डों व अंचलों में विभक्त है। परन्तु क्षेत्रीयता या खण्डगत संस्कृति भारत की संश्लिष्ट संस्कृति का निर्माण अपनी समग्रता में कर लेता है। सामान्यतः आंचलिक संस्कृति यथार्थ राष्ट्र की संस्कृति का यथार्थ न बनकर अपने क्षेत्र को अधिकाधिक समाहित कर लेता है। यथार्थ की सिद्धि से उसकी प्रक्रिया महत्वपूर्ण हो उठती है। इसलिए इस कथासाहित्य की क्षेत्रीय मौलिकता क्षेत्रीय एवं देशीय स्वरूप में अथवा अपनी समग्रता में राष्ट्रीय लोकप्रियता का विशिष्ट उपहार होती है।

डॉ. आदर्श ने अपने शोधप्रबंध 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधी' में एक स्थान पर लिखा है- ''आंचलिकता उपन्यास की कथा क्षेत्र विशेष की कथा होती है और इस क्षेत्र विशेष में आंचलिकता उस क्षेत्र विशेष के यथार्थ जीवन पर दृष्टि होने के कारण अवतरित होती है। इस यथार्थ का आभास इस कारण होता है कि अंचल विशेष की स्थिति एवं समस्याओं का प्रभावशाली देश से निरूपण किया जाता है। ये स्थिति एवं समस्याएँ वहाँ की जानी पहचानी परन्तु अपने आप में विशिष्ट होती है।''(49)

यथार्थबोध को अपनाकर रचनाकार विशेष रूढ़ि परम्परा एवं प्राचीनता के मोह से मुक्ति पाकर वर्तमान मूल्यों तथा उपलब्धियों में आस्था एवं विश्वास उत्पन्न करता है। आंचलिक कथासाहित्य जनजीवन और जनपदीय जीवन की यथार्थपरक छवि प्रस्तुत करके उसको शहरी मानसिकता के संकुचित दायरे से मुक्त कर एक खुली और प्रशस्त रचनाभूमि प्रदान करती है। रचनाकार के साथ-साथ पाठक का मध्यवर्गीय मानसिकता को ही अपनी सोच का आधार न मानकर लोकजीवन की अपार सम्भावनाओं के मध्य खड़ा हो जाता है। वर्तमान दौर में ग्रामीण अंचलों में ईर्ष्या-द्वेष, संकुचित स्वार्थ, कलह, मुकदमेबाजी, मारपीट,

विघटन और विखण्डन तेजी से बढ़ता हुआ दिखाई देने लगा है, जिसका वास्तविक चित्रण विभिन्न आंचलिक कथाकारों ने प्रस्तुत किया है। लेखक का इन सबसे निकट तथा गहरा सम्बन्ध होता है अतः उसका रुझान भावात्मक अधिक होता है। कहना न होगा कि मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक ने कथासाहित्य के यथार्थपरक चित्रण में कभी-कभी अपनी संवेदना से भावुकतापूर्ण दृष्टि का परिचय दिया है। प्रसंगवश निरुपमा भट्ट का कथन है कि ''अंचलों का जटिल परिवेश कथाकार को वहाँ के यथार्थ को समझने की दृष्टि अवश्य देता है किन्तु वह उस परिवेश को हृदय की गहराई में उतार लेता है और अपनी कल्पना से उस यथार्थ को कुछ सीमा तक दूसरे के हृदयतल को छूनेवाला तथ्य बना देता है।''(50) यही हश्र और प्रभाव हम मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक की विभिन्न रचनाओं में उपलब्ध है।

यथार्थ को आंचलिक उपन्यास का सबसे बड़ा गुण मानते हुए श्री. महेन्द्र चतुर्वेदी ने यह मत प्रस्तुत किया है- ''यथार्थता की हर बारीकी को उभारना, उसके प्रति निष्ठा, यथार्थ, भूखण्ड के निश्चित स्थल में दैनंदिन जीवन में जो नित्य व्यापार घटित होते है, उसका सजग चित्रण, साथ ही अस्पष्ट, धूमिल, वायवीय का दृढ़तापूर्वक निरसन तथा यथार्थ के साथ दृढ़ सम्पर्क।''(51) कहना न होगा कि आंचलिक कथाकारों ने यथार्थपरक चित्रण की प्रवृत्ति अपनायी है। जिसमें वे कल्पना को स्थान न देकर वास्तविकता को महत्व देते हैं। भोग यथार्थ को उद्घटित करना आंचलिक कथाकारों का प्रमुख लक्ष रहा है।

स्वतंत्रतापूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों से तादात्म स्थापित कर स्थितियों का दूरवर्ती अंचलों में घटित होने वाला यथार्थ परक चित्रण, आंचलिक कथासाहित्य की कृतियों में मिलता है। यह यथार्थबोध राजनीतिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक सम्बन्धों से जुड़ा हुआ होता है जिसका चित्रण मार्कण्डेय तथा पुंडलीक नायक की रचनाओं में उपलब्ध है। मार्कण्डेय की कहानी 'बादलों का एक टुकड़ा' में बकरी और उसका मेमना ही उनकी जिंदगी की कमाई है, पंडित से उधार लिए पचास रुपये चुकाने के लिए जसमा सारी जिंदगी उसके यहाँ मजदूरी करती है। लेकिन उसका कर्जा छूटता ही नहीं है तो वह उन्हें मजबूरी में बकरी और मेमने को ले जाने के लिए कहती है। ''आँचल की दो मुट्ठी घास बकरी के आगे गिराते हुए वह गुस्से में बोलती है, खोल लो और ले जाओ। मरेंगे, जिएँगे लेकिन यह करज का खटका तो छूटा। न मजूरी; न धतूरी, जब देखो दरवाजे पर ठढ़्कर की तरह खड़े है कि यह कर दो, वह कर दो। दिनभर खटो और सरबउला एक रोरा गुर-पानी तक को नहीं पूछता... पचास रुपया करजा क्या ले लिया, जिनगी बेंच दी।.... ले जाओ, खड़े-खड़े मुँह क्या ताक रहे हो। आज से उरिन

हुई उस कलमुहे से।''[52] निसन्देह यह प्रेमचंद की शोषण विरोधी परम्परा का अगला चरण है जो मार्कण्डेय के कथा साहित्य का केन्द्रीय यथार्थपरक तत्व है।

पुंडलीक नायक की 'भागलेपण' कहानी में गोंदलो की बापदादाओं की जमीन और भाट (नारियल के वृक्षवाली धरती) को भाटकार ने उनके अशिक्षित होने का फायदा उठाकर हड़प ली। भाटकार उसके बाद भी गोंदले से काम लेने के लिए उसे भागीदार बनाता है तथा वह उसके भाट के नारियल, नारियल के बाकी पत्ते एवं छिलके बेच सकता है लेकिन उसके बदले में उसे भाट की निगरानी करना तथा बाद में नारियल के डंठल आदि का हिसाब देना होता है, मतलब जब नारियल गिराये जाते है तब नारियल नीचे कितने गिरे है उसके बाकी बचे डंठल हिस्से से पता चलता है, वह हिसाब मिलाया जाता है। बचे डंठलों का हिसाब भागीदार को देना पड़ता है। इसप्रकार 325 डंठलों के गोलमाल का हिसाब चुकाने के लिए भाटकर गोदुलों की पत्नी को नौकरानी बनाकर रखना चाहता है, अथवा गोदुलों के अकेले पढ़ने वाले पुत्र दिपु को गाय-भैसों की रखवाली करने भेजना चाहता है। यहाँ भागेली गोदुलों निश्चय करता है कि उसे भाटकार का भागेली नहीं रहना है ना ही अपनी पत्नी को काम करने के लिए भेजना है। उसे तो दिपु को पढ़ाना है और इसी दिशा में प्रयत्नशील गोदुलों अपने बचे-खुचे संसार की पोटली उठाये भाट की सीमा लाँधकर चला जाता है।

'' 'खंय वचपाचे?' बायलेन विचारल्ले.

'हे भाट सोडून'.

ताणे भाटाची सीम हुबयली. ताजे भाटाकडे आशिल्ले भागलेपणाचे नाते थंय आपशीच गळून पडले.''[53]

हिन्दी भावानुवाद इसप्रकार है-

'' 'कहाँ जायेंगे?' पत्नीने पूछा।

'यह भाट छोड़कर'

उसने भाट की सीमा लाँघी। उसका भाट के साथ भागीदार का रिश्ता अपने आप टूट गया।''

1.33 वर्गचेतना एवं वर्गसंदृष्टि

वर्गचेतना के संदर्भ में विभिन्न प्रकार के विचार प्रचलित है। सामान्यत: रचनाकार का जन्म जिस वर्गीय परिवेश में होता है वह उसी के अनुरूप अपने रचनाकर्म को संपादित करता है। प्रेमचन्द, निराला, यशपाल, मार्कण्डेय तथा पुंडलीक नायक, एन शिवदास, महाबळेश्वर सैल आदि की रचनाओं में उनकी

निम्नमध्यवर्गीय चेतना का प्रस्फुटन पाया जाता है।

वर्तमान दौर तक उपलब्ध विभिन्न भारतीय भाषा-भाषी लेखकों के कथासाहित्य में तत्सम्बन्धी वर्ग संघर्ष एवं वर्गचेतना के अनुरुप यथार्थ चित्रण पाया गया है। प्रकारान्तर से मार्क्स का कथन रहा है कि वर्तमान दौर, तक लिखे गये इतिहास संस्कृति और कलासाहित्य में वर्गसंघर्ष की ही प्रतिच्छ बि पायी जाती है। ''अब तक के समाज का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है। स्वतंत्र मनुष्य और दास, अभिजात वर्ग और साधारण प्रजा, सामंत और उसके कर्मचारी वर्ग, शिल्प संघ के मालिक और मजदूर-कारीगर, संक्षेप में पीड़क और पीड़ित, सदा से एक दूसरे का विरोध करते आये है। वे कभी छिपे, कभी प्रकट रूप से, लगातार एक दूसरे से लड़ते रहे है। ऐसी लड़ाई का अंत हर बार या तो समाज का सारा ढाँचा बदलने में हुआ है, या लड़ने वाले दोनों वर्गों की बरबादी में हुआ है। ... आधुनिक पूँजीवादी समाज (पूर्वगत) सामंती समाज के ध्वंस से पैदा हुआ है। उसने समाज के वर्ग-विरोधों को खतम नहीं किया है। उसने वर्गों के स्थान पर नये वर्ग, पीड़न के पुराने तरीकों के बदले नये तरीके और संघर्ष के पुराने, स्वरूपों की वजह नये स्वरूप खड़े कर दिये है।''[54]

प्रत्येक राष्ट्र, प्रत्येक प्रदेश, प्रत्येक जाति और प्रत्येक काल की केवल अपनी रचनात्मक प्रतिभा नहीं होती है, बल्कि उसके लेखकों के अपने सोच-विचार का एक तरीका होता है। इसी प्रकार किसी भी देशकाल समाज के रचनाकार, कवि, कलाकार, का अपनी वर्गदृष्टि से जुड़ाव भी होता है। वह अपनी सोच को उसी वर्ग के घेरे में आबद्ध करता है। हर एक पाठक अथवा अध्येता की अपनी मानसिकता विचारधारा और वर्गचेतस दृष्टि होती है जो उसे कथासाहित्य में वर्णित पात्र से जुड़ने या विलग होने के लिए वर्गाधार का आशय प्रदान कर सकती है। किसी भी गाँव कस्बे या अंचल में रहनेवाले पाठक को अध्येता को 'अपने अपने अजनवी' की 'सेल्मा और योके' विचारधारात्मक रुप में प्रभावित नहीं कर पायेगी लेकिन 'गोदान' का होरी, 'मैला आंचल' का वामन, 'रागदरबारी' का रंगनाथ, 'अग्निबीज' की श्यामा और 'अच्छेव' का पंडरी पाठक के वर्गाधार से जुडाव के कारण .... जीवन-संघर्ष, यथार्थ को अभिव्यक्त करने के कारण समान धर्मा प्रतीत हो सकता है। यहाँ यथार्थ संदर्भ के कारण पाठक और रचनाकार की वर्गचेतना का अंतर कम है।

अज्ञेय अभिजात्य वर्ग के रचनाकार रहे हैं इसीलिए उनके पात्र मनोविश्लेषणात्मक स्तर पर अपना वर्गाधार प्राप्त कर लेते है। शेखर और शशि उतने जीवंत यथार्थपरक पात्र नहीं है जितने कि होरी, धनिया और पंडरी रुक्मिण

है। ''सामान्यतः रचनाकार जिस वर्ग, आर्थिक परिवेश या सामाजिक संरचना में जन्म लेकर विकसित होता है, उस पर उसका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। रचनाकार अपने वर्गाय हितो, प्रभावों, एवं लक्ष्यों से अछूता नहीं रह पाता है।''(55) अपने वर्गीय हितों के बलबूतेपर लेखक जीता और रचता है।

समाज में प्रचलित मुख्य विचार प्रवाह के प्रति प्रत्येक साहित्यकार सचेत रहता है। रोहिताश्व के अनुसार ''मार्क्सवादी दर्शन की वर्गाधार वर्गाभिरूचि ज्ञान व तर्क का सिद्धान्त इसी प्रसंग में महत्वपूर्ण कारक सिद्ध होता है।''(56) उनका आगे यहाँ तक मानना है कि अद्वैतवादी सूफीवादी, मनोविश्लेषणवादी, अस्तित्ववादी दर्शन से जो मूल्यांकन संभव नहीं है वह मार्क्सवादी दर्शन से संभव है- ''मार्क्सवादी विचारधारा के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में यथार्थ राजनीति, नैतिकता, वर्गीय राजनीति, शोषण, पक्षधरता, विषय-वस्तु और रूप, साहित्य की सापेक्ष स्वायत्तता, साहित्यिक कृति के स्थायित्व की विवेचना, पूँजीवादी व्यवस्था, बनाम साहित्य आलोचनात्मक यथार्थवाद और सौन्दर्यबोधी कला प्रतिमानों की चर्चा सम्भव है। जो किसी अन्य भाववादी, अद्वैतवादी, सूफीवादी, मनोविश्लेषणवादी अस्तित्ववादी दर्शन से संभव नहीं है।''(57)

कतिपय साहित्यकारों में विशेष विचारधारा की जागरूकता तथा प्रतिबद्धता नजर आती है। प्रेमचन्द आदर्शवाद से यथार्थवादी विचारधारा की और अग्रसर होते है। अज्ञेय में अस्तित्वादी विचारधारा का प्राबल्य दृष्टिगोचर होता है। साहित्यकारों का कहीं एक ऐसा वर्ग भी है जो विचारधारा से नहीं जुड़ा हुआ होता है। ''सातवे दशक की हिंदी कहानी के परिदृश्य पर यहाँ वहाँ जो धुंध के चकत्ते दिखाई देते हैं, उनकी जिम्मेदारी इस दशक के कहानीकारों के ऐसे वर्ग पर है, जो किसी भी प्रकार के सामाजिक संदर्भ और प्रतिबद्धता से परहेज करता रहा है।'' (58) लेकिन मार्क्सवादी विचारकों ने प्रतिबद्धता को महत्व दिया है। ''प्रतिबद्धता' की अवधारणा मार्क्सवादी दर्शन व विचारधारा में कम प्रासंगिक नहीं है। कारण रचनाकार एक ओर जहाँ विचारधारा को जीवन और जगत की बेहतर समझ प्राप्त करने के लिए पथ-प्रदर्शिका के रुप में देखते है वहाँ दूसरी ओर से संघर्षशील जनता से जुड़ने के माध्यम एवं अपनी पक्षधरता निर्धारित करने के रुप में देखते है।''

रचनाकार पाठक और कलाकृति का त्रिआयामी संबन्ध अपने सहसम्बन्धो में वर्गाधार और वर्गचेतना से प्रक्षेपित हो सकता है। ''वस्तुतः कलाकृति रचनाकार और पाठक का एक त्रिभुज बनता है जो उनके पारस्परिक कोणों की अंतःसंबधता को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जोड़े रख सकता है और सौन्दर्यबोधी संघर्षशील आस्थाओं विश्वासों और प्रवृत्तियों के साथ विचारधारात्मक प्रक्षेपण संभव बनाता है।''(59)

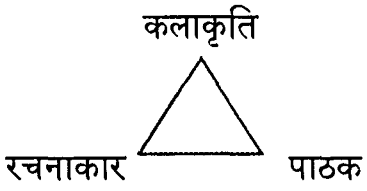

इस त्रिभुज में कलाकृति की स्थिति शीर्षकोण से है। रचनाकार वास्तविक जीवन से अपने साहित्यकृति को अनुभवों को प्राप्त करता है तथा कलाकृति के माध्यम से किए समाज को अर्पित करता है। समाज या पाठक कलाकृति द्वारा अनुपस्थित लेखक के विचारों को अपनी विचार क्षमता एवं अनुभव सिद्धि के आधारपर ग्रहण करता है। ''शोषित समाज की अन्यान्य विशेषताओं में लेखक पाठक के सामने अनुपस्थित होता है और पाठक भी लेखक के सामने अमूर्त होता है। सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था में नियंत्रण अपनी जगह अलग-अलग रुप में सक्रिय होते है। कलाकृति का दोहरा रुप रचनाकार पाठक की मध्यस्थता का विरोध और स्वीकार का माध्यम रहता भी है और नहीं भी। इसके लिए किसी पाठक वर्ग को बाह्य नहीं किया जा सकता।''(60)

वर्गचेतना और वर्ग संदृष्टि के बारे में यह ध्यातव्य तथ्य है कि हर एक पाठक छात्र या आलोचक की अपनी वर्गीय चेतना ही होती है वह अपनी रुचि एवं प्रवृत्ति के अनुरुप किसी को पसंद करता है और किसी को नापसंद। लेकिन यह सच है हमें वे ही पात्र, नाटक, उपन्यास या कथ्य संदर्भ पसंद आते हैं, जो हमारे जीवन के आसपास के हो। साहित्यिक विधाओं में आधुनिक युग महाकाव्यात्मक उपन्यास या कथ्य संदर्भ पसंद आते हैं, जो हमारे जीवन के आसपास के हो। साहित्यिक विधाओं में आधुनिक युग महाकाव्यात्मक उपन्यास का युग है''(61) क्योंकि लोगों की रुचि खंडकाव्य अथवा महाकाव्य के पठन-पाठन में नहीं होती है कारण संचार माध्यमों के बदलते स्वरुप के कारण हमारी वर्गाभिरुचि में परिवर्तन आ गया है। हम श्रव्य और दृश्य माध्यमों को वरीयता देने लगे हैं।

वर्गाभिरूचि के संदर्भ में हम अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरुप अपनी वर्गीय-चेतना में परिवर्तन लाने की कोशिश करते हैं। कला उपन्यास संचार माध्यम के मॉडेल हमें एक अलग संसार का सपना दिखाते है, लेकिन हमारी जिंदगी 'हम जो है' और 'जो होना चाहते है' उसके बीच गुजरती रहती है। मध्यवर्ग अपनी इच्छाओं, लालसाओं, और प्रवृत्तियों को अपनी वर्गचेतना के अनुरुप गढ़ता हैं, बनाता और बिगाड़ता हैं। सांसारिक दबाव और आर्थिक संरचना हमारी वर्गचेतना को बाधित भी करती है। हम अपने मूल वर्गाधार (Class- concept) से हट

नहीं सकतें। लेकिन हमारी इच्छाएँ और प्रवृत्ति हमें उत्कर्ष के लिए प्रेरित करती हैं। हम डिक्लास भी हो सकते है और Devaluation के रास्ते पर भी जा सकते हैं। 'गोदान' का होरी, 'मैला आंचल' का प्रशांत, राग दरबारी का सनीचर अपना वर्गाधार लिए हमारे सामने आता है और उनकी वर्गचेतना ही तत्संबंधी कथानक का मूलाधार प्रमाण है। मार्कण्डेय का 'अंग्निबीज और पुंडलीक नायक का अच्छेव वर्गचेतना एवं वर्गदृष्टि के विभिन्न आयामों को उजागर करता है।

शोधप्रबन्ध की सीमा में कहा जा सकता है कि जिसप्रकार मार्कण्डेय की वर्गसंदृष्टि और वर्गचेतना अपने कथासाहित्य में यथार्थपरक और भौतिकवादी रही है उसीप्रकार पुंडलीक नायक की वर्गचेतना और वर्गसंदृष्टि उपभोक्ता समाज की विद्रुपताओं और पूँजीवादी साम्राज्यवादी अतिक्रमण को दर्शानेवाली कलात्मक प्रक्रिया है।

1.34 लोकसंस्कृति

'लोक' शाश्वत एवं चिरस्थायी शब्द है। सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न आयाम इस 'लोक' शब्द से जुड़े हुए है। संस्कृति प्राय: उन गुणों का समुदाय समझी जाती है जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं तथा मानवमूल्यों, विचारों एवं संस्कारों के रुप में भी प्रस्तुत होती है। 'लोक' की परिव्याप्ति साहित्य को सजीवता एवं मौलिकता प्रदान करती है। लोकसंस्कृति क्षेत्रीय जीवन में बसे हुए लोगों की संस्कृति होती है। डॉ रवीन्द्र भ्रमर के शब्दों में ''किसी भी देश की संस्कृति जिसे लोक संस्कृति कहते हैं-उन असभ्य और अशिक्षित समझे जाने वाले मनुष्यों के प्राणों का स्पन्दन होती है जो वहाँ की जनसंख्या का विशाल अंग होते हैं। इन्हीं तथाकथित अशिक्षित और असभ्यों के सामाजिक जीवन के विविध पहलू, सामूहिक और पारिवारिक जीवन के बहुरंगी चित्र अपनी अटूट परम्परा के कारण और उन तत्वों का रुप धारण कर लेते है जिन्हें लोकतत्व कहा जाता है और जिनके योग से लोकसंस्कृति का निर्माण होता है।''(62)

जनजीवन की परम्परागत मान्यतायें, धार्मिक, सामाजिक विश्वास, रीतिरिवाज, वेशभूषा, भाषा एवं मनोरंजन की पद्धतियाँ लोकसंस्कृति के विभिन्न अंग है। लोकगीत, लोककथा, लोकोत्सव, धार्मिक व्रत, त्यौहार आदि में अंचलवासियों की आशा-आकांक्षा, आस्था-विश्वास, अंध-विश्वास, पुरातन रुढ़ियाँ आदि लोकसंस्कृति से जुड़े हुए तत्व है। नगीना जैन के अनुसार ''अंचल लोकसंस्कृति के कोश होते हैं, आंचलिक कथाकार उसे कथ्य बनाता है। अत: आंचलिक कथासाहित्य हमारा सांस्कृतिक उपादान है। इस तथ्य को उस अंचल विशेष के

लोगों की वेशभूषा, जीवनयापन के साधन, आचार-विचार गीत भाषा आदि के द्वारा चित्रित किया जाता है।''(63)

प्रत्येक अंचल की अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता वहाँ का स्थायी तत्व है। प्रत्येक अंचल के उत्सव लोक-प्रथाएँ रीतिरिवाज अपने में मौलिकता लिए हुए होते है, जो अन्य अंचलों को अपने से अलग करते है। अंचलों में व्याप्त जितने विश्वास एक दूसरे को एकत्रित लाते है उतनी ही मात्रा में अंधविश्वास भी फैले हुए है। मार्कण्डेय तथा पुंडलीक नायक की कथाओं में कई सारे अंधविश्वास चित्रित हुए है। प्रसंगानुरूप मार्कण्डेय की कहानी 'नीम की टहनी' उत्तर प्रदेश के अंचल में फैले अंधविश्वास को आधार बनाकर लिखी गयी है। उसके पात्र कुमार और पियारी के द्वारा सच्चे प्रेम के साथ-साथ अंधविश्वास में जकड़ी हुई आंचलिक मानसिकता का भी चित्रण किया गया है।

गाँव में यह विश्वास प्रचलित है कि महारानी देवी वाली नीम की टहनियों से चेचक की व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति रोगमुक्त हो जाता है। परंतु उस नीम की टहनियों को महाराजिन बुआ के अतिरिक्त कोई भी दूसरा व्यक्ति निकाल नहीं सकता। पियारी इसी रोग से ग्रस्त है कुमार उसे रोगमुक्त देखना चाहता है, लेकिन महाराजिन की अनुपस्थिति में नीम की टहनियों को तोड़ने का साहस कौन कर सकता है? कुमार का प्रेम निस्वार्थ भाव का है इसलिए पियारी को बचाने के लिए नीम की टहनी तोड़कर उसे तो बचा लेता है परंतु स्वयं मर जाता है।

पुंडलीक नायक की कहानी 'खळ' (वह आँगन जहाँ पर धान को पौधों से अलग करते है।) गोवा में प्रचलित विश्वास को व्यक्त करती है। गोवा में अंधविश्वास है कि 'खळ' की पूजा किए बिना जो भी व्यक्ति धान की वहाँ से चोरी करता है वह पागल हो जाता है, यहाँ पागो नामक व्यक्ति मजदूरी करने के उपरांत बच्चों को भूखे पेट सोना न पड़े इसलिए वहाँ से धान की पोटली चुराता है और दूसरे दिन से वह पागल हो जाता है। ऐसे ही अनेक विश्वास अन्धविश्वास इनकी कहानियों में व्यक्त होते हैं जिनकी चर्चा हम 5.2 अध्याय में करेंगे।

आंचलिक साहित्य में लोकसंस्कृति की अभिव्यक्ति एक सशक्त विशेषता है। इस संदर्भ में रमेश तिवारी के विचार हैं कि ''इधर आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से साहित्य ने नागरिक सभ्यता की संकीर्णता से निकलकर ग्रामीण तथा व्यापक स्तर पर सभ्यता तथा संस्कृति को अभिव्यक्ति देना प्रारम्भ किया है जो इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है तथा इससे भावी सांस्कृतिक निर्माण की आशा भी की जा सकती है।''(64)

इस प्रकार जिस अंचल विशेष की पृष्ठभूमि पर जो आंचलिक कथासाहित्य

सृजित होता है, उसमें अंचल विशेष की लोकसंस्कृति उभरकर आयी है पर लोकसंस्कृति का प्रतिबिम्बन लोकभाषा के प्रयोग के अभाव में नहीं हो सकता। लोकसंस्कृति में लोकगीत, लोकनृत्य लोक-अभिनय, लोककथा, लोकनाट्य आदि का समावेश होता हैं, इन सबको लोकभाषा के बिना कौन कलाकार प्रस्तुत कर सकता है? सामान्य उपन्यासों और आंचलिक उपन्यास की भाषा में तत्सम्बन्धी अन्तर को महसूस किया जा सकता है।

1.35 भाषा-शैली एवं शिल्पविधान

आंचलिक भाषा क्षेत्र-विशेष के जीवन को पूर्णतः व्यक्त करने के लिए आवश्यक है। उसका प्रयोग न केवल चमत्कार प्रदर्शन के लिए है ना ही वैचित्र्य प्रदर्शन करने हेतु होता है। प्रत्येक अंचल का अपना स्वरुप होता है उसकी अभिव्यक्ति क्षेत्रीय भाषा के बिना संभव नहीं है। उसकी अभिव्यक्ति अलग शब्दावली तथा मुहावरों द्वारा होती है। संवेदना, ज्ञान, अनुभूति तथा विचार-चिंतन यह सब उस भाषा में होते है इसलिए इनको रुपायित करने की कार्य उसी भाषा का है।

भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति के सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम के रुप में भाषा महत्वपूर्ण है। आंचलिक साहित्य की भाषा की अनिवार्यता यह है कि अंचल को सम्पूर्णतः चित्रित करने के लिए उसमें आंचलिक भाषा का उपयोग किया जाय। बहुत से भाव और संवेदनाएँ ऐसी होती है जो उस अंचल विशेष की भाषा बिना व्यक्त नहीं हो सकती इसलिए उस क्षेत्रीय भाषा को अपनाना पड़ता है। उसी प्रकार परिवेश के रहन-सहन आचार-विचार, वेशभूषा को चित्रित करने हेतु लोकभाषा का प्रयोग जरुरी है। नगीना जैन के अनुसार ''भाषा की एक बहुत बड़ी शक्ति यह है कि उसमें वहाँ के लोगों के संस्कार, उनकी अनुभूतियाँ उनके सुखदुःख रीतिरिवाज, आचार-विचार आदि व्यक्त होते है, जो उसके अस्तित्व का द्योतक होता है।[65]

सच्चे अर्थ में ग्रामीण जीवन को व्यक्त करने के लिए उनके दैनिक जीवन में प्रयोग होनेवाली लोकभाषा ही एकमात्र और अन्तिम साधन है। पात्रानुकूल एवं परिस्थितिनुकूल भाषा की आवश्यकता का प्रतिपादन आंचलिक कथाकार करता है। इसका प्रयोग मार्कण्डेय तथा पुंडलीक नायक ने अपने कथासाहित्य में किया है। ग्रामीण पात्रों की बोली में जनभाषा के शब्दों का प्राचुर्य है उदाहरण के लिए गोपी काकी का यह कथन दृष्टव्य है- ''अब का टुकुर-टुकुर ताकता है रे मुरता, हमें दरिद्दर समझ रखा है का रे ! वह धरी है तेरी दान दच्छिना। अब बीच में

पैसा-पैसा कह कर गरियार बरधा की तरह रुका तो इसी बकुली से तेरी पीठ ही लाल कर दूँगी।(66)

पुंडलीक नायक के 'वसंतोत्सव' इस लम्बी कहानी में धनगरी आंचलिक भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है- ''पुरो-पुरो बगलीय तुजी पंचायत, वाड्यावलं पन्नास लोक येतील, पोट फुटसर बोकडाची सागूती खातील, रांतभर झांकतील, निवाडो नाय जावचो.''(67) शब्दानुवाद इस प्रकार है- ''बस-बस देखी है तुम्हारी पंचायत, गाँव से पचास लोग आयेंगे, पेटभर मटन खायेंगे, देर रात तक बाते करेंगे, निर्णय नहीं होगा।''

विवेच्य लेखकों ने पात्रानुकूल भाषा-प्रयोग से विभिन्न कथाप्रसंगों में वास्तविकता को खोलकर रखा है जो सर्वथा स्वाभाविक और अनिवार्य है। क्षेत्रीय जीवन की अनेक लोककथाओं, लोककलाओं, लोकगीतों से उन्होंने अपने कथानक आधार को सजाया है, मार्कण्डेय तथा नायक दोनों ने विवाह लोकोत्सव खेतों में गाये जानेवाले गीत आदि का चित्रण किया है। गोवा के प्रसिद्ध उत्सव जैसे शिरगांव की लइराई की जत्रा, वहाँ का होमकुंड, सावई गाँव के अनंत की पालखी, जागर आदि अनेक जगहों के काले,(उत्सव) जत्राओं का भी सूक्ष्मरूप से वर्णन किया है जिसकी चर्चा हम आगे के चतुर्थ एवं पंचम अध्याय मे विस्तार से करेंगे।

1.36 समग्रता

समाज, मनुष्य तथा जीवन को बाहरी तथा भीतरी घटकों को अविभाज्य इकाई के रुप में साहित्य में चित्रित करना ही संपूर्णता है। जार्ज लुकाच ने 'समग्रता' को ही रचना को जाँचने का महत्वपूर्ण प्रतिमान माना है। रचना को परिभाषित करते हुये कहा था कि ''कलाकृति एक सोद्देश्य और सार्थक रचना होती है, इसमें एक विरोध प्रारंभ अंत और विकास को दिशा होती है, पात्रों, स्थितियों और घटनाओं का संयोजन होता है और ऐसा कुछ महत्वपूर्ण कह देने की नियत होती है कि इसके माध्यम से बाहरी जीवन और समाज की मूल समझ प्राप्त हो जाय। एक 'कथा-रचना' के भीतर से बाहरी जीवन और समाज की अर्थवत्ता का जितना और जितने सघन रुप में उद्घाटन होता है व्यापक अपील की दृष्टि से वह 'कथा-रचना' उतनी ही दिलचस्प और आकर्षक होती है।''(68)

हीगेल की समग्रता संबंधी अवधारणा को जार्ज लुकाच ने मार्क्स तथा एँगेल्स के माध्यम से आत्मसात किया था। एँगेल्स ने प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि पात्रों का वस्तुस्थिति के एक-एक रेशे को सच्चाई के साथ चित्रण करना

माना था ''उसने प्रतिनिधि रुप पर जोर इसलिए दिया है ताँकि वस्तुगत यथार्थ और उसके अंतर्गत सक्रिय मनुष्य के माध्यम से वास्तविकता को उसकी समग्रता में अंकित किया जा सके।''(69) कहना न होगा कि साहित्य, समाज एवं संस्कृति तीनों के घात प्रतिघात से लेखक की विचारधारा तय होती है, साहित्य समाज का दर्पण है तो संस्कृति के बिना समाज अधूरा है और संस्कारों के सांस्कृतिक विश्वासो, मूल्यों एवं सिद्धान्तों के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप के प्रतिबिम्बन से साहित्य की निर्मिती होती है। तीनों एक दूसरे से संबंधित एवं प्रतिबद्ध होते है तो कभी-कभी एक दूसरे के पूरक भी।

शोध कार्य के विवेच्य कथाकार मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक सीधे सीधे ग्रामीण अंचल से जुड़े हुये है, एक उत्तरप्रदेश के जौनपुर जिले के बराई गांव के किसान परिवार से तो दूसरे लेखक की जन्मभूमि प्राकृतिक सुषमा प्राप्त गोवा का वळवय गाँव है। दोनों के कथासाहित्य में आंचलिक समाज के चित्रण लोकसंस्कृति के विविध उपादान, विविध प्रकार की कलाए, लोकभाषा, लोकगीत, लोककथा, लोकनृत्य, लोकोक्तियाँ आदि विकसित अवस्था में पायी जाती है। तत्सम्बन्धी प्रदेशों के निवासियों की जीवनशैली, व्यवहार की पद्धतियाँ, आचरणों, आदर्शों, मनोरंजन के साधनों, रीतिरिवाजों आदि का भी कलात्मक प्रस्तुतीकरण उनके कथासाहित्य में मिलता है।

भौगोलिक धरातल पर भिन्नता होते हुये भी अनेकों ऐसे उदाहरण मिलते है जिनमें समानतायें व्याप्त है। किसानों की आर्थिक दुरावस्था, समाज में उच्चवर्गो का अधिकार, पूँजीपतियों-भाटकारों का निम्नवर्ग के प्रति अमानवीय व्यवहार, नारी-शोषण की प्रवृत्ति, पढ़े-लिखे युवकों की बेरोजगारी, अंधविश्वासों संबंधी परम्परागत मान्यताएँ पर्व, उत्सव का आयोजन आदि।

गोवा पर पुर्तगीजों का शासन प्रदीर्घ काल तक रहने के कारण उत्तरप्रदेश की तुलना में पाश्चात्य संस्कृति का असर यहाँ की जनता पर ज्यादा है, उनके रहन-सहन, वेशभूषा खानपान में बहुत से बदलाव विदेशी संस्कृति के समांतर एक समरूप में पाये जाते है। मिनी स्कर्ट एवं फ्राक पहनना, केक, ब्रेड-बटर खाना बाल कटवाना, स्त्रियों का पुरुषों से समकक्ष रूप में हाथ मिलाना, अभिवादन करना आदि परिवर्तन पुर्तगीजों की संस्कृतिके परिणामस्वरूप, गोवा की संस्कृति में आया है अन्यथा वे बहुत सारी बातों में भारतीय संस्कृति के करीब हैं। विवेच्य दोनों लेखक अपने कथासाहित्य में ग्रामीण जीवनानुभवों को सहजता एवं 'समग्रता' में पेश करते हैं।

ग्रामीण जीवन की संवेदना, अनुभूति एवं संघर्षशक्ति चित्रित करने में

मार्कण्डेय हमारे सामने प्रेमचन्द की परम्परा के सशक्त दावेदार बनकर आते है। उनका प्रतिबद्ध भाववाला स्वकथन है "जीवन की मार्मिक अनुभूतियाँ, भाषा के सर्वथा सहज प्रयोग, बौद्धिकता के पुट, सामाजिक कुटिलताओं और विषमताओं पर तीक्ष्ण व्यंग्य, लोकजीवन में गहरी पैठ तथा शिल्प की एकदम नयी दिशा सब मिलकर ये कहानियाँ बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों में संघर्षशील, मानव की सशक्त, ओजपूर्ण एवं आलोकमय तसवीर ही उपस्थित नहीं करती वरन् उसमें ममता, स्नेह एवं मानवीय उत्सर्ग का ऐसा मनोहारी रंग भर देती है कि इन्हें बिसराना मुश्किल हो जाता है।" (70)

पुंडलीक नायक की प्रतिभा का वैशिष्ट्य भी उनके आत्मकथन में दृष्टव्य है, "मळ्यार ताची आगळी वेगळी मुळावी नदर ही नदर जय पडता तो आवार उलोवंक लागता, झाडां, पेडां किटकिटुक लागतात तरेक तरा रंगानी आनी सुरांनी सैम नाचूक लागता आनी एका नव्या तेजाचो शिवर सगळेकडेन पडटा मारूतीन खंय जल्माक येना फुड़ें सुर्याचेर झेप घेतिल्ली तीच गत पुंडलीकाचे नदरेची, ती पोन्न्यांत नवें सोदता. नव्याक नवो अर्थ मानी आशय दिता... ताची नदर वयल्या वयल्या थराचेर चड वेळ थिरावना, ती खोलायेंत देवता आनी वेगळे वेगळे थर हुंपीत अनशाच्या काळजाच्या तळामेरेन वता ह्याच तळांत मोतयां शिवडलेली आसतांत." (71)

जिसका हिन्दी भावानुवाद होगा, 'रचनाकार की मूल दृष्टि, मूलभूत दृष्टि, यह दृष्टि जहाँ दृष्टिगोचर होती है- वहाँ के पेड़ पौधे नाचने लगते है हर तरह सुरोंके साजश्रृंगार से प्रकृति नृत्य करती है और अद्भुत तेजोमय प्रकाश फैल जाता है। हनुमान जन्म लेने के बाद सूरज को पाने की लालसा से उसकी तरफ उड़ान कर चूका था, यहीं स्थिति पुंडलीक की दृष्टि की रही है जिससे वे जीर्ण-शीर्ण में नयापन ढूंढते हैं तथा उसको नया अर्थ एवं आशय देते हैं। कहना न होगा कि पुंडलीक नायक की दृष्टि ऊपरी सतह पर नहीं रुकती वह मनुष्य के हृदय के तह तक जाती है जहाँ (मानस) मोती बिखरे हुये होते हैं।

पुंडलीक नायक साहित्य-यथार्थ का कलात्मक चित्रण रचता है तथा उसमें सामाजिक चेतना, विश्वदृष्टि एवं मूल्यों की अभिव्यक्ति सजग रुप से होती है। वस्तुतः उत्तर प्रदेश तथा गोवा ऐसे सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र हैं जिनकी व्यवहार की भाषा हिन्दी तथा कोंकणी है। दोनो प्रदेशों की जीवन-पद्धतियाँ मूल्य चेतना सामान्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं राजनीतिक घटनाओं में परस्पर समान व असमान सम्बन्ध पाये जाते है।

परिवेश पात्र घटनाओं का समग्रता में चित्रण करना विवेच्य कथाकारों के कथासाहित्य की अपूर्व विशेषता है। आंचलिक कथासाहित्य ने परिवेश से कटे,

काल्पनिक मायालोक में विचरनेवाले व्यक्ति को पुनः परिवेश से जोड़ा है। ग्रामीण परिवेश में निर्धनता एवं अज्ञान के कारण जो स्थितियाँ उत्पन्न हुयी थी उनका यथार्थ चित्रण रचनाकार द्वय की कहानियों का विषय बनी है । ग्रामीण परिवेश में अपने पूर्वजों की सम्पत्ति की रक्षा करना, अपने से बड़ो का आदर सम्मान करना, पापपुण्य की कसौटीपर जीवन कर्म अपनाना, आदि प्रचलित मान-मूल्यों का समाहार रचनाकार द्वय ने अपनी कथावस्तु में किया है।

1.37 सौन्दर्यबोध

सौन्दर्यबोधी विश्लेषण आलोचना शास्त्र का एक जटिलतम कार्य है। कारण सौन्दर्यबोध मनोवृत्ति, विचारधारा और संज्ञान विजन का एक संश्लिष्ट बोध कार्य है। कहा जाता है कि ''सौन्दर्यबोध प्रत्येक मनुष्य का निजी संवेदनात्मक गुण होता है। जो वह शिक्षा-दीक्षा, संस्कार-परम्परा, ज्ञानात्मक बोध, लोकाभिरुचि व प्रशिक्षण विशेष से अर्जित करता है। यह इन्द्रिय बोध से उपजकर ज्ञानात्मक, संवेदना से परिष्कृत स्वरुप प्राप्त कर लेता है। 'संवेदना' और 'ज्ञान' के निश्चित अर्थों से इन्कार नहीं किया जा सकता है। 'संवेदना' का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष की अनुभूति से होता है और 'ज्ञान' का समाज के वर्ग-विशेष से। संवेदना का सम्बन्ध भावना से होता है और ज्ञान का बुद्धि से, संवेदना का सम्बन्ध व्यक्ति विशिष्ट से होता है और ज्ञान का सामान्य-चेतना से।''(72)

सौंदर्य, सौंदर्यबोध, सौंदर्यानुभूति, सौंदर्यबोधी चेतना, सौंदर्यबोधी अभिव्यंजना आदि पद (Term) सामान्यरूपसे आलोचना में प्रचलित हैं। सौंदर्यबोध के क्षेत्र में दो प्रकार की विचारधारायें पायी जाती हैं- (1) भाववादी सौंदर्यबोध, (2) भौतिकवादी सौंदर्य।

मध्ययुगीन काव्य रीतिकाव्य, छायावादी काव्य, भाववादी सौंदर्यबोध के काव्य रहे हैं, जिसमें ईश्वर की सत्ता, ईश्वरीय शक्ति का आभास या उसकी प्रतिच्छाया ही भाववादी दृष्टिकोण से विवेच्य कार्य रही हैं। प्रगतिशील चिंतन एवं भाववादी दृष्टि के अनुरुप सौंदर्य और सौंदर्यबोध मनुष्य एवं सामाजिक जीव का नैसर्गिक गुण है, कार्ल मार्क्सने कहा है- Man therefore forms the things according with the law of beauty. (73)

भारतीय चिन्तकों में शुक्ल, द्विवेदी, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, रांगेय राघव और नामवर सिंह आदि ने सौन्दर्य एवं सौंदर्य बोध की व्याख्या की है। रामचंद्र शुक्ल ने सौन्दर्य को वस्तुगत माना है। उनके विचार से ''वीरकर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं है....

कुछ रुप रंग की वस्तुए ऐसी होती है जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती है कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रुप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अंत:सत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है।''(74) अर्थात सौन्दर्य की सत्ता हमारी व्यक्तिसत्ता को आकर्षित ही नहीं करती है बल्कि हमें अभिभूत कर अपनी असीमता एवं प्रभाव से आजीवन अनुगामी बना देती है।

प्रसंगानुसार यथार्थवादी दृष्टि से रांगेय राघवने सौंदर्यबोध के बारे में अपना मत प्रस्तुत किया है- ''साहित्य रचना का उद्देश्य मानव के यथार्थ-सत्य में छिपे हुए आत्मा के सौन्दर्य को खोजकर, भाव के माध्यम से विचार से समन्वय प्रस्तुत करना है।''(75) वे समाज और साहित्य में चित्रित समाज में फर्क महसूस नहीं करते, उनका सामाजिक अवधारणा पर स्थित मत इसप्रकार है- साहित्य के प्रतिमान मूल मानवीय प्रतिमानों से भिन्न या उनके विरोधी नहीं हो सकते हैं। 'कला कला के लिए' सिद्धान्त का खण्डन करते हुए रांगेय राघव ने 'मानव-मूल्य' और 'साहित्य-मूल्य' की एकता की प्रतिष्ठा की है, किन्तु वे मानव मूल्यों के लिए साहित्यिक मूल्य का बलिदान नहीं चाहते थे।

सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र में भारतीय विचारकों में रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, अमृतराय, शिवदानसिंह चौहान, बच्चन सिंह, कुँवरपाल सिंह और रोहिताश्व आदि ने विचार किया है। परन्तु यह तय है कि सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख विचारकों में रामविलास शर्मा महत्वपूर्ण है। ''मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के सृजन क्षेत्र में रामविलास शर्मा भारतीय सृजना के मेरू-दण्ड है।''(76) उनके अनुसार सौंदर्यशास्त्र के विद्वान जिस सौंदर्य का विवेचन करते हैं, वह साहित्य तथा अन्य ललित कलामों का सौंदर्य होता है। प्रकृति और मानवजीवन के सौंदर्य की व्याख्या किए बिना कलात्मक सौंदर्य का विवेचन करना सम्भव नहीं है। इसलिए वस्तुत: सौंदर्यशास्त्र का विषय उस व्यापक सौन्दर्य की व्याख्याएँ है जो प्रकृति, मानव जीवन तथा कलाओं में विद्यमान है।(77)

कवि, समीक्षक मुक्तिबोध ने मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की आलोचना के 'नये साहित्य के सौंदर्यशास्त्र' पुस्तकद्वारा हिन्दी साहित्य को अमूल्य योगदान दिया है, जिसमें सर्वहारा वर्ग के प्रति 'प्रतिबद्धता' मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र का शक्तिमान प्रतिमान माना गया है। मुक्तिबोध भी ''सौंदर्यबोध का जुड़ाव जीवन मूल्यों से भी मानते हैं और उसका उद्‌गम मनुष्य के मनोवेगों के उदात्तीकरण से बतलाया है उनके अनुसार इसी वास्तविक जीवन में अपने मनोभावों का उदात्तीकरण हमें कलात्मक सौंदर्य से भी अधिक आनन्द देता है सौंदर्य का यह शाश्वत प्रतिमान

सर्वथा स्वतंत्र और निरपेक्ष न मान लिया जाना चाहिए।''(78)

''सौंदर्यबोध और सौंदर्यानुभूति किसी व्यक्ति या रचनाकार का विशिष्ट गुण होते हुए भी वह उसके अपने युग, परिवेश, वर्ग और विजन से अलग नहीं मानी जा सकती है।'' विवेच्य कथाकार मार्कण्डेय और पुंडलीक नायक मध्यवर्गीय मानसिकता से जुड़ाव रखते हुए भी अपने प्रगतिशील चिन्तन और समाज सापेक्ष्य संदर्भों में सकारात्मक चेतना के रचनाकार जाने जायेंगे।''(79)

कहना न होगा कि सौन्दर्यबोधी प्रतिमानों को मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में पाना संभव है। मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक का कथासाहित्य समसामयिक जीवन प्रसंगों एवं युग सापेक्ष्य सन्दर्भों से जुड़ाव रखता हुआ प्रगतिशील तत्वों का समर्थन करता है। उदाहरणत: मार्कण्डेय की कहानी 'बीच के लोग' में मनरा युग सापेक्ष्य संदर्भ को उकेरता है- 'जो जमीन जिस किसान द्वारा बोयी जाती है वह उसकी संपत्ति है' का निर्वाह करते हुए जमीन से आलू खोदकर ले जानेवालों के साथ वह टक्कर लेता है, और गाँव के मुखिया फऊदी को उसके बूढ़ेपन का अहसास दिलाकर अब से मोर्चे पर न आने की चेतावनी देता है जिससे प्रगतिशील तत्वों की जागृति आम समाज में आयी हैं इसका बोध पाठकों को सहज रुप से हो जाता है।

सौन्दर्यानुभूति वस्तुत: जीवनानुभूति का एक रुप है जिसको हम पुंडलिक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में परिलक्षित कर सकते है। पंडरी की मालदार बनने की आकांक्षा है, पर जब उसका स्वप्न ध्वस्त हो जाता है तब खनिज व्यवसाय से खेतिहर समाज में आयी हुयी अवनति और जीवनानुभूति को यथार्थ स्तर पर अभिव्यक्त किया गया है जो पात्रगत सौंदर्यानुभूति एवं अन्तर्जटिलता का रुप धारण कर लेती है।

अच्छेव; उपन्यास समसामायिक यथार्थ को उजागर करता है। पूँजीवादी शोषण नीति के कारण, जमीदारी प्रथा के कारण जब गाँव की खेती नष्ट हो जाती है। तब खेती के आधारपर जीनेवाला किसान अपनी मातृभूमि को भूल जाता है और उसी भूमि का उत्खनन करने लगता है। यह गोवा अंचल का कटु यथार्थ है जिसको पुंडलीक नायक ने अपनी कथावस्तु के आधार-रुप मे चुना है। पुंडलीक नायक की प्रतिबद्ध दृष्टि, यथार्थपरक अभिरुचि से कृषक जीवन की विषमताओं को 'अच्छेव' में उसी प्रकार चित्रित करती है जिस प्रकार मार्कण्डेय की सजग दृष्टि ग्रामीण समाज में राजनीतिक विषमताओं और विचारधारात्मक परिवर्तन को उकेरती है।

सन्दर्भ सूची : प्रथम अध्याय

1.	इन्द्रनाथ चौधुरी	:	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका,	पृ.1
2.	एस गुलाम रसूल सरगु कृष्ण मूर्ति	:	तुलनात्मक अनुसंधान एवं उसकी समस्या,	पृ.27
3.	संपादक	:	The Oxford English Dictionary Vol. 11c. 1933,	P.710
4.	एस. गुलाम रसूल सरगु कृष्ण मूर्ति (सं)	:	तुलनात्मक अनुसंधान एवं उसकी समस्याएँ,	पृ.28
5.	पॉल वॉन टिघेम	:	वेलेक रेने के डिस्क्रिमीनेशन्स से उद्घृत,	पृ.15
6.	रेमाक	:	कम्पेरेटिव्ह लिटरेचर मॅथड ॲण्ड परस्पॅक्टिव्ह,	पृ.1
7.	आनंद पाटील	:	तौलनिक साहित्य : नवे सिद्धांत आणि उपयोजन,	पृ.44
8.	एस. गुलाम रसूल सरगु कृष्णमूर्ति (सं)	:	तुलनात्मक अनुसन्धान एवं उसकी समस्याएँ,	पृ.66
9.	आनंद पाटील	:	तौलनिक साहित्य : नवे सिद्धान्त आणि उपयोजन,	पृ.35
10.	इन्द्रनाथ चौधुरी	:	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका,	पृ.22
11.	सिसिरकुमार दास	:	म्युजेस इन आयजोलेशन,	पृ.4
12.	नगेन्द्र (सं)	:	तुलनात्मक साहित्य,	पृ.30
13.	क्लॉड पिश्वाँ और आन्द्रे एम् रुसो	:	ला लिटरेचर कॅम्पॅअर,	पृ.174
14.	इर्विन कोपेन	:	जे जे सी एल,	पृ.81
15.	रेनेवेलेक	:	थ्योरी ऑफ लिटरेचर,	पृ.148
16.	नगेन्द्र (सं)	:	तुलनात्मक साहित्य,	पृ.48
17.	के अय्यप्पा पणिकर	:	स्पॉट लाईट ऑन इंडियन लिटरेचर,	पृ.16-23
18.	आनंद पाटील	:	तौलनिक साहित्य : नवे सिद्धान्त आणि उपयोजन,	पृ.187

19.	इन्द्रनाथ चौधुरी	:	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका,	पृ.72
20.	नगेन्द्र (सं)	:	तुलनात्मक साहित्य,	पृ.14
21.	मॅक्समूलर	:	लेक्चर्स ऑन द सायन्स ऑफ रिलिजन,	पृ.12
22.	भ. ह. राजूरकर राजमल बोरा (सं)	:	हिन्दी अनुसंधान का स्वरूप,	पृ.172
23.	उमा शुक्ल, माधुरी छेडा (सं)	:	साहित्यिक शोध प्रविधि एवं व्याप्ति,	पृ.86
24.	एस गुलाम रसूल सरगु कृष्णमूर्ति (सं)	:	तुलनात्मक अनुसंधान एवं उसकी समस्याएँ,	पृ.27
25.	ऐण्ड्रे लेजेरे	:	Comparative Literature Volume 47 winter 1985	P.9
26.	इन्द्रनाथ चौधुरी	:	गगनांचल विश्व हिन्दी अंक मार्च 96	पृ. 73
27.	नगेन्द्र (सं)	:	तुलनात्मक साहित्य	पृ. 57
28.	पास्नेट एच एच	:	कम्पेरेटिव्ह लिटरेचर इटरनेशनल साइंटिफिक सिरीज	
29.	इन्द्रनाथ चौधुरी	:	गगनांचल विश्व हिन्दी अंक जनवरी मार्च 1996	पृ. 73
30.	नगेन्द्र (सं)	:	तुलनात्मक साहित्य	पृ. 28
31.	नगेन्द्र (सं)	:	तुलनात्मक साहित्य	पृ. 26
32.	मार्कण्डेय	:	कलम अंक 12 डिसंबर 85	पृ. 108
33.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	
34.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	
35.	पुण्डलीक नायक	:	'मुठय' कहानी संग्रह	
36.	पुण्डलीक नायक	:	'अर्दूक' कहानी संग्रह	
37.	शिवकुमार मिश्र	:	दर्शन साहित्य और समाज	पृ. 183
38.	मार्क्स एंगेल्स	:	कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र	पृ.38-39
39.	प्रभारक माचवे	:	हिन्दी साहित्य कोश	पृ.604
40.	कुमार विमल	:	काव्यानुशीलन आधुनिक:अत्याधुनिक	पृ.151
41.	रमेश कुंतल मेघ	:	'बिंदु', वर्ष 6, संयुक्तांक विशेषांक	

			आधुनिकता बोध और जनचित्त	पृ.573
42.	संपादक	:	इंटर एनसायक्लोपीडिया ऑफ सोशल सायन्सीस	पृ. 284
43.	नागेश करमली	:	शोधकर्त्री की व्यक्तिगत वार्ता पंजिम, दिनांक 3दिसम्बर 2001	
44.	संपादक	:	ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी वाल्युम - 8	पृ. 371
45.	संपादक	:	द अमेरिकन कालेज एनसाइक्योपीडिक डिक्शनरी वाल्युम - 7	पृ. 1020
46.	ब्रजभूषण सिंह	:	हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन	पृ.403-04
47.	मार्कण्डेय	:	महुए का पेड़	पृ. 67
48.	पुंडलीक नायक	:	मुठय	पृ. 82
49.	आर्दश सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि	पृ. 82
50.	निरुपमा भट्ट	:	स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक हिन्दी कहानी	पृ. 103
51.	महेन्द्र चतुर्वेदी	:	हिन्दी उपन्यास: एक सर्वेक्षण	पृ. 195
52.	मार्कण्डेय	:	बीच के लोग	पृ. 29
53.	पुंडलीक नायक	:	पिशान्तर	पृ. 33
54.	कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स	:	मेनीफेस्टो ऑफ दी कम्यूनीस्ट पार्टी	पृ. 35
55.	रोहिताश्व	:	राष्टवाणी	
56.	वही	:	वही	
57.	वही	:	वही	
58.	राजेन्द्र यादव (सं)	:	हंस सितंबर 2000	पृ. 93-94
59.	रोहिताश्व	:	राष्ट्रवाणी	
60.	रोहिताश्व	:	वही	
61.	राल्फ फाक्स	:	उपन्यास और लोकजीवन	
62.	रवीन्द्र भ्रमर	:	पद्मावत में लोकतत्व	पृ. 20-21
63.	नगीना जैन	:	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास	पृ. 45

64. रमेश तिवारी : हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन पृ. 412
65. नगीना जैन : आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास पृ. 83
66. मार्कण्डेय : अग्निबीज पृ. 169
67. पुण्डलीक नायक : वसंतोत्सव आनी दायज पृ. 44
68. आनंद प्रकाश : हिन्दी कहानी की विकास प्रक्रिया पृ. 112
69. शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ. 10
70. मार्कण्डेय : महुल का पेड़ - पिछला कवर
71. पुण्डलीक नायक : मुठय 'वळख' भूमिका (लक्ष्मणराव सरदेसाय)
72. रोहिताश्व : तेवर - फरवरी 2003 पृ. 12
73. कार्ल मार्क्स : इकानोमिकल एण्ड फिलासाफिकल मेन्युस्क्रिप्टस 1944 पृ. 4
74. रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग 1 पृ. 164
75. रांगेय राघव : समीक्षा और आदर्श पृ. 29-31
76. रोहिताश्व : मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की भूमिका पृ. 190
77. रामविलास शर्मा : समालोचक: सौंदर्यशास्त्र विशेषांक पृ. 175
78. मुक्तिबोध : तेवर, फरवरी 2003 अंक 11 पृ. 14
79. रोहिताश्व : शोधकर्ता की निजी वार्ता - 2 जनवरी 03

o-o-o-o-o

2.आंचलिक कथासाहित्य : परम्परा और अद्यतन विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतवर्ष में जहाँ एक ओर अराजकता, मूल्यहीनता, अकर्मण्यता एवं बिखराव की प्रक्रिया पनप रही है जिसके कारण युवावर्ग में कुंठित भावना पनप रही है वहीं दूसरी ओर जीवन के अनेक क्षेत्रों तथा राष्ट्र के इतिहास में बहुमुखी विकासशील परिवर्तन भी संभाव्य हुआ है। स्वतंत्रता के बाद देहातों में बहुमुखी विकास की योजनाओं से ज्ञान-विज्ञान के अनेक क्षेत्र खुल गये। खेती के नवीनतम यंत्रों ने भारतीय किसान को वैज्ञानिक पद्धतियों से खेती करने के लिए प्रवृत्त किया है। औद्योगिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में भी भारत में सम्यक रुप से प्रगति की है।

इस बदलते परिवेश में साहित्यकार जीवन के नए क्षितिजों को ढूँढने की कोशिश कर रहा था। युगीन परिस्थितियों के दबाव में अनेक रचनाकारों को एक घेरे में रखते हुए कहानी समीक्षकों एवं विचारकों ने नई कहानी आंदोलन के भीतर सन् 50 के बाद सम्पूर्ण रचनासंदर्भ समेटने की कोशिश की। आजादी के बाद के बदलते स्वरुप से हम लोग अपने आत्मगौरव और अपने स्वरुप को

ढूँढने का प्रयास करते रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद का दशक जनमानस के भीतर तीव्र अभिलाषाओं और हलचलों को जगानेवाला दशक कहा जा सकता है। फणीश्वरनाथ रेणु के सन् 54 में 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद सहसा पाठकों का ध्यान आंचलिकता की ओर गया। यह आंचलिकता का आन्दोलन अपने में लोकजीवन की ताज़गी और स्फूर्ति को समेटे हुए था। इसमें लोकजीवन के अनेक रंग, सहजता, रागात्मकता, आस्था की पुकार प्रगट होती है तथा सबसे महत्वपूर्ण यह बात थी कि आंचलिक कथाकारों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ के अनेक पहलुओं को समझने का प्रयास किया गया क्योंकि वे गाँव में जन्मे थे, तथा उनके पास उन अविकसित अंचलों की अनुभव-संपदा थी। वेदप्रकाश अभिताभ के अनुसार 'आंचलिक उपन्यास एक तरह से जिए हुए और कमाए हुए सत्यों की प्रस्तुति से प्रभावपूर्ण मंच बन गए है।'(1) आंचलिक कथाकारों ने रेल बस या हवाईजहाज से गुजरते हुए केवल देखे गाँवों का चित्रण नहीं किया है बल्कि उस परिवेश को उन्होंने जिया भी है।

आंचलिक कथासाहित्य की पिछले 50-55 वर्षों की विकासशील परम्परा पायी जाती है। प्रेमचन्दकालीन ग्रामीण कथासाहित्य तथा मनोवैज्ञानिक कथासाहित्य आदि की पृष्ठभूमि में आंचलिक कथासाहित्य की शुरुआत छटवें दशक में हुई। इस परम्परा की ओर जाने से पूर्व आंचलिकता रूपी पद को स्पष्ट करना विषय के अनुरुप होगा।

2.1 आंचलिकता की परिभाषा

हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश में अंचल का अर्थ आंचल, पल्ला साडी का छोर, देश का वह प्रान्त या भाग जो सीमा के पास हो, नदी के किनारों की भूमि, तट या किनारा क्षेत्र आदि बताये है। अन्यत्र 'अंचल' का अर्थ विशेषकर स्त्रियों के वस्त्रों के छोर से ही लिया गया है। अंचल शब्द व अर्थ को सहीं रुप में शिवप्रसाद सिंह ने व्याख्यायित किया है यथा- "जैसा इस शब्द से स्पष्ट है कि यह भाग संज्ञा किसी क्षेत्र या अंचल से सम्बद्ध है क्षेत्र या अंचल उस भौगोलिक खण्ड को कहते है जो सामाजिक और सांस्कृतिक रुप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई हो जिसके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएँ, उत्सव, शादी, आदर्श, और आस्थाएँ मौलिक मान्यताएँ तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ, परम्परा समान और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतनी भिन्न हो कि इनके आधार पर क्षेत्र या अंचल विशेष इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्रों से एकदम अलग प्रतीत हो। इस प्रकार के क्षेत्र या अंचल के जीवन को अभिव्यक्त करनेवाली रचना को हम आंचलिक कह सकते है।"(2)

सारांशतः कोई विशेष भाग या क्षेत्र जिसकी अपनी संस्कृति, रीति-

रिवाज, सुख-दुख, जीवन-प्रणाली, आचार-विचार, समस्याएँ, परम्पराएँ एवं मान्यताएँ होती है, उसे अंचल कहा जा सकता है।

वस्तुतः कोई भी प्रदेश अपने भौगोलिक, प्राकृतिक आधारपर एक दूसरे से भिन्न होता है और राजनीति एवं संस्कृति के महत्व से तथा भूमि, वनों, नदियों, पहाड़ों आदि से अपनी विशिष्टता भी प्राप्त कर लेता है, जो दूसरे अंचल से भिन्न रुप धारण कर अपनी आंचलिक विशेषताओं को समाहित किए हुए होता है।

आंचलिकता को रेखांकित करते हुए उपन्यासकार अंचल की विभिन्नता, परम्पराएँ, सामाजिक व्यापार-प्रणालियों, आर्थिक स्थितियों, संस्कृति के समग्र रुपों का चित्रण करता है और अंचल को नायक का विशेषत्व देकर प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो विभिन्नताओं को लिए हुए कोई पात्र नायक बनकर नहीं आता, रामदरश मिश्र के अनुसार- ''आंचलिक उपन्यासों में अंचल अपनी सम्पूर्ण विविधता और समग्रता के साथ नायक होता है। अंचल के जीवन की सारी परम्पराओं, ऐतिहासिक प्रगतियों, शक्तियों, आशक्तियों, छवियों, अछवियों को जितनी ही अधिक सच्चाई से लेखक पकड़ता है, अंचल जीवन के चित्रण में वह उतना ही सफल होता है। आंचलिक उपन्यासकार जनपद विशेष के जीवन के बीच वहाँ के पात्रों, समस्याओं, सम्बन्धों, वहाँ के प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश के समग्र रुपों, परम्पराओं और प्रगतियों को अंकित कर सकता है क्योंकि उसने उन्हें अनुभूति में उतारा है। आंचलिक उपन्यास लिखना मानों हृदय में किसी प्रदेश की कसमसाती हुई जीवनानुभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास है।''(3)

प्रत्येक अंचल का भौगोलिक वातावरण अंचलों में भिन्नता स्थापित करता है, कहीं पहाड़ी इलाका होता है तो कहीं समुद्रीतट; तो कहीं समतल भूभाग। यह भौगोलिक भिन्नता ही एक ओर वहाँ की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को जन्म देती है तो दूसरी ओर सांस्कृतिक एवं धार्मिक वातावरण में अलगाव भी पैदा करती है। प्रकृति का भीषण रुप उसके भीतर आतंक उत्पन्न करता है तो रमणीय रुप उसके अंदर आकर्षण और प्रेम की ललक उत्पन्न करता है। अपनी-अपनी लोककलाओं एवं लोकगीतों में प्रकृति एवं परिवेश का सौंदर्य देखा जा सकता है। इस तरह किसी नगर या गाँव के आंचल पर संपूर्ण कथासाहित्य रचने वालों में प्रमुखतः नागार्जुन, रेणु,शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय आदि का स्थान महत्वपूर्ण है।

प्रेमचन्द ग्रामीण जीवन का चित्रण प्रस्तुत करते है लेकिन आंचलिकता की गंध लिए नहीं। उन्होंने कथासाहित्य में ग्रामीण पात्रों के माध्यम से ग्रामीण जीवन की झाँकियां प्रस्तुत की है। विभिन्न पात्रों के विवेचन माध्यम से उनके उपन्यासगत उद्देश्य में बदलाव आया है। होरी के कारण 'गोदान' में उनकी इच्छानुसार

परिवेश एवं ग्रामीण रंग-गंध में बदलाव आता है। केवल ग्रामीण परिवेश पर आधारित होने से कोई उपन्यास आंचलिक नहीं हो सकता बल्कि अंचल को बिना परिवर्तित किए उसकी खूबियों के साथ व्याख्यायित करने पर कोई भी उपन्यास आंचलिक कहा जा सकता है।

नगीना जैन की दृष्टि से- ''अधिकांश अनांचलिक उपन्यासों में आंचलिक तत्व किसी न किसी अन्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं, अंचल के जीवन के चित्रण के अभिप्राय से नहीं। जबकि आंचलिक उपन्यास का उद्देश्य सुदूर और अनदेखे अंचलों में बिखरी हुई अनदेखी संस्कृति और अनछुए सौन्दर्य को खोजने की दिशा में होता है।''(4)

2.11 ग्रामकथा और आंचलिकता

अंचल के सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए लेखक को उन प्रदेशों की संस्कृति का अविभाज्य घटक बनकर जीना पड़ता है, तभी उसे आत्मानुभूति के स्तर पर वह उसको व्याख्यायित कर सकता है। कभी-कभी लेखक ग्रामांचल पर कथासाहित्य तो रचता है लेकिन वह आंचलिकता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। इन दोनों में सूक्ष्म भेद है। ग्रामकथा साहित्य और आंचलिकता के पार्थक्य को व्यक्त करनेवाला शिवप्रसाद सिंह का कथन महत्वपूर्ण है कि ''अक्सर सम्पूर्ण ग्रामकथा साहित्य को आंचलिक मानने का भ्रम हिन्दी में फैला है। ग्राम कथा ज्यादा व्यापक भावभूमि की वस्तु होती है। ग्रामजीवन सभी साहित्यों की परिचित वस्तु होती है, जबकि आंचलिकता एक खास प्रकार के विशिष्ट क्षेत्र के जीवन से अपने को सम्पूर्णतः सम्बद्ध कर देती हैं। उस जीवन को पूर्णतः उपेक्षित और अछूता समझकर उसके समग्र रुप का छोटे से छोटे रुप में पुनः प्रस्तुतिकरण आंचलिकता का लक्ष्य होता है।.... प्रत्येक ग्रामकथा आंचलिक नहीं होती जबकि प्रत्येक आंचलिक कथा ग्राम कथा हो सकती है।''(5)

यह बात महत्वपूर्ण है कि आंचलिक कथा-साहित्य शहरी अंचल पर ज्यादातर नहीं लिखा गया है। क्योंकि नगर अपनी क्षेत्रीयता की, विशिष्टता की सीमायें नहीं लांधता है। औद्योगिकता एवं आधुनिकता के बढ़ते प्रभावों के कारण शहर पर अनेक संस्कृतियों के घात-प्रतिघात से प्रभावित अन्तर्जटिल वातावरण नजर आता है।

नगीना जैन के शब्दों मे- ''जिस एक खास भौगोलिक संस्कृति का एक विशिष्ट आंचलिक वातावरण में उद्घाटन आंचलिक उपन्यास कार करता है वह शहरी जीवन में नहीं मिलती। अपरिचित अंचल आज भी बाहरी-शहरी संसार के यान्त्रिक आघातों से अछूता है, उसकी भौगोलिक या सांस्कृतिक सीमाबद्धता

आज भी सुरक्षित है,..... आधुनिक जीवन को विज्ञान की उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं, वे अंचलों (ग्रामीणांचलों) में पहुँचती रही है पर अंधविश्वास समूल नष्ट नहीं हुआ है शिक्षा पहुँच रही है पर अज्ञान का कुहासा पूर्णतः छँटा नहीं है, स्वार्थलिप्सा तीव्र हुई है परन्तु सरलता अभी भी संघर्षरत है, गाँव के रुप में नई भंगिमा तो उत्पन्न हुई है पर पुराना रुप परिवेश अभी भी जी रहा है।''(6)

अनदेखी छवियों को हमारे सामने उजागर करने का श्रेय आंचलिक कथाकार को जाता है। दो विभिन्न स्थानों में समान शहरी-जीवन दृष्टिगोचर होता है। फ्लैट संस्कृति, वैज्ञानिक उपलब्धियों के फलस्वरूप हर व्यक्ति की अपनी इकाई है। लेकिन गाँवों में या पिछड़े इलाकों में सांस्कृतिक, सामाजिक परंपरा, जीवप्रथा, रीतिरिवाज आज भी जीवित है जिसके कारणस्वरुप व्यक्ति-व्यक्ति में पारस्परिक आदान-प्रदान होता है, परस्पर सम्बन्ध बने रहते हैं।

2.12 आंचलिक उपन्यास-स्वरुप

प्रसंगानुसार अब आंचलिक उपन्यास के स्वरुप पर प्रकाश डालना समीचीन होगा। औपन्यासिक विधा में आंचलिकता की कौन सी विशेषताएँ समाहित है? इसका विवेचन हिन्दी की आंचलिक कथासाहित्य की परंपरा पर प्रकाश डालने से पूर्व आवश्यक है। किसी भूभाग या क्षेत्र या अंचल विशेष के उस जीवन यापन का अध्ययन अथवा चित्रांकन जो उसकी सम्पूर्ण क्षेत्रीयता को प्रतिपादित करता हो वहीं आंचलिकता है और अंचल के भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सीमाबद्ध क्षेत्र विशेष के सामान्य जीवन सत्यों को निरुपित करना ही आंचलिक रचनाओं का लक्ष्य है, हर एक आंचलिक उपन्यास में इसका चित्रण होते हुए भी प्रत्येक क्षेत्र का विरचित उपन्यास एक दूसरे से भिन्न होता है, क्योंकि वह पात्रों के स्थान पर 'वर्ग' Class को चित्रित करता है। प्राणीमात्र से लेकर प्रकृति तक वह पात्र के रुप में पेश करता है। आंचलिक उपन्यासों में पात्र अन्य मानव को प्रमुखता न देकर भौगोलिक सीमा इतिहास, संस्कृति जाति, धर्म, भाषा, रीतिरिवाज, रहनसहन, खान पान आदि क्षेत्रीय विशेषताओं को महत्व दिया जाता है। इसलिए मनुष्य क्षेत्रीय संस्कृति का सामाजिक प्राणी बनकर आता है और यहीं सामान्य उपन्यास और आंचलिक उपन्यास भिन्न हो जाते है।

मधुकर गंगाधर के शब्दों में- ''जहाँ सामान्य उपन्यासों में पात्रों के क्षेत्रीय जीवन का आंचलिक वातावरण दिए बिना ही गौण रुप से इसका प्रयोग कर हम चरित्र विकास में विश्व जीवन के सर्वमान्य सत्य का संघटक खोजने का प्रयास करते है, वहाँ आंचलिक उपन्यासों में विशिष्ट आंचलिक वातावरण में जीवन प्रक्रिया के माध्यम से एक खास भौगोलिक संस्कृति का उद्घाटन वांछनीय स्वीकारते है।''(7)

आंचलिक कथासाहित्यकार दूसरे लेखकों से भिन्न इसलिए होता है क्योंकि अंचल विशेष के जीवन में बाहरी भीतरी आघातों से बदलाव आता रहता है और इस परिवर्तन को स्वीकारते हुए उसको ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। उनको अंचलविशेष को परिवेश बनाकर मानवजाति की समस्याओं से जूझना पड़ता है।

2.2 हिन्दी का आंचलिक कथासाहित्य

आंचलिक उपन्यासों की विगत् पचास वर्षों की परम्परा पायी जाती हैं। कतिपय समीक्षक आंचलिक उपन्यास की शुरुवात शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' सन् 1925 से मानते है। 'देहाती दुनिया' आरम्भ में 'ठेठ देहात का औपन्यासिक चित्र' कहने से यह स्पष्ट होता है कि इसमें देहात का चित्र उभरा है और यह भी उल्लेख मिलता है कि उन्होंने मित्रों के अनुरोध पर उनके मनोरंजन के लिए लिखा है। 'देहाती दुनिया' में सम्पूर्ण कहानी को ग्यारह शीर्षकों में बाँटकर रामसहर के रहनेवाले विभिन्न स्तरों के लोगों का चित्रण इसमें किया गया है। जमींदार, मालिक, रामटहलसिंह, बुधिया महादेई, पशुपति पांडे भोलानाथ, मास्टर दरोगा आदि पात्रों के माध्यम से भोजपुरी जनपद के आंचल का ग्रामीण परिवेश अपने स्वभावगत विशेषताओं को चित्रित करता है। लेकिन कहीं भी आंचलिक उपन्यास जैसी क्षेत्रीयता या स्थान का विशेषत्व वर्णित नहीं होता है। अतः इसे पूर्णतः आंचलिक उपन्यास कहना समुचित न होगा। जमींदार के अत्याचार, छोटी जाति की औरतों के साथ यौन सम्बन्ध, ढोंगी पुजारी, माँ का वात्सल्य भाव, अफसरों की भ्रष्टता आदि भाव चित्र भारत के किसी भी देहात के अंचल में दृष्टिगोचर होते हैं। लेखक का मकसद भी आंचलिक उपन्यास की सृष्टि करना नहीं है, उन्होंने भूमिका में ही यह बात स्पष्ट की है ''मैं ऐसे ठेठ देहात का रहनेवाला हूँ वहाँ इस युग की नई सभ्यता का बहुत ही धुंधला प्रकाश पहुँचा है, वहाँ केवल दो ही चीजें प्रत्यक्ष देखने में आती है, अज्ञानता का घोर अन्धकार और दरिद्रता का ताण्डव-नृत्य। वहीं पर मैंने स्वयं जो कुछ देखा सुना है उसे यथाशक्ति ज्यों का त्यों इसमें अंकित कर दिया है।''[8] निष्कर्षतः कह सकते हैं कि आंचलिक उपन्यास की परम्परा में 'देहाती दुनिया' प्रथम उपन्यास जरुर है। इस उपन्यास के उपरांत लिखे जाने वाले आंचलिक उपन्यासों को इससे भूमिका अवश्य मिली है।

आंचलिक उपन्यास परम्परा में प्रगतिशील लेखक नागार्जुन का स्थान महत्वपूर्ण है। नागार्जुन को आंचलिक उपन्यास कार के रुप में विशेष ख्याति प्राप्त है। उनके लगभग सभी उपन्यासों में क्षेत्रीयता एवं अंचल की पहचान शामिल है। 'बलचनमा' एवं 'वरुण के बेटे' में यह विशिष्टता सटीक रुप में चित्रित हुई है।

अन्य उपन्यास 'रतिनाथ की चाची', 'बाबा बेटेसरनाथ', 'नई पौध' और 'दुःखमोचन' आदि में भी आंचलिकता का सन्निवेश हुआ है। कतिपय आलोचकों ने उनको आंचलिक कम समाजवादी या प्रगतिवादी रचनाकार अधिक माना है। डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार "लेखक पुराने सम्बन्धों, मूल्यों और स्थितियों की विभीषिका को चित्रित करता हुआ सर्वत्र उसमें उभरती दरारों को अनावृत्त करता है।" आगे उन्होंने यह भी स्वीकारा है कि "वर्ग-संघर्ष, साम्यवाद और नये प्रगतिशील मूल्य-आरोपित नहीं लगते बल्कि कथा और पात्रों में रच-पचकर ही उभरते है। उन्होंने जनसामान्यों की पीड़ा, विषमता, अपमान संघर्षों को अपने सभी उपन्यासों में चित्रित किया है, कहीं पर साम्यवादी होने के फलस्वरुप सामाजिक सुधार एवं वर्गसंघर्ष की भी झलक मिलती है।"(9) 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास का समापन सिन्दूरी अक्षतों में अंकित तीन शब्दों स्वाधीनता, शान्ति, प्रगति में होता है। यह नारा और कुछ नहीं बल्कि साम्यवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक लेखक का ही दृष्टिकोण है।

मिथिला की विराट संस्कृति की आधारभूमि पर एक नौजवान की करूण गाथा द्वारा इस अंचल के सम्पूर्ण सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक एवं अन्य जीवनस्तरों को 'बलचनमा' में अभिव्यक्ति दी गयी है। पूँजीवादी व्यवस्थाद्वारा लादी गयी जमींदारी प्रथा से उत्पन्न शारीरिक गुलामी, शोषक की पीड़ा को बलचनमा उपन्यास व्यक्त करता है। 'बलचनमा' निम्नवर्गीय किसान-पुत्र है। उसके पिता की सात कट्टा जमीन थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् 'बलचनमा' का करूणापूर्ण जीवन प्रारम्भ होता है। पिता की विरासत को मँझले बाबू ने गिरवी रख लिया था। खाने की फिकर में उसे उसी जमींदार के यहाँ जानवर की तरह दिन-रात काम करना पड़ता है। उसका बाप भी इसी अत्याचार का शिकार हुआ था जिसका चित्र इस प्रकार उभरकर आता है- "उनको दरवाजे की खमेली से बंधा जाँघ, चूतड़ पीठ और बाँह पर हरी केली के निशान लिए, आँखों से बहते आसुओं के धार, और गाल और छाती पर संजोये, काला पड़ा चेहरा और सुखे होंठ लिए।"(10) हमेशा उसके आँखों के सामने आकर खड़ा रहता है।

अर्थव्यवस्था के इस असंतुलित स्थिति के कारणस्वरुप समाजपर छायी अमानुषिकता को नागार्जुन ने बलचनमा की पीडा एवं चौधरी की काली करतूतों के प्रति घृणा और इस सड़ी व्यवस्था के प्रति विद्रोह को व्यक्त किया है। 'बलचनमा' में किसान जीवन के अभावों दर्दों के बावजूद नया उन्मेष लेकर यह अभिव्यक्ति हुयी है। 'बलचनमा' के जीवन में नयी राजनीतिक चेतना लेकर आया -- "धरती किसकी, जोते बोये उसकी, किसान की आजादी आसमान से उतरकर नहीं आएगी वह परगट होगी नीचे जुती धरती के भूरे-भूरे ढेलों को फोड़कर....।(11)

'बलचनमा' में नागार्जुन देहाती संस्कृति की सामन्ती व्यवस्था का मूल्यांकन तथा प्रतिकार उन समाजवादी शक्तियों के संदर्भ में करते है जो धीमे-धीमे कदम बढ़ा रही है। ''जमीन नहीं छोडेंगे, चाहे कुछ भी हो जाय''(12) यह विचार व्यक्त करनेवाला बलचनमा संघर्ष झेलकर आगे बढ़ रहा है। वह अपनी भूमि पर अधिकार करना चाहता है। प्रेमचंद कृत 'गोदान' उपन्यास का 'होरी' संस्कृति के ध्वंस को, मालिक से मजदूर होने की स्थिति को सहता है तो बलचनमा बदले हुए जीवन संदर्भों को समझता है और भावी पीढ़ी के निर्माण के प्रतीक रुप में कार्य करता है। होरी की निराशावादी दृष्टि बलचनमा की आशावादी दृष्टि में परिवर्तित होती है जो लेखक की समाजवादी चेतना तथा आस्था की परिचायक है। यहाँ आंचलिक उपन्यास की विशिष्ट खूबी यह है कि नागार्जुन देहाती जीवन की साधारण घटनाओं को चित्रित करने में, उनके छोटे-मोटे सुखों-दुखों को अभिव्यक्ति देने में अंचल-विशेष की भाषा की ताज़गी तथा मुहावरें ग्रहण करने में तद्भव शब्दों के प्रयोग में काफी सफल हुए है। गालीगलौज से लेकर साधारण बोलचाल की भाषा में क्षेत्रीयता का पुट है।

'वरुण के बेटे' (सन् 1957) बिहार के एक अंचल दरभंगा के आसपास के क्षेत्र में बसे मछुआरों के जीवन की कहानी है। अथक परिश्रम के बावजूद वे पूस में रात-रात भर गढ़पोखर में मछली का शिकार करते रहते है, फिर भी अपनी आर्थिक स्थिति से उभर नहीं रहे हैं। खूरखुन के घर के हालात और उस बस्ती में रहनेवाले सभी मछुआरों का यही परिवेश है। गरोखर बिहार जिला, दरभंगा चारों तरफ भिंड किनारों के बड़े बड़े कछार बीच का पानीवाला बड़ा हिस्सा कुल मिलाकर पचास एकड़ जमीन हैं। यह साधारण तलैय्या नहीं था बल्कि इस इलाके का प्रख्यात जलाशय था जिसपर मछुआरों के तीस-पैतीस परिवार पल रहे थे। पास-पड़ोस के इलाके में शिकार कर मछली पकड़ते और दरभंगा स्टेशन से चढ़कर बिहार के अन्य इलाकों में मछली बेचते थे। उपर्युक्त विवेचन इस कथन से स्पष्ट है - ''भादों से जेठ तक इधर के जितने भी पोखर थे जितनी भी ताल-तलइयाँ थी जितनी भी नदियाँ और झीलें थी, पानी का जहाँ भी जमाव, टिकाव था, सारा का सारा शिकारगाह था। मछलियाँ ही नहीं सिंगाडा कमल और कुँई के फूल कमल गट्टे, कमलनाल, कडहर के सौर, सारुख जैसी चीजें भी वे पानी से हासिल करते थे। पुरइन पद्म के गोल-गोल, चिकने-चिकने पत्तों की भी बाजारों में काफी खपत थी। तालम-खाना अजाने के लिए हजारों की एडवांस देकर ये लोग पोखर लेते थे ठेके पर। ठेके अक्सर सामूहिक हुआ करते।''(13)

नागार्जुन ने प्रकृति वर्णन के साथ-साथ जीवन चित्रण भी बखूबी किया है। अगहनी इनकी मुख्य उपज थी। लेकिन अब बाढ़ के कारण मुख्य उपज नहीं

रही। कभी-कभी अनावृष्टि और अतिवृष्टि से धान की तबाही होती थी। कोसी का जहरीला असर भी इन देहातों को वीरान बना चुका था। बाढ़-अकाल, मलेरिया जीवन के संगी बन गये थे। गोरखर और उसके पश्चिम में कोसभर का इलाका 'देपुरा' मैथिल जमींदारों के अधिकार में था। यह तिरहुत के खानदानी शासक थे- 'बाबू साहब और सरकार' जमींदारी उन्मूलन कानून के मुताबिक व्यक्तिगत जोत की जमीन बाग-बगीचे, कुँआ, पोखर, देवभूमि चरागाह, धरती नदियों के पाट और तटवर्ती भूमि जैसे कुछ अचल सम्पत्तियों के मामले में उन्हें छूट मिल गयी थी। इसलिए वे चरागाहों और पोखरों को बेचने लगे। पोखरों के बेचने से मछुआरों के जीवन में हलचल मच गयी और तभी मोहन माँझी ने इसका नेतृत्व सँभाला और गोढ़ियारी लोअर प्राइमरी स्कूल के मितहा मकान में बिरादरी के लोग इकट्ठा हुये। मैथिल जमींदारों की चाल के विरुद्ध लड़ाई शुरू हुई। तेरासी बरस के गोनड़ बाबा ने फैसला सुनाया "यह पानी सदा से हमारा रहा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड़ नहीं सकते, पानी और मार्टी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेंगे। गोरखर का पानी मामूली पानी नहीं वह तो हमारे शरीर का लहू है। जिन्दगी का निचोड़ है।"(14)

मोहन माँझी को गोढ़ियारी के ग्रामांचल मछली पालन व्यवसाय का आधुनिकतम केन्द्र होने की आस है। वैज्ञानिक प्रणालियों से मत्स्यपालन व्यवसाय होगा। "पूस से लेकर जेठ तक प्रतिवर्ष अच्छी से अच्छी मछलियाँ निकलेंगी। एक-एक सीजन में पचास-पचास हजार की आय होगी। कछारों में कमलों और कुमुदनियों की खेती करेंगे। मलाही गोंढियारी, आबादियाँ सुखी होगी। पक्की ऊँची भिंडोपर एक तल्ला सेनीटोरियम बनेगा।"(15)

सामाजिक आर्थिक रुप से पिछडी हुयी छोटी जाति युगीन चेतना के अनुरुप जानती है कि उसे 'एकता और संगठन शक्ति' में विश्वास करना होगा, साम्प्रदायिक दायरों को तोड़ना होगा। प्रकारान्तर से मधुरी के चरित्रद्वारा नारी जाति की राजनीतिक चेतना तथा स्त्री-पुरुषों की प्रगतिशीलता पर प्रकाश डाला गया है। एक घटना अजीब सी लगती है जब जमींदार और मछुआरों के संघर्ष में पुलिस मछुआरों का साथ देते है। यह परिकल्पना रचनाकार की संवेदनापरक उद्देश्यता है। अन्यथा नागार्जुन ने मछुआरों के जीवन की बारीकियों को प्रामाणिकता से चित्रित किया है। मछलियों के बीस-पच्चीस प्रकार के नाम तथा उनकी जानकारी इस उपन्यास मे उद्धृत है जिससे उनकी मछुआरों के जीवनसम्बन्धी अध्ययनशीलता व पर्यवेक्षण क्षमता नजर आती है।

बिहार के विशुद्ध आंचलिक कथाकार 'फणीश्वरनाथ रेणु' ने बिहार प्रान्त के पूर्णिया जिले के छोटे-छोटे अंचलों को अपने सृजन का विषय बनाया

है। रेणु स्वयं उसी पूर्णियाँ के छोटे से कस्बे में जन्मे थे। अपनी गहरी संवेदना के माध्यम से उन्होंने वहाँ के जनजीवन को सच्चाई से स्थापित किया। 'रसप्रिया' कहानी में सहरसा और पूर्णियाँ जिले के आसपास के छोटे गाँव परमानपुर और कमलपुर की आंचलिकता को प्रस्तुत किया है। पंचकौडी मिरदंगिया के इर्द-गिर्द कथानक के घूमते हुए भी अंचल की विशिष्ट पहचान सम्मुख आती है। मोहन का पैसे के अभाव में डाक्टर को न दिखा पाना, मिरदंगिया का गुरुजी की बेटी रसप्रतिया से प्रेम, उसके बाद चुमौना की चर्चा होते ही भाग जाना आदि को चित्रित किया है। 'नैना जोगिन' में रतनी के माध्यम से गाँवों से शहर की ओर पलायन करने के बाद बिगड़ते हुए सम्बन्धों का चित्रण है। 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' में सुदूर बिहार के अंचलों की संस्कृति हीरामन तथा अन्य लोगों का भोलापन, निश्चलता, लोकजीवन ही कथाकार का कथ्य है। बिहार प्रान्त के तेगछिया, ननकपुर, छत्तापुर पचीरा आदि अंचलों तथा महुआ घटवारिन की कथा का, लोकगीतों का सुंदर वर्णन इस कहानी में किया गया है। 'सिरपंचमी का सगुन', 'आत्मसाक्षी', 'तीर्थोदक', 'उच्चाटन', 'लालपान की बेगम', 'पुरानी कहानी : नया पाठ' आदि कहानियाँ भी महत्वपूर्ण है। इन कहानियों में रेणू ने अंचल की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को भी रेखांकित किया है।

'नागार्जुन' 'रेणु' और 'मार्कण्डेय' को आंचलिक कथा साहित्य का वृहत्रयी माना जा सकता है। रेणु को 'मैला आंचल' स्वातंत्र्योत्तर भारत के नवोन्मेषित गांव पूर्णियाँ के मेरीगंज गाँव की कथा है। 'मैला आंचल' अपनी हर आशा आकांक्षा, अच्छाई-बुराई, सुख-दुख, हँसी-खुशी, तीज-त्यौहार, निर्धनता, नये-पुराने मूल्यों की टकराहट आदि के साथ समग्रता में चित्रित हुआ है। उपन्यास की भूमिका में स्वयं रेणु ने लिखा है- ''यह है मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णियाँ। पूर्णियाँ बिहार राज्य का एक जिला है। इसके एक ओर नेपाल दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिमी बंगाल। विभिन्न सीमा रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दक्खिन में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा रेखा खीच देते हैं। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथा-क्षेत्र बनाया है। यह गाँव है मेरीगंज और स्वतंत्रता से पूर्व के दो तीन वर्षों की उस जिंदगी के जीवित चित्र है। यह जिंदगी ठीक वैसी है जैसी वह है, ''इसमें फूल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाल भी, कीचड़ भी, चन्दन भी, सुन्दरता भी है, कुरुपता भी।''(16)

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में गाँव की अभेदता को शहरी संस्कृतियों द्वारा तोड़ने की दृष्टि रही है 'मैला आंचल' में भी डॉक्टर प्रशांत के आगमन से

गाँव-जीवन को गति मिलती है, पुराना टूटता है, नया बसता है। रामदरश मिश्र के अनुसार ''हिन्दी में पहली बार किसी अंचल विशेष के उपेक्षित जीवन की समस्त छवि और कुरुपता, सीमा, विवशता और सम्भावना को इतनी मानवीय ममता और सूक्ष्मता का रुप दिया गया है।''(17)

प्रस्तुत उपन्यास में कथा को दो भागों में बाँटा गया है, प्रथम भाग में राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्रण धार्मिक मठों के आडम्बरों का वर्णन, ग्रामीण उत्सव, राजनैतिक उथल-पुथल, गाना-बजाना, आदि का विस्तृत चित्रण तो दूसरे खंड में स्वराज प्राप्ति के उत्सव का नृत्य-वादन और संक्षिप्त भाषण, डॉ. प्रशान्त और कमली की प्रेमकथा, गर्भधारणा और विवाह,कालीचरण के कारावास आदि प्रसंगों का वर्णन लेखक ने किया है। इस उपन्यास की सबसे प्रमुख विशेषता भाषा है- जिसको लोकजीवन लोकसंस्कृति और संगीत की धुन से सजाया है। 'मैला आँचल' उपन्यास पर आक्षेप भी लगाये गये है जैसे 'बंगला उपन्यास' 'दोडाय चरित मानस' की कार्बन कापी'(18) तथा 'स्थानीयता पर अधिक बल देने के कारण पाठक उपन्यास का पूर्ण आनंद नहीं उठा पाता'(19)

सन् 1957 में प्रकाशित रेणु की दूसरी औपन्यासिक कृति 'परती परिकथा' में देश के नव-निर्माण में जनता की स्वावलंबी चेतना, जमींदार जित्तु के माध्यम से गाँव के जनजागरण को स्वर दिया गया है। 'विज्ञान द्वारा ग्रामीण जीवन में आमूल परिवर्तन, जित्तन द्वारा परती पर गुलाब की खेती करना (उपजाऊ बनाना), नये भूमि सुधारों के प्रति किसानों की मनोवृत्ति, नये पुराने मूल्यों के संघर्ष जमींदारों के शोषण की समस्या, छुआछूत, ऊँच-नीच-प्रसूत समस्या, भ्रष्टाचार, आर्थिक विपन्नता आदि जीवन की ज्वलंत और यथार्थ समस्याओं को इस परिकथा में अत्यंत सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है।(20)

'मैला आंचल' के प्रशांत की अपेक्षा जित्तन ग्रामीण जीवन से अधिक संपृक्त है इसलिए 'परती परिकथा' में आंचलिक जीवन की उष्मा और संघर्षों की सच्चाई अधिक प्रखर है। परानपुर टूट रहा है भीतर के जनजीवन को बाहरी आघात संक्रमित कर रहे है। रेणु ने यहाँ के लोकरिवाज, लोकसंस्कृति, लोकगीतों के माध्यम से कथ्य में जान लाने की कोशिश की है। उन निवासियों के रहन-सहन वेषभूषा, खान-पान, पशु-पक्षी उनसे सम्बन्धित घटनाओं, तथा प्राकृतिक परिपार्श्व का निरुपण यथार्थ की आधारभूमिपर किया है।

रेणु का एक अन्य उपन्यास 'जुलूस' में समसामयिक गतिविधियों का सुन्दर चित्रण हुआ है। यह उपन्यास 1947 के विभाजन के परिणाम स्वरुप विस्थापित हुए जिला मैमन सिंह के गाँव जुमापुर के हिन्दुओं की संघर्ष गाथा है। जिन्हें बिहार के पूर्णिया जिले में बसाया जाता है, इसे विस्थापित बंगाली 'नौबीन नगर' कहते

है। पड़ौसी गोड़ियार गाँव के बिहारी लोग इसे 'पाकिस्तानी टोला' कहते हैं। रेणु इस बिन्दु पर खड़े होकर देख रहे हैं, जहाँ से सारा जीवन बेईमान लगता है। यह भारतीय जीवन अर्थहीन जुलूस है। इसके कोलाहल में अपना नारा भी सुनाई नहीं पड़ता। उखड़े हुए समाज को भारतीय ग्रामीण जीवन-मूल्यों में अर्थशास्त्र की वज़ह से आये हुए परिवर्तन को इस उपन्यास में जयराम सिंह के माध्यम से वाणी मिली है। बिजनेस और मिल चलानेवालों को खेती से अब कोई मतलब नहीं रहा उनके हल आसमान में चलते है।

रेणु का चौथा आंचलिक उपन्यास 'दीर्घतपा' (सन 63) है। इस उपन्यास में तपी हुई नारी की कथा है जो देश की आजादी के नाम पर सब कुछ सह गयी और बाँके की कायरता का फल बहुत दिनों तक भोगती रहीं। स्वतंत्रता संग्राम की उथल-पुथल और सन् 1947 में देश-विभाजन के बाद जो चारित्रिक गिरावट, अवसरवादिता, सुरा-सुन्दरी के प्रति आकर्षण, भोगवादी आचरण, आदि कुप्रवृत्तियाँ आयी है उन्हीं को रेणु ने बांकीपुर के 'वीमेन्स वेलफेयर बोर्ड' संस्था के चित्रण द्वारा अभिव्यक्त किया है।

'कितने चौराहे' रेणु का पाँचवा उपन्यास है इसमें रेणु ने मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करनेवाले जीवन्त राष्ट्र की गाथा प्रस्तुत की है। कुछ स्वार्थी तत्व हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के नाम पर लूट-खसोट चाहते रहे हैं किंतु नवनिर्मित राष्ट्र ज्वलंत समस्याओं का सामना करता हुआ राह में आयी बाधाओं का निवारण करता आगे बढ़ता गया है। कितने ही चौराहों को पार करते हुए वह अपने गन्तव्य तक पहुँचा है।

अन्तिम उपन्यास 'पलटू बाबू रोड' में रेणु ने आज के राजनीतिज्ञों तथा उनकी कुटिल बुद्धि को रुपायित किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति तथा विभाजन के पश्चात् विस्थापितों की समस्या सामने आयी जिन परिवारों का स्खलन हुआ, उन परिवारों ने वित्तीय दशा सुधारने के लिए नैतिकता की कुर्बानी दी। उपन्यास के आरम्भ में लेखक ने कहा है- "आखिर पलटू बाबू रोड जाती कहाँ है यहीं जानने को सारा समाज परेशान है, तात्पर्य यह है कि आज व्यावसायिक सामाजिकता कहाँ जा रही है? उसका अन्त कहाँ होगा? आज के प्रबुद्ध आदमी जानना चाहते है।"(21)

रेणु का रचनाकाल दरअसल स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का काल खण्ड है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गावों के बदलते स्वरुप की आशा थी, पाखण्ड, रुढ़ि, अन्धविश्वास आदि का अन्त होने की उम्मीद थी। लेकिन सरकारी स्तर पर योजनायें बनती गयी, गावों की स्थिति बद से बदतर होती गयी इन्हीं गावों का यथार्थ धरातल पर वर्णन रेणु ने किया है, जिसमें 'मैला आंचल' तथा 'परती परिकथा' दोनो

उपन्यास आंचलिक उपन्यास की परम्परा में बहुत ही महत्वपूर्ण साबित हुए हैं।

यथार्थवादी लेखक रांघेय राघव के सृजन का सर्वश्रेष्ठ रुप उनके ग्रामीणांचल पर लिखे गये समाजवादी उपन्यासों में मिलता है। इन उपन्यासों में उन्होंने ग्रामीण यथार्थ को बड़ी सूक्ष्मता और विशुद्धता से चित्रित किया है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय जीवन का यथार्थ जटिल एवं बहुआयामी रहा है। उन्होंने राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक मूल्यों-मान्यताओं में उलट-पुलट सम्बन्धों एवं स्वार्थो की टकराहट, औद्योगिककरण एवं नगरीकरण की उपलब्धियों के फलस्वरुप गाँवों का जो नया रुप निर्मित हुआ उसको नजीदीक से देखते हुए व्यक्त किया। 'कब तक पुकारूं' उपन्यास में उन्होंने राजस्थान और ब्रज के सीमांत पर बसे 'वैर' नामक ग्राम के करनटों के जीवन की समस्याओं को चित्रित किया है। इस उपन्यास में स्वतंत्रता के बाद भी इनका शोषण जारी है इस तथ्य को उजागर किया, करनटों के सामाजिक, आर्थिक शोषण, अभिजात्य वर्ग की लोभी मान्यताएँ नटनियों के साथ बलात्कार यौन-सम्बन्ध से उपजी बीमारियाँ, करनट समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, रीति-रिवाज, विवाह, स्वच्छंद यौनाचार, लोकगीत, लोकभाषा आदि को वर्तमान सामाजिक एवं अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है। सजीव भाषा इस उपन्यास की आंचलिकता की सशक्त अभिव्यक्ति है। खड़ीबोली में ब्रजभाषा का पुट लिए प्रयुक्त की गयी भाषा उनके रीतिरिवाजो, लोकगीतों को सजीव बनाती है। बीच-बीच में स्थानीय कहावतों, मुहावरों एवं अपशब्दों का प्रयोग नटों के चरित्र तथा परिवेश में जान डालता है। विस्तार तथा पक्षधरता का आरोप लगाये जानेपर भी यह उपन्यास आंचलिकता की कड़ी में अनूठा एवं सजीव प्रयोग है।

स्वानुभूत ग्रामीण अंचलों के भारतीय समाज, सामाजिक, आर्थिक एवं सामंतीय शोषण उस जीवन की समस्त विद्रुपताओं को शिवप्रसाद सिंह ने कथासाहित्य के माध्यम से बड़ी सूझ-बूझ के साथ अंजाम दिया है। 'नन्हों', 'दादी माँ', 'कर्मनाशा की हार', 'खैरा पीपल कभी न डोले', 'बेहया' आदि कहानियाँ, दुखिया नारी की समस्यायें, अंचलों की पारिवारिक समस्यायें सामाजिक जड़ता, बन्धन रुढ़ियाँ जातिप्रथा वर्गव्यवस्था आदि को व्यक्त करती है। आंचलिक कहानियों में भौगोलिक परिवेश से हटकर गाँव के निम्न तथा उच्चवर्ग के चरित्रों को स्थापित कर वहाँ की सामाजिक रुढ़ियों, परम्पराओं, अंधविश्वासों को बखूबी व्यक्त किया है, जिसमें भाषा का योगदान महत्वपूर्ण है।

'अलग अलग वैतरणी' में प्रगतिशील सामाजिक शक्तियों का उदय एवं विद्रोह अंकित किया है। आर्थिक और सामाजिक शोषण के प्रतीक जमींदार तथा सामन्त अकिंचनता तथा अभावग्रस्तता, बेकारी और अभावग्रस्तता के कारण नगर की ओर आकर्षित युवक, जमींदारी उन्मूलन, ग्राम-पंचायत का चुनाव संघर्ष, इससे

उत्पन्न वैमनस्य, वर्ग-संघर्ष, समाजोन्नती के लिए ग्रमीण स्कूलों का निर्माण एवं वहाँ की निराशाजनक स्थिति आदि विविध पहलुओं को उद्घाटित करते हुए ग्रामीण जीवन की यथार्थ स्थितियाँ, 'अलग अलग वैतरणी' में सम्पूर्णता के साथ व्यक्त हुई है। गंदी राजनीति ने स्वातंत्र्योत्तर गावों को सर्वाधिक आहत किया है। इस उपन्यास में दो युगों की तुलनात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करते है। स्वतंत्रतापूर्व एवं उसके बाद नवपरिवर्तित वर्तमान दोनों स्थितियों के सापेक्षिक यथार्थ में लेखक का संतुलन सराहनीय है। इसप्रकार यह उपन्यास सामाजिक रुढ़ियों, परम्पराओं, अंधविश्वासों, मूर्खताओं के जाल में जकड़ा हुआ है, इन सामाजिक विकृतियों का सामना न कर पाने से समाज उनसे दूर भाग जाता है। उनका भी अपना यथार्थ है। आंचलिक कथासाहित्य की परंपरा में कहानियों एवं उपन्यासों के माध्यम से गाँवों में फैली सामाजिक विकृतियों के साथ-साथ उस क्षेत्रीय जीवन के यथार्थ को उजागर करने में शिवप्रसाद सिंह का योगदान सराहनीय है।

नाटककार, उपन्यासकार, कवि उदयशंकर भट्ट का आंचलिक उपन्यासकारों में विशिष्ट स्थान है। उनके 'सागर लहरें और मनुष्य' तथा 'लोक परलोक' दोनों आंचलिक उपन्यास है। सन् 1955 में प्रकाशित 'सागर लहरें और मनुष्य' में बम्बई के पश्चिमी तट के मछुआरों की बस्ती 'बरसोवा' के जीवन का चित्रण है। जिसकी कथा सागर, लहरों तथा मनुष्यों का विस्तार लिए हुए है। इस उपन्यास में लेखक ने समुद्र तथा लहरों को वाणी दी है। 'बरसोवा' के प्राकृतिक वर्णन, पूनो की रात से उपन्यास का प्रारंभ होता है, मच्छीमारों के अर्थविकसित परम्परावादी जीवन की एक झाँकी है इसमें कथानक पूर्णरुपेण अंचल को प्रस्तुत नहीं करता बल्कि बीच-बीच में वह महानगर की ओर दौड़ पड़ता है। रामदरश मिश्र के अनुसार -"कथानक कुछ देर के लिए बाहर निकलता सा लगता है किन्तु अपनो को प्रभावित करनेवाली बाहरी संगतियों, विसंगतियों, शक्तियों सीमाओं को समेटकर पुनः अपने अंचल में आ जाता है। किंतु सागर लहरें और मनुष्य में ऐसा नहीं हुआ है ऐसा लगता है दोनों क्षेत्र लगभग समानांतर चलते है।"[(22)]

शुरुवाती दौर में प्राकृतिक वर्णन, पुनों की रात सामुद्रिक वातावरण की गहनता, तूफान का मार्मिक वर्णन मछलियों को पकड़कर सुखाने, इकट्ठा करने, बेचने जाने समुद्र के साथ आत्मीय सम्बन्ध आदि वर्णन इस उपन्यास के बारे में जिज्ञासा उत्पन्न करता है, लेकिन बाद में रत्ना का चरित्र हावी होने लगता है, यह उपन्यास ग्रामीण संस्कृति संघर्ष एवं आपदाओं में जीनेवाली रत्ना की कहानी बनकर रह जाता है। इसतरह इस उपन्यास की आंचलिकता पर प्रश्न-चिह्न जरुर लगाया जा सकता है। धनंजय वर्मा के अनुसार, "उपन्यास का दो-तिहाई, एक विशेष परिवेश को लेकर चलता है और इसी सीमित अर्थ में वह आंचलिक कहा

जा सके तो कहा जाय, अन्यथा उसका मूलकथ्य और आशय तो कहीं भी उसे आंचलिकता की सीमा में नही बांधता।''(23)

उनका 'लोक परलोक' उपन्यास आंचलिकता का निर्वाह करता है। तीर्थग्राम पद्मपुरी अंचल की प्रमुख समस्याओं को लेकर लिखा गया है। गाँव की शोचनीय दशा तथा चमेली के माध्यम से नारी दुर्दशा तथा प्रसंगवश चोरी-ठगनी की अवस्था और अंत में अपना सर्वस्व खोनेपर यह अहसास होता है कि वह वेश्यावृत्ति ही कर रही है। तब उसमें परिवर्तन आता है। वह पश्चात्ताप एवं प्रायश्चित की अग्नि में जलकर अपने कलुष को धो डालती है। इस प्रकार पश्चिमी सभ्यता से उत्पन्न सामाजिक समस्यायें, ग्रामीण जीवन की विकृतियाँ, भ्रष्टाचार, धार्मिक आडम्बर, लोभीवृत्ति पाखण्ड आदि का चित्रण भट्टजी ने मानवतावादी दृष्टिकोण से किया है। ब्रज एवं सामान्य हिन्दी के भाषाप्रयोग से इस अंचल को पेश करने में प्रामाणिकता झलकती है।

शैलेश मटियानी हिमालय की चोटियों में बसे कूर्मांचल को अपने कथासाहित्य का कथ्य बनाते है। उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ है - 'प्रेतमुक्ति', 'माता', 'हारा हुआ', 'हत्यारे' आदि। 'प्रेतमुक्ति' पर्वतीय अंचल के किसनराय एवं पाण्डेजी के माध्यम से जातिभेदों के कड़े बन्धनों को स्पष्ट करते है। समाज मे शूद्रों की स्थिति पशु के समान है। उच्च वर्ण के लोगों को छूना भी उसके लिए पाप है। तभी तो एक खेत जोतने से निबटकर किसनराय सुयाल के किनारे कपड़े धो रहा था। लंगोटी पहनकर शेष कपड़े धोने डाल रखे थे। यजमानी से लौटते हुए पाण्डेजी आये थे, तो उनके नदी पार करते समय पानी से अलग हट गया था कि उसके पाँवों का छुआ जल उन्हें न लगे। 'माता' कहानी पर्वतीय अंचलों में पुरुषों के बहुविवाह के लिए दी गई मान्यता उन पुरुषों से प्रताड़ित नारी, उसका आत्महत्या करना अथवा सन्यासिनी बनना फिर भी संसार की आशा आकांक्षायें, बच्चे की लालसा मन में होने के कारण पुनर्विवाह करना, भगवती माता से अपने बच्चे की माँ बनना जो समाज के लिए अनाचार है उस कारण नारी को प्राताड़ित करना आदि को चित्रित करती है।

उनका 'हौलदार' (सन् 1960) उपन्यास भी कुमायूँ की भूमि पर बसा हुआ है। लेखकीय वक्तव्य से कथावस्तु के लिए चुने गये परिवेश का संकेत मिलता है- 'अलमोड़ा की आंचलिक पृष्ठभूमि को लेकर लिखा गया मेरा पहला प्रकाशित उपन्यास है।'(24) इस उपन्यास में ग्राम्यांचल में रहनेवाले निम्नवर्ग के लोगों की दशा स्त्रियों का गरीबी की वजह से गन्दा रहना, मजदूरी करनेपर भी आत्मसम्मान की भावना, अंचल में व्याप्त देवताओं के विश्वास, देवताओं के समक्ष की जानेवाली मनौतियाँ लोकदेवताओं द्वारा दिए गये फल, आदि का वर्णन मिलता है। डूंगर सिंह

अलमोड़ा के घौलछीनो गांव का निवासी जिसका हवलदार बनने का सुनहरा सपना है, ट्रेनिंग लेते समय अपनी ही गोली से लँगड़ा होकर छः मास में गाँव वापस आ जाता है। डूंगरसिंह अपनी कुण्ठाओं से ग्रसित है फिर भी झूठे वृत्तान्तों से लोगों के मन में श्रद्धा भावना पैदा करने की कोशिश करता है। लेखक ने खेतों, पोखरों, जलस्त्रोतों आदि प्राकृतिक दृश्यों तथा रीतिरिवाज लोकरूढ़ी, परम्पराओं मान्यताओं से इस उपन्यास में आंचलिकता लाने का प्रयास किया है। कुमायूँ के अत्यन्त सुन्दर शब्द-चित्र भाषा में उतारकर हौलदार तथा अन्य उपन्यासों में सजीवता लाने की कोशिश की गई है। फिर भी कहा जा सकता है कि ''शैलेश मटियानी को भाषा के आंचलिक प्रयोग में जो सफलता मिली है वह उल्लेखनीय है।''(25)

देवेन्द्र सत्यार्थी का लोकसंस्कृति तथा लोकजीवन के प्रति स्वाभाविक प्रेम रहा है। लोकगीतों की ताजगी सजीवता की ओर सदा लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। उनके पास लोकगीतों का भंडार पाया जाता है। काकासाहेब कालेलकर के वक्तव्यानुसार- ''श्री देवेन्द्र सत्यार्थी भारत के लोकगीतों के अनन्य उपासक रहे है। उनकी प्रवृत्ति और उनकी निष्ठा की ओर महात्माजी ने मेरा ध्यान खींचा था। अपनी समृद्ध दाढ़ी के साथ फकीराना ढंग से उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया है और भारत के हर प्रान्त के लोकगीत उन्होंने इकट्ठे किये हैं। उनका यह संग्रह एक सागर जैसा है।''(26)

सन् 1956 में प्रकाशित 'ब्रह्मपुत्र' में उसके किनारे बसे असम प्रदेश और विशेषरुप से दिसांगमुख तथा माझुली के भौगोलिक परिवेश का चित्रण किया है। दिसांगमुख पर ''बार-बार ब्रह्मपुत्र को क्रोध आया और उसे बार-बार पीछे हटना पड़ा। वह बार-बार आबाद हुआ और उतनी ही बार बरबाद हुआ। वह देवता ब्रह्मपुत्र बहुत दयावान भी है और बहुत क्रोधी भी। शिवसागर यहाँ से 17 मील है.... ब्रह्मपुत्र हमारी माटी काटकर ले जाती है तो हम कुछ बोल भी तो नहीं सकते। किनारे से दूसरा किनारा नजर नहीं आता। बीच-बीच में रेत और माटी के द्वीप बनते-मिटते रहते हैं। छोटे द्वीप को 'सपारी' कहते है बड़े को 'माझुली'।''(27) आदि प्राकृतिक चित्रों के साथ-साथ लेखक वहाँ की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं को चित्रित करता है। उनकी अदम्य जिजीविषा को फलस्वरुप ही अंग्रेजों के भयानक दमन तथा बाढ़ भूकम्प से ध्वस्त हो जानेपर भी वह फिर से सृजन करते है।

भाषिक संरचना की दृष्टि से यह उपन्यास अनांचलिक है। पात्रों की भाषा सपाट और बोलचाल की हिन्दी है। कहीं भी दिसांगमुख की आंचलिक भाषा, शब्दों मुहावरों का प्रयोग नहीं हुआ है। लोकगीत भी साधारण हिन्दी के प्रतीत होते है। कहीं-कहीं दो-चार लोकोक्तियों जैसे ब्रह्मपुत्र जानता है कि चप्पू कितना

गहरा जाता है, अपने गाँव में मुरगे की तरह बांगो, ससुराल में मुरगी की तरह कड़कड़ाओ आदि का प्रयोग मिलता हैं।

रामदरश मिश्र ने आंचलिक क्षेत्रों की समस्याओं को उजागर करने तथा शोषितों की व्यथा को पाठक तक पहुँचाने का प्रयास अपनी सच्ची अनुभूति से किया है उनके लेखन की आधारभूमि देवरिया जनपद है जो तराई का इलाका है, जहाँ मिट्टी में नमी है, जहाँ गरीबी के कारण आँखों में भी बराबर पानी भरा रहता है। निर्मलकुमारी वार्ष्णेय के अनुसार - ''मिट्टी से लेखक की आंखो तक फैले हुए जल की भाषा को रामदरश मिश्र ने व्यक्तिगत अनुभव और जनपदीय परिचय के रुप में जाना है। उनके उपन्यासों में प्राकृतिक और मानवीय जलबिम्बों की बड़ी आवृत्ति है, शायद इसीलिए जाने अनजाने उनके उपन्यास जल के प्रतीकों से बंधे है।''[28] उनकी 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' और 'सूखता हुआ तालाब' तीनों कृतियाँ जल से ही संबंधित है।

रामदरश मिश्र का पहला उपन्यास 'पानी के प्राचीर' पर मैला आंचल का प्रभाव कहीं-कहीं पाया जाता है। 'पांड्येय पुरवा' ग्राम मेरीगंज की प्रतिस्पर्धा में खड़ा हो जाता है।'[29] इसके बावजूद पूर्वांचल की कथा-व्यथा को, पांड्येयपुर गांव के छोटे-बडे, अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, ठग-मुकदमेबाज मास्टर, खेतिहर, प्रगतिशील तमाम तरह के लोगों की जमात के संघर्ष को, आपस के टकराव को, यह उपन्यास व्यक्त करता है। लोकमान्यताओं, लोकगीतों, परम्पराओं, अंधविश्वासों का अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। शोषण के तहत् पिसी हुई जनता में भी आशा की किरण दिखाई देती है नीरु, सन्ध्या और मीलचन्द नई चेतना के प्रतीक बनकर आते है तथा इस आशावादी संदेश के साथ उपन्यास समाप्त होता है -''पानी की दीवारें टूटेंगी, बाहर से नई रोशनी आयेगी खेतों में नये सपने खिलेंगे.....''[30]

अन्य दो उपन्यास भी ग्रामीणांचल पर लिखे गये है। 'जल टूटता हुआ' नामक उपन्यास मानव विरोधी व्यवस्था तथा सामंतीय व्यवस्था के विरोध में मानवीय हितों की व्यवस्था को लाने का संघर्ष प्रस्तुत करता है। तो 'सूखता हुआ तालाब' ग्रामीण जीवन के बदलते स्वरुप को चित्रित करता है।[31] बदलाव का प्रतीक रामी तालाब है। सूखते हुए तालाब का प्रतीक सामाजिक जीवन के विनाश और व्यक्तिवादी मनोवृत्ति के विकास का द्योतक है। तीनों उपन्यासों में लोकभाषा का प्रयोग मिलता है यद्यपि साहित्यिक हिन्दी का प्रयोग किया गया है लेकिन 'पानी के प्राचीर' में 'पाकड़ में टूसे आ गये हैं जो कहीं कहीं लाल-लाल कोमल हथेलियों की तरह पसर गयें है आदि आंचलिक शब्दों का प्रयोग भाषा को सजीवता प्रदान करता है।

राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित' का स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास कारों में प्रमुख स्थान है। 'सूरज किरण की छांव' तथा 'जंगल के फूल' आंचलिक उपन्यासों की परम्परा में महत्वपूर्ण है। बस्तर के जनजीवन पर लिखे गये उपन्यासों में ग्रामीण अंचल की संस्कृति वहाँ के लोकाचार, लोकसंस्कृति, रीतिरिवाज, लोककथाएँ, लोकोत्सव आदि का वर्णन किया है। 'जंगल के फूल' में गोड़ जाति के लोगों में अग्रेंजो के शोषण एवं अत्याचार के प्रति विद्रोह के भाव पाये जाते है। लाल मिर्च एवं आम की डाल विद्रोह व युद्ध का प्रतीक है जो घर-घर में भेजकर शोषण के विरुद्ध खड़े होने का ऐलान करते हैं। राजेन्द्र अवस्थी ने गोड़ जाति के सामाजिक, सांस्कृतिक यथार्थ को जीवित करने के लिए लोकोत्सवों, लोकगीतों एवं लोकनृत्यों का भी आश्रय लिया है।

मोर माया के कारण गोरी।
सब तो जरथें बैरी ऽ ओ हो हायरे हाय

स्त्रियों ने इसका उत्तर दिया-

हे हे हाय रे हाय, हाय रे हाय
कारी पीरी चेरिया पहिने, बीच में पहने ककना
दिन भर नजर में झुलस, रात में आवे सपना[32]

आदि लोकगीतों के माध्यम से सामूहिक रुप से मनाए जानेवाले पर्वो द्वारा भाईचारे की भावना को वृद्धि मिली है। तथा अनुभूति की गहराई के कारण भाषा का सौन्दर्य एवं काव्यत्मकता अत्यंत आकर्षक हो उठती है।

स्वातंत्र्योत्तर लेखन परम्परा को भैरव प्रसाद गुप्त ने अपनी ग्रामीण एवं समाजवादी चेतना के सम्पूर्ण संवेदनशील अंगों के साथ निरन्तर गतिमान रखा है। 'गंगा मैया' में किसान और जमींदारों का संघर्ष स्थल उत्तर प्रदेश का पूर्वांचल है। घाघरा नदी की कछारी भूमि वर्षों से खाली पड़ी है। वहाँ नदी की जलधारा के बार-बार घट-बढ़ जाने से खेती होना असंभव कार्य है। गंगा की इस कछार भूमिपर मटरु जैसे किसान मेहनत से खेती करते है तथा अच्छी फसल आने पर जमींदार अपनी अमलदारी का अवैध अधिकार जताकर मुफ्त लगान लेने तथा उनको फाँसने का षड्यंत्र रचाता है। श्रमजीवी किसान इसका संगठित होकर विरोध करते है। इस उपन्यास में उन्होंने सामंती व्यवस्था की थोथी मान्यताओं और परंपराओं में जकड़े स्त्री-पुरुषों के बेबस चित्र खींचे है।

अमृतलाल नागर की दो प्रतिनिधि कृतियाँ 'सेठ बांकेलाल' एवं 'बूँद और समुद्र' पायी जाती है। 'बूँद और समुद्र' में लखनऊ के मुहल्ले के चौक को पीठिका बनाकर व्यक्ति और समाज के निरन्तर बदलते हुये सम्बन्ध, स्थितियाँ, और यथार्थ का गहरा अन्तर्विरोध पाया जाता है। नागर ने भूमिका में स्वयं लिखा

है कि - इस उपन्यास में मैंने अपना और आपका, अपने देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का, गुण-दोष भरा चित्र ज्यों का त्यों आँकने का यथामति, यथासाध्य प्रयत्न किया है, अपने और आपके चरित्रों से ही इन पात्रों को गढ़ा है.....उपन्यास के क्षेत्र के रुप में मैंने लखनऊ और उसमें भी खास तौर पर चौक को ही उठाया है। एक प्रकार से उनके उपन्यास प्रकृतवादी यथार्थवाद के उपन्यास माने जायेंगे।

उनके कथन से यह भी साफ जाहिर होता है कि उन्होंने विशेष क्षेत्रीय भौगोलिक संस्कृति का कथाक्षेत्र नहीं चुना है ना हीं यह वास्तविक कथाक्षेत्र है क्योंकि स्वयं वे कहते है कि ...... 'लखनऊ के वास्तविक चौक में आपको ढूँढे नहीं मिलेगी।.....' इसप्रकार आंचलिक उपन्यास में जो क्षेत्रीय सीमाबद्धता एवं प्रत्यक्ष एवं घनिष्ठ आत्मीयता का आग्रह रहता है, वह 'बूँद और समुद्र' उपन्यास पर लागू नहीं होता लेकिन भाषा, आंचलिकता का निर्माण करती है। नगीना जैन ने भाषा तत्व के आधारपर इसे आंचलिक मानने से इन्कार करते हुए कहा है कि "इस अर्थ में आलोच्य उपन्यास आंचलिक है तो हमें सबसे पहले प्रेमचन्द में आंचलिकता स्वीकार लेनी चाहिए।"(33)

जगदीश चन्दर ने 'धरती धन न अपना' के माध्यम से उपन्यास क्षेत्र में अवतरित हुये। पंजाब प्रान्त के घोडेवाहा गाँव के ग्रामीण जीवन से जुड़ी हुई कथा है जिसका मुख्य पात्र कालीदास कानपुर की मिल में नौकरी करके कुछ पैसा कमाकर लौटता है तो वह पाता है कि तमाम विकास के बावजूद भी गाँव के सामाजिक सम्बन्धों में कोई बदलाव नहीं आया है। चमार टोली, जमींदारों के अत्याचार, जमीन सम्बन्धी झगडे, सामन्ती उत्पीडन, शोषण के खिलाफ भूदासों का आन्दोलन, जाँतपात छुआछूत सब पूर्ववत चल रहा हैं। मजदूर का कोई अस्तित्व नहीं है गांव में प्रतिष्ठा, मानसम्मान पाने के लिए खूद की जमीन होनी चाहिए। इसमें चित्रित चमार एवं हरिजनों के मुहल्ले का परिवेश मन को कम्पित कर देता है। परिवेश के साथ साथ मजदूर की शोषित अवस्था को व्यक्त करना इस उपन्यास का उद्देश है। श्री बंशीधर के शब्दो में- "इसमें सन्देह नहीं की पंजाब के ग्रामयथार्थ का साक्षात्कार करानेवाली एक ईमानदार कोशिश है। इसके शब्द शब्द से किसी मानवता की वेदना के स्वर सुनाई दे रहे है, जो हमें गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिए बाध्य करते हैं।"(34)

मजदूरों की उत्पीड़न की स्थिति, चौधरीद्वारा अपनी साख बनाने हेतु चमादडी में आकर बेबात मारपीट की असह्य अवस्था से, उनके यथार्थ से रुबरु होते है। शिवकुमार मिश्र की दृष्टि से - "सच्ची यथार्थ दृष्टि वस्तुनिष्ठ होती है परन्तु वह मात्र संकलनात्मक नहीं होती..... यथार्थवादी लेखक सत्य को ब्यौरेवार प्रस्तुत करता है। परन्तु उसे मात्र फोटोग्राफिक नहीं बना देता... (वह) सारी घटनाओं

तथा पात्रों को सामाजिक जीवन से प्राप्त अपने यथार्थ अनुभवों की खराद पर चढ़ाता है, उन्हें तराशता है, नुकीली बनाता है और अपनी कृति के अन्तर्गत उनकी कलात्मक नियोजना करता है।''[35]

घोड़ेवाहा गांव का सदियों से प्रताड़ित साधनहीन परास्त अपढ़ 'चमार' और उसकी जाति के जीवन यथार्थ को लेखक ने व्यक्त किया है जिसमें कुत्ते से भी बदतर जिंदगी जीने के लिए वो लोग बाध्य है। लेखक कहता है कि ''यहाँ चौधरी के लिए चमार और कुत्ते में कोई फर्क नहीं है।''[36] 'धरती धन न अपना' उपन्यास में आधुनिकता के पुराने मापदण्डो को तोड़ा गया है तथा नए संदर्भों की तलाश ग्रामीणांचल में ही की है। भाषा, लोकगीत, भौतिक एवं प्राकृतिक परिवेश, लोकोत्सवों के अंकन से आंचलिकता की परम्परा में यह उपन्यास एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

वर्तमान दौर में राही मासूम रजा के महत्वपूर्ण आंचलिक उपन्यास कार हैं। जिनके 'आधा गाँव' में ग्रामीण जीवन अपनी पूरी सच्चाई, तीव्रता के साथ सामने आता है जो वास्तव में 'आधा गाँव' गाजीपुर की तलाश के परिप्रेक्ष्य में एक सहीं गाँव गंगोली और वहाँ से गुजरनेवाले समय की कथा है। लेखक की जन्मभूमि गंगोली के मुग्धकारी संस्मरण चित्र, सहज भाव से तलाशी गई देशकाल की जीती-जागती तस्वीरें, सामूहिक जीवन, गम्भीर उतार-चढ़ाव, गांव की टूटती-बिखरती जिन्दगी की अन्तर्कथा से उपन्यास परिपूर्ण है।[37] 'आधा गाँव' तथा साम्प्रदायिकता की समस्या पर लिखा 'ओस की बूँद' दोनों उपन्यासों में राही ने समाज की विद्रुपताओं को दर्शाते हुए दिशाहीन मानव को दिशा देने का निरन्तर प्रयास किया है।

ग्रामीण जीवन की विद्रुपता, भोलापन तथा अटपटी जिन्दगी का लेखा-जोखा 'रागदरबारी' श्रीलाल शुक्ल ने प्रस्तुत किया है। आजाद भारत की राजनीति उसके छक्के-पंजे इस दौर में चले विकास कार्य, योजनायें, सरकार और उसकी नौकरशाही आदि को रागदरबारी में चित्रित किया है- ''दारोगा जी भुनभुनाते हुए किसी को गाली देने लगे। थोड़ी देर बाद इसका मतलब यह निकला कि काम के मारे नाक में दम हैं। इतना काम है कि अपराधों की जाँच नहीं हो पाती। मुकदमों का चालान नहीं हो पाता। अदालतों में गवाही नहीं हो पाती। इतना काम है कि सारा काम ठप्प पड़ा है।''[38] इस उपन्यास में कई प्रसंग व्यंग्यात्मक प्रस्तुति पैदा करते है। मूलतः रागदरबारी व्यंग्यप्रधान उपन्यास है जो हमारे समसामायिक सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक परिप्रेक्ष्य की विद्रुपता को विभिन्न आयामों में उजागर करता है।

ए.पी. त्रिपाठी के अनुसार ''रागदरबारी औपन्यासिक परम्परा की हदों

को तोड़नी हुई अपनी शिल्पगत प्रविधि की 'टोन' में व्यंग्यात्मकता के नयेपन की नोंक पर सर्जनात्मकता की नई सरहदों का स्पर्श करती है जो इस विधा के संप्रेषण की कलात्मकता में एक नया मोड़ है जिससे व्यंग्या के सामर्थ्य की पहचान और गहरी होती है।''(39) पर यह भी एक अतिशयोक्ति है कारण 'रागदरबारी' एक कस्बे-विशेष की परिवर्तनशील मानसिकता को, निम्नवर्ग तथा मध्यवर्गीय अवसरवादिता को भी रुपायित करता है। इसके व्यंग्य राजनीतिक व्यवस्था के प्रति भी है और पात्रो के कॅरी केचर पर भी।

विवेकीराय का 'लोकऋण'(78) बिहार और उत्तर प्रदेश के पिछडे क्षेत्रों के गाँवों का चित्रण है। त्रिभुवन, गिरीश एवं धरमू तीनों गाँव की मिट्टी तथा संयुक्त परिवारों में पले है। भारत में स्वतंत्रता के बाद आधुनिकीकरण का प्रभाव ग्रामजीवन पर भी पड़ा है जिससे गाँव औद्योगिक विकास एवं वैज्ञानिक प्रगति के कारण शहर में तबदिल हो रहे है। ''ग्रामपंचायत का पुराना रुप विनष्ट हो गया है। सामूहिक जीवन की सहज ईप्सा को वैयक्तिक अधिकार तिकड़म बाजी और स्वार्थलिप्सा स्थानांतरीत कर रही है।''(40) विवेकीराय ग्रामीण परिवेश से जुड़े हुये है। इसलिए स्थानीय जनजीवन की संस्कृति को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। परंपरागत धार्मिक उत्सवों एवं पर्वों के क्षीण उत्साह को भी बदलते स्वरुप के साथ रेखांकित किया है।

ग्रामीण जीवन में पैठकर साहित्य सृष्टि करनेवाले रचनाकार उस संस्कृति की चासनी में पगे ग्रामीण शब्दों तथा भाषा का प्रयोग बड़ी कुशलता से करता है। ''लोकऋण की भाषा यथार्थ से सीधी टकराहट के फलस्वरुप वैविध्यपूर्ण सहज और संभावनापूर्ण है। इसमें कथन को गढ़ने की नयी भंगिमा और चेष्टा भले ही न हो अनुभव की सहजता प्राय: विद्यमान है। निम्नलिखित पंक्ति में लोकजीवन के अनुभव की सचाई बहुत साफ है- 'आँच की पीड़ा वह चिलम जाबती है जिस पर अंगारे बोझ दिये जाते है।' भाषा में स्थानीय रंग खूब हैं, लेकिन वह स्थानीय व्यंजनाओं से उस तरह बोझिल नहीं है जिस तरह आंचलिक उपन्यासों की भाषा अक्सर हो जाती है। उसे पात्रों के अनुसार व्यक्तिगत वैशिष्ट्य भी दिया गया है।''(41)

फणीश्वरनाथ रेणु, रांगेय राघव, श्रीलाल शुक्ल, विवेकी राय आदि की परंपरा में स्त्री लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का नाम भी उल्लेखनीय है। जनजातियों पर लिखे गये उपन्यासों में मैत्रेयी पुष्पा का विशिष्ट स्थान है। उसने राजस्थान और मध्य प्रदेश की जयराम पेशा जाति 'कबूतरा' का चुनाव कथ्य रुप में किया है। रामशरण जोशी के अनुसार ''अपराधी जनजातियाँ या मैदानी आदिवासी ऐसा मानवता समूह है जो कि विकसित समाज के घूरों पर बसी हुई है, इन्हें अरण्य आदिवासी समाज और कृषक शहरी समाजों के बीच कहीं रखा जा सकता है मोटे

तौर पर मैदानी व अपराधी जनजातियाँ न तो कभी अरण्य आदिवासी समाज की धारा में शामिल हो सकीं, और न ही सभ्य देहाती समाज ने इन्हें अपने एक हिस्से के रुप में स्वीकार किया यदि गैर-समाज शास्त्रीय शब्दों में कहे तो इनकी नियति उस 'त्रिशंकु समाज' की है जो अवांछित बने रहकर गुजर-बसर करते है ऐसे ही अवांछित लोगों की गाथा है 'अल्मा कबूतरी'।''(42)

खानाबदोश जातियों के जनजीवन पर लिखा हुआ यह उपन्यास आंचलिक परम्परा में स्वीकार किया जा सकता है। इस जनजाति का कोई गाँव नहीं होता बल्कि डेरे भर होते हैं। इसलिये भौगोलिक सीमाओं का अंकन नहीं किया जा सकता। लेकिन अब समय के बदलाव के अनुसार यह जनजाति भी एक निश्चित जगह पर रहने के अभ्यंस्त हो गयी है। उदाहरणत: 'मंडरोरा' खुर्द की वोटर लिस्ट में भी इनके नाम जुड़ने लगे है तथा मंसाराम वोट पाने के उद्देश्य से इनकी बस्ती में आना-जाना शुरु करते है। कदमबाई की खुबसूरती में दिल दे बैठे मंसाराम षड्यंत्र रचाकर जंगलिया से मिलने फसल भरे खेत में आयी कदमबाई के साथ अंधेरे ने में संभोग करता हैं। वह मंसाराम से घृणा करते हुए भी उसके गर्भ को जन्म देती है। उसका लड़का 'राणा' पढ़लिखकर कुछ बनना चाहता है। राणा को पढ़ने लिखने के लिए स्कूल में प्रोत्साहन नहीं मिलता उसे अपनी कबूतरा जाति के कारण अपमानित होना पड़ता है। मंसाराम की पत्नी आनंदी उसपर कुत्ते छोड़ देती है जिससे वह बुरी तरह घायल हो जाता है और स्कूल छोड़ देता है। उसे कबूतरा जाति के एक मात्र पढ़े-लिखे व्यक्ति रामसिंह के पास भेजा जाता है । जिसकी बेटी अल्मा के साथ राणा की दोस्ती एवं प्रणयकथा शुरु होती है।

भ्रष्ट रामसिंह की गतिविधियों को देखकर राणा भागकर अपनी माँ के पास लौट आता है उधर थाने का दलाल बना रामसिंह मारा जाता है। अपनी पिता की मृत्यु का बदला लेने हेतु 'अल्मा' कार्यरत होती है लेकिन उसकी बदनसीबी से वह डाकू सूरजभान के हाथ लगती है। फिर भी वह हार नहीं मानती धीरज की मदद से सूरजभान की कैद से भागती है और डाकू श्रीमान मंत्री के निवास में पहुँचती है। श्रीराम शास्त्री की बीवी बनकर अल्मा शास्त्री बनती है और सत्तारुढ़ पार्टी की संभाव्य उम्मीदवार भी। 'अल्मा कबूतरी' एक औपन्यासिक कृति है जो रांगेय राघव की 'कब तक पुकारु' उपन्यास की परम्परा में करनट जन जाति के परिवेश के स्थान पर राजस्थान और मध्यप्रदेश के कबूतरा जाति का समाजशास्त्रीय विवेचन भी है।

2.3 कोंकणी आंचलिक कथासाहित्य

कोंकणी में 'आंचलिक-साहित्य' के पर्यायवाची रुप में 'प्रादेशिक साहित्य' अथवा 'गांवागिरे साहित्य' पद प्राप्त होता है। आंचलिकता का संकीर्ण अर्थ न लेकर उसे स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश में रेखांकित करने तथा विस्तृत फलक पर उसे चित्रित करने का श्रेय कोंकणी कथाकारों को भी जाता है। लेकिन कोंकणी भाषा में आंचलिक लेखन की समृद्ध परंपरा प्राप्त नहीं होती है। हिन्दी आंचलिक कथासाहित्य की तुलना में कोंकणी आंचलिक कथासाहित्य का विस्तृत धरातल पर विकास नहीं हो पाया है।

कोंकणी में ग्राम्यधरातल पर ही रचनात्मक अभिव्यक्ति पायी जाती है, शहरी जीवन अथवा कस्बे पर कम। उसमें ग्रामीण जीवन की कसमसाती पीडा, परिवेश का भावमुग्ध चित्रण तथा ग्रामीण संस्कार एवं लोकजीवन के चित्र आदि व्यक्त हुए हैं। जैसे कुंम्हार मिट्टी के लोंदे को आकार देकर उसे घडा, सुराही, खिलौने आदि बनाता है उसी रुप में बिना आधुनिकता के नजरियें को छुये कोंकणी में सामान्य उपन्यास उपलब्ध होते हैं। वेद प्रकाश अमिताभ की दृष्टि से- "कहीं-कहीं आंचलिकता की सांस्कृतिक पृष्ठभूमियाँ, रागात्मकता, और धरती के रसगंधों से जुडी संवेदनशीलता को आधुनिकता को पसंद नहीं आती। उसकी कटी-छंटी और चकाचौंध भरी बुद्धिवादी-यथार्थ की नगरभूमी अपने को संस्कृति से नहीं, राजनीति से दृढतापूर्वक जोड़कर चलती है। अत: यदि हिन्दी में आंचलिकता के दौर को उपेक्षित गांवों के सामुहिक जीवन को साहित्य चिंता के केन्द्र में लाने से क्रांतिकारी माना गया तो यह अनुचित नहीं है।"(43) लगभग यही स्थिति कोंकणी कथाकारों के मानस में घटित हुयी है। आंचलिक कथासाहित्य मनोरंजन या विश्राम लेने की दृष्टि से रचा हुआ साहित्य नहीं है। उसमें जीवनानुभवों की गहराई से मानव जीवन को झकझोर कर विचारों से प्रेरित करने की सकारात्मक दृष्टि है। तथा "आजादी के बाद सामन्ती मूल्यों से जनतांत्रिक मूल्यों की टकराहट"(44) लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति का करीब से अवलोकन करने हेतु आधार प्रस्तुत किया है। यह कहना समीचीन है कि- "विशेषत: लोक संस्कृति के आत्मीय रंगों से आंर्चालिक उपन्यास समृद्ध और आकर्षक बन गये है।"(45) आंचलिक कथासाहित्य की सृष्टि प्राय: अंचल विशेष के यथार्थ स्वरुप को रेखांकित करने की होती है, अन्य उपर्युक्त उद्देश्य भी उसके साथ जुडे हुये हैं।

2.31 कोंकणी कथा-विकास

कोंकणी साहित्य में आंचलिक कथासाहित्य का दौर सन् 1970 के बाद आरंभ हुआ। पुंडलीक नायक, एन् शिवदास, दामोदर मावजो, महाबळेश्वर सैल

के साथ-साथ रामनाथ गावडे आदि लेखकों ने आंचलिक कथासाहित्य को समृद्ध बनाया है। हिन्दी के समानान्तर कोंकणी में समृद्ध आंचलिक लेखन परंपरा प्राप्त नहीं होती। कोंकणी भाषा-साहित्य अन्य भाषाओं की तुलना में साहित्यिक भाषा की मान्यता एवं साहित्यिक समृद्धता में थोडा पिछडापन जरुर है, लेकिन चंद्रकांत केणी, ओलिव्हीन्यु गोमिश, उदय भेंब्रे, अना म्हांबरो, सुरेश काकोडकर, युसुफ शेख, लक्ष्मणराव सरदेसाय, मनोहर सरदेसाय, नागेश करमली, शीला नायक, मीना काकोडकर, फेलीसियु कार्दोज, तानाजी हळर्णकर, गजानन जोग, जयमाला दणायत, हेमा पुंडलीक नायक, जयंती नायक, गुरुदास बांबोळकर, रामचंद्र गावडे आदि कथाकार नें कोंकणी भाषा एवं साहित्य के आचंलिक लेखन में समृद्धि प्रदान की है।(46)

जहाँ तक कोंकणी व साहित्य की आंचलिकता संबंधी परिभाषा का सवाल है कोंकणी साहित्य में आंचलिकता का स्वरुप एवं उसकी परंपरा पर कोई सशक्त लेख भी मिलना मुश्किल है। इसलिए यह उचित है कि हिन्दी आंचलिक कथासाहित्य की परम्परा में इसको व्याख्यायित किया जाये। चाहे कोंकणी हो या हिन्दी, आंचलिक साहित्य की परिभाषा दोनो साहित्य के लिए समान रूप से लागू होती है। चाहे वह अंचल डॉ. विवेकीराय के शब्दो में ''जिस तरह हार्डी में इंग्लैंड का वेसेक्स अंचल, फाकनर में अमेरिका के दक्षिणी अंचल अपने समस्त रसगंधों के साथ उभरते हैं, उसी प्रकार रेणु में पूर्णिया अंचल, गणेश नारायण दांडेकर (मराठी) में बराड अंचल, सतीनाथ भादुडी में बंग-अंचल और झबेर चंद्र मेघाजी (गुजराती) में सौराष्ट्र अंचल उजागर हो जाते है।''(47) चाहे पुंडलीक नायक(कोंकणी) में गोवा का कोळंब अंचल हो सब में समान एकरुपता पायी जाती है। इसीलिए हिन्दी के आंचलिकता की परिभाषा को कोंकणी साहित्य पर समानान्तर रूप से लागू किया जाता है। गोवा प्रदेश महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमाओं से घिरा हुआ एक पर्यटन स्थल है जो आकर्षक पहाड़ वन और समुद्र तट के नयनाभिराम दृश्यों से सन् सॅण्ड और ओसियन (सूर्य, रेत और समुद्र) का क्षेत्र माना जाता है। जिसके प्रमुख शहर पणजी, म्हापसा, मडगाँव, फोंडा और वास्को है।

कोंकणी कथासाहित्य में हिन्दी, मराठी भाषा साहित्य की तरह अनेक पड़ाव है। कोंकणी साहित्य में सामाजिक विषयवस्तु, प्रकृतिचित्रण, राजनीतिक परिवर्तन, धार्मिक विश्वास एवं पात्र-विशेष(चरित्र) आदि अनेक विषयों से समृद्ध कथाएँ चित्रित है। कथा-शिल्प में भी उत्तरोत्तर विकास होता गया है। पूर्वदीप्ति शैली, पत्र शैली, वार्तालाप शैली से समृद्ध कथायें कोंकणी में मिलती है। कथाओं के पाठक जैसे जैसे आधुनिकता के प्रभावस्वरूप बदलते गये है वैसे वैसे कथालेखन में भी परिवर्तन आता गया है। यथा- ''संवसार बदलता तसो कथाकार आनी वाचपीय

बदलूंक लागलो. वाचप्यांचो अणभव वाडटा तसतशो तागेल्यो कथे विशींच्यो अपेक्षा वाडूंक लागल्यो. आनी हे गजालीची कथाकारांक दखल घेवंची पडूंक लागली. मनशां, जागे हांची भायलीं वर्णनां उणीं जालीं आनी मनशांच्या मनांक, स्थळांच्या वातावरणाक म्हत्व आयलें. कथेचो नायक भाटकार काय अॅप्रेगाद हाचेपरस तो मनीस कसो, तशेंच कथा खयच्या वाठाराक घडटा हाचेपरस तो वाठार कथेक फांस्की म्हणून कितलो उपेगी पडूं येता हाचेर कथाकार येवजूंक लागले''[48] जिसका हिन्दी भावानुवाद इस प्रकार है - ''संसार जैसे बदलता है वैसे ही कथाकार और पाठक भी परिवर्तित होने लगा। पाठकों के अनुभव में वृद्धि होने लगी। वैसे वैसे कहानी के प्रति उनकी अपेक्षाओं में भी बढोत्तरी होने लगी। कथाकार को इस बात की अनिवार्य रुप से दखल लेनी पड़ी। मनुष्य के चरित्र एवं प्राकृतिक स्थानों के बाह्यवर्णन कम हो गये और मनुष्यमन को स्थल के वातावरण को महत्व प्राप्त हुआ। कथा-नायक भाटकार है या वकील यह नगण्य था, इससे बढ़कर वह मनुष्य कैसा है उसकी कथा किस परिवेश में घटित हो रही है, इससे अलग यह परिवेश कथा के लिए फ्रेम के रुप में कितना उपयोगी हो सकता है इन तथ्यों पर कथाकार विचार करने लगे।''पुंडलीक नायक ने भी कोंकणी कथा के विकास पर लेख प्रकाशित किया है जिसमें उन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि ''कोंकणी कथा फकत संख्येनूच वाडलीना तर ती गुणानय वाडल्या. विशय आनी आशयान ती समृद्ध जाल्या. 'प्रादेशिकता' हे तिचे वैशिष्ट्य थारलाच, ते भायर तिका विशयाची विविधताय आसा''[49] जिसका हिन्दी में भावानुवाद है - ''कोंकणी कथा का विकास सिर्फ संख्यात्मक नहीं हुआ बल्कि गुणात्मक भी हुआ है। वह विषय एवं आशय से समृद्ध है। उसका एक वैशिष्ट्य है आंचलिकता, उसीप्रकार विषयों की विविधता से भी यह कहानियाँ समृद्ध है।''

शोधकर्त्री ने विभिन्न कोंकणी कथाकारों से कोंकणी के आंचलिक कथा साहित्य के विकास पर साक्षात्कार प्राप्त करने की कोशिश की है। श्री नागेश करमली सन् 1950 के उपरांत गोवा की कोंकणी में आंचलिक कथालेखन की पुंडलीक नायक से शुरुआत मानते है। लेकिन स्वयं पुंडलीक नायक इसका प्रारंभ अच्यूत तोटेकर से मानते है- ''थळावेपण, प्रादेशिकता हे कोंकणी कथेचे एक महत्वाचे वैशिष्ट्य, थारलां आनी ताचो आरंभ तांचे कथेपासून जाता.''[50] जिसका हिन्दी भावानुवाद होगा ''स्थानियता, आंचलिकता, कोंकणी कथा का एक महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य है और उसका आरंभ उसकी कथा से होता है।'' कोंकणी कथा का आरंभिक रुप शणै गोंयबाब के साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। उनकी लेखनी ने लोकसंस्कृति को संरक्षित करने का कार्य किया है। दो खण्डों में प्रकाशित 'गोमन्तोपनिषद' में कथातत्वों का हल्का सा रंग उभरकर आता है। उन्होंने गोवा के परिसर से सम्बन्धित

प्रकृति के विविध अंगों का साहित्यलेखन में समावेश किया है। जो गोवा प्रदेश की सांस्कृतिक आत्मा की गहराई तथा वेद-उपनिषद, दर्शन से प्रभावित है।

जयंती नायक के कथनानुसार 'कोंकणी साहित्यांत सगळ्यांत पयलीं लोकवेद केळवपाचो प्रयत्न केलो तो शणै गोंयबाबान. कोंकणी भास जतन करपाच्या हावेसांतल्या हांतात धरिल्ले तांचे लेखणेन कोंकणी संस्कृतायेच्या जतनाचेंय कार्य केलां म्हळ्यार चूक जावची ना।'(51) जिसका हिन्दी अनुवाद है "कोंकणी साहित्य में सबसे पहले लोकसाहित्य (Folklore) के उपयोजन का प्रयत्न किया शणै गोंयबाब ने। कोंकणी भाषा को जतन करने के उद्देश से हाथों में पकडी लेखनी ने कोंकणी संस्कृति को भी जतन किया है ऐसे कहे तो गलत नहीं होगा। प्रसंगानुसार कोंकणी साहित्य की परंपरा में शणै गोंयबाब का स्थान महत्वपूर्ण है लेकिन आंचलिक कथासाहित्य की परंपरा में शणै गोंयबाब के कथासाहित्य की रचनाप्रक्रिया, भाषा गोवा के आंचलिक जीवन पर आधारित नहीं है।" इसकी परंपरा हमें कारवार के कथासाहित्य से प्रस्फुटित होती हुयी नजर आती है।

नागेश करमली के अनुसार सन् 1950 से पूर्व आंचलिक कथासाहित्य की शुरुआत रोमन एवं कन्नड लिपि में हुई। कारवारी लेखकों के सन् 1935 में प्रकाशित 'वोंवळा' कथासंग्रह में वहाँ की लोकसंस्कृति, भौगोलिक परिवेश, रीतिरिवाजों स्थितियों से जुडी हुयी कहानियाँ संग्रहित है। "ह्या कथांनी गोंय, कारवार, मंगळूर वाठाराचें प्रादेशिकपण आशिल्लें अणभवाचे कसवटेर त्यो कथा उजव्यो थारिल्लों"(52) हिन्दी अनुवाद है "इन कथाओं में गोवा, कारवार, मँगलोर परिवेश की आंचलिकता थी, अनुभवों की कसौटीपर वे कथायें अच्छी थी।" लोणच्या बुयांव (नंद-तेलंग), गरीबालों संसार (नरहरी), बावजीचे भय (मनोरमा वागळे) आदि कथायें आंचलिक एवं ग्रामीण परिवेश चित्रण से समृद्ध है। 'लोणच्या बुयांव' (अचार का डिब्बा) में लेखक मुंबई में नौकरी करने के लिए प्रवास करता है। उसे फ्लोराफाउंटन' की जगह पर कारवार का 'कोडीबाग' बंदर, पारसी महिलाओं के बदले में गाँव की औरते, ट्राम के लोहपथ के जगह पर पानी और नाँव दिखाई पडी। कारण वह अपने गाँव से गहराई से जुड़ा हुआ है। उसे मुम्बई में कोई अपरिचित नजर नहीं आता बल्कि गाँव की औरतें, दत्तशेरी, मछली बेचनेवाली लडकियाँ, युरोपीयन के स्थान पर कुष्ट और मालू, नाँव में भी मिरची, गाँव की ही बातें जोर-शोर से होती रहती है। सदाशिवगड़ के पास नाँव से उतरने की टिकट वह देता है। अपने घर तक पहुँचने में वह कारवार का संपूर्ण परिवेश उसके पेड पौधे, गाय गोरू को बांधने की जगह, सुरी पार्क, बामनवाडा, दृश्यपटल पर सिनेमा के चलचित्रों के भाँति उभरता है - "एदोळपर्यंत मुम्बैत पळयिल्ले कारवार म्हळ्यार एक दिसाचें स्वप्नच आशिल्ले तर।"(53) अर्थात् "इतनी देर तक मुम्बई में देखा कारवार याने

एक दिवास्वप्न था।'' इसप्रकार अपनी गाँव की यादों पर जीने के लिए बाध्य लेखक जैसे अनेक लोग शहरों में बसे हैं। फिर भी उनसे गाँव भूला नहीं जाता।

कोंकणी की अन्य कहानियों में प्रसंगानुसार परिवेश, पात्र और जीवन संस्कारों को चित्रित किया है जिससे कोंकणी की आंचलिकता का प्रारंभिक स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। यह प्रयास कारवार के कोंकणी लेखकों द्वारा देवनागरी लिपि तथा कन्नड लिपि में हुआ है।

नागेश करमली की 'बांध' कहानी में साळावली का बांध बंधवाने से वहाँ की आम जनता का खेती, घर, तालाब आदि के नष्ट होने का दु:ख, उसके बदले में मिलनेवाली नयी जगह के प्रति उत्सुकता के साथ साथ बुढापे में घर बाँधने की समस्या नयी जमीन को उपजाऊ बनाने में मेहनत लगन के कम होनेसे परेशानी, बच्चे भी गाय-गोरुओं को चरने के लिए छोडने के बाद पाणवठे पर जाकर तैरने के आनन्द से विन्मुख होते जायेंगे। इस प्रकार वे भविष्य के गर्भ में छुपे हुए यथार्थ से चिंतित है। इसी परंपरा में दामोदर मावजो का लेखन उल्लेखनीय है। उनके 'रूमड फूल', 'गांथन' आदि कथासंग्रह में आंचलिकता नजर आती है- गोवा के एक गाँव साश्टी, उसके नदी के किनारे का परिवेश वहाँ की लोकसंस्कृति तथा वहाँ की कोंकणी लोकभाषा की खासियत उनकी कथाओं में अभिव्यक्त हुई है।

शीला नायक का 'ओली सांज', मीना काकोडकर के 'दोंगर चंवल्ला', 'सपनफुला' आदि कथासंग्रहों में गोवा की सुंदर प्रकृति यहाँ के रीतिरिवाज, लोकसंस्कृति का भी यथासाध्य चित्रण हुआ है। इसलिए उनको पूर्णत: आंचलिक कहानीकार कहना असंगत होगा। फिर भी आंचलिकता की थोडी प्रवृत्तियों के चित्रित होने से इनकी कथाओं को इस श्रेणी में देखा जा सकता है।

एन. शिवदास ग्रामीण अंचल पर आधारित कथाओं की सृष्टि करने में सिद्धहस्त है। उनकी 'गळसरी' कथा इस दृष्टि से उचित है। गोवा के बांदोडा गाँव की शेवतू तथा उसके परिवार द्वारा अंधविश्वासों से बाबू (शेवतू का बडा पुत्र) को गँवाते है। डॉक्टर की सख्त जरूरत होते हुए भी बाबू पर घाडी, देव, जोशी आदि से ही उपचार किये जाते है। क्योंकि डॉक्टर उसकी दृष्टि से 'सुयो तोपून जित्या मनशाक मारपी यम।'(54) जिसका हिन्दी अनुवाद है - 'सुई लगाकर जीवित मनुष्य को मारनेवाला यम।' इसी विचार को हम रेणु के 'मैला आंचल' उपन्यासों में भी प्राप्त करते है - ''डाक्टर लोग रोग फैलाते हैं, सूई भोंककर देह में जहर देते हैं, आदमी हमेशा के लिए कमजोर हो जाता है।''(55) इन विचारों की समानता गोवावासियों एवं मेरीगंज में समाज धरातलपर पायी जाती है। पेशाब में शक्कर होने की बिमारी का पता घर के लोगों को है फिर भी वे घाडी द्वारा

दी गयी राख लगाकर उसे ठीक करना चाहते हैं। आपेव्हाळ में घाडी के यहाँ जाकर आते हुये - ''आपेव्हाळांतल्यान येतना खामणीच्या देवचाराक सांगून घेवंक घोणशी तळ्याखाणीरय वचूंक ते विसह्लें ना. थंयच्यान ताणे धावशी रौजिऱ्याक सोरों रोंट सांगून घेतलें, भुतखांबावयल्या भुताक पाळणें, तांबडो लेस, विडी दवह्ली. पिरवोळा येवन, वेताळाकय आंगवण आंगयली प्रसाद घेवन आनी वेताळाक अेक अभिषेक बरोवन शाणू गुरवाक देड़ रुपया दिवन ताणें पावती घेतली.''(56) जिसका हिन्दी अनुवाद होगा- 'आपेव्हाळ से आते हुए खामणी के देवचार की प्रार्थना करने घोणशी के तालाब पर जाना वह नही भूलीं। वहीं से घावशी रौजिर को शराब देने का वादा किया, भूतखाम्ब के भूत को पालना, लाल रुमाल, केले और बीडी रखी। प्रियोळ में आकर वेताळ को चढावा (आंगवण) चढ़ाया। प्रसाद लेकर वेताळ के अभिषेक के लिए शाणू गुरव को देढ़ रुपया देकर रसीद ली। लेकिन सब कुछ व्यर्थ है। क्योंकि उसके बड़े बेटे की मृत्यु होती है। डाक्टर की दवाओं से बीमारी ठीक हो सकती थी लेकिन इन अंचलों में बसे लोग अज्ञान एवं अंधविश्वास से पीछा छुडा नहीं सके हैं। मृत्युंजय उपाध्याय के अनुसार- ''समस्त प्रांत की ग्रामीण चेतना में अंधविश्वास धुन की तरह लगे हैं। उनकी समस्त चिंतन शक्ति अंध-विश्वासों से परिचालित होती है।''(57) देवी देवताओं के आशीर्वाद से बीमारी दूर होने का अंधविश्वास गोवा, आंध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र में आज भी विद्यमान है।

जयंती नायक ने हिन्दू एवं क्रिश्चियन धर्मी लोगों के संस्कार आचार विचार, लोक समाज की और दृष्टि को रेखांकित किया है- रामनाथ गावडे (सांवळ्यो) प्रकाश पर्येकार आदि लेखकों ने सत्तरी मोले सोनाळ आदि गोवा के ग्रामीण प्रदेश वहाँ की संस्कृति पर लोककथायें रची है। जिसमें वहाँ की लोक भाषा के साथ साथ उस मिट्टी की सोंधी-सोंधी खुशबू से हम परिचित होते है।

कोंकणी आंचलिक कथाओं की परंपरा को रेखांकित करने के उपरांत उपन्यासों की आंचलिक परंपरा में कोंकणी लेखकों का योगदान इस प्रकार है। पुंडलीक नायक के बाद सन् 1981 में प्रकाशित दामोदर मावजो का 'कार्मेलीन' उपन्यास कोंकणी आंचलिक कथासाहित्य में महत्वपूर्ण सोपान है। 'कार्मेलीन' में निम्न मध्यवर्ग को केंद्र में रखकर क्रिश्चियन समाज की पात्रा कार्मेलिन की जीवनगाथा तथा माजोर्डा के जीवन-परिवेश को चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में कार्मेलिन की व्यथा व दु:ख के साथ-साथ उसकी अपनी बच्ची बेलिंदा के भविष्य की चिंता से परेशान माँ का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण कलात्मक रुप में उपलब्ध है। माजोर्डा के नैसर्गिक सौंदर्य, परिवेश, क्रिश्चियन समाज के लोक संस्कार, क्षेत्रीय लोकजीवन, समुद्रीतट पर बसे हुये लोगों के आचार-विचार लोकरीतियाँ लोकगीत तथा लोकभाषा से समृद्ध चित्रण कार्मेलीन उपन्यास में उपलब्ध है। डॉ. किरण बुडकुले के अनुसार

'कार्मेलीनाचो इतिहासीक, समाजीक वा प्रादेशीक संदर्भ सोदतल्याक हे कृतीत जायते म्हत्वाचे आनी अचूक धागेदोरे मेळटात।'(58) जिसका भावानुवाद हिन्दी में होगा- ''कार्मेलीन का ऐतिहासिक, सामाजिक या आंचलिक संदर्भ तलाशनेवालों को इस कृति में महत्वपूर्ण एवं बिनचूक संकेत मिलते हैं।''

गोवा की संस्कृति का महत्वपूर्ण घटक है 'क्रिश्चियन संस्कृति'। क्रिश्चियन संस्कृति से हिन्दू संस्कृति एवं आचार विचार में आपसी आदान प्रदान हुआ है। जिससे यहाँ के लोकजीवन, लोकगीतों में भी समानता एवं असमानता दृष्टिगोचर होती है। 'कार्मेलीन' की शादी के वक्त 'तेल रोंस लावप (नारियल की गरी से रस निकालकर वर या वधू को शादी के पूर्व एक रात लगाना, हिन्दू समाज में जैसे हल्दी लगाने की परंपरा है), शादी की विधियाँ आदि का वर्णन क्रिश्चियन समाज के संस्कारों से परिचित करता है।

कोंकणी उपन्यासों की आंचलिक परंपरा में महाबळेश्वर सैल का 'काळी गंगा' (सन् 1996) उपन्यास कारवार के नदी किनारे बसे दो गाँव हुलगे और शिद्र के लोगों के रीतिरिवाज, लोकसंस्कार, लोकजीवन को प्रस्तुत करता है। पुंडलीक नायक के अनुसार ''महाबळेश्वर सैल हांणी कोंकणी कथेंतलो प्रादेशिकतेचो प्रवास बळिश्ट केलो. कारवार माजाळी वाठारांतली ग्रामीण लोकजीण तांणी कथा साहित्यांत प्रभावीपणान उभी केल्या.''(59) जिसका हिन्दी अनुवाद है- ''महाबळेश्वर सैल ने कोंकणी कथा में आंचलिकता का प्रवाह शक्तिमान किया उसने कारवार, माजाळी परिवेश का ग्रामीण लोकजीवन कथा साहित्य में प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है।'

'काळी नदी' कारवार के लोगों के लिए गंगा समान है। पवित्र, लोगों की जीवनदायिनी शक्ति तथा अपवित्रता का नाश करनेवाली गंगा। वह गंगा इस उपन्यास में प्रतीक रुप में आयी है- ''मनशाल्यो पुर्विल्ल्यों सगल्यो संस्कृतायो, न्हंयच्या तिरारुच जल्मल्यो, खेळ्ळ्यो आनी उदरगतीक पावल्यो तशीच कारवारची तेजिष्ट संस्कृताय वाडली काळी न्हंयच्या तिरार, म्हणून काळी ही कारवारची गंगा. म्हणून ती काळी गंगा.''(60) जिसका हिन्दी अनुवाद है- मनुष्य की प्राचीन संस्कृति का उद्गम नदी के तटपर हुआ, वह वहीं विकसित हुई तथा उसे वैभव प्राप्त हुआ। वैसे ही कारवार की तेजोदीप्त संस्कृति काली नदी के किनारे ही विकासमान हुई। इसीलिए काळी (कारवार की गंगा) 'काळी गंगा' कहलायी।

लेखक आज के समाज की नकली सभ्यता तथा कृत्रिम भावनाओं को अपनी रचना में 'भोगे हुए यथार्थ' के रुप में प्रस्तुत करता है। लेखक वहाँ का भौगोलिक परिवेश, लोकसंस्कृति, जीवन का वास्तव चित्रण करता है। अंचल विशेष के भौगोलिक ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है वहाँ की नदियाँ, खेत, पहाड गोवा

से कारवार की निकटता आवाजाही के साधन अभूतपूर्व बरसात, खेतों में उपजने वाले तमाम पौधे, घासपात, पशु-पक्षी, मिट्टी की सौंधी महक सबके प्रति उन्होंने अपनी रचनात्मक संवेदना व्यक्त की है। महाबलेश्वर सैल प्रांतीक भौगोलिकता तक सीमित न रह कर उस भूखण्ड के निवासी, उनके चरित्र, उनका स्वभाव, उनका व्यवहार, उनकी भाषा, उनकी संवेदनाओं को भी व्यक्त किया है। कारण महाबळेश्वर सैल ने भारत के विभिन्न प्रांतों की यात्रा ही नहीं की है बल्कि वे भारत-पाक संघर्ष में एक सैनिक की भी भूमिका अदा कर चुके हैं।

प्रसंगवश जन एवं मिट्टी दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों पर महाबळेश्वर सैल ने विचार किया है। उन्होंने कारवार इस गाँव के जीवन को देखा ही नहीं है बल्कि भोगा भी है। कारवार के चप्पे-चप्पे, उसके कण-कण और मिट्टी में व्याप्त सौंधी गंध को अभिव्यक्त किया है। वहाँ रहनेवाले भोले ग्रामीणों की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन शैली, रीति-नीति, सुख-दुख, हर्ष-विषाद, पर्व-त्यौहार उल्लास आदि के साथ जीवन की अनुभूतियों को उन्होने कलात्मक जीवंतता प्रदान की है।

'काली गंगा' उपन्यास में बिन माँ के दोनों लड़कियाँ बड़ी मंजुल और छोटी सुमन और उसके पिताजी गणेश की कथावस्तु चित्रित हुई है। संक्षिप्त में कथातत्व इस प्रकार है- मंजुल की शादी श्रीधर के साथ होती है। श्रीधर फौज में है जिसकी पोस्टिंग शिमला हुयी है। शादी के बाद मंजुल को लेकर शिमला जाना चाहता है लेकिन मंजुल के पिताजी खेती-बाडी का बहाना बनाकर मंजुल को भेजने से मना करते हैं साथ ही बहू के ससुर के प्रति कर्तव्यों की याद दिलाते है। उसके जाने के बाद खेती में पशुओं से भी बदतर रुप में ससुर उपयोग कर लेते है। पत्नी का साथ न होने पर श्रीधर भी मद्यपान करता है। एक बच्चे की माँ बनने पर भी दारूण हालतों से उसे मुक्ति नहीं मिलती। मंजुळा जैसे सब-कुछ सहने एवं प्रतिरोध किए बिना जीवन जीने के लिए बाध्य है।

सुमन मंजुल की शादी होने बाद घर खेती का काम खुद संभालती है। पिता की बीमारी में गोविंद के साथ आकर गोवा के मेंटल अस्पताल में भर्ती करवाती है, दूसरी बच्ची गीतु को जन्म देकर मंजुला का निधन हो जाता है। दोनों बच्चों को पालपोसकर बड़ा करने के लिए सुमन बहुत से कष्टों का सामना करती है। गोविंद सुमन को चाहता है उससे शादी करना चाहता है लेकिन मामा एवं भाईयों के विरोध के कारण 'काळी गंगा' में आत्महत्या करता है और सुमन गोविंद के साथ बितायी एक रात की वजह से कुँवारी अवस्था में विधवा बनना पसंद करती है।

'काळी गंगा' नामक उपन्यास में कारवार का भौगोलिक परिवेश,

सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन, प्रादेशिक समस्याओं, कुंठाओं तथा मन के सूक्ष्म मनोव्यापारों को चित्रित किया गया है। लेखकीय संवेदना असल में उपन्यास की रीढ़ है। जीवन की विविध अनुभूतियों को, भोगे हुये यथार्थ को, कलात्मक रुप से चित्रित करना लेखक का उद्देश्य है। कारवार के शांत रमणीय, प्राकृतिक सौंदर्य को चित्रित करने के साथ-साथ, बिन माँ के बच्चोंकी व्यथा, नारी-जीवन शोषण, बिना पत्नी के अधूरी गाड़ी चलाने की पिता की असहाय अवस्था, सुमन एवं गोविंद का निश्चल प्रेम और मन की चाहत से शरीर को अर्पित करने की भावावस्था, गोविंद की परिस्थितिवश आत्महत्या आदि को लेखक ने कारवारी-कोंकणी भाषा में चित्रित किया है। अंचल विशेष शिद्दर और हुळगे में बोली जाने वाली आंचलिक भाषा को शब्द तथा वाक्यगत प्रयोग इस उपन्यास की विशिष्टता है। निर्विवाद रूप से महाबळेश्वर सैल को गोवा का फणीश्वरनाथ रेणु माना जा सकता है।

कारवार की कोंकणी विशेष टोन में बोली जाती है। जिसमें सुरों की तालबद्धता और वाक्य-शब्दों को लंबा खींचने की विशेष पद्धति होती हैं। संवादों में कारवारी कोंकणी के शब्दों का प्रारुप इसप्रकार है- 'हरी व्हडल्पाचे लग्न करुन उडयतां तुज्या पत्त्याक बरो भुरगो आसल्यार चय'

'नेणटें न्ही रे तें !'

'नेण्टे खंयचें, आवय मेल्ली तेन्ना, णव वर्षाचे आशिल्लें. आतां आवय मरुनच णव वर्सा जाली.'

'धाकल्याचें कशें जातलें?'

'तो एक घोर आसा. ताका लागुनूच दोन वर्षा तडवच केले लग्नाक....

....

चोय तूं खंयूय बरो भुरगो आसल्यार.'(61)

जिसका हिन्दी में अनुवाद होगा, 'हरी, बड़ी बेटी की शादी करने की इच्छा हैं। तुम्हारे परिचय में कोई अच्छा लड़का है तो देखों'

'वो तो छोटी है।'

'छोटी कैसे, माँ के देहांत के समय नौ साल की थी अब माँ को गुजरे नौ साल हो गये।'

'छोटी का क्या होगा?'

'वहीं एक चिंता सताये जा रही है, इसीलिए दो साल देरी की।......

....

'देखो कहीं अच्छा लड़का हो तो।'

गोवा और कारवार की कोंकणी के मौखिक ढंग से प्रस्तुति में भेद है फिर भी 'पत्याक', 'चय', 'तडव', 'चोय' आदि शब्द गोवा की आम कोंकणी

में सामान्य रुप से प्रयुक्त नहीं होते हैं। कन्नड शब्दों का उपयोग भी बीच-बीच में किया है जैसे- कावैरीगे आशिर्वाद हेळ बेकु'[62] इसका मतलब है- 'कावेरी को आर्शिवाद'।

'काळी गंगा' उपन्यास में कृषि जीवन को वर्ण्य-विषय के रुप में अपनाया है। भारतीय कृषक संस्कृति में भूमि और गाय का बडा महत्व है। साथ साथ कृषि-सम्बधी साधनों में कृषक के लिए एक हल तथा दो बैल आदि का होना बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस उपन्यास में गणेश के पास ये साधन तो है उसके साथ साथ अन्य परम्परागत साधनों का भी उपयोग किया है- 'खोरें- कुदळ, नांगर- जूं, आळय दातें, दोरी-दायें, कवकल मरकल, मांच-ताट, हातर-हातरी।[63] सभी साधन खेती करने, उसको सुखाने आदि के काम आते हैं इसके अलावा खेती विषयक सभी कार्य हल चलाना, फसल काटना, फसल को धान से अलग करना-खेत में धान की उपज के दौरान उसमें अन्य प्रकार के पौधे उगते है उनको अलग करना (नडचें, नाटचें, नेर मुगळ काडचे)[64] इन सबसे यह महसूस होता है कि लेखक का नाना विधाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

परिवेश का समुचित चित्रण वहाँ की अनूभूति, दैनिक जीवन की पूर्ण पहचान, प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक स्थलों एवं स्थितियों की जानकारी तथा कारवार के प्रति उनकी रागात्मक भावनायें इसमें पूर्णत: व्यक्त हुई हैं- 'सैलान तांकां मनशां म्हणुनूच तांच्या सगल्या आकार विकारांसयत चितरायल्यांत हरतरेच्या अणमवान समृद्ध जाल्ली सैलाची जीण आनी तातूंत वैश्विक धार आशिल्ली तांगेली प्रतिभा हांका लागून कारवारचे मातयेचे भांगर जाला. आपणें काळी गंगा बरयली आनी कारवारच्या रिणांतल्यान मुक्त जालों अशे ते म्हणटात.'[65]

जीवन के विविध अनुभवों से समृद्ध सैल का जीवन संघर्ष और उसमें विश्वात्मकता की धार काली गंगा में कलात्मक रुप से निखरी है। उनका स्वकथन है- 'मैने काली गंगा लिखी और मैं कारवार के ऋण से मुक्त हुआ हूँ।' ऐसे उनका कहना है। मानो ''रेणु की तरह महाबळैश्वर ऋणजल जैसी भावना व्यक्त कर रहे है।''[66] सैल ने शिदूर, माजाळी, हुळगे, कोडीबाग आदि कारवार के गावों के जमीन का ही ऋण चुकाया है ऐसा नहीं है बल्कि वहाँ के निवासियों के रहन-सहन, लोकप्रथाएँ, उत्सव, आदर्श आस्थाएँ, मौलिक मान्यता, सांस्कृतिक, धार्मिक संस्थान, लोकोत्सव एवं लोकगीतों को भी उन्होंने मुखर किया है।

कहा जाता है कि ''लोकगीत-लोक-कण्ठ की मौखिक परम्परा की धरो हर है- लोकगीत जन-साधारण के जीवन के सन्निकट होता है।''[67] शिद्दर के धालोत्सव का वर्णन एवं उसमें 'मांड' पर गाये 'लोकगीतों' के मधुर स्वरों

से यह उपन्यास जीवंत बन पड़ा है। अठारह गावों की अठारह स्त्रियाँ एकत्रित होती है उनका लोकगीत इसप्रकार है-

कोणकोण गांवच्यो नारी गे तुमी/ कोणकोण गांवच्यो नारी/
आमी माजाळे गांवच्यो नारी गे आमी/ माजाळे गांवच्यो नारी/
तुमी केजेर बसून आयली गे तुमी/ केजेर बसून आयलीं/
आमी रथार बसून आयली गे आमी/ रथार बसून आयली/(68)

कहना न होगा कि 'काळी गंगा' उपन्यास के कलात्मक चित्रण के अनुरूप विविध गावोंकी (खारगे, केरवडी) नारियाँ वहाँ धालोत्सव में शरीक होने आती है। इससे निकटवर्ती गाँवों में ब्याही हुई लड़कियाँ एवं वहाँ के नारियों का मायके में प्रादुर्भाव होता है । इसके बाद गाँव के सभी ईश्वर नमन के पात्र है।

''रान मारूं, रान मारूं फळसाचें गे फळसाचें,
रामनाथ देवा देवूळ बांदूं कळसाचे गे कळसाचें.
रान मारूं, रान मारूं आंब्याचे गे आंब्याचे,
सांतेरी देवी देवूळ बांदूं खांब्याचे गे खांब्याचे.
रान मारूं, रान मारूं किनळेचें गे किनळेचे
म्हादेवा देवा देवूळ बांदूं माळयेचे गे माळयेचें.''(69)

इस लोकगीत का भावार्थ, होगा -

जंगल काटकर, जंगल काटकर फळस का फळस का
रामनाथ देव का मंदिर बांधे कलश का कलश का
जंगल काटकर, जंगल काटकर आम का, आम का
सातेरी देवी का मंदिर बांधे खम्बे का, खम्बे का
जंगल काटकर, जंगल काटकर किनळ का किनळ का
महादेव का मंदिर बांधे-माले का माले का

उपर्युक्त पद में विभिन्न गाँवों के ईश्वर और उनके लिए बाँधे गये मंदिरों का जिक्र है, जिसमें किनळ और पळस आदि विशेष लकड़ी का प्रयोग हुआ है। काळी गंगा इस उपन्यास में धालोत्सव पर इक्कीस बहने और उनके दो बंधूओं के बदन में देवी का संचार होता हैं। तुळसायवंत, नागायवंत, चक्रायवंत, इज्रयवंत, माणकायवंत आदि तथा दो बंधु- पुंडलीक बधव' और 'शिवशंभों बंधव'(70) मांडमालिक और नागबाळ (एक बच्चेपर) इन दोनों में भी संचार होता है उसकी लोककथा का भी यहाँ वर्णन हुआ है। विशेषरुप से देवीवाला संचार भाव आने की कथा गोवा तथा अन्य दक्षिणी प्रदेशो मे परिव्याप्त है जिसमें नौ बहनों देवी संचार आना प्रसिद्ध हैं। विवेच्य उपन्यास की खासियत यह है कि इस तरह विस्तृत

वर्णन किसी अन्य उपन्यास में न होकर वह केवल 'काळी गंगा' में अभिव्यक्त हुआ है।

महाबळेश्वर सैल का 'काळी गंगा' उपन्यास पुंडलीक नायक की लेखन परम्परा में महत्वपूर्ण एवं वरीय स्थान प्राप्त करता है। अपनी सूक्ष्म संवेदनाओं की अभिव्यक्ति तथा कारवार की मिट्टी के कण-कण से परिचित कराता लेखकीय दृष्टि का संवेदनात्मक कौशल है।

***

सन्दर्भ सूची : द्वितीय अध्याय

1.	वेदप्रकाश अमिताभ	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण	पृ.12
2.	शिवप्रसाद सिंह	:	आधुनिक परिवेश और नवलेखन	पृ.115
3.	रामदरश मिश्र	:	हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्दृष्टि,	पृ.154
4.	नगीना जैन	:	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास,	पृ.61
5.	शिवप्रसाद सिंह	:	आधुनिक परिवेश और नवलेखन	पृ.119-20
6.	नगीना जैन	:	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास,	पृ.53
7.	मधुकर गंगाधर	:	आलोचना, जनवरी 1966	पृ.35
8.	शिवपूजन सहाय	:	देहाती दुनिया	पृ.415
9.	रामदरश मिश्र	:	हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा,	पृ.194
10.	नागार्जुन	:	बलचनमा	पृ.67
11.	वही	:	वही	पृ.207
12.	वही	:	वही	पृ.199
13.	वही	:	वरुण के बेटे	पृ.10
14.	वही	:	वही	पृ.33
15.	वही	:	वही	पृ.32
16.	फणीश्वरनाथ रेणु	:	मैला आंचल(भूमिका)	
17.	रामदरश मिश्र	:	आंचलिक समग्रता की सच्ची अनुभूतिः दिशाओं का परिवेश	पृ.87
18.	मधुकर गंगाधर	:	'आलोचना' जनवरी 66	पृ.63
19.	नगीना जैन	:	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास,	पृ.158
20.	रामगोपाल सिंह	:	आलोचना विशेषांक	पृ.34
21.	फणीश्वरनाथ रेणु	:	पलटू बाबू रोड आरम्भिक वक्तव्य	
22.	रामदरश मिश्र	:	हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा	पृ.240
23.	धनंजय वर्मा	:	दिशाओं के परिवेश	पृ.127
24.	शैलेश मटियानी	:	हौलदार-लेखकीय वक्तव्य	पृ.
25.	नगीना जैन	:	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास,	पृ.181
26.	देवेन्द्र सत्यार्थी	:	ब्रह्मपुत्र (आमुख)	पृ.8
27.	देवेन्द्र सत्यार्थी	:	ब्रह्मपुत्र	पृ.15
28.	निर्मलकुमारी वार्ष्णेय	:	प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में	

			प्रगतिशीलता	पृ.24
29.	नगीना जैन	:	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास,	पृ.176
30.	रामदरश मिश्र	:	पानी के प्राचीर	पृ.318
31.	बंशीधर	:	आंचलिक हिन्दी उपन्यास एवं समीक्षा	पृ.191
32.	राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित'	:	सूरज किरण की छांव	पृ.24-26
33.	नगीना जैन	:	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास,	पृ.26
34.	बंशीधर	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास सिद्धान्त और प्रक्रिया	पृ.213
35.	शिवकुमार मिश्र	:	यथार्थवाद	पृ.16-17
36.	जगदीश चन्दर	:	धरती धन न अपना	पृ.232
37.	राही मासूम रजा	:	आधा गाँव- (पिछला कवर)	पृ.
38.	श्रीलाल शुक्ल	:	रागदरबारी	पृ.16
39.	आदित्य प्रसाद त्रिपाठी	:	औपन्यासिक समीक्षा और समिक्षाएँ	पृ.133
40.	चंद्रकांत बांदिवडेकर	:	आधुनिक हिन्दी उपन्यास, सृजन और आलोचना	पृ.71
41.	रामदरश मिश्र, ज्ञानसंन्द्र	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास	पृ.169
42.	रामशरण जोशी	:	हंस सितम्बर 2000	पृ.88
43.	वेदप्रकाश अमिताभ	:	आंचलिकता की अवधारणा और मैला आंचल भाषा जनवरी-फरवरी 2000	पृ.75
44.	वेदप्रकाश अमिताभ	:	भाषा जनवरी फरवरी 2000	पृ.75
45.	वही	:	वही	पृ.77
46.	नागेश करमली	:	शोध कर्त्री की निजी वार्ता जनवरी 2003	
47.	वेदप्रकाश अमिताभ	:	भाषा जनवरी-फरवरी2000	पृ.73
48.	अना म्हांबरो (सं)	:	स्वतंत्र गोयांतली कोंकणी कथा, भूमिका	
49.	पुंडलीक नायक (सं)	:	समकालीन कोंकणी लघुकथा	पृ.X
50.	वही	:	वही	पृ.XI

51.	जयंती नायक	:	लोकबिंब	पृ.75
52.	पुंडलीक नायक(सं)	:	समकालीन कोंकणी लघुकथा	पृ.IX
53.	जयवंत कुलकर्णी(सं)	:	वोवळा	पृ.5
54.	अना म्हांबरो(सं)	:	स्वतंत्र गोयांतली कोंकणी कथा	पृ.138
55.	फणीश्वर नाथ रेणु	:	मैला आंचल	पृ.1
56.	अना म्हांबरो(सं)	:	स्वतंत्र गोयांतली कोंकणी कथा	पृ.135
57.	मृत्युंजय उपाध्याय	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास	पृ.101
58.	किरण बुडकुले	:	साहित्य नियाळ : अंतरंग आनी कायारुपां	पृ.56
59.	पुंडलीक नायक	:	समकालीन कोंकणी लघुकथा	पृ.XIV
60.	महाबळेश्वर सैल	:	काळी गंगा (पिछला कवर)	
61.	महाबळेश्वर सैल	:	काळी गंगा	पृ.69-70
62.	वहीं	:	वहीं	पृ.109
63.	वहीं	:	वहीं	पृ.241
64.	वहीं	:	वहीं	पृ.106
65.	वहीं	:	वहीं (पिछला कवर)	
66.	रोहिताश्व	:	शोधकर्त्री की निजीवार्ता दि. 6 जनवरी 2003	
67.	उत्तमभाई पटेल	:	आंचलिक उपन्यासों में ग्राम्यजीवन	पृ.86
68.	महाबळेश्वर सैल	:	काळी गंगा	पृ.44
69.	वहीं	:	वहीं	पृ.45
70.	वहीं	:	वहीं	पृ.42

***

3 मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक : व्यक्तित्व एवं सृजन

मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक ने अपने-अपने कथासाहित्य के माध्यम से वैयक्तिक अनुभूतियों एवं कसमसाती हुई संवेदनाओं तथा जीवन संघर्ष को वाणी देने का प्रयत्न किया है। उनके कथासाहित्य में देहाती अंचल, पहाड़ी अंचल, समतल अंचल, मानवजीवन तथा प्रकृति-परिवेश का बड़ा गहरा सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। जहाँ मार्कण्डेय की कुछ कहानियाँ शहरी सभ्यता, आधुनिक नगर बोध, सेक्स-पीड़ा, मिथ्याडंबर, खोखली मर्यादा तथा अनैतिक कार्यो को अभिव्यक्त करती हैं, वहाँ वे अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के विविध रुपों को दर्शाते है।

पुंडलीक नायक मूलत: नाटककार है, उनकी चालीस के करीब नाट्यकृतियाँ हैं, फिर भी पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में गोवा के जनजीवन का नया धरातल उपलब्ध होता है। परिवेशगत समस्याओं को प्रगतिशील दृष्टिकोण से अभिव्यक्ति प्रदान करते है। उनके कथासाहित्य में सामाजिक यथार्थ को सार्थक अभिव्यक्ति मिली है। कथाकार पुंडलीक नायक परंपरा और आधुनिकता के द्वंद के परिणामों को 'अच्छेव' में उकेरते है। उनके कथासाहित्य में आधुनिकता ने

कहीं- कहीं रुढ़ियों को तोड़ा है तो कहीं आपसी संबंधों एवं सद्भाव को भी विनष्ट होते दिखाया गया है।

3.1 मार्कण्डेय का जीवन एवं व्यक्तित्व

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथासाहित्य में मार्कण्डेय का स्थान महत्वपूर्ण है। मार्कण्डेय स्वातंत्र्योत्तर कथासाहित्य में अंचल की लोकसंस्कृति, भाषा, स्थानीय जीवन को सूक्ष्मरुप से चित्रित करने में सिद्ध हस्त रचनाकार माने जाते हैं। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार ''मार्कण्डेय मुख्यतया आंचलिक कहानीकार है और उन्होंने अपनी कहानियों में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय ग्रामों में हुए परिवर्तनों को यथार्थता से उजागर करने की चेष्टा की है।''(1)

मार्कण्डेय का जन्म 2 मई सन् 1930 में उत्तरप्रदेश के जौनपुर जिले के बराई नामक ग्राम में किसान परिवार में हुआ, वे जाति के क्षत्रिय है तथा उनका पूरा नाम मार्कण्डेय सिंह है। सिंह की उपाधि कभी नहीं लगाई वजह यह हो सकती है कि समाजवादी विचारों के कारण जाति-पाँति को दर्शाना नहीं चाहते हो।(2) वे बराई में प्रारंभिक शिक्षा संपन्न होने के उपरांत चौथे दर्जे से पढ़ने प्रतापगढ़ में चले गये। उन्होंने स्वयं लिखा है कि- ''आठ-दस साल का वह कालखंड जब मैं एक सामान्य किसान के घर से निकलकर प्रतापगढ़ अपनी एक रियासतदार रिश्तेदार के यहाँ आगे पढ़ने के लिए चला गया था।''(3) इतनी कम उम्र में अपना घर छोड़ना उनके लिए दु:खदायी था। अपने बाबा का गहरा प्रभाव उनपर होने के कारण माध्यमिक शिक्षा पूर्ण करने से पहले ही उनकी मृत्यु ने उनको दु:ख के भवसागर में अकेला छोड़ दिया। बाबा के न रहनेपर भी उनके विचारों से उन्हें सदैव प्रेरणा मिलती रही। दूसरों के सुख-दु:खों के लिए जीनेवाले सच्चे सहृदय का अंत होने के उपरांत उन्होंने महसूस किया कि 'मेरे लिए तो एक विरानगी का आलम ही छोड गए बाबा। भीतर जैसे सूना हो गया, राह विहीन सूना जिसे तोड़ पाना एक छोटे से बच्चे के लिए पुरी तरह असंभव था।'(4) यह विरानगीका आलम उन्हें जीवन को गंभीरता से देखने के लिए बाध्य करने लगा।

सुरेन्द्र प्रसाद के अनुसार- ''बाबा की मृत्यु के बाद मार्कण्डेय के जीवन में एक गहरी गंभीरता आ गई, मन आंदोलित हो उठा और ऐसी मन:स्थितियों में किस्मत ने उन्हें अवध की सड़ी गली तालुकेदारी के बीच ला खड़ा किया। जहाँ उन्होंने जनता पर होने वाले अत्याचारों और अन्यायों को देखा। लगान की वसूली के लिए बेगार और नजराने के लिए उनके साथ होनेवाले पशुओं से भी बदतर सलूक को देखा। जिन्होंने उनके संस्कारों को और भी बढ़ा दिया जो विरासत के

रूप में उन्हें अपने बाबा से मिले थे।''(5)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रावास में सन् 1950 के आसपास कमलेश्वर, दुष्यंतकुमार आदि सहयोगियों के साथ वे भी पढ़ रहे थे इसी दौरान प्रगतिशील लेखक संघ की गोष्ठियों में वे भाग लेते थे जिससे साहित्यिक गतिविधियों में भी परिवर्तन आता गया। पढ़ाई पूरी होने के बाद छात्रावास छोड़कर श्रीकृष्णदास अंग्रेजी पत्रिका के निवासस्थान पर रहने चले आये। श्रीकृष्णदास 'अमृत बाजार' के हिन्दी संस्करण 'अमृत' के संपादक थे । यहीं रहते हुये वे अपने परिवार को पत्नी, दो बेटियाँ और बेटों को साथ लाये थे। सारांशतः गाँव छोड़कर इलाहाबाद में परिवार संग बस गये। बेटी को डॉक्टरी पढ़ाने के साथ ही भाईयों की जिम्मेदारी को भी बखूबी निभाया है।

मार्कण्डेय की आमदनी का कोई जरिया नहीं था, अपने जीवन में मार्कण्डेय ने नौकरी नहीं की, लेकिन स्वतंत्र 'नया साहित्य' प्रकाशन संस्था निकाली। जिसमें उन्होंने शेखर जोशी, अमरकान्त, कमलेश्वर आदि के कहानीसंग्रह भी प्रकाशित किये हैं। विगत दशक में उन्होंने 'कथा' नामक पत्रिका भी निकाली। योजनाबद्ध तरीके से उसका संपादन भी किया। इसलिए कवि, लेखक, प्रकाशक, समालोचक (कहानी की बात) पत्र के संपादक आदि विभिन्न तरीकों से उन्होंने लेखकीय कार्य किया है।

विचारधारात्मक स्तर पर मार्कण्डेय किसी पार्टी के आजीवन सदस्य नहीं रहे। लेकिन मोटे-तौर पर सेक्युलर और प्रगतिशील विचारों के रहे है। 1982 में जब जनवादी लेखक संघ का निर्माण आखिल भारतीय स्तर पर हुआ तब वे प्रलेस को छोडकर जलेस के कार्य कारिणी परिषद के महत्वपूर्ण सदस्य रहे हैं।

मार्कण्डेय मध्यमवर्ग के कदकाठी के गौरवर्ण के व्यक्ति रहे है। अक्सर उन्हें सफेद धोती कुर्ते में देखा जा सकता है। ''धवल केशों वाले मार्कण्डेय को पहले-पहल मैंने जनवादी लेखक संघ के उद्घाटन अवसर पर देखा था तब मुझे इस बात का पता ही नहीं था कि वे सुरेन्द्र प्रताप सिंह उर्फ नीलकान्त के बड़े भाई है। नीलकान्त ने 'सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य परम्परा' पर अपना शोधकार्य संपन्न किया था और आगे चलकर 'बंधुआ रामदास' जैसा उपन्यास भी लिखा। हिन्दी साहित्य के इतिहास में सियाराम शरण गुप्त और मैथिलीशरण गुप्त भाईयों की जोड़ी, नामवर सिंह और काशीनाथ सिंह भाईयों की जोड़ी, अमरीकन लेखकों विली-ब्रांट की जोड़ी की तरह प्रसिद्ध रही है, एक ही छत के नीचे दो रचनाकार प्रतिस्पर्धी के रुप में सक्रिय हैं। नीलकान्त ने लेखन में मार्कण्डेय का वर्चस्व स्वीकारा है, लेकिन 'नयी कलम' जैसी पत्रिका का सम्पादन भी कथा पत्रिका के समान्तर किया है।''(6)

मार्कण्डेय ने उत्तर प्रदेश के विभिन्न अंचलों के साथ-साथ दक्षिण के प्रान्त एवं गाँवों की भी अथक यात्रायें की हैं। उन्होंने 'कल्पना' पत्रिका के संरक्षक सम्पादक बहरी विशाल पित्ती और राजा दुबे के साथ हैदराबाद, आंध्रप्रदेश में काफी समय व्यतीत किया है। स्वतंत्रता पूर्व दौर में मार्कण्डेय ही नहीं सारा समाज स्वतंत्र भारत की आशा-आकांक्षा जगाते हुये जी रहे थे। देवेश ठाकुर के अनुसार ''आजादी से पूर्व भारतीय जन और जीवन का केवल एक स्वप्न था। अपनी धरती की विदेशी शोषक-शासकों से मुक्ति; मुक्ति का अर्थ उनके लिए देश की समृद्धि खुशहाली और विकास था।''(7) बाद के वर्षों में देश में जो मारक स्थितियाँ पैदा हुई। जिसप्रकार की विषमताओं और विद्रूपताओं ने हमारी स्वर्णीम आशा-आकाक्षांओं को क्षत-विक्षत किया। युवा मार्कण्डेय के मानस में भी विभिन्न प्रकार के भाव-विचार आंदोलित हो रहे थे। सुरेन्द्र प्रसाद का कहना भी है कि ''मार्कण्डेय के सामने यद्यपि उस समय कोई ठोस वैचारिक आधार नहीं था किंतु पराधीनता की पीड़ा की गहरी अनुभूति अवश्य थी।''(8)

मार्कण्डेय ने गांधीवादी चिन्तन की विफलता को समय रहते जान लिया था। यशपाल द्वारा विरचित 'गांधीवाद की शव परीक्षा' के अन्तर्तत्व को उन्होंने 'हंसा जाई अकेला' कहानी में यथार्थ के कलात्मक प्रतिबिम्बन रुप में रचा है। आनन्द प्रकाश ने सच ही कहा है कि ''स्वातंत्र्योत्तर दौर में मार्कण्डेय उन विरल लेखकों में से है जिन्होंने पूरी तरह सोच समझकर राजनीति को अपने लेखन के केन्द्र में रखने का निर्णय लिया।''(9)

मार्कण्डेय यथार्थवादी प्रवृत्ति के लेखक हैं, उन्होंने प्रेमचंद की तरह ही गांधीवादी दर्शन से समाजवादी आस्थाओं की ओर प्रयाण किया है। वे मनुष्य को सामान्य जीव की तरह रोटी, कपडा, मकान के लिए तरसता न देखकर सम्पूर्ण मानवीय व्यक्तित्व के प्रज्ञा और कला स्वरुप में देखने के कायल रहे हैं।''(10) जार्ज लूकाच और मार्कण्डेय के यथार्थवाद सम्बन्धी विचारों में विचारधारात्मक स्तर पर अंतर कम ही है। कभी जार्ज लुकाच ने कहा था कि ''यथार्थवाद की केन्द्रीय सौन्दर्यशास्त्रीय समस्या सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्व का पर्याप्त मात्रा में समुचित प्रस्तुतिकरण है।''(11) जो कार्ल मार्क्स की परम्परा का परवर्ती चिन्तन, संस्करण है। मार्कण्डेय 'अग्निबीज' का लेखन हो अथवा 'सेमल के फूल' का वे किसी भी स्त्री या पुरुष पात्र को उसकी अस्मिता प्रदान कर पूर्ण मानवीय चरित्र में उत्कर्ष दिखाना चाहते हैं।

3.2 मार्कण्डेय का सृजनात्मक लेखन

प्रत्येक साहित्यकार अपनी निजी तथा सामाजिक जीवनानुभूतियोंसे प्रेरित होकर साहित्यकर्म निभाता है। जीवन की सच्ची अनुभूतियों से लेखक की यथार्थ संवेदनाओं का परिचय प्राप्त होता है। मार्कण्डेय की रचनाओं में यथार्थ अनुभूतियों का संवेदनशील संस्कारों के तहत् जीनेवाले, सच्चाईयोंसे मुँह न मोडनेवाले तथा विभिन्न लोकाचार एवं ग्रामीण परिवेश का सप्तरंगी चित्रण है। अरहर, गेहूँ की खेती, (दूर जहाँ तक नजर जाती है, वहाँ तक), सांझ की लालिमा परिवेश पर पसारनेवाला सूरज, बैलों की मदद से पानी खींचनेवाली मोट और कल-कल की ध्वनि करते हुए खेतों में बहनेवाला पानी आदि का सजीव वर्णन मार्कण्डेय के कथासाहित्य को जीवन्त बनाता है। अनुभूति सामान्यत: परिस्थितियों एवं परिवेश द्वारा दिया गया विचार या भाव है। जीवन में जो कुछ व्यक्ति के समक्ष होता है वह सबकुछ अनुभव नहीं है। जीवन की अनेक चीजों को वह व्यक्तिगत चेतना के आयामों से ग्रहण करता है इसलिए सबकी अनुभूतियाँ भी समान नहीं होती।

मार्कण्डेय की अनुभूति युगीन परिवेश के अनुरुप बराबर परिवर्तित होती रही है। जिस गाँव से वे जुड़े हुये है, वहाँ की कोई अकेली अनुभूति नहीं बल्कि उसके पीछे एक सन्दर्भ एवं अनुभूतियों की कड़ी भी झांकती हुई नजर आती है और इस अनुभव विश्व के अबाध और अथाह रूप को विशिष्ट दृष्टिकोण, लक्ष्य अथवा उद्देश्य के अनुसार उन्होंने अभिव्यक्ति दी है, जिसका परिचय हमें उनके कथासाहित्य से होता है।

उनका कथासाहित्य आज के जीवन की बड़े ही तीखे यथार्थ-चेतना की अभिव्यक्ति है। मार्कण्डेय शहर एवं गाँव के पिछड़े हुए अंचल के जीवन सत्यों को, टूटते-बनते जीवन मूल्यों को रुपायित कर रहे है। वे जीवन की गहराई को, भले-बुरे पक्षों को, यथार्थ अभिरुचि और मानवतावादी दृष्टि से चित्रित करनेवाले सक्षम रचनाकार हैं। एक ओर मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित एवं प्रेरित होने के फलस्वरुप शोषित मानव के प्रति गहरी आत्मीयता, पीड़ा-बोध उनके कथासाहित्य को प्रभावशाली एवं प्रखर बनाता है तो दूसरी ओर अंचल विशेष से जुड़े होने से लोगों के रहन-सहन, बोलचाल, खान-पान, संस्कृति के सूक्ष्म अंग, ठेठ बोली से कथावस्तु भी प्रवाहमयी प्रतीत होती है।

वर्तमान दौर तक मार्कण्डेय के आठ कहानीसंग्रह प्रकाशित हुए हैं जिसमें साठ से अधिक कहानियाँ संकलित है- 1) पानफूल(1954), 2) महुए का पेड़(1955), 3)हंसा जाई अकेला (1957), 4) भूदान (1958), 5) माही (1961) 6) तारों का गुच्छा (1961), 7) सहज और शुभ (1964) 8) बीच के लोग (1975)

पानफूल (1954)

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त हिन्दी कहानी ने नयी करवट बदली। कथावस्तु, चेतना, शिल्प आदि की दृष्टि से कहानी के नवीन उपकरणों की तरफ ध्यान बढ़ाया। पाश्चात्य साहित्य से घनिष्ठ सम्पर्क प्राप्त होने के कारण भारतीय कहानीकार नवीन विचार, नवीन जीवनदृष्टि, नवीन कलाभिव्यक्ति, नवीन शिल्प की ओर उन्मुख हो गये। राष्ट्रीयता का स्थान अन्तर्राष्ट्रीयता ने लिया। गांधीवाद के स्थान पर साम्यवाद आया। वैयक्तिक समस्याओं के स्थान पर सामाजिक समस्याओं ने प्रवेश किया। प्राचीन मान्यताओं का स्थान नवीन मान्यताओं एवं नए मूल्यों ने लिया। इसतरह सामाजिक, पारिवारिक एवं वैयक्तिक विषमताओं, विसंगतियों और विकृतियों को नई कहानी में प्रश्रय मिला। इसी दौर में मार्कण्डेय का पहला कहानीसंग्रह 'पान-फूल' 1954 में प्रकाशित हुआ जिसको "हिन्दी जगत में भव्य स्वागत और नयी कहानी की नयी धारा का सूत्रपात"(12) के रुप में सहर्ष स्वीकारा। इस कहानीसंग्रह में कुल 12 कहानियाँ संग्रहीत है।

संग्रह की प्रथम कहानी 'गुलरा के बाबा' गांव की मिट्टी से जुड़ी कहानी है। बाबा का चरित्र उनके पिताजी की याद ताज़ा करती है। गाँव में अपना रुतबा कायम रखनेवाले बाबा का लंबा-चौड़ा डील-डौल, हाथी के सूंड जैसे हाथ, बड़ी-बड़ी तेज आँखे, शक्ति एवं बल की साकार मूर्ति के कारण लोग बाबा को हनुमान कहते थे। 'गुलरा' बाबा के हरे पेड़-पौधों का बगीचा है- जिससे बाबा अपार स्नेह करते है। वैसे ही उनका पूरे गांव के प्रति सौहार्द भाव है- चैतु अहिर को सरपत काटने से मना करना, शक्ति प्रदर्शन में चैतु का हार जाना, बाबा के छोटे भाई देवी सिंह के सामंतवादी संस्कार, तथा बाबा का भेदभाव रहित व्यवहार जो जातिगत संकीर्णताओं से मुक्त है, चैतु के घायल होने के समाचार तथा दयनीय एवं टूटे हुये छप्पर की परिस्थिति से द्रवित होकर उसकी सेवा में जुट जाना और टूटे हुये छाज़न के लिए मजदूरों को आदेश देकर नया छप्पर डलवाना आदि कुछ प्रसंगों को लेकर यह आदर्शवादी चरित्र मार्कण्डेय ने उभारा है।

'गुलरा के बाबा' कहानी का चरित्र वैशिष्ट्य प्रेमचंद की कहानी 'रानी सारन्धा' के शिल्प सौष्ठव की याद दिलाता है। पात्र का इस तरह वर्णन हो कि वह हमारे नेत्रों के सामने सजीव रुप में खडा हो जाये। ऐसी ही स्थिति गोदान उपन्यास के 'होरी' पात्र की है। यह मार्कण्डेय की किस्सागोई शैली का प्रभाव है कि उन्हें भैरवप्रसाद गुप्त और दूधनाथ सिंह जैसे मित्रलोग 'गुलरा के बाबा' की संज्ञा देते रहे हैं।

'नीम की टहनी' ग्रामीण जीवन में फैले अंधविश्वास तथा पियारी के

सच्चे प्रेम के लिए आत्मसमर्पण करनेवाले कुमार की कहानी है। लेखक ने कुमार को आदर्श भूमिका में प्रस्तुत किया है। महामारी की चपेट में आए गाँव की परिस्थितियों, भयानक खामोशी, गांव वालों की आतंकित, आशंकित मानसिकता, सियारों-कुत्तों का रोना आदि से कहानी यथार्थ धरातल पर चित्रित हुई है।

'सवरइया' और 'पानफूल' प्रेमचन्द, यशपाल और भैरवप्रसाद गुप्त की परंपरा की कहानियाँ है। गाँव के अंचलों में पशुपक्षियों का स्थान महत्वपूर्ण है। मानव एवं पशुओं के आत्मीय सम्बन्धों का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। प्रसिद्ध आलोचक मधुरेश के शब्दों में- " 'सवरइया' में आदमी की शोषण वृत्ति अत्याचर एवं षडयंत्र-प्रियता की तुलना में एक बैल की निश्चल आत्मीयता एवं अपने मालिक के प्रति उसका निष्कपट लगाव कहीं अधिक आश्वस्त करता है।"(13) तो 'पानफूल' के बारे में उनके विचार है कि- "वह कहानी सामाजिक ऊँच-नीच के कृत्रिम विभाजन के विरोध की एक बनावटी आदर्शवादी और भावुकतापूर्ण कहानी है।"(14) नीली रितियाँ एवं पूसी के भावात्मक सम्बन्धों पर आधारित इस कहानी में बावड़ी में डूबती हुई रितिया को बचाने के लिए नीली कूद पड़ती है और दोनों को बचाने हेतु पूसी भी कूद पडती है अंततः तीनों की मृत्यु हो जाती है। मालकिन-नौकरानी संबंधी ऊँचनीच की भावना के दरिया को समेटने की कोशिश इस कहानी के माध्यम से की गई है।

'धूरा' के जीवन-प्रसंगों, दयनीय स्थितियों को ग्रामांचल की पार्श्वभूमि पर रेखांकित किया गया है। सुख-सुविधापूर्ण जिंदगी बसर करनेवाली धूरा पति के निधन के पश्चात् बेटों और बहुओं द्वारा उपेक्षित अपमानित तथा प्रताड़ित जिंदगी का सामना करती है, उसके रंगीन सपनों पर पानी फेर दिया जाता है। खुद कष्ट सहकर वह दूसरों की सेवा में लगी हुई है। अपने पुत्र से बेइज्ज़त होकर भी खूद उसकी आबरु बचाकर ममता की छाँव में कमी आने नहीं देती। मार्कण्डेय ने सशक्त चरित्र के माध्यम से गांव की यथार्थ स्थितियों तथा प्रसंगों का उद्घाटन किया है। बाढ़ तथा उससे उत्पन्न ग्रामीण मनःस्थिति आदि के चित्रण से कहानी की सजीवता एवं प्रामाणिकता में वृद्धि हुई है लेकिन अंत में मंगरु के प्रायश्चित से कहानी ने आदर्शवादी मोड़ लिया है, जो शायद प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद के लेखन का प्रभाव हो।

'रामलाल' ग्रामीण पारिवारिक जीवन पर आधारित कहानी है, पत्नी के मरने के बाद रामलाल की बहू को उसकी भाभी द्वारा सताया जाता है। उसके प्रति ममतापूर्ण व्यवहार रखने के कारण रामलाल को ही बेइज्ज़त होकर गाँव से बाहर निकाल दिया जाता है। उसकी जिंदगी नर्क से भी बदतर हो जाती है। तीन वर्ष के बाद पोते को देखने की इच्छा से वापिस आता है लेकिन उन्हीं परिस्थितियों

का उसे फिरसे सामना करना पड़ता है। धूरा और रामलाल दोनों अपनों द्वारा ही प्रताडित पात्र है। रामलाल एवं धूरा की विवशता, आंतरिक दु:ख का वर्णन इन कहानियों में मिलता है। 'संगीत', 'आँसू और इंसान', 'मुंशीजी', 'सात बच्चों की माँ', 'कहानी के लिए नारी पात्र चाहिए' आदि अन्य कहानियाँ इस संग्रह में संकलित हुई हैं। 'कहानी के लिए नारी पात्र चाहिए' अलग ढंग की कहानी है जिसमें नारी चेतना के साथ-साथ नारी संबंधी अनेक प्रश्नों एवं समस्याओं को उजागर किया गया है।

महुए का पेड़ (1955)

'महुए का पेड' कहानीसंग्रह 1955 में प्रकाशित हुआ। स्वानुभूति, भोगा हुआ यथार्थ, सातवें दशक की कहानियों में अहम् स्थान प्राप्त कर रहा था। मार्कण्डेय भी प्रकारान्तर से भोगे हुए यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति करते है। इसमें 'महुए का पेड़', 'जूते', 'एक दिन की डायरी', 'नौ सौ रुपए और एक ऊँट दाना', 'साबुन', 'मन के मोड़', 'मिट्टी का घोड़ा', 'आदमी के बच्चे', 'मिस शांता' आदि कहानियाँ संग्रहीत हैं।

'महुए का पेड़' कहानी गरीब 'दुखना' की निर्धनता, बेबसी महुए के प्रति पुत्रवत प्रेम को दर्शाती है। उसकी विपन्न स्थिति, लिपी-पुती, साफ-सुथरी झोपड़ी, दो एक बरतन, मिट्टी की गगरी से पता चलती है। महुए के पेड़ को उसने सींचकर, रक्षा कर बढ़ा किया है। 'कभी वह उसका बच्चा था लेकिन अब उसके विशाल पौरुष की छाया में वह अपने को रक्षित समझती है। दिन रात महुए की रखवाली करती है क्योंकि ठाकुर की नजर उस पेड़ पर है लेकिन दुखना किसी भी कीमत पर उसे तोड़ने के लिए तैयार नहीं है। उसके पति के मरने के बाद दूसरे दिन ही बेदखली का हुकुमनामा भेजकर दस बीघे जमीन तथा पचास पेड़ों का बाग ठाकुर ने हथिया लिया था। उसके मन में भी तीर्थयात्रा करने की साध थी। हरखू की माँ के साथ मलमास में नहा आने की योजना बनाकर वह रिश्तेदार से पैसों का प्रबंध करने जाती है। तब उसकी अनुपस्थिति में महुए का पेड़ ठाकुर काट डालता है जिसके नीचे उसकी झोपड़ी-मडैय्या भी टूट जाती है। वापिस आनेपर उसके मोहपाश का आधार नहीं रहता तो वह तीरथ जाने के लिए बेझिझक तैयार हो जाती है। स्वार्थी ठाकुर पूँजीपति वर्ग का प्रतीक है, दुखना पर ढाये गये जुल्मों से साफ पता चलता है कि शोषक समाज में शोषितों की एक नहीं चलती।

'जूते' कहानी में ठाकुर के यहाँ काम करनेवाले अबोध, निरीह, अनभिज्ञ छोटे बालक मनोहर का मानसपटल तथा ठकुराइन एवं ठाकुर का नौकरों से परंपरागत व्यवहार, तथा दिल्ली से आयी उनकी बहू का मानवतापूर्ण आचरण व्यक्त

हुआ है। मनोहर छोटी बच्ची को जूता पहनने की समस्या से परेशान है, बिना कील नाल के यह जूते बच्ची के पाँवों में फिट कैसे बैठते है, उसने तो मालिक का चमरौधा देखा है और पलाश के पत्ते, जो जूते की तरह काम आते है। मालकिन दिल्ली लौटते वक्त उसको लाल लाल जूतों का डिब्बा हाथ में थमाती है लेकिन अज्ञानता एवं ठकुराइन के डर से वह आग की तरह जलती दोपहरिया की धूप में डिब्बा बगल में दबाये स्टेशन से वापिस आ जाता है।

'मन के मोड़' कहानी रामशरण, उसके चचेरे भाई जीतू तथा दूसरी पत्नी द्रौपदी की कहानी है। घर-परिवार में बिन माँ-बाप के बच्चे की ममता से अच्छी-परवरिश करने पर घरवालों तथा गाँववालों के बुरे-गलत विचारों से फूट पड़ती है। बच्चे को लाड़ प्यार दुलार से बिना खेती के कामों में जुटाकर वह पढ़ा लिखाकर, साफ-सुथरा पहनाकर अच्छा व्यक्ति बनाना चाहती है। लेकिन अन्य बच्चों की तुलना में साफ रहना, अच्छे कपडे पहनना यह वे बर्दाश्त नहीं कर पाते और चंदर की संगति से उसको कबड्डी में घसीटकर मारा जाता है, मास्टर की भी ऊपर से मार पड़ती है, तो उससे जीतू का स्कूल छूट जाता है। गाँव में देर तक घूमने और बाहर रहने से रामशरण की चिन्ता उदासीनता में बदलती रहती है। जीतू द्वारा ठाकुर के बेटे को कुश्ती में हराये जाने से उनसे दुश्मनी मोल लेनी पड़ती है। द्रौपदी को इन सबकी चिंता नहीं सताती। वह उसके जीतने पर खुश है। गाँववालों एवं मंझले भाई-भाभी के तानों से तंग आकर जीतू अपना चूल्हा अलग जलाता है लेकिन उनके यहाँ नहीं खाता। द्रौपदी को बीमारी में जब इसका पता चलता है तब उसकी ममता फिर से जाग उठती है वह जीतू को गले लगा लेती है। संतबख्श सिंह के शब्दों में "इस कहानी में द्रौपदी सगी माँ न होने पर भी अगाध प्रेम की वर्षा अपने लाड़ले पर करती है तथा गाँववालों की ईर्ष्या, द्वेष की भावना यह सब ग्रामीण अंचलों की स्वाभाविकतायें है- 'साबुन' कहानी इन मायनों में थोड़ी कृत्रिमता की झलक लिए हुए है।"(15)

'साबुन' कहानी में बटुक का खेती के प्रति प्रेम एवं पढ़ने-लिखने के कारण राजेश का शहर की ओर पलायन एवं बेरोजगारी की समस्या व्यक्त हुई है। राजेश की माँ ने पति का विरोध सहते हुये उसे पढ़ाया लिखाया, साफ-सुधरा रखा लेकिन बढ़ा होने पर शहर में छः महीने मारे-मारे घूमने पर भी जब नौकरी नहीं मिलती है, तब उस बेरोजगार युवक के प्रति उसके पिता के विचार बदले हुये है, उसने ऐसी आशा की थी कि वह कुछ कमाकर लायेगा तो आर्थिक तंगी कम होगी उल्टा उसके कपडे धोने के लिए साबुन लाने की बात पर वह चिढ़ता है, परेशान होता है और राजेश की माँ को साफ कह देता है, कि साबुन के लिए वे अपनी देह तो नहीं बेच सकते।

इधर राजेश घर की परिस्थितियों से वाकिफ है वह एक चिट्ठी देकर चला जाता है। जिसमें लिखा है- ''आज भी जब दर-दर घूमकर नौकरी के बारे में बात करनी होती है, तो कितना बुरा लगता है, मै क्या बताऊँ। कुछ समझ नहीं पाता। तुम जो बनाना चाहती थी मुझे वह गलत था माँ। हम अपने से टूटकर धूल में ही मिलेंगे।..... शहरों में चिकने लोगों का राज्य है, जो सिफारिश और घूस पर जीते हैं।''(16) कहानी के अंत में राजेश को कटु यथार्थ और वास्तविकता त्रासदी का ज्ञान हो गया है वह एक ओर धूल में मिलने की प्रतीकात्मकता को भी प्रकारान्तर से दर्शाता है। साबुन की टिकिया भले ही शहरी संस्कृति और मध्यवर्गीय उजलेपन का प्रतीक हो लेकिन हमें (ग्रामीणजन को) तो एक दिन धूल में ही मिलना है; किसान के बेटे को खेती ही करनी है। यह अंत-पाठक के मन में करुणा-पॅथोस व सहानुभूति को जागृत करता है।

'मिस शांता' चरित्र प्रधान कहानी है जिसमें अकेली रहनेवाली नारी के प्रति पुरुषों का दृष्टिकोण जाहिर हुआ है। जिसमें लेखक की बीमार पत्नी के लिए शांता का चिंताग्रस्त होना, उसके लिए डाक्टर दवा का इंतजाम करना, उनकी बच्ची की देखभाल करना आदि के कारण बदल-सा जाता है। सारांशतः शांता के चरित्र को सूक्ष्मता से मार्कण्डेय ने चित्रित किया है।

'मिट्टी का घोड़ा' कहानी समाज में परिव्याप्त वर्ग-विषमता की त्रासदी तथा बच्चों की मानसिकता के यथार्थ को उजागर करती है।

ग्रामीण परिवेश पर आधारित 'हरामी के बच्चे' कहानी अमीर-गरीब की सोच, प्रगतिशील-विचारधारा एवं नयी चेतना जगानेवाली है। गोमती के किनारे बसे हुये इस गाँव में पंडित ही सर्वेसर्वा है, उसकी इच्छा से ही सबकुछ गाँव में घटता है। अपने परंपरागत संस्कारों के कारण ग्रामीण जन सबकुछ सहते रहते है। सत्ती पर पंडित अत्याचार करता है, उसके पेट में पल रहे बच्चे को गिराता है, यह सहन न होकर पंडित के घर में काम करनेवाले नौकरों के मन में नई मानसिकता तथा चेतना जागृत होती है। वे पंडित की हत्या कर देते हैं। 'हरामी के बच्चे' कहानी में आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है एवं जनजागृति के कारण जमींदार वर्ग के अत्याचार से बहूबेटियों को मुक्ति मिलेगी तथा नए परिवर्तन को जन्म देगी यह आशंसा की जा सकती है।

हंसा जाई अकेला (1957)

'कल्याणमन' कहानी में शोषण और असुरक्षा की भावना को दर्शाया गया है। स्वतंत्रता के बाद सरकार की ओर से जमींदारी प्रथा के उन्मूलन की घोषणा की गयी लेकिन गाँव में जमींदारों का शोषण खत्म नहीं हुआ है। मंगी की जीविका

का एकमात्र साधन पोखरी है जिसको वह जमींदार से बचाये रखना चाहती है। मंगी से पोखरी न मिलने पर वह उसके बेटे पनारू को अपनी ओर मिलाकर मंगी के विरोध में खड़ा कर देता है। पनारु के व्यवहार से मंगी का दिल टूट जाता है। जमींदार की साजिश का पता चलने पर वह हताश हो जाती है। वह पति के मृत्युपरांत जिस पोखरी को बचा पायी थी उसे लड़का नहीं बचा पायेगा। वह इस तथ्य को वह जान जाती है। विवेच्य 'कल्याणमन' कहानी में एक ओर जमींदारों के शोषणमूलक प्रवृत्तियों का वर्णन लेखक ने बखूबी किया है, तो दूसरी ओर वे बेबस लाचार निर्धन ग्रामीणों की पीडा एवं हताशा को रेखांकित करने में कामयाब हो गये हैं।

'सोहगइला' कहानी में परंपरागत अंधविश्वास रुढ़ियों एवं मान्यताओं पर प्रहार किया है। नवविवाहित रनियाँ को ससुराल जाने से पूर्व माँ द्वारा व्यावहारिक बाते तथा सोहगइला को हाथ में थमाकर ससुराल तक हाथ से न छोड़ने का महत्व बताया जाता है। वह भूखी-प्यासी डोली में बैठी रहती है, लेकिन काफी देर बीतने पर प्यास से बेहाल हो जाती है, उसी व्यवस्था में पानी का लोटा सामने देख असावधानी से सोहगइला हाथ से छूट जाता है। पानी पीने के बाद अब सोहगइला हाथ में नहीं पाती तब व्यंग्यभरी मुस्कान उसके चेहरे पर बिखर जाती है। माँ की दुर्दशा को याद कर सोहगइले की प्रचलित मान्यताओं सम्बन्धी खोखलापन तथा निरर्थकता उसके समझ में आती है।

स्वातंत्र्योत्तर पंचवर्षीय योजनाएँ संपन्न वर्ग के लिए वरदान तो गरीब जनता के लिए अभिशाप बन गयी है- इसको भोला के माध्यम से 'दोने की पत्तियाँ' कहानी में चित्रित किया गया है। कड़ी मेहनत से भोला अपने छोटे से खेत में साग सब्जी की अच्छी पैदावार करता था, साफ-सुथरी झोपड़ी, खेत, नीम का हरा-भरा पेड़ यह उसकी सृष्टी 'गाँव की दुलहिन' के नाम से जानी जाती है। इस गाँव में नहर-निर्माण का कार्य पंचवर्षीय योजना का फल है। जब नहर गाँव के एक धनिक तिवारी के खेतों में उसके न चाहने के कारण रुक जाती है। मिनिस्टर की सिफारिश एवं इंजीनियर को रिश्वत देकर नहर को भोला के खेत से खुदवाया जाता है और देखते-देखते उसका खेत उजड़ जाता है। वह यह समझ नहीं पाता है कि उसकी हरीभरी दुनिया किसने नष्ट की। वह इसके लिए तिवारी को जिम्मेदार मानकर उसकी हत्या करने की सोचता है लेकिन दूसरे क्षण उसके मन में इंजीनियर का दोष ऊभरकर आता है उसे मारने वह वहाँ पहुँचता है फिर सरकार का दोष मानकर अपना विचार बदलता है- सरकार भी इस बात से अनवगत है कि उसके पास एक ही खेत है। इन्हीं विचारों में उलझकर वह इंजीनियर के कॅम्प तक पहुँचता है। उसे लोगोंद्वारा चोर एवं हत्यारा समझकर पकड़ा जाता है, इस कहानी के माध्यम

से प्रतिष्ठित एवं सभ्य लोगों के काले कारनामों तथा साधारण किसान वर्ग पर ढ़ाये अत्याचारों, उनकी व्यथा-पीड़ा का चित्रण किया है।

'बातचीत' कहानी का प्रारंभ गाँव के बड़े-बूढ़े लोगों की चौपाल में होनेवाली बातचीत से होता है। जिसमें गाँव के युवक-युवतियों के प्रेमप्रसंगों की भी चर्चा होती है। रोमांटिक चर्चा के बीच गाँव के यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है। सितबिया के सौंदर्य एवं चालचलन से चर्चा प्रारंभ होकर पंचायत, सरपंच, ठाकुरों के अत्याचार, पुलिस की कारगुजारियों, चोरी और डाके, भूख और गरीबी जैसे विषय को भी समेटती है। इस कहानी में अग्गी के पिता का चरित्र बड़े ही प्रभावशाली ढंग से उभारा गया है।

'हंसा जाई अकेला' कहानी में स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण परिवेश में उभरी हुई निराशाजनक असंतोषजनक स्थितियों को व्यक्त किया गया है। समाज में व्याप्त बुराइयों की ओर संकेत करते हुए राजनीतिक दावपेचों को भी खोलने का प्रयास किया है। विवेकी राय ने माना है कि 'हंसा जाई अकेला' ''स्वातंत्र्योत्तर प्रथम दशक की उभरती निराशाजनक परिस्थितियों के प्रति गंभीर विक्षोभ की अभिव्यक्ति है। भ्रष्टाचार, शोषण और असुरक्षा की गहनता मोहभंग की स्थिति तक पहुँच जाती है।''(17)

हंसा की व्यक्तिरेखा का चित्रण करते हुये चुनाव का प्रचार करने हेतु आयी हुयी सुशीला से परिचय एवं इसकी प्रेम में परिणति हो जाती है। चुनाव के जीत के साथ सुशीला की बीमारी में मृत्यु हो जाने के बाद हंसा इस सदमे को बर्दाश्त नहीं कर पाता और वह पागल हो जाता है, ऊपरी धरातल पर यह हंसा और सुशीला की प्रेमकहानी महसूस होती है लेकिन स्वातंत्र्योत्तर काल में आकांक्षाओं की पूर्ति न होने के कारण जो मोहभंग की स्थिति पैदा हुयी थी उसी का जीवंत दस्तावेज पागल हंसा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

'चाँद का टुकड़ा' कहानी में ठेकेदार के अमानवीय व्यवहार एवं गोमती के दक्षिण में बननेवाली जौनपुर बनारस की सड़क पर कार्य करनेवाले मजदूरों का शोषण दिखाया गया है। भूखे पेट काम करनेवाले मनोहर को चार दिन के बाद भी मेहनताना नहीं दिया जाता है क्योंकि उसका हफ्ता पूरा नहीं हुआ है। बेचारा मजदूर हफ्तेभर के लिए खाने का सामान कहाँ से जुटाये? इस कहानी में सहुअइनिया का चरित्र मानवीय संवेदना एवं सहानुभूति से भरा व्यवहार हृदय को छू लेता है। 'दोने की पत्तियाँ' तथा 'चाँद का टुकड़ा' में समानता भी है सरकार की विकास योजनाएँ, उच्च वर्गों को अथवा ठेकेदारों के लिए मालपुए जैसा कार्य करती है। लेकिन गरीबों को उससे कोई लाभ नहीं होता।

'प्रलय और मनुष्य' बाढ़ की समस्या को व्यक्त करनेवाली कहानी है

इंजीनियर, ठेकेदार, और नेता तीनों की मिली भगत, कमजोर बांध बंधवाकर किये हुए भ्रष्टाचार की कहानी है। मूलत: कहानी बाढ़ की बलवती धारा को रोकने में प्रयत्नशील तथा अंत में सफल होनेवाले मनुष्य की है। ''लेखक का विश्वास तो उस मेहनतकश जनता पर है जो अपने पौरुष से संघर्ष की दिशा में आगे बढ़ती है।''(18) इससे लेखक का आशावादी दृष्टिकोण भी प्रकट होता है। लेकिन यह भी प्रतीत होता है कि कहीं-कहीं मार्कण्डेय पर भैरवप्रसाद गुप्त के 'गंगा मैय्या' उपन्यास का शिल्परुपी प्रभाव गहरा रहा है। कारण 'प्रलय और मनुष्य' और 'गंगा मैय्या' की विषयवस्तु में अधिक अंतर नहीं है।

भूदान (1958)

विनोबा भावे ने कभी 'भूदान' यज्ञ की परम्परा, भारतवर्ष में प्रारम्भ की थी, जो मूलत: गांधीवादी विचारधारा से जुडी है। मार्कण्डेयकृत 'भूदान' संग्रह की कहानियाँ ग्रामीण अंचलों से जुडी हुई है। विविध अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने में समर्थ है। मार्कण्डेय समाज में व्याप्त विषमता, अत्याचार, कुरीतियों के साथ-साथ माता की वात्सल्य अनुभूति को भी व्यक्त किया है। उनकी 'माई' कहानी में वात्सल्य एवं माया की साकार मूर्ति माई का चरित्र-चित्रण अंकित है। माई अपने चारो पुत्रों के प्रति समान रूप से पेश आती है लेकिन वीरु सिगरेट-बीड़ी के अत्याधिक सेवन से जब बीमार पड़ता है तब से वह उसे ज्यादा चाहने लगती है। वह उसे अपने आपसे एक क्षण के लिए भी अलग नहीं करना चाहती, उसके मन में यह विश्वास है कि तीनों पुत्र पढलिखकर अच्छा बनने की हैसियत रखते हैं। लेकिन वीरु की चिंता उसे हमेशा सताती है। इससे स्पष्ट होता है कि माँ अपने कमजोर, असमर्थ बच्चे के प्रति स्नेह एवं वात्सल्यभावना अधिक रखती है। यह एक मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण भी माई कहानी में चित्रित किया है।

'धूल का घर' कहानी भी माता के वात्सल्य भाव को ही रेखांकित करती है लेकिन यहाँ अपनी जेठानी के लड़के का जेठानी के मरने के बाद मनी की माँ उसका पालन-पोषण करती है। वह अपनी बच्ची से भी ज्यादा राम पर वात्सल्य तथा स्नेह की बरखा करती है, उसे कभी यह महसूस भी नहीं होता कि यह मेरी सगी माँ नहीं है। मनी एवं राम के बीच घटित एक घटना से लेखक ने राम के मन में बसा हुआ मनी की माँ का रुप जिससे वह एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होना चाहता है वह सशक्त रूप से दर्शाया है । मनी अपने घरौंदे से अलग माँ के लिए झोपड़ी बनाती है तो राम घरौंदे को ही मिटा देता है। इससे साफ जाहिर होता है कि पराये बच्चे के मन में ऐसी भावना माँ के निश्चल एवं समर्पित स्नेह से ही उत्पन्न हुई है।

ग्रामीण जनता के लिए भारत सरकार ने अनेक योजनायें बनायी। जिनके पीछे उनका उद्देश्य था कि आर्थिक विपन्नता में जीने वाले लोगों को थोड़ी बहुत सहायता मिले, लेकिन ऐसी बहुत सी योजनायें सरकारी कर्मचारी एवं गांव के ठाकुर पटवारी आदि के कारण सफल नहीं बनी। गांव में 'आदर्श कुक्कुट गृह' की स्थापना की बात से रमजान, बसावन जैसे गरीब लोग बहुत ही खुश हो जाते है वे अपनी खुशहाल जिंदगी के हसीन सपने संजोने लगते हैं। आर्थिक लाभ की दृष्टि से वे अपनी मुर्गियाँ आदर्श कुक्कट गृह को दे देते हैं। बी.डी.ओ., तहसीलदार, कलक्टर विकास अधिकारी आदि सब उद्‌घाटन समारोह में उपस्थित होते हैं, गाँव के आर्थिक विकास पर लंबे-चौड़े भाषण दिए जाते हैं तथा अंत में सारे मुर्गी-मुर्गे, अंडे बड़े साहबों के चपरासी,मेम साहबो के नाम पर घर ले जाते हैं, जिससे आदर्श कुक्कट गृह खाली हो जाता है। आर्थिक विकास के नाम पर बसावन एवं रमजान जैसे लोग बुरी तरह फँस जाते हैं और अपने उदरनिर्वाह का साधन भी खो देते हैं। इससे इन योजनाओं की निस्सारता तथा ओहदाप्राप्त कर्मचारियों के दोगलेपन एवं भ्रष्टाचार आदि पर प्रकाश डाला गया है।

'भूदान' विनोबा भावे द्वारा चलाया आंदोलन है, जो भूमिहीनों की समस्या के समाधान में बनायी गयी थी, पर स्वार्थी एवं संपन्न जमींदारों के कारण यह कार्यक्रम सफल नहीं हो पाया। रामजतन हलवाहा विनोबा भावे के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अपनी विवाद से घिरी उपजाऊ एक बीघा जमीन ठाकुर के पाँच बीघा जमीन के प्रलोभन में जाकर दान कर देता है। भूमि वितरण में पाँच बीघा जमीन का कागज मिलता है। रामजतन खुश है कि उसे जमीन मिल गयी है लेकिन उसे 'भूदान' कमिटी के मंत्री यह बताते है कि कागज पर तो जमीन है लेकिन वास्तविकता में वह जमीन गोमती के पेट में चली गयी है। भूदान कार्यक्रमों के तथा आदर्श कुक्कुट गृह के सुनहले सपने देखकर अपनी पूँजी को खोनेवाले ऐसे बहुत से किसान एवं गरीब होंगे जिनका स्वातंत्र्योत्तर दौर में मोहभंग हुआ है तथा वे योजनाओं से मुँह फेरने लगे हैं।

नारी ही नारी की दयनीय स्थिति का कारण होती है; इस कथन को 'बिन्दी' नामक कहानी व्यक्त करती है। बिन्दी और गजराज के आपसी प्रेमसम्बन्धों पर उसकी बुआ को एतराज हैं, वह बिन्दी को नौकरानी बनाकर उसकी संपत्ति को भोगती है। बुआ के शोषण का शिकार बनी हुयी बिन्दी को गजराज देखता है लेकिन कुछ नहीं कर पाता, बुआ की मृत्यु के बाद गजराज उसकी जायदाद उसके नाम करवा देता है तथा अपने साथ भागने का प्रस्ताव उसके सामने रखता है। लेकिन बिन्दी अब गाँववालों से सहानुभूति पाती है तथा यह भी सोचती है कि बुआ के शोषणकाल में गजराज असहाय एवं निष्क्रिय बना रहा तो अब क्यों

भागने का प्रस्ताव रखा है?

इधर बुआ का बेटा पारस जायदाद के लालच में बहुत सी चीजें उसे लाकर देता है, उसीको भ्रमवश वह गजराज के उपहार या स्थानापन्न प्रेमी का उपहार समझकर स्वीकार कर लेती है। इस कहानी के विन्यास में थोड़ी कभी जरुर आयी है लेकिन बिन्दी की व्यथाभरी जिंदगी तथा बुआ एवं पारस के स्वार्थी मानसिकता को मार्मिकता से चित्रित किया गया है।

'शक्साधना' कहानी ढोंगी-पाखंडी साधुओं के यथार्थ को उद्‌घाटित करती है। 'घूरे बाबा' एक ढोंगी संन्यासी है जो अपनी पत्नी एवं बॉस के सम्बन्धों को देख लेने पर, उन लोगों के द्वारा अपनी हत्या हो जाने के डर के कारण पलायन करता है और गांव में 'घूरे बाबा' के रूप में अपनी छद्‌म शक्तियों से प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में अपना अड्डा जमा लेता है। इच्छाओं एवं कामनाओं की पूर्ति के नाम पर वह घेंचू को अपने जाल में बन्दी कर लेता है। उसकी पत्नी 'सुखी' भूरे बाबा की भोग लिप्सा से गर्भवती बन जाती है, उधर घेंचू रतनजोत को लेकर भाग जाता है। यहाँ ग्रामीणों के अंधविश्वास, साधू के बातों पर आँख मूँदकर विश्वास करना, फसल दो मन के बदले दस होने में अपनी मेहनत का फल न मानकर बाबा के प्रताप की दुहाई देना तथा नारी भोग की शवसाधना के पर्याय रूप हैं। इस सब गोरख धन्धों को न समझना आदि कार्य लोगों के अनपढ होने के कारण है। इसी अज्ञान व अंधविश्वास के कारण अनेक लोगों के सुखी संसार बिखर जाते हैं।

'दानाभूसा' सूखे की पृष्ठभूमि में लिखी कहानी है जो अभावग्रस्त ग्रामीणों की व्यथा तथा संघर्ष को बतलाती है। इस छोटी कहानी के माध्यम से भूख से बिलखता परिवार बसंत की राह देख रहा है तथा थोडा सा चींटे चिपका हुआ गुड़ ले आना परिवार को पानी डालकर रस पिलाना स्वयं भूखे रहना, बैल और बकरी के लिए कुछ न जुटा पाने की वजह से निराश होना, उसी हालत में रोटियों के ढेर का सपना देखना, उसको लुटनेवालों की भीड की कल्पना आदि कार्य एक दिवास्वप्न या गरीब की फैण्टेसी है। जिसमें सांकेतिक रुप से लेखक ने सूखा, गरीबों की दीनता, लाचारी, अन्न न जुटा पाने में हताश परिवार, भूख से संघर्ष आदि का यथार्थ चित्रण उपलब्ध है।

'उत्तराधिकार' कहानी में शोषित नारी तथा सामंती शोषण का चित्रण प्रस्तुत है। अलग ढंग की इस कहानी के माध्यम से जमींदारों के भोगविलास एवं यौन शोषण की शिकार नारियों का मार्मिक चित्रण किया गया है।

माही (1961)

'माही' कथा संग्रह में ग्रामीण अंचलों की विशेषताओं तथा निम्नमध्यमवर्गों की समस्याओं को रेखांकित किया गया है। संग्रह की पहली कहानी 'दूध और दवा' में मनुष्य का हर समस्या के साथ जूझना, संकटों का मुकाबला करना तथा जीवन जीने की अदम्य लालसा को प्रगट करती है। इस कहानी का नायक लेखक अपनी बच्ची की बीमारी में न दवा की व्यवस्था कर पाता ह न दूध की। पत्नी की इच्छा है कि वह कोई कहानी लिखे जिससे कुछ पैसे मिले और घर का कुछ सामान आये तथा लेखक चाहता है कि दवा और दूध की परेशानी मिट जाये। लेखक के अपनी प्रेमिका के साथ घनिष्ट संबंध होते हुए भी सामाजिक मान्यताओं के कारण वह उसे मानसिक संतुष्टी नहीं दे पाता। इस कशमकश का तथा आर्थिक अभावों से चिंताग्रस्त परिस्थितियों में जीने की जिजीविषा को लेखक ने कलात्मकता के साथ व्यक्त किया है।

'सतह की बातें' कहानी मूलत: प्रेम एवं सेक्स पर आधारित है। भल्लाकांत, मुकुटलाल और ज्ञान आदि मित्रों का घेरा काफी हाऊस में बैठे काफी की चुस्कियाँ लेते हुए 'प्रेम' इस विषय पर चर्चा कर रहे है। भल्ला का कहना था कि ''शारीरिक सौंदर्य के बिना किसी भी औरत को कोई प्यार कर ही नहीं सकता। तो मुकुटलाल मानते थे कि प्रेम का निर्धारित रास्ता थोडे ही जनाब।''[19] ज्ञान ने मुकुट की बातों का समर्थन किया कि ''रागात्मक सम्बन्धों का कोई एक रूप या नियम नहीं है, न यह सुंदरता, मोटापा या उम्र की किसी सीमा से ही बँधा है यह तो एक इल्युजन है साहब।''[20] इस प्रकार प्रेम को लेकर छेडी हुयी चर्चा में दीक्षित भी साथ देते है।

एक कोने में बैठा हुआ कुरुप व बदसूरत आदमी सबका ध्यान अपनी ओर खींचता है, उसकी पूरी प्रेमकहानी को दीक्षित बताते है जिससे साफ जाहिर होता है कि उनका प्रेम शादी के पूर्व शारीरिक सम्बन्धों तक पहुँच जाता है। तथा वह दूसरे के साथ शादी करती है फिर भी उस बदसूरत आदमी के मन में कोई पीडा नहीं है। प्रेमिका के तमाम पत्र मिलने के बावजूद उससे किसी प्रकार का संपर्क करने की इच्छा उसे नहीं है, वह बुद्धि से यहीं समझता है कि वह सुखी है। अपने बच्चे एवं पति के साथ खुश है। अंत में एक बार वह सहानुभूतिपरक पत्र अवश्य भेजता है लेकिन उस पत्र के जवाब में वह उस पत्र एवं गोलियाँ भेजती है और आग्रह पूर्वक यह कहती है कि, ''तुम पर मुझे पहली बार अविश्वास हो गया है। इसलिए मैं चाहती हूँ कि तुम इसे पहले छोडो क्योंकि तुम मुझे धोखा देकर जी सकते हो, और मेरे पति के पास संवेदना का पत्र लिखकर अपना दु:ख

व्यक्त करके चैन से समय काट सकते हो। इसलिए मैं चाहती हूँ तुम इस दुनियाँ को मुझसे पहले छोडो। पत्र के भीतर जो गोलियाँ है, रात इन्हें पानी से निगलने पर तुम फिर नहीं उठोगे। ..... तुम्हारी मृत्यु का समाचार पाते ही मैं अपने हिस्से की गोलियाँ खा लूँगी।''(21)

कारण उसकी जीने की इच्छा मर जाती है। लेकिन वह अंदर कमरे में जाकर ऑफिस में काम करने वाली प्लीशियाँ को दोनों बाहों में भरकर मनमाना चूमने लगता है। आगे लेखक चित्रकार मंडली से दीक्षित के लिए यह प्रश्न पूछा जाता है कि वह उसी ऑफिस में काम कर रहा है तो प्लीशियाँ और उसके बीच इश्क चल रहा होगा, तो दीक्षितजी का उत्तर कहानी में गडबडी उपस्थित कर देता है - ''वह तो उसी दिन मर गया था। हाँ, प्लीशियाँ अभी तक वहीं है।''(22) तो जो कोने में बैठा हुआ वह बदसूरत आदमी जिसको देखकर चर्चा चलायी गयी थी वह कौन था? यह प्रश्न पाठक के दिमाग में अनुत्तरित रह जाता है।

बदसूरती, मोटापा, प्रेम करनेवाले दो दिलों के बीच बुराईयाँ बनकर नहीं और न ही वे शारीरिक तौर पर इन बातों के लिए प्रेम करते है, वहाँ तो दो दिलों का मिलन होता है शायद लेखक इसी मंतव्य को कहानी में व्यक्त करना चाहते है।

'माही' कहानी में भी प्रेम संबंधों तथा पुरुष वर्ग के स्वार्थी विचारों को व्यक्त किया है। माही की मन:स्थितियों को देखकर कैस समझी हुयी रुक्मा जब उसके हालात से वाकिफ हो जाती है तब उसकी धारणा बदल जाती है। वह माही का पत्र उठाकर ले आयी थी जिसको पढकर उसे उसका दर्द अपना सा महसूस होता है। देखा जाये तो रुक्मा ब्याहता है, दो बच्चे है, माही की स्थिति कुँआरी होकर भी न होने जैसी है। वह अपना सब कुछ प्रीतिश को सौंप चुकी है। फिर भी उसे लगता है कि सब कुछ लुटाने पर भी प्रीतिश को कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ है। इनसे साफ जाहिर होता है कि दूसरों के लिए नारी का जीवन है, अपने स्वार्थ के लिए पुरुष उसका उपभोग करता है, रुक्मी एवं माही दोनों की भिन्न परिस्थितियों में भी उनकी मन:स्थिति एक जैसी है। प्रस्तुत कहानी में माही की मन की व्यथा तथा पुरुष वर्ग के स्वार्थ को यथार्थपरक ढंग से चित्रित किया गया है।

'सूर्या' कहानी दरअसल कामसम्बन्धों पर आधारित, सामाजिक नीतिमत्ता एवं मान्यताओं को ठुकरानेवाली कहानी है। सूर्या एक विद्यालय में प्रधान अध्यापिका है। उससे पूर्व कॉलेज में पढते वक्त सुनील से उसके प्रेमसम्बन्ध थे। उसके बावजूद बच्चे की प्राप्ति के लिए घर के नौकर जगजीत से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है। गर्भवती होने पर वह जगजीत को दूर भाग जाने के लिए कहती है ताकि वह

यह सिद्ध कर सके कि यह बच्चा सुनील का वंशज है, पता चलने पर सुनील भी इन्कार नहीं करता एवं शादी करने के लिए तैयार हो जाता है। लेकिन सूर्या शादी से खुश नहीं होती। बाद में वह बच्चा पेट में उल्टा होने की वजह से गिरा दिया जाता है। कहानीगत वर्णन में सुनील भी उसे छोड़ देता है और वह प्रधान अध्यापिका बनकर दूर इलाके में चली जाती है जहाँ संयोग से उसी स्कूल में जगजीत चपरासी है। कामपीड़ित सूर्या फिर से जगजीत के साथ कामसंबंधों के सप्ने देखने लगती है। कहानी यौन संबंधों एवं सामाजिक रख-रखाव के दोहरे स्तर के कारण उलझनभरी प्रतीत होती है।

यहाँ आधुनिकीकरण की तेज रफ्तार में नारी अपने शील-सर्वस्व को पराये पुरुष को अर्पित करने में कहीं कोई गिल्टी (अपराध बोध) महसूस नहीं कर रही है। काम ही उसके जीवन का आधार है, शादी उसको बंधन लगती हैं आदि विचारों को इस कहानी में प्रस्तुत किया है। 'तारों का गुच्छा' कहानी में भी आधुनिक दृष्टिकोणों को स्वीकारा गया है। बिन ब्याहे मातृत्व को चाहनेवाली रोली के जीवन का चित्रण मिलता है, वह अपनी कल्पना से ईसा के जन्म से 'मेरी' को मिले मातृत्व की अभिलाषा करती है । लेकिन उसके विवाहित प्रेमी को यह सब कुछ असंभव एवं विचित्र लगता है। वह सामाजिक मान्यताओं के तहत रहना चाहता है। एक प्रकार से यह जैनेन्द्र व इलाचन्द्र जोशी की परम्परा की कहानी लगती है।

'आदर्शों का नायक' कहानी में भी प्रेम एवं यौन संबन्धों का चित्रण किया गया है। इस कहानी में उच्चअधिकारी जोगिंदर सिंह के पास एक युवक पहले नौकरी के लिए तथा बाद में उनकी बेटी सविता के साथ विवाह के प्रस्ताव को लेकर आता है।

वह साधारण लडका जोगिंदर सिंह को बिल्कुल पसंद नहीं है। इसलिए उसे अपनी बेटी सविता से शिकायत है कि वह ऐसे लिजलिजे व्यक्ति से सम्बन्ध क्यों बनाये है। वह उसे झूठे अपराध में फँसाने की योजना बना लेता है। इसी सोचविचार में माया और उसके साथ स्थापित यौन सम्बन्धों की भी याद करता है। अपनी इस जिंदगी पर उन्हें कतई एतराज नही है। न हीं उनको यह लगता है कि मैंने किसी की जिन्दगी बरबाद की है। लेकिन अब लड़की को लेकर बडे बड़े आदर्शों की बातें सोंचने लगता है। उसके इस दोगले चरित्र तथा उच्चधिकारियों के भ्रष्टाचार अहं मिथ्याडम्बरों का पर्दाफाश इस कहानी में किया गया है। लगता है इलाचन्द जोशी और जैनेन्द्र की परम्परा में उन्होंने कामसम्बन्धों तथा परपीड़न पर कहानी विधा को आजमाया है।

'पक्षाघात' कहानी में परंपरागत नैतिक बन्धनों के दबाव में से मुक्त

नारी की बच्चे की चाह में पराये पुरुष को भी अपनाने में किसी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं करती। आज के आधुनिक समाज में मूल्यों में बदलाव आया है। लेकिन माँ बनने की सुप्त इच्छा सभी नारियों में प्रभावी रुप से पायी जाती है। चाहे वह सूर्या हो, रीना, रोली या रीना हो और इसके लिए आधुनिक नारी किसी भी धरातल तक जाती है। अगली कहानी 'आवाज' में भी बदलते मूल्यों तथा अफसर शाही के नीचे पीसने वाले मध्यवर्ग का लेखाजोखा लेखक ने प्रस्तुत किया है।

'माही' कहानीसंग्रह आधुनिकता बोध एवं नैतिक मान-मूल्यों की टकहारट के रुप में उभरकर आया है। उसमें 1960 के बाद की मार्कण्डेय की मोहभंग वाली स्थिति, स्वतंत्रता के पश्चात गाँव के प्रगति के सुनहले सपने, कहीं धूल में मिट जाने का आभास, परंपरागत मान्यताओं, एवं संस्कृतिपरक मूल्यों के प्रति मनुष्य की हताश स्थिति, गावों का उजड जाना तथा नगर की ओर प्रयाण आदि सन्दर्भ उभरकर आये हैं।

विवेकी राय के अनुसार- ''इस संग्रह की समूर्ची कहानियाँ नगर जीवन से संबद्ध है और विषय वस्तु के साथ शिल्प की दृष्टि में भी नवीनता उभरी है जिसमें सुपरिचित मार्कण्डेय की पहचान खो जाती है।''(23) 'दूध और दवा' एवं 'आवाज' कहानी को छोडकर प्राय: सभी कहानियाँ सेक्स संबंधी विषमताओं, परपीड़न और आत्मपीड़न पर आधारित है। सेक्स की कहानियों में इतना खुलकर उभारकर वर्णन करते है कि मार्कण्डेय तमाम आलोचकों के लक्ष्य बन जाते है।

सहज और शुभ (1964)

'सहज और शुभ' कहानी संग्रह में महानगर की सभ्यता एवं आधुनिकता से विलग होकर मार्कण्डेय पुन: एक बार गाँव की ओर लौट आते है। गाँव ही उनके कथानक का सहज एवं आत्मीय स्थल रहा है इसकी पुनरावृत्ति उनकी परवर्ती कहानियों में होती है। नामवर सिंह की दृष्टि से ''ऐसा नहीं कि गाँव की जिंदगी पर कहानियाँ पहले नहीं लिखी जाती थी, वे लिखी जाती थीं, लेकिन जिस आत्मीयता के दर्शन मार्कण्डेय की कहानियों में होते है वह अन्यत्र दुर्लभ है।''(24)

'धुन' कहानी में जोखू महाजन के शोषण तथा किसानों की अभावग्रस्त जिंदगी को स्पष्ट किया है। जोखू महाजन सिर्फ किसानों का शोषण नहीं कर रहा है बल्कि अपनी घरवाली एवं बच्चों को भी भरपेट खिला नहीं रहा है; इसलिये दो दिन से भूखी लड़की को भगेलू की माँ से लिट्टी का टुकडा देने के लिए सेठानी कहती है। और उसे घर के सामने खाते देखकर नाथू चमार के घर खाने से अनर्थ हो जायेगा। और टुकडा हाथ से छीनकर फेंक देता है।

जोखू महाजन किसी दोस्त से ठगकर ले आये हुए पैसों से अनाज खरीदता है। वह नाथू को घर का मनई कहकर उसीसे धुन लगा अनाज भाटने को कहता है। व्यवहारिक वृत्ति से वह धान कम पैसों से इसलिए बेचना नहीं चाहता क्योंकि इससे अनाज का भाव गिर जायेगा। नाथू को पूरी मजदूरी देने का भी आश्वासन दिया जाता है तो नाथू इस बात को मान लेता है। उसे रह रह कर इस नयी मजूरी का ध्यान हो आता है।... यह सब ईश्वर की कृपा का फल है कि खेत खलिहान उठाते ही भगवान् ने महाजन के गाडे में धुन लगा दिया। यहाँ लेखक नाथू के दिमाग में लगी हुई धुन की ओर संकेत कर रहा, इसीतरह ये भ्रष्टाचारी महाजन 'घर के मनई' बनाकर गरीब किसानों को फँसाते है और दिमागी धुन की वजह से वह भी इसतरह का काम करने के लिए तैयार हो जाते है। शोषक जन संस्कार एवं मानवीय सभ्यताओं को भी वे भूल रहे है। जिसका संकेत भगेलू की माँ के व्यवहार में है। आलोचक मधुरेश का भी विचार यह है कि ''मानसिकता के धुन को नष्ट किए बिना शोषण और अभावों से मुक्ति असंभव है।''(25)

'आदमी की दुम' कहानी में दुम की प्रतीकात्मकता स्पष्ट होती है। ''दुनिया के बडे नामधारियों की दुम शक्ति की मात्रा में मोटीपतली होती हैं और वह उसी अनुपात में ऊपर को उठी दिखाई पडती है।''(26)

गडरिया का बेटा भेड पालने के व्यवसाय में हाथ बटाकर काम कर सकता था। लेकिन उसके पिताजी ने रामसेवक को पढा लिखा कर रमोली गाँव का ग्रामसेवक बनाकर बाप के कर्तव्य की पूर्ति की। कहानी के शुरु में ही गाँव में कुश्ती तथा जलसा देखनेवालों का सामाजिक तथा इनसे अलिप्त रहनेवाले ग्रामसेवक को असामायिक कहा गया है। वह असामायिक इसलिए है क्योंकि वह व्यर्थ की बातों और कार्यक्रमों में शरीक नहीं होता। निष्ठा और ईमानदारी से वह ग्रामसेवक का कार्य करते रहना चाहता है। लेकिन ढोंगी नित्य दो बार पूजा पाठ करने का नाटक करनेवाले धर्मात्मा मिसिरजी तमाम जमीन जायदाद के स्वामी है। कहा भी गया है कि ''बड़ी माया है इनके पास जगह जमीन, रुपया पैसा इज्जत बात का क्या कहना... इधर चार पाँच कौस में वे विकास कार्यों का प्रतीक है। मैं दूसरे लोगों को विकास कार्य के बारे में समझाता हूँ लेकिन विकास मिसिर जी करते हैं। इनके पास एक नन्हीं सी मुस्कान है जिसकी पूँछ में हर विकास कार्य के लए 'हाँ' की तख्ती लटकी रहती है।''(27)

मिसिर के माध्यम से स्वार्थी, लालची लोगों की पहचान होती है। सुधार के नाम पर लूटना-खसोटना इनकी खासियत होती है। रामसेवक गाँव के विकास का मन से चहेता है। लेकिन उसके पाँव में बेड़ियाँ जकड़ी हुयी है। गरीबी की बेड़ियाँ कुछ भी करने में असमर्थ है। कतिपय लोग ईमानदार एवं निष्ठा के साथ

कार्य करनेवाले रामसेवक-(ग्रामसेवक) के भरोसे ही अपना विकास कर सकते हैं। यह पहचान सिर्फ एक व्यक्ति के माध्यम से ही नहीं बल्कि उसके द्वारा पूरे समाज का चित्र लेखक हमारे समक्ष प्रस्तुत करना चाहता है। कहानी में जहाँ भ्रष्टाचार और गैरकानूनी धंधों के द्वारा विकास दिखाया है वहीं दूसरी ओर प्रो.सेन जीवन में धँसने-खपने और मरने से ही जीवन का सही अर्थ पाने की मंशा व्यक्त करता है। जो मार्कण्डेय की प्रतिबद्ध एवं यथार्थवादी विचारधारा का 'मानस-पात्र' है।

'आँखे' कहानी में जीवन को गहराई से न जीनेवाले नरेश और वीरा की चाहत को व्यक्त किया गया है। वीरा का जीजा संतोष को उनकी चाहत पर एतराज है क्योंकि वे वीरा को जिम्मेदार एवं अच्छे रईस आदमी के हाथों में सौंपना चाहते है। नरेश को कोठरी एवं उसकी ईटों के आगे कुछ भी दिखाई नहीं देता। संतोष का यह कहना कि 'मेरे सिर पर दो अंधों को थोपकर गयीं इससे वीरा बहुत खुश होती है, अच्छा है कि दोनों अन्धे हैं। वीरा नरेश के प्रति चाहत से ही दोनों समान धरातल पर आना चाहते है। लेकिन संतोष द्वारा बार-बार नरेश की आँखे न होने का अहसास दिलाने से वह सिहर जाती है। वह रात को खौफनाक सपने देखती है। संतोष द्वारा नरेश की आँखे न होने का गहरा असर वीरा पर पडा है जिससे वह उसके करीब नहीं आ पाती। बिन आँखोवाले तथा आँखोवालों के अलग अलग दृष्टिकोण, अंधे की तरह पडे रहने की आदत आदि को इस कहानी में मनोवैज्ञानिक धरातल पर स्पष्ट किया है। जो मार्कण्डेय के लेखन का एक व्यलक्षित बोध भी है।

'मधुपुर के सिवान का एक कोना' इस आंचलिक कहानी में मधुपुर के सिवान के प्राकृतिक सौंदर्य तथा उच्चवर्ग द्वारा शोषित निम्नवर्ग, किसानों की दुःखव्यथा को व्यक्त किया है। ठाकुर द्वारा शोषित निम्नवर्ग के अत्याचार की अनेक घटनायें यथार्थ का पर्दाफाश कर रही है। मुन्नन के पिता द्वारा लिये कर्जे को वह अपना जीवन ठाकुर को सौंपकर उस ऋण को अदा कर रहा है। बाँयी आँख में बैल की सीघ घुसने से आँख की पुतली सूज कर बाहर आ गयी है। जिसका परिणाम उसके काम पर हुआ है। उसको बेदर्दी से पीटा जाता है। बचन, मुन्नन, नरेश आदि मजदूर किसान जी तोड मेहनत करके ठाकुर के सिवान आबाद कर रहे है तो दूसरी ओर ठाकुर नहर ट्यूबवेल और ट्रेक्टर जैसे साधनों को लाकर मजदूरों के पेट पर कुल्हाड़ी मारना चाहता है। खेती की सिंचाई एवं अन्य काम मशीनों से करने पर उनको बेकारी का सामना करना पडेगा। इस आशंका से वे आतंकित हो गये है। क्योंकि ठाकुर के खेती के अलावा उनके सामने कोई चारा नहीं है। इस व्यथा के साथ-साथ बडे ठाकुर द्वारा मुन्नन के पक्ष में छोटे मालिक से जबान लडाने लिए नरेश पर किया गया अत्याचार, सड़े हुए चोथे में मजदूरों

के हिसाब से पानी मिलाकर रस बाटना आदि घटनायें मधुपुर के किसान मजदूरों की व्यथा को व्यक्त करती है। लेकिन इस शोषक के विरूद्ध कहीं भी संघर्ष की चिंगारी भी उडती नजर नहीं आती। इस कहानी में इसका समाधान मुन्नन के साथ हीरा की शादी करवा के एक के बदले में दो जान बखरी को सौपने का बचन का निर्णय एक ओर मन्नन को बचाने के लिए मानवतापूर्ण व्यवहार है तो दूसरी ओर हताश निराश जिंदगी में मधुपुर के सिबान के कोने के सिवाय और कुछ न करने की असहाय स्थिति को दर्शाता है। विवेच्य कहानी पठनीय संवेदना और सहानुभूति को जागृत कर देती है।

'सहन और शुभ' कहानी में रमीला का चिडियों के प्रति आत्मीय भाव एवं संवेदना को व्यक्त करती है। चिड़ियों से सम्बन्धित शुभ-अशुभ धारणाओं, रुढ़ियों एवं अन्धविश्वासों को भी लेखक ने प्रकारान्तर से उद्‌घाटित किया है। रमीला ने कई चिड़ियाँ पाल रखी है उसमें से एक चिडिया खो जाती है। जिसको ढूँढने के लिए उसका ध्यान पेडों की तरफ लगा रहता है। लोग उसकी इस हरकत को देखकर उसे पागल कहते है। वहीं चिडिया सविता के कंधे पर बैठकर फुदक रही है उसके बाद वह चिडिया को नीम के पेड को रिबिन से बान्ध देती है। चिडिया का फुदकना सविता के लिए मनोरंजन है तो रमीला की जान निकल रहीं है। लेकिन कहानी के अंत में सविता चिडिया को आजाद कर रमीला को उसकी जान वापस दिला देती है। कहानी में चिड़ियों के विविध नाम एवं उसके साथ जुड़े हुए शुभ-अशुभ दृष्टिकोणों आदि से प्रकृति के प्रति लेखक की जिज्ञासु वृत्ति जाहिर होती है। जो ग्राम बोध और आंचलिक यथार्थ का साक्ष्य भी है।

विवेच्य संग्रह की 'कानी घोडी' कहानी व्यापारी वर्ग की वास्तविकताओं का उद्‌घाटन करती है। पाप की कमाई से सरजु साहुकार का धंधा फैल रहा है। जिस सेठ के यहाँ वह काम कर रहा था, उसकी घोडी के बच्चे की आँख फोड कर उसे कानी कर देता है, तथा उसे अशुभ बताकर अपने घर ले आता है। 'कानी घोड़ी' पर लदान से उसकी पाप की कमाई फलती-फूलती है। ज्यादा बोझ डालने से 'कानीघोडी' मर जाती है तो सरजू उसको गालियाँ देता है। लेकिन जोखन उस घोडी के प्रति सहानुभूति रखता है। इस कहानी में व्यापारी वर्ग की धनलिप्सा अमानवीय व्यवहार वाली दृष्टि आदि को दर्शाया है।

'एक काला दायरा' कहानी में सामाजिक भ्रष्टाचार तथा कानून की आँखों में धूल झोंककर निरपराध को सजा देना आदि अवधारणा को व्यक्त किया गया है। पांचू अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ गांव आ रहा है। किन्तु रास्ते में एक घटना में चम्पा चंपत हो जाती है और उसको जेल की सलाखों में दिन काटने पड़ते हैं। उसकी पत्नी पर बलात्कार होता है फिर उसकी हत्या की जाती

है तथा झूठे गवाहों द्वारा उसको ही पत्नी का हत्यारा सिद्ध किया जाता है। लेखक ने अंधे कानून एवं सामाजिक व्यवस्था का जहाँ वास्तविक उद्घाटन किया है वहीं असहाय बेबस लाचार पाँचू जैसे सामान्य आदमी की व्यथा को भी चित्रित किया है।

बीच के लोग' 1975

'बीच के लोग' इस कथासंग्रह में ग्रामीण एवं शहरी परिवेशों पर लिखी हुई कहानियाँ में संकलित है। ग्रामीण जीवन पर आधारित 'बादलों का टुकडा' 'बीच के लोग' 'गनेसी' आदि कहानियाँ है तथा नगरीय जीवन से सम्बन्धित 'लँगडा दरवाजा', 'बयान', 'प्रियासैनी' जैसी कहानियाँ है। सुधी विद्वानों को ज्ञात है कि 'लंगडा दरवाजा' कहानी का प्रमुख पात्र अपने बेटे की मृत्यु से दुःखी है, उसके सामने भयानक, निरर्थक संसार है- वह दुःखी अवस्था में अपने सामाजिक संदर्भों को खोकर अपने आपको अकेला महसूस करता है। उसे समाज के अथाह सागर में निरर्थकता महसूस होती है। इन्हीं मनःस्थितियों को बिंब एवं फैंटेसी के आधार पर लेखक ने इस कहानी में साकार किया है। विक्षुब्ध अवस्था में उसकी भेंट मुंशी जी से होती है। मुंशी जी के हालात उससे भी बदतर है। मुंशीजी हैजे से पत्नी की मृत्यु होने के बाद अपने छोटे बेटे को अपनी माँ के पास छोडकर शहर आये है। शहर में संगीत के शौक के कारण विशारद की परीक्षा दे रहे थे। तभी गाँव से आये हुए आदमी ने मनुआ की तबीयत बिगडने का समाचार सुनाया। वे गाँव में गये और बच्चे को लाकर बहुत उपचार किये लेकिन वह चल बसा। 'उसे जाना था, सो चला गया।' मुंशी जी को दूसरे दिन इम्तहान देने थे, वह भी हिम्मत जुटाकर अकेले लडके के गम से मायूस न होकर इम्तहान दिये और संगीत विशारद की पदवी प्राप्त की। उन्होंने अपनी परिस्थितियों पर शीघ्र विजय पायी लेकिन कहानी का मुख्य पात्र अभी तक दुःख से जूझ रहा है।

इसप्रकार मध्यवर्ग की जटिलताओं एवं बेबसी को उस कहानी में व्यक्त किया है, तो मुंशीजी के माध्यम से जीवन को देखने का नया दृष्टिकोण मिलता है। उनका कहना कि 'मरनेवाले को कोई रोक नहीं सकता और न मरनेवाले को कोई मार नहीं सकता' जिससे जीवन के प्रति ठोस एवं निश्चित दृष्टि को व्यक्त होती है। इस कहानी में भाववादी दृष्टिकोण और भौतिकवादी दृष्टि के विभिन्न पात्रों को प्रस्तुत किया गया है।

'बादलों का टुकडा' कहानी महाजन के कर्ज तले दबे हुए जसमा एवं उसके पति की स्थितियों को बयान करती है। पचास रुपये कर्जे के बदले में जसमा दिनरात महाजन के दरवाजे पर खटती है लेकिन अंत में परेशान होकर वह अपनी

कुल जमा बकरी और उसका मेमना कर्ज की अदायगी के लिये ले जाने को कहती है। उसका पति महाजन के कारिन्दे को बच्चे को ले जाते हुए देखता है। पर असहाय एवं मजबूर होकर वह देखने के अलावा कुछ नहीं कर पाता। लपसी का जो धोल बकरी को पिलाने के लिए तैयार किया था, उसको भूख के कारण स्वयं पी लेता है। इस कहानी का अंत बहुत ही प्रभावशाली है। तमाम अभावों एवं पीडा की जिंदगी जीते हुए भी अन्दर जीने की संघर्ष की प्रेरणा है इसलिए वह बसगवाँ में सरकारी ठेके पर बाँध के काम को पाने की आशा से निकल पडता है। उसे रात के छिपे अंधेरे के गर्भ में भी सूरज की किरणें दिखाई देती है। यह विपरीत स्थितियों में आशावादी प्रवृत्ति अपनाने की तथा पाजिटिव एप्रोच की कहानी है।

'बीच के लोग' इस कहानी में स्वातंत्र्योत्तर भारत में बदली हुयी परिस्थितियों के कारण आया हुआ वैचारिक परिवर्तन तथा शोषण को व्यक्त किया है।'बीच के लोग' कहानी में समाज के बिचौलियों पर ध्यान केंद्रीत करके मार्कण्डेय उस तथ्य को उद्घाटित करते है, जिसके अधीन जीवन्त पात्रों की संघर्षशीलता को बढाने से रोका जाता है। आनंद प्रकाश के विचारानुसार ''बीच के लोग' में समाज के अंतर्विरोध ऊपरी और सतही है और पात्रगत विवेचन में अंदर से 'मानवीयता' को निकाल कर सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है।''(28)

फरुदी दादा और बुझावन महतों दोनों सुराज पार्टी में शामिल होकर आजादी की लड़ाई साथ में लडे थे। उनमें गहरी मित्रता भी है। यहाँ तक फरुदी दादा के साथ बुझाऊन महतो निम्नवर्ग का होकर भी साथ में आलु भूनकर खाते हैं। फरुदी दादा एक प्रकार से गाँव के मुखिया ही है। जिसकी बातों एवं मतों का सभी आदर करते हैं। न्याय-अन्याय, नीति-अनीति और अच्छे का साथ देखकर निर्णय दिया जाता था। इसलिए बिना फरुदी दादा के गाँव में कोई कार्य घटता नहीं था। बुझावन महतो आठ साल से हरदयाल की जमीन पर मेहनत करता था। जिसका लगान भी वह भर रहा था। इस जमीन को हरदयाल सहुआ को बेचना चाहता था। जिसपर वे 'पंप सेट' लगाने वाले थे। यह अन्याय सहन न होकर बुझावन फरुदी दादा के पास जाता है। वे नीति-अनीति, क़ायदे-कानून की बात कहकर बुझावन को समझाने का प्रयास करते है। मगर गाँव में मनरा लाल झण्डा पार्टी के तहत नये विचारों से प्रोत्साहित होकर इस अन्याय को सहन नहीं करता।

उसी बीच गाँव में स्वराज्य के बाद पहली दफा हिंसक घटना होती है। हरदयाल सहुआ के मना करने पर रातोरात बुझावन के खेत से आलु उखाडकर फसल उजाड़ता है। फरुदी दादा इससे टूट जाते है। हताश होकर आदर्शों की हार देखतें है- ''फरुदी दादा बीच-बचाव करने का प्रयास करते हैं परंतु परिस्थितियाँ उन्हें इस बात का एहसास करा देती है कि इस संघर्ष में उनके आदर्श व्यर्थ हो

चूके है क्योंकि नई उभरनेवाली शक्ति का संघर्ष अधिकारों एवं न्याय का संघर्ष है और वह शोषण को और अधिक सहने के लिए तैयार नहीं है।''[29]

इस संघर्ष को रोकने में नाकामयाब फउदी दादा फिर से मोर्चे पर न आने की बात कहते हैं तो मनरा भी अपने मनोभावों को व्यक्त करता है कि ''जरुरत तो ऐसी है। अच्छा हो कि दुनिया को जस की तस बनाये रहनेवाले लोग अगर हमारा साथ नहीं दे सकते तो बीच से हट जाए नहीं तो सबसे पहले उन्हीं को हटाना होगा। क्योंकि जिस बदलाव के लिए हम रण रोपे हुए है वे उसी को रोके रहना चाहते है।''[30] नयी वैचारिक उर्जा परिस्थितियों को जैसे के तैसे स्वीकारने वालों के विरुद्ध प्रगति सभ्य बनकर आ रही है। परिवर्तन से परानपुर गाँव में सब के लिए समान हक्क की चेतना लाना चाहते है।

'बयान' कहानी 'मानवीय व्यक्तित्व के आंतरिक विघटन का संकेत देती है।'[31] इस कहानी में दो पात्रों के बीच लहुलुहान होने तक, चिथडे निकलने तक संघर्ष हो रहा है। उपहार के बिस्कुट के पैकेट को लेकर शुरू हुआ झगड़ा इस कदर बढता है कि दोनों ''आहिस्ता-आहिस्ता सिमटते और आखिरी साँस की तरह हिचकते रहे।''[32] आज के जीवन में अपने स्वार्थों को लेकर मानवीयता के अंश मिटते जा रहे है। पशुता और आदमखोरी बढती जा रही है। दाँतों से गले की नस काट कर हत्या करने वाला हत्यारा आदमखोर है। यह बर्बर दृश्य घृणा का पात्र है लेकिन यह वास्तविकता है। पुलिस उसको पकडने के लिए जो बयान पाते है वह संक्षिप्त एवं बेमानी है- ''तुम कौन हो?/लोग?/हाँ, लोग/ कैसा लोग?/ 'तू लोग नहीं जानता?/ नही।''[33] यह मानव नियति का यथार्थ यहाँ पर वेध लिया गया है।

'गनेसी' कहानी का मुख्यपात्र गनेसी गाँव से शहर चला जाता है तथा सात वर्ष और छह महीनों के बाद वापिस लौट आता है। उसे बाप-दादों की जमीन एवं पुरोहितों से कुछ लेना देना नहीं है वह बस अपने पाले हुए कुत्तों एवं तोतों का खयाल रखता है। उसकी वेशभूषा हावभाव से लोग उसे पागल करा देते है लेकिन वहीं गनेसी गाँव एवं खेत को बचाने के लिए बनैले सूअर से संघर्ष कर मर जाता है। उसकी इच्छानुसार उस दिन हर घर में माँस पकाकर लोग खाते है जिससे उस गाँव को 'सूअरपारा' नाम पड जाता है। यहाँ वह संघर्ष में मरकर अपने साहस एवं शक्ति का परिचय देता है, तो दूसरी ओर पुराने जड़ जातिवादी संस्कारों को भी वह तोड़ता है। 'गनेसी' गाथ-गोखरू, पशु-पक्षियों से प्रेम रखने वाले गनेसी की कहानी है जो अपनी यथार्थपरक शिल्पविधि से लम्बे अरसे से पाठकों के मन मस्तिष्क पर हावी रहती है।

उपन्यास:

'सेमल के फूल' (1956)

'सेमल के फूल'सेमल की प्रतीकात्मकता को लेकर लिखी गयी सुमंगल एवं नीलिमा की प्रेमकहानी है। सुमंगल किसी बड़े जमींदार का बेटा होते हुए विलासी प्रवृत्ति का एवं उपभोक्ता संस्कृति का आदी नहीं है। वह राष्ट्रीय आंदोलन में अपना सब-कुछ त्यागे हुए पिता की तरह ही आदर्शवादी, कर्तव्यदक्ष, सहृदय, कलात्मक प्रवृत्ति का युवक है। जन्म से पिता की छाया तथा विवाह के योग्य होने पर माँ की ममता छीन गयी ऐसी पात्रा नीलिमा, अपनी मौसी के यहाँ शेष जीवन बिताने आती है। मौसा-मौसी के बाहर जाने के बाद उसका शामों का साथी बूढ़ा मंटू, राबिन तथा "अहाते के कोने में खड़ा-विशाल किन्तु रूखड़ा और नंगा, चांदनी के प्रकाश और तारों जड़ी, नीली सुजनी की ओट से मोहक छाया जमीन पर"(34) छोड़नेवाला अशिष सेमल था। यहीं उसकी भेंट सुमंगल से होती है उनका परिचय धीरे-धीरे प्रेम में परिणत होता है।

कालान्तर में अपने - अपने स्वभाव की संकोचावस्था, अनिश्चय, अंतर्मुखी वृत्ति के कारण दोनों का विवाह नहीं होता। नीलिमा का विवाह एक अन्य व्यक्ति के साथ हो जाता है और सुमंगल जन सेवा में अपने दु:ख को डुबाने का प्रयत्न करता है। लेकिन दोनों का मन पीड़ा की आग में जलता है और अन्त में नीलिमा बीमार होकर प्राण त्याग देती है। कहना न होगा कि इस प्रकार की प्रेम कहानी अन्यान्य उपन्यासों में भी पायी जाती है, लेकिन इस लघु उपन्यास में कल्पनातीत सच्ची अनुभूति की अभिव्यक्ति तथा शिल्प में नवीनता है। जैसे - नीलिमा ने कहा है- "मैं कुछ भी गलत न लिखूँगी, क्योंकि कल्पना तो उनकी सहायक होगी, जिनके जीवन में अनुभवों की दरिद्रता हो। मेरे जीवन की सच्चाइयाँ तो कल्पनातीत है।"(35)

वास्तव में 'सेमल के फूल' की कथा मृत नायिका की डायरी में लिखी हुई कहानी के रुप में है। संपूर्ण कहानी में उसके वर्तमान तथा अतीत का सगुंफन कलात्मक स्तर पर हुआ है जो नीलिमा के पूर्वायुष्य तथा विवाहित जीवन को 'समग्रता' में चित्रित करता है। सुमंगल का आदर्शरूप इस कहानी पर हावी है। सुमंगल अपने सेवाभावी, सहृदयता के कारण हमेशा बच्चों के आश्रम, संस्थाओं से जुड़ा रहता है। वह अपनी तबीयत का भी खयाल नहीं रखता। सुमंगल के अनेक पहलुओं का दर्शन इस उपन्यास में होता है। आदर्शवादी, समाजसुधारक, अच्छे लेखक के गुण उसमें है। बहुत सीदी-साधी जिंदगी जीने पर भी मन की निड़रता तथा निर्भीकता सामने आती है। आडंबरों से उसे सख्त नफरत है। संयम तथा

अनुशासन से उसकी जिंदगी संचालित है। अपने अति संकोचशील स्वभाव के कारणस्वरुप वह नीलिमा को अपना नहीं पाता। लेकिन "इतनी दूर तक साथ चलकर तुम ऐसे विमुख हो जाओगी, नीलम! मुझे यह नहीं मालूम था।"(36) उसका यह पत्र पाकर उसे लगता है कि जैसे उसके ही हाथों ने उसका गला घोंट दिया हो। वह शादी के लिए हाँ इसलिए करती है कि कही वह सुमंगल के कार्य में बाधा न बन जाये। क्योंकि उसके अचानक चले जाने से उसे महसूस होता है कि वह अपने समाजकार्यों में ही लगा रहना चाहता है और बिन माँ-बाप की बच्ची अपने मौसा-मौसी पर कितने दिन भार बनकर बैठ सकती है। विवाहोपरांत उसके व्यवहार में सुमंगल कहीं नहीं आता, दिलों दिमाग में जरूर छाया रहता है और व्यवहार से अपने कर्म से वह पूर्णतः पत्नी बनकर जी रही है। इसलिये पति उसके बिना जिंदगी जीने में असमर्थ है- "मेरी खातिर नीलू... मेरे लिए तुम रहो। मैं उजड़ जाऊँगा। मेरे लिए संसार ही सूना हो जाएगा। समूचा रास्ता काँटों से भर जाएगा। फिर क्या होगा नीलू? ठीक इस सेमल के सूखे फूलों की तरह मेरे जीवन का हर रेशा उड़ेगा और तुम्हें ढूँढता हुआ दिग दिगंत में भटका करेगा। ...तुम्हारे बगैर मैं जी नहीं सकता रानी।"(37)

एक प्रेमिका के रुप में नीलिमा आदर्श, स्वाभाविक एवं सच्ची प्रेमिका है। उसका प्रेम असफल मानने के लिए वह तैयार नहीं हैं "उन्हें क्या पता कि प्रेम असफल नहीं होता अगर वह प्रेम है।"(38) प्रेम को लेकर उच्च धारणा सुमंगल व्यक्त करता है "प्यार कोई सौदा नहीं नीलम जो बार-बार किया जाए। सिर्फ वासना पशु में ही होती है, मनुष्य तो.... समर्पण भी कभी बार-बार"(39) आत्मा के स्तर पर वह प्रेम की ज्योत में जलती रहती है लेकिन पति के प्रति उतनी ही समर्पित है। उसके पति का कथन इसकी पुष्टि करता है-"ऐसी औरत न तो मैंने देखी है, न देखूँगा। जब से मेरे जीवन में आई कभी एक मिनट को भी मालूम न हुआ कि मैं उदास हूँ.... रात दिन जैसे मेरी आत्मा पर उसका स्नेह छाया रहा। मेरी काया का कोई भी रोम ऐसा नहीं दिखता जिस पर उसका संस्पर्श न हो। कोई भी ऐसा काम नहीं, कोई भी ऐसी चीज़ नहीं जिसके पीछे उसकी छाया नहीं।"(40)

उसने पति के प्रति कर्तव्य एवं अपने धर्म का सदोदित पालन किया। कभी अपने से कसर नहीं छोड़ी, इसलिए पति, प्यारी पत्नी को श्मशान की लपेटों में डालकर भी उसे हृदय में बसाये हुए है। न ही नीलिमा पर संदेह करते है। वह जानती है कि प्रेमकहानी अगर सुमंगल द्वारा लिखी गयी होती तो वह उसे बेहतर लिखता क्योंकि वह उसमें सिद्धहस्त है- "अच्छा होता कि इस कहानी को तुम्ही लिखते क्योंकि तुम्हारे हाथ में एक ऐसी कलम है, जो अपने पैनेपन

के बावजूद दुधमुँहें बच्चे को सुलाने वाली लोरियों से भी मधुर और पवित्र गीत गा सकती है।....... जो कालिदास के विरही यक्ष की वायू में उड़ती वाणी को लिपिबद्ध कर सकती है।''(41)

विवेच्य लघु उपन्यास में लेखक मार्कण्डेय की दृष्टि मूलतः ग्रामीण जीवन पर केंद्रित है। प्रेम कथा के अनुरूप पात्रों की मन:स्थितियाँ उनकी आंतरिक वेदनायें, नि:स्वार्थ भाव आदि का उद्घाटन करते-करते लेखक की सामाजिक जीवन की गहरी अनुभूति भी अभिव्यक्त होती है। फिर भी ''इन दोनो पात्रों की यह प्रेम कथा सामान्य धरातल में ही गतिशील हुई है।''(42) सुमंगल की समाज सेवा में सच्ची लगन, मानवीयता एवं ईमानदारी है। गरीबों एवं शोषितों के प्रति सहानुभूति है। 'सुबह ही सुबह, भारी भरकम हलों को अपने कंधों पर उठाये, बैलों को हाँकते जाने वाला किसान' समाज की रीढ़ है। उसके बिना हिन्दुस्थान के सामाजिक विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। ''इनकी पूरी जिन्दगी बदलनी होगी नीलम! ये ही हमारे समाज की रीढ़ है। हिन्दुस्थान में किसी ऐसे सामाजिक उत्थान की कल्पना ही करनी भयानक भूल होगी, जिसमें किसान का जीवन पीठिका में न हो। किसान-सभ्यता के विकास में, भारतीय कृषक के व्यक्तिगत श्रम को मान्यता देकर, मशीन को केवल सहायक के रुप में रखना होगा। लोग भावुकता और सहानुभूति के चश्मे लगाकर गाँव को देखना चाहते हैं। किसान के संस्कारों में सडने वाले नासूर पर इत्र का फाहा लगाकर, उसे अच्छा करना चाहते हैं।''(43) वे गाँव के किसानों को देखने की सही दृष्टि अपनाने के आग्रही हैं।

लोगों की निरी सहानुभूति से काम नहीं चलेगा। उनके लिए ठोस कदम उठाने पड़ेंगे, व्यक्तिगत श्रम को मान्यता देना आदि तत्व गांधीवादी सोच के समर्थक है। उनका यह दृष्टिकोण जहाँ गांधीवादी विचारों की श्रेष्ठता को दर्शाता है, वहीं चाची से कहे हुए विचार गांधी दर्शन की असफलता प्रकट करते है :-''गांधीजी ने कोई व्यापक सामाजिक दर्शन नहीं दिया चाची। वैयक्तिक परिष्कार की धारणा पूरे समाज के उत्थान में एक सशक्त इकाई तो बन सकती है पर वह सुस्थिर मानवता के लिए विकासशील चरण-चिह्न नहीं छोड़ सकती। पीछे आनेवाले जन के लिए तो यही सब कुछ है- परंपरा, लोक-धर्म, त्याग-तपस्या सब कुछ।''(44) इस तरह सामाजिक जीवन की इन समस्याओं को चित्रित करते हुए लेखक ने प्रेम के स्वस्थ एवं स्वाभाविक दृष्टिकोण को व्यक्त किया है।

प्रेम सहज एवं प्राकृतिक होता है जिसे सिर्फ आत्मा के स्तर पर न जीकर जीवन की सफलता के सहायक मानना चाहिए। अमर, अमृता, शीबू के माध्यम से प्रेम को सही अर्थों में गतिशील बनाया है। इस प्रकार का जीवन नीलिमा एवं सुमंगल के आत्मसात न करने के कारण नीलिमा का दर्द भरा अंत हो जाता है।

इसीलिए डायरी के अंत में नीलिमा द्वारा यह संकेत मिलता है कि -''अमृता तू ही जवाब दे सकती है इनको, शीबू तू ही- तुम्हीं लोग, जो जीवन को उसकी सच्चाइयों में देखते हो... सच्चाइयों में...।''(45)

नए शिल्प तथा भाषा को साध्य-धरातल अपनाकर प्रेम कहानी की पुनरावृत्ती होते हुये भी इसमें नवीनता लाने का प्रयास किया गया है। नेमिचन्द्र जैन के अनुसार जितनी तीव्रता और अनन्यता के साथ लेखक इस अनुभूति को ग्रहण कर पाता है उतनी ही धार इस शाश्वत कथा से उत्पन्न होती है ''सेमल के फूल में भी बड़ी धार है जो उस अनुभूति के साथ लेखक के बड़े गहरे तादात्म्य के कारण उत्पन्न हुई है। भावना का एक सा तनाव आदि से अन्त तक बना रहता है जो पाठक को एकदम भावाभिभूत कर देता है।''(46)

मार्कण्डेय के इस लघु उपन्यास से उनका एक नया व्यक्तित्व हमारे सामने जरुर खुलता है पर यह प्रश्न स्वाभाविक है कि सुमंगल नीलिमा से शादी क्यों नही करता। ''सेमल के फूल' शीर्षक की प्रतीकात्मकता भी कम विलक्षण नहीं है कारण जबतक सेमल का फूल अपने वृक्ष की शाखा से जुडा है, वह उसके आश्रय में जी रहा होता है। पर ग्रीष्म के प्रारम्भ में, विशेषकर चैत्र मास के शुरूआती दिनों में सेमल का फूल चटखकर रुई के फाहों सा हवा में हिलता-डुलता, हवा की लहरों पर बिखरता रेशमी रुई सा- धराशायी हो जाता है। पर उसका रेशमी स्पर्श, उसका कोमल गात दर्शकों के मन में संवेदनभरी कोमलता का अहसास दे जाता है। ऐसा ही संवेदनभरा, कोमलता के स्पर्श और त्याग का जीवन नीलिमा जैसी पात्रा का है।''(47)

अग्निबीज (1981)

'अग्निबीज' मार्कण्डेय का दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें उन्होंने व्यापक सामाजिक फलक को केंद्र में रखा। स्वतंत्रता के बाद समूचे देश में नई आशाओं की किरणें जगी थी। परतंत्रता के बंधन टूटने से देश के जनवासियों को नव-निर्माण का अवसर मिला था। वर्गहीन समाज की स्थापना, पुराने संस्कारों, रुढ़ियों, सामाजिक कुरीतियों को दूर कर राष्ट्र के नवनिर्माण की भावना ने लोगों को अनुप्रेरित किया। स्वतंत्रता के बाद का राष्ट्रीय जीवन विभिन्न पंचवर्षीययोजनाओं की पूर्ति राज्यों के विलिनीकरण, जमींदारी प्रथा के अंत को अपना रहा था। साथ ही अस्पृश्यता निवारण कानून, भूमि सुधार, सहकारी खेती, दहेज विरोधी प्रथायें, विभिन्न दंगों से उत्पन्न समस्याओं के निराकरण, राजनैतिक आंदोलन, विरोधी-स्वार्थी विचारों की टकराहट आदि प्रसंग हमारे जीवन के अन्तर्विरोधी पहलू बन चुके थे। अभावों-संघर्षों में जीनेवाले गाँव इन समस्याओं के केंद्र में थे।

युगानुरुप शहरी सभ्यता का आक्रमण भी ग्रामीण संस्कृति पर हुआ। इससे ग्रामीण परिवेश में परिवर्तन शुरु हो चुका था और मानवीय संबंधों को वह बुरी तरह प्रभावित भी कर रहा था। डॉ. चन्द्रशेखर कर्ण ने इस संबंध में कहा है कि ''सामाजिक स्थिति और सांस्कृतिक तत्वों को आर्थिक स्थिति प्रभावित कर रही है, ये आर्थिक स्थितियाँ सिर्फ राजनैतिक धरातल पर ही खड़ी हो सकती हैं। यह ठीक है कि युग चेतना के बदलते कोणों को यथातथ्य रुप से ग्रहण कर पाने जैसी बौद्धिकता ग्रामीण क्षेत्रों में ही नयी पायी जा सकती है फिर भी अन्तर्विरोध आज की प्रमुख समस्या है।''(48)

स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन में यह विश्वास था कि तमाम सुविधायें प्राप्त कर गाँव खुशहाल हो उठेंगे किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीणों की आशा-आकांक्षाएँ कुंठित होने लगी और भविष्य के लिए संजोए हुए स्वप्न मोहभंग से टूटने लगे। कहने को तो जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया था पर जमींदार अपनी सत्ता और बल का उपयोग कर रोब वैसा ही जमाए हुए थे। इसी के बीच जन्मी स्वार्थी राजनीति ने संबंधों में दरारें पैदा कर दी और सारे मान-मूल्यों को विघटित कर दिया। नफरत, शत्रुता, ईर्ष्या-द्वेष, हत्या आदि ने गाँव की जिंदगी को प्रदूषित किया। कालान्तर में नई वैचारिक चेतना की लहर गाँवों में पैदा हुई, जिसका निर्माण नयी पीढ़ी ने किया, इन्हीं विस्तृत चित्रों को यथार्थ रुप में 'अग्निबीज' में चित्रित किया है।

मार्कण्डेय ने 'अग्निबीज' उपन्यास में पूर्वी उत्तर प्रदेश के बजमा नदी के दोनों छोरों पर बसे रामपूर और सेतपूर गाँव के ग्रामीण जीवन के भूभाग को कथा का केंद्र बनाया। स्वतंत्रता के बाद भी यह गाँव अनेक प्रकार की समस्याओं, विसंगतियों एवं अंतर्द्वन्दों से ग्रस्त है। प्रस्तुत उपन्यास 53-54 के आसपास के ग्रामीण संदर्भों को ठाकुर ज्वाला सिंह तथा साधो काका के माध्यम से चित्रित करता है। जमींदारी उन्मूलन के बावजूद ठाकुर ज्वाला सिंह गाँव में सर्वेसर्वा है। अनेक छक्के-पंजों से वे गाँव के असहाय लोगों को लूटने खसीटने का कार्य कर रहे हैं, भय तथा आतंक से भयभीत जनता बिना मुँह खोले उनके अत्याचारों को सहन कर रही है। पूँजीवादी सभ्यता भूख तथा गरीबी से पीड़ित जनता का शोषण इन दोनों पहलूओं को लेखक ने वास्तविक स्थितियों में उजागर किया है।

विवेच्य लेखक ने मानवीय संवेदना एवं सहानुभूति के साथ सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने का प्रयास किया है। यह यथार्थ चित्रण बदन के रोंगटे खडा करता है कि क्या यही हमारे गाँवो की वास्तविकता है? ठाकुर ज्वाला सिंह का समाज में फैला हुआ डर एवं आतंक, सवर्णों के निम्न वर्ग पर किए हुए अत्याचार एवं मिथ्याभिमान, बहूबेटियों की दर्दनाक स्थिति, हिरनी की हत्या, छबिया-हुडदंगी

का पलायन, फटे-पुराने त्रिथड़ों में अनावृत्त लज्जा, पशुओं के गोवर से दाने बीनने की मजबूरी, ब्राह्मण का ब्राह्मण के साथ दुर्व्यवहार, पशु से भी बदतर जिंदगी जीने के लिए बाध्य परिस्थितियाँ आदि इन सब यथार्थ स्थितीयों का वर्णन मार्कण्डेय ने कलात्मक स्तर पर किया हैं।

ज्वाला बाबू आजादी के बाद बदलते हुए राजनीतिक परिवेश में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। जमींदारी उन्मूलन-कानून लागू होने के पहले ही बड़ी चालाकी तथा दूरदृष्टि से गाँव की जमीन की हेरा-फेरी करके वे धन-दौलत कमा लेते है। ठाकूर ज्वाला सिंह स्वार्थी, लालची शोषक जमींदार है जो अपने स्वार्थसिद्धि के लिए किसी भी धरातल तक आने के लिए तैयार है। ज्वाला सिंह अपने विरोधी को निर्ममता से कुचलने की शक्ति रखते हैं। चुनाव में विरोधी सोशलिस्ट पार्टी के धनिकलाल के जुलूस में बाधा पहुँचाकर उसे असफल करने का प्रयास करते हैं तथा साधो काका को पागल घोषित कर उनके चुनावी टिकट को स्वयं हथियाते हैं। साधो काका के नाम पर जाली अपील निकालकर वे चुनाव जीत जाते हैं। वे बहुत ही स्वार्थी है, जिनके पास आपसी रिश्तों का अथवा अपने-पराये का कोई स्थान नहीं है। साधो काका तथा उनकी पत्नी की जरुरत पड़ने पर उनसे अच्छा व्यवहार करते है। काम निकल जाने पर, लाभ की कोई बात न रहने पर उनकी तरफ वे देखते भी नहीं। उनका पुलिस पर ऐसा आतंक छाया है कि वे हिरनी के खूनी को छुडवा देते है, आश्रम में आग लगाने वाले गोबिन परिवार को छुडवा देते हैं। निर्दोष और ईमानदार मुसई महतो को साजिश का शिकार बनाकर गिरफ्तार करवाते हैं और इतना ही नहीं पुण्य कमाने की इच्छा दर्शाते हुए नई चेतना जगानेवाली श्यामा को जो उनके राहों की काँटा बनी हुई है उसकी शादी कर देते हैं। चिंगारी से आग बनने से पहले ही शोला बुझ जाता है।

वास्तव में ऐसे ही कुचक्री षडयंत्रकारी लोगों के हाथ में हमारे समाज की डोर है जो समाज को सही दिशा में ले जाने के बजाए हमेशा गलत कार्यों के लिए उसका उपयोग करता है तथा आवाज उठने से पहले ही उसका दमन कर दिया जाता है। राजनीति में ''हमेशा समाजवाद और हरिजन उद्धार की बात करने की आदत डालने के लिए कहते हैं लेकिन ऐसा नहीं कि हरिजन समर्थ होते रहें और उनको अपना बिस्तर गोल करना पड़े।

'अग्निबीज' उपन्यास में सवर्णों द्वारा किए अत्याचारों की सूची बहुत लम्बी है सागर एवं बैकुंठी पर बजमा की मछली पकडने पर किया गया अत्याचार, धोबियों पर कपडे धोने के लिए टिकट लगवाना, हिरनी का बडकू बाभन से गर्भवती होना तथा उसका बडकू द्वारा खून करवाना, मुसई महतो को गिरफ्तार करवाना, आश्रम में आग लगाना आदि कार्य हमें नागार्जुन, शिवप्रसाद सिंह रेणु, शैवाल

और मिथिलेश्वर की यथार्थवादी रचनाओं के सन्दर्भ याद दिलाते है। हम सोचने के लिए बाध्य होते हैं कि सचमुच हमारे स्वातंत्र्योत्तर ग्राम ऐसे ही विरोधाभासी परिवेश से ग्रस्त है। प्रसंगवश साधो काका सच्चे गांधीवादी है, देश की आजादी के लिए अपनी मातृभूमि के लिए समर्पित व्यक्तित्व, स्वयं अभावों की जिन्दगी जीने के लिए लाचार, घर-परिवार, बेटी की चिंता से मुक्त लेकिन पूरे समाज को परिवार की भाँति मानकर उनके हकों के लिए लड़ने को तैयार। पर यही साधो काका आजादी के बाद अपने विचारों की पूर्ति न होते देखकर मोहभंग का शिकार बनते हैं। ज्वाला सिंह धूर्त, स्वार्थी, अन्यायी, मतलबी इन्सान है तो उसके भाई साधो काका, ईमानदार, संघर्षशील, मूल्यों को माननेवाले तथा गाँव के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं, पथ-प्रदर्शक हैं। इसलिए सुनीत कहता है "हम वहाँ से चलेंगे जहाँ साधो काका ने छोड़ा है।" वे इस विशाल वटवृक्ष की भाँति है जिसकी छाया में गाँववाले चैन की साँस लेते हैं। साधो काका सच्चे अर्थ में देशभक्त है। उन्होंने देश की भूमि को माँ के रुप में देखा है। कहना न होगा कि साधो काका समाजवादी यथार्थवाद के प्रेरणा बिन्दु अथवा पॉजिटिव चरित्र हो सकते है। सुनीत जैसे युवावर्ग के प्रतिनिधि पर सकारात्मक चरित्र का आत्मकथन है कि मुझे आप लोगों के सामने यह कहने में गर्व का अनुभव हो रहा है कि उन्हीं को देखकर मैंने यह जाना कि देश क्या होता है, मातृभूमि किसे कहते हैं और व्यक्ति का देश से क्या रिश्ता होता है। मेरे जीवन की चेतना का अंकुर जिस भूमि में उगा, वह भूमि काका की है। बापू के चरणों में नियमित रुप से महीनों बैठने का सौभाग्य भी मुझे मिला, लेकिन काका मेरी आँखों से कभी ओझल नहीं हुए। वह मेरे लिए ही नहीं, इस पूरे क्षेत्र के लिए एक तीर्थ के समान है।(49) विवेच्य उपन्यास के अन्तर्गत सबके प्रति समान एवं मानवतावादी दृष्टि रखनेवाले गांधीवादी आदर्शों के पोषक साधो काका हैं।

युवा नेती श्यामा स्वतंत्रता सेनानी, देशभक्त साधो काका की लड़की है। उम्र में छोटी होने के बावजूद उसके पास एक जीवनदृष्टि है- जिसके आधारपर सुनीत, मुराद, सागर, ये चारों अनंत दीपों की चार बातियों की तरह खड़े हैं। सुनीत उसके चाचा का लडका, पिता ज्वालासिंह का विरोधी, मानवतावादी दृष्टि के सहारे चलता है वह अत्यंत भावुक और संवेदनशील है। अपने पिता के कुटिल कार्यवाही की वजह से उसका हृदय टूट जाता है, अपराध बोध उत्पन्न हो जाता है। श्यामा सबकुछ जानते हुए ज्वालासिंह के अत्याचारों को सहन करते हुए भी सुनीत से वास्तविकता छुपाना चाहती है। लेकिन जब वह यथार्थ स्थितियों को समझ जाता है तब वह श्यामा से कहता है- "इस तरह तू मुझे कब तक बहलाएगी श्यामा? इससे मेरा क्या लाभ होगा बहिन? तू मुझे क्या बनाना चाहती है? क्या

सारी जिन्दगी मैं ऐसा ही रहूँगा।''(50) उसके प्रत्युत्तर में श्यामा उसे अपना रास्ता तय करने के लिए कहती है। जिसे लेखक ने प्रतिनिधि पात्र रुप में हमारे सामने रचा है।

मुराद हथकरघा कारीगर बाकर का बेटा है। वह गाँव में छाए घने अंधकार को मिटाने के लिए हमेशा संघर्षरत है। लेकिन बिना सत्य और न्याय के पथ को त्यागे हुये। व्यवस्था को लेकर तमाम प्रश्नचिह्न उसके दिमाग में उपजते हैं। भूख और गरीबी, असमान आर्थिक व्यवस्था, प्रगतिशील विचारों की सोच से वह समाज में बुनियादी परिवर्तन की आशंसा रचता वह मानता है आज के समाज के बुराइयों की जड़ शोषण प्रणाली है। नारी को लेकर भी अनेक विचारों का बवंडर उसके दिमाग में उत्पन्न होता हैं और वह इस नतीजे पर पहुँचता है कि नारी को अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए खुद के पैरों पर खडे होना चाहिए, मार्क्सवादी विचारधारा के अनुरूप वह आत्मनिर्भरता और आत्मविश्लेषण की पद्धति अपनाता है।

सागर श्यामा द्वारा दिये हुए जीवन को विफल बनाना नहीं चाहता और उसे वह सफल बनाने के लिए हमेशा संघर्ष करता रहता है। वह श्यामा से अलग अपने अस्तित्व को स्वीकार करना नहीं चाहता। उसका आत्मकथन है ''श्यामा दीदी के अलावा मेरी खुद से कोई पहचान नहीं है। तुम दोनों सब कुछ जानते हो कि मुझे मामूली कीड़े-मकोडे से भी गया-बीता जीवन मिला है, धूल में सना हुआ पददलित नीच, उपेक्षित कुत्ते से भी बदतर हर जगह से दुर-दुराया हुआ और अपमानित इतने पर भी मैं जीवित रह गया तो मात्र श्यामा दीदी के कारण, माँ ने सिर्फ जन्म दिया था, मुराद। श्यामा ने मुझे जीवन दिया।''(51)

सागर में निड़रता और स्पष्टवादिता भी है- आश्रम के स्कूल से हरिजन के बच्चे को गोविंद महराज के कहने पर छोडता नहीं, बल्कि उसको खरी-खोटी सुनाता है तथा भाई से भी निड़रतापूर्वक से कहता है कि वह नकली जीवन को जीना नहीं चाहता। अपनी कर्तव्य परायणता के कारण ही वह आश्रम में लगी आग बुझाने में अपने जीवन को खतरे में डालता है।

इसप्रकार ये चारों जिंदगी में आये हुए खतरों से टक्कर लेकर जीने की तमन्ना रखते हैं। इन सब में सुनीत का चरित्र निरंतर संघर्षशील है। सुनीत ही आंतरिक एवं बाह्य संघर्ष से निरंतर घुटता रहता है इसीलिये अरूण माहेश्वरी का यह कथन तर्कसंगत है कि ''उपन्यास में वर्णित घटनाओं से सबसे ज्यादा यदि किसी चरित्र पर निर्मम आघात करती, थपेडे पड़ता दिखाई देती है तो वह है सुनीत का चरित्र।''(52)

सुनीत की संपन्न परिस्थिति होने के बावजूद वह मुस्लिम मुराद और

हरिजन सागर से घनिष्ठ संबंध रखने में हिचकिचाहट महसूस नहीं करता। इतना ही नहीं बल्कि उसे अपने थर्मस में से दूध प्याली में डालकर देने में श्यामा थोडा संकोच महसूस करती है। वहाँ सुनीत जरा भी हिचकिचता नहीं। साधो काका की राह पर चलकर वह अपनी अलग पहचान बनाना चाहता है। श्यामा अनेक रूपों में हमारे सामने आती है- ''जैसे स्वर्ग की कोई देवी धरती पर उतर आयी है।''(53) किसी निबिड अंधकार में जलते हुए एकांत दीप की तरह(54) जैसे कोई सोने की सजीव मूर्ति पश्चिम के लाल आसमान की ओर बढती चली जा रही है।(55) तीनों को जीवन की उर्जस्विता प्रदान करने हेतु वह स्वयं दीपशिखा सी जलती रहती है, सबके संघर्ष की दिशा तय करने में सहायक होती है। नारी के अभिशप्त जीवन तथा अन्यायों के विरुद्ध वह बोलने की क्षमता रखती है, यथार्थ से साक्षात्कार करके स्वप्नलोक से भूमि पर वास करने के लिए दृष्टि प्रदान करती है। बचपन से लेकर परिस्थितियों के थपेडों को सहते-सहते उसने अपनी प्रगतिकामी विचारधारा कायम की है।

बंगाल के युवा आलोचक और 'कलम' पत्रिका का संपादक अरुण महेश्वरी के शब्दों में- ''परिस्थितियों के थपेडों ने उसे बहुत छोटी सी उम्र में ही बड़े-बूढों की तरह परिपक्व बना दिया है और गूँगे बाप के समझौता हीन संघर्ष की प्रेरणा देनेवाले अतीत और वर्तमान ने उसे झूठ, फरेब, शोषण और जुल्म के प्रति एक सहज मानवीय घृणा तथा संतोषी मनोवृत्ति के प्रति रिक्ततापूर्ण विक्षोभ दिया है।''(56)

लेकिन संघर्षशील, गरीबों को उनके शोषण से मुक्त कराने हेतु हमेशा कर्मरत, अपनी विचारदृष्टि से राजनीतिक धरातल पर हलचल उत्पन्न करनेवाली यह श्यामा परिस्थितिवश होकर शादी के लिए स्वीकृति देती है।

सामान्य रूप से यह कहना कि नारी जब तक अपने पैरों पर खडी नहीं होती वह अपने निर्णय खुद नहीं ले सकती। यह एक सरलीकृत कथन है परिस्थितिवश चुपचाप ज्वाला सिंह के गिरफ्त में आकर चिंगारी बुझ जाती है। हमारा समाज पूर्णतः आर्थिक व्यवस्था पर टिका हुआ है। छबिया ने हुडदंगी के साथ पलायन करने का निर्णय इसलिए लिया क्योंकि वह अपना खाना स्वयं जुटाती थी। श्यामा अपना निर्णय लेने में असमर्थ थी क्योंकि उसकी परवरिश कोई और कर रहा था। इसप्रकार श्यामा परिस्थितियों एवं समाज की मान्यताओं के घेरे से पूर्णतः मुक्त नहीं होती। परंपरानुसार चले आये रीतिरिवाजों के घेरे में वह आबद्ध है। फिर भी वह समाज को बदलने के अभिलाषी, युवकों के लिए पथप्रदर्शिका, विविधोन्मुखी चारित्रिक विशेषताओं को अपनाए हुए है। इसीलिए डॉ. प्रकाश मिश्र ने कहा है कि ''श्यामा का चरित्र बहुआयामी तेवरों से युक्त है। उसमें सरलता,

सौम्यता, गंभीरता और भावुकता के साथ गहरा आक्रोश भी है। वह प्रेरणा है, पथप्रदर्शिका है, आशाओं का केन्द्र है। परिवर्तन की भावी संभावनाओं का जीवंत प्रतीक है, नयी चेतना की वह सर्वाधिक सशक्त चिंगारी है।'' प्रत्येक घटना के साथ उसका चरित्र निखरता जाता है और अंत तक आते-आते वह एक 'लिजेंड' का रुप लेकर अपने व्यक्तित्व की सर्वथा एक अलग पहचान बनाती है। कहीं-कहीं लेखक कीं आत्मीयता एवं भावुकता ने श्यामा के चरित्रांकन को अतिरंजित अवश्य किया है। परंतु समग्रतः श्यामा लेखक की एक उल्लेखनीय चरित्र सृष्टि है।(57) विवेच्य उपन्यास के अन्य चरित्रों में हरगोन सिंह, पूर्णतः साम्यवादी है, गाँव की परिस्थितियों तथा ज्वाला सिंह के शोषण, अन्याय और अत्याचार से वे काफी चिंतित है तथा इससे गांववालों की मुक्ति के लिए सदा प्रयत्नशील है। वे साम्यवादी विचारों से गाँव के परिवर्तन की चाहत रखते है। श्रमजीवी वर्ग के अधिकारों को दिलाने के सर्वथा आग्रही है। लेखक की आस्था मार्क्सवाद में होने के फलस्वरूप हरगोन सिंह उसके विचारों को प्रतिनिधि के रुप में व्यक्त करता है लेकिन विचारों को व्यक्त करने के अलावा कार्य की भी उतनी ही आवश्यकता है सिर्फ स्वावलंबन के बीच् बोकर काम नहीं चलेगा, वृक्ष की जरुरत है जिसकी छाया में शोषक वर्ग चैन की साँस ले सके। इस दिशा में हरगोन सिंह कर्मरत तो होते है, लेकिन पारिवारिक उत्तरदायित्व के कारण पूर्णतः सफल नहीं होते।

3.21 मार्कण्डेय के कथासाहित्य का मूल्यांकन

''जिन रचनाकारों ने सामाजिक यथार्थ को जागरूक दृष्टि से व्यंजित करनेवाली प्रेमचन्द, निराला, राहुल, यशपाल, रांगेय राघव आदि कहानीकारों की परम्परा को सही मायनों में और आगे बढ़ाया, उनमें भीष्म साहनी, रेणु, हरिशंकर परसाई, अमरकांत, भैरवप्रसाद गुप्त, नागार्जुन, शेखर जोशी के साथ मार्कण्डेय का भी नाम शामिल है। सामाजिक दृष्टि से समाजवादी दृष्टि तक की यथार्थवादी मंजिल इन कहानीकारों ने तय की थी। रूपवादी कहानीकारों की तुलना में ये वस्तुवादी नहीं थे लेकिन वस्तु और रूप के द्वंद्वात्मक संबंधों को पहचानते थे और रचनात्मक स्तर पर चरितार्थ करते थे। रूपवादी सीमाओं और वस्तुवादी सेंसरों का अतिक्रमण कर इन कहानीकारों ने हिन्दी कहानी साहित्य को एक से एक अच्छी रचनाएँ दीं।''(58)

इन सभी लेखकों से अलग धरातल पर भी मार्कण्डेय ने अपना स्थान निश्चित किया है। आनंद प्रकाश के अनुसार -''कला में उनका जो विश्वास है वह हिन्दी में आसानी से नहीं मिलेगा। उनकी कहानियाँ सहज दिखते हुए भी निबंध

का कसाव लिये होती है आदि से अंत तक स्पष्ट निश्चित मूर्त और वास्तविक''(59) मार्कण्डेय जीवन के विभिन्न पक्षों तथा अनेक कगुंरों को अभिव्यक्ति देने का कार्य साहित्य करता है।

मार्कण्डेय ग्रामीण जीवन के सशक्त कथाकार रहे है। इनकी ग्रामीण जीवन पर आधारित कुछ कहानियाँ अंचलों की विशिष्टता को निरुपित करने के कारण आंचलिक है जैसे जौनपुर बनारस की सरहद पर गोमती के दक्षिण में सड़क बनाये जाना, उनकी व्यथा, मधुपूर के सिवान का कोना, बीच के लोग में परानपुर के मजदूरों का संघर्ष, महुआ और उसकी विशिष्टता आदि आदि कहानियों की कथावस्तु तथा 'अग्निबीज' उपन्यास चित्रित सामाजिक राजनीतिक समस्याओं के साथ-साथ रामपुर-सेनपुर के लोकजीवन, उनके संस्कार आदि से ग्राम के आंचलिक परिवेश में परिवर्तन हो जाता है। वस्तुत: प्रेमचन्द की परंपरा को ही उन्होंने आगे बढ़ाया है जिसमें गाँव का यथार्थ तेजी से उभरा है। जिसतरह होरी को निराश, हारा हुआ पाते है उसी प्रकार बेचन भी अपनी समस्याओं के सामने घुटने टेकता है। पुराने संस्कारों की जड़ता तथा अंध-विश्वास, रुढ़ियों की जकड़न दोनों के कथासाहित्य में चित्रित हुई है। दोनों का कथासाहित्य स्वानुभूतियों का भंडार है।

मार्कण्डेय के जो 'पानफूल' संग्रह से लेकर 'बीच के लोग' में, तथा 'सेमल का फूल' 'अग्निबीज' उपन्यास में विविध विषयों का ताँता लगा हुआ है। ग्रामीण किसान, उच्चवर्ग के सामंती संस्कार, उनकी बहुबेटियाँ वहाँ की प्रकृति, उनका संघर्ष, पंचवर्षीय योजनायें, स्वातंत्र्योत्तर भारत की आशा-आकांक्षाओं की पूर्ति न होने के फलस्वरूप उत्पन्न मोहभंग की स्थिति, अत्याचार, भ्रष्टाचार, अंधविश्वास, शहरी वातावरण, उन चरित्रों की मन:स्थितियाँ, प्रेम, काम सम्बन्ध, आदि। इन सभी विषयों की तह तक जाकर मार्कण्डेय ने कथासाहित्य के जीवंत प्रवाह से पाठक के दिलोदिमाग को झंकृत किया है।

मार्कण्डेय के कथासाहित्य में अनेक विषय ऐसे हैं जिनको लेखक ने अपने निजी जीवन में स्वयं भोगा है, परखा है। लेखक अपनी स्वानुभूति के आधार पर ग्रामीण जीवन का संघर्ष, किसानों की भूमि सम्बन्धि समस्याएँ, स्वातंत्र्योत्तर भारत में बनती-बिगडती स्थितियाँ और शहरी जीवन के उपभोक्ता समाज आदि को स्वयं महसूस किया है। स्वतंत्रता आंदोलन के उपरांत भी न्यायदेवता के आँखोपर से पट्टी नहीं हटी परिणामस्वरुप गांवों का आम वर्ग भ्रष्टाचार की चक्की में पीसता रहा। ग्रामपीड़ितों को सामंतों के, जमींदारों तथा ठेकेदारों के चंगुल से बचानेवाला कानून अब तक कार्यान्वित नहीं हो पाया है। 'भूदान' 'आदर्श कुक्कट गृह', 'बीच के लोग' आदि कहानियाँ कटु वास्तविकता के ज्वलंत उदाहरण है। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन, भूमिसुधार, भूमिहिनों को भूमि प्रदान करना, मशक्कत करनेवालों के

कायदे कानून की बात कागज पर लिखी हुई रहती है। सारी प्रगतिशील योजनाओं के बावजूद भारतीय गाँवों के जमींदारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ वे उसी सामाजिक व्यवस्था में जी रहे है जिसमें वे स्वतंत्रता पूर्व काल में जी रहे थे।

अब हम मार्कण्डेय के समग्र कथासाहित्य को केन्द्र में रखते हुए आंचलिक विशिष्टताओं से संबंधित सापेक्ष मुद्दों का मूल्यांकन करने की अनुमति चाहते है। हम समसामायिक सामाजिक परिवेश की चर्चा अगले अध्याय में करेंगे। पर इस अध्याय में मार्कण्डेय की आंचलिक कथासाहित्य के अलावा महत्वपूर्ण बिंदूओं को रेखांकित करते हुए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पक्षों का उद्‌घाटन करेंगे। एक ओर इस देश का प्रत्येक देशवासी नई आशाओं के स्वप्न संजोये हुए था, दूसरी ओर विभिन्न परिस्थितियों का सामना होने पर बदले हुये संदर्भों में अपने आपको दुविधाग्रस्त भी अनुभव कर रहा था। युगीन परिस्थितियों के दबाव में विभिन्न राजनीतिक समस्याओं को केन्द्र में रखते हुये मार्कण्डेय ने अपने कथासाहित्य का सृजन किया।

3.211 राजनीतिक पक्ष

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक नये युग का भावोन्मेषी उदय हुआ था। पर उसमें विभिन्न राजनीतिक स्थितियों को प्रादुर्भाव हुआ। ग्रामजीवन में राजनीतिक स्तर पर आशा-आकांक्षाएँ थी उनकी पूर्ती के स्थान पर भ्रष्ट व्यवस्था और विसंगतियाँ उभरकर आयी। मार्कण्डेय के समग्र कथासाहित्य में ये विसंगतियाँ येन-केन प्रकार से व्यक्त होती है। उनकी एक कहानी 'नौ सौ रुपए और एक ऊँट दाना' में स्वार्थप्रेरित राजनीति को लक्ष्य बनाकर उससे उपजी विकृतियों के प्रति चिंता व्यक्त हुयी है। स्वतंत्रता से पूर्व भाईचारे और एकता से गाँवों के निवासियों में सहयोग था लेकिन स्वातंत्र्योत्तर काल में यह एकता, भाईचारा कहीं नष्ट हो गया। बच्चन पाँच साल के बाद घर पहुँचता है तब सम्बन्धों में आयी दरार स्पष्ट हो जाती हैं उसके काका गांधीजी के सिद्धान्तों का प्रचारक, सबके सुख-दुःखों का साथी, बुचऊ के घर जाने से मना करता है कारण बुचऊ के दूसरी पार्टी का सदस्य है। बुचऊ ने राजनीति का स्पष्ट एवं बेबाक वर्णन किया है- "राजनेत तो गन्हीं महतमा के साथ चली गयी बच्चन। विचार नाहीं रहा अब, अउर बिना विचार की नेति कहाँ? देखा न........ अब काम-धंधा सबमें बेबिचारी आ गयी। जो कुछ आग-पानी हिरदय में रहा वह बुझाय गया। हमका छोड़ा नेता लोगों को देखा, उनका भी वही हाल। जिस कुरसी पर बैठ गये बस वह उनकी हो गयी। अब तो कुरसी की नेति है। गन्ही महतमा का कुल काम-धाम धरा रहा गया।" रेणु और मार्कण्डेय दोनों कथाकारों की रचनाओं में गांधीवाद बजाय समाजवाद का चरित्र संघर्ष पाया जाता है।

स्वातंत्र्योत्तर समाज में 'स्वराज की कल्पना' यथार्थ से टकराकर चूर-चूर हो जाती है। स्वराज के आने से पहले ग्रामआदमी में बड़ी-बड़ी तमन्नायें थी इसीलिए 'बीच के लोग' में हुडदंगी कहता है- ''अब जलने से का होता है हरसू, बड़ा सुराज-सुराज चिल्लाते फिरते थे, अब सुराज आवा तो काहे को पिराय रही है।[60]

देश की राजनीतिक स्थिति में स्वतंत्रता के बाद परिवर्तन हुआ। ग्रामसुधार की अनेकानेक योजनायें बनायी गयी, जिनमें साधारण किसान या मजदूर वर्ग को केन्द्र में रखा गया, लेकिन ये योजनायें इस वर्ग तक पहुँचानेवाले ही मध्यस्थ ही उसका फायदा उठा रहे थे। तो कभी कभी योजनायें कागजी स्वरुपों में ही रहीं। अगर यह योजनायें निम्नवर्ग तक पहुँची भी तो उसका विकृत या भ्रष्टाचारी रुप ही सामने आया। गाँव की राजनीतिक चहल-पहल ने विभिन्न सामाजिक अंचलों के मानसिक संस्कारों को प्रभावित किया। मार्कण्डेय की 'भूदान' कहानी प्रगति की ओर जानेवाले रामजतन के स्वप्नभंग की कथा है- ''यह नये विकास के स्वप्नभंग की कथा है जिसमें पुराना शोषक वर्ग अपने संकुचित स्वार्थों के कारण आज भी साधारण किसानों के अभाव ग्रस्त जीवन और उनकी ट्रेजेडी का उत्तरदायी है।''[61] रामजतन 'भूदान' को लेकर स्वर्णिम भविष्य की कल्पना करता है लेकिन ठाकुर के जिस दान से उसे भूमि मिलती है वह तो केवल पटवारी के कागज पर थी। ''ग्रामीण चरित्रों के सजग विश्वास और मानवीय आस्था के विपरीत उस वर्ग की कुटिल नीतियों की यह कहानी उन ग्रामों की कटु वास्तविकता को उभारती है जिन्हें सामान्यतः फिल्मों में ढोल मंजीरों की धुनों पर गूँजते लोकगीतों की भूमि माना जाता है और एक रोमांटिक वातावरण में उनके संघर्षों को झुठलाया जाता है यह स्वप्न भंग और कटुतिक्त यथार्थ का चित्र आवश्यक है लेकिन इसमें कुछ भी आरोपित नहीं है।[62]

प्रसंगवश 'प्रलय और मनुष्य' में राजनीतिक नेताओं और इंजीनियरों की वास्तविकता का पर्दाफाश किया है। 'बातचीत' कहानी में पंचायत, सरपंच, ठाकुरों के अत्याचार, पुलिस की कारगुजारियाँ आदि का यथार्थ परक चित्रण किया है। 'दौने की पत्तियाँ' में पंचवर्षीय योजना की विफलता और नहर के निर्माण का यथार्थपरक चित्रण है। इस योजना-विकास के नाम पर शिकार होने वाले सामान्य ग्रामीण भोला की व्यथा को चित्रित किया है। 'चाँद का टुकडा' नामक कहानी में ठेकेदारों द्वारा किये गये मजदूरों के शोषण को अभिव्यक्ति मिली है।

मार्कण्डेय मूलतः यह मानते है कि 'राजनीति की अस्थिरता तथा पक्षनेताओं का स्वार्थ ही सामाजिक भेदभाव एवं अभावों का कारण है। देश की गरीब जनता के जीवन को समृद्ध करने के बजाय राजनीतिक अपना ही झोला भर रहे है और खद्दर का कुर्ता-धोती पहने महात्मा गांधी की दुहाई देकर काँग्रेस

पार्टी अपनी सुरक्षितता की ढाल आगे करती है। इस सम्बन्ध में मेझुकी पूरे विश्वास के साथ कहती है "डरो नहीं यह खादी की टोपी है। इसकी दीवारों के बीच हम सुरक्षित हैं..... यह इस लोक की सबसे बड़ी ढाल है। इसके पीछे कुछ भी छिप सकता है।"(63)

कहीं-कहीं राजनीतिक जागरुकता के कारण व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों में दरारे पैदा होने लगी। नये संविधान के मौलिक अधिकारों की घोषणा में सामाजिक असमानता को दूर कर व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य समान अधिकार स्थापित किये गये। समाज के पिछडे वर्ग तथा उच्च-वर्ग के मध्य छूआछूत की भावना को दूर करने के प्रयत्न किये गये हैं। 'अग्निबीज' उपन्यास में भी उच्च वर्ग के साधो काका का घर बाकर, मुसई महतो का आना जाना 'अस्पृश्यता निवारण कानून' की स्थापना कर चमार के हाथों सबको खाना खिलाना आदि से नये विचारों का संचार अंचलों मे होने लगा हैं।

3.212 सामाजिक पक्ष

मार्कण्डेय की कहानियाँ सामाजिक सम्बन्धों तथा उनके संघर्षों को व्यक्त करती है। 'एक काला दायरा' सामाजिक जीवन में फैले भ्रष्टाचार को व्यक्त करती है। तो 'कानी घोडी' गाँव के व्यापारी वर्ग के यथार्थ को खोलती है। उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग पर किये गये अत्याचारों का वर्णन भी मार्कण्डेय की कहानियों में मिलता है। राजकुमार सैनी के अनुसार- "अमानवीय करण की ही स्थिति को एक दूसरे स्तर पर कानी घोडी में उभारा है। स्वाधीनता के बाद भी समाज में उच्चवर्गों द्वारा निम्नवर्ग पर अत्याचार हो रहे है।"(64) 'सोहगइला', 'नीम की टहनी', 'मन के मोड़' आदि कहानियों में लेखक ने अन्धविश्वास, शकुन-अपशकुन, परम्परागत धारणाओं को चित्रित किया है। डॉ. लक्ष्मण दत्त गौतम के अनुसार "उन्होंने जन-जीवन में रचे बसे अंधविश्वासों को देखा है और उन्हें ध्वस्त होते देखने का स्वप्न भी देखा है । यही नहीं संपूर्ण संकल्प के साथ उसने उन रुढ़ियों पर प्रहार करने का कोई अवसर नहीं जाने दिया।"(65) इसलिये, सोहगइला उसके हाथ से छूटनेपर "व्यंग्य की एक तीखी हँसी उसके चेहरे पर बिखर गयी, मेरा बाप भी तो अपने बाप का अकेला ही बेटा था, और माँ भी मेरे घर बहू बन कर आयी थी। फिर माँ के कालिख में डूबे, रुखड़े हाथों की असंख्य काली रेखाओं के जाल में फँसी, उसकी आँखे, दूर बैठी हुई बहू और सामने लुढ़के सोहगइला, दोनों को देखने में असमर्थ होती जा रही थीं क्यों कि वह अब बच्ची नहीं रह गयी थी और सामने खड़े भविष्य को पहचान रही थी। रुढ़ि-विश्वासों की निःस्सारता वह समझती है तथा भविष्य को पहचानने की उसमें क्षमता है।

नारी की विविध समस्याओं को भी लेखक ने बखूबी चित्रित किया है। अपने प्रगतिशील चिंतन के कारण मार्कण्डेय स्त्री के समानाधिकार अथवा ऐसा कहे तो ज्यादा समीचिन होगा कि स्त्री तथा पुरुष के बीच प्रेम और सहयोग की भावना के वे समर्थक है- ''स्त्री तथा पुरुष ही जीवन तथा संसार का निर्माण करते हैं। स्नेह वात्सल्य और ममता दोनों के सहयोग से ही पैदा होती हैं।''(66)

मार्कण्डेय नारी की स्वतंत्रता की चाह रखनेवाले तथा पुरुष के द्वारा नारी के प्रति सामंती दृष्टिकोण के बदलाव के चित्रण करता हैं। नारी के पराधीनता के लिए एक ओर पुरुष वर्ग जिम्मेदार है जो हमेशा अपना प्रभुत्व बनायें रखना चाहता है तो दूसरी ओर नारी परम्परागत मान्यताओं एवं आदर्शों में जकड़ी हुई है। इनसे नारी को मुक्त होना होगा तभी वह समानाधिकार की माँग कर सकती हैं।

प्रेमचंद की प्रगतिशील परम्परा के अनुसरण में यशपाल, भीष्मसाहनी, भैरवप्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय अमरकांत, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी आदि ने 'नारी के प्रति सम्मान' और उसकी जिजीविषा शक्ति के प्रति सहानुभूति दर्शायी है। इसी क्रम में मार्कण्डेय कृत 'सात बच्चों की माँ', 'कहानी के लिए नारी पात्र चाहिए', 'वासवी की माँ' आदि कहानियाँ नारी सम्बन्धी अनेक समस्याओं को चित्रित करती है। नारी को लेकर भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण परम्परागत मान्यताओं में जकड़ी हुयी नारी उसका कुंठित जीवन आदि का यथार्थ चित्रण मार्कण्डेय की कहानियों में हुआ है। कभी कभी समाज में नारी का शोषण नारी के द्वारा होता है, बहू भाभी के शोषण में सास-ननंद सहायक होती है, तो कभी अपनों द्वारा ही उनपर अत्याचार किये जाते हैं। उदाहरणत: 'बिन्दी कहानी' में बुआ ही बिन्दी की सारी जायदाद का उपभोग करती है उसे घर की नौकरानी बनाकर शोषण करती है।

प्रेम-विवाह, अनमेल विवाह, कामसम्बन्धी त्रासदी की कहानियाँ मार्कण्डेय के चिंतन की और एक झलक प्रस्तुत करती है। ''मार्कण्डेय उस प्रेम के पक्षधर है जो स्वस्थ जीवन के विकास में सहायक बने। उनकी दृष्टि में स्वाभाविक भूमिका में गतिशील होनेवाला प्रेम ही जीवन में आत्म-संतोष की वस्तु बनता है।''(67)

'सेमल के फूल', 'प्रेम और उसकी पीड़ा' की कहानी है। जिसमे फलस्वरूप उसे सफलता प्राप्त हुई है। नेमिचन्द जैन के विचार से ''सेमल के फूल की बहुत बड़ी सफलता इस बात में है कि वह उलझाव की कथा होकर भी इतने सहज और सरल रुप में प्रस्तुत हुई है।''(68) जिसमें सहज स्वाभाविक एवं प्राकृतिक धरातल पर लेखक की अभिव्यक्ति से तादात्म स्थापित करता है।प्रेम की व्याख्या इसी तादात्म्य की उपज है जो सुमंगल व्यक्त करता है -''प्यार कोई सौदा नहीं नीलम जो बार बार किया जाए.... कुछ और है उसके पास एक चेतन हृदय,

एक भक्ति, एक सब कुछ अर्पित कर देने की क्षमता जो उसकी अपनी है, और समर्पण भी कभी बार बार.....।''(69) इस प्रेम की परिणति दाम्पत्य जीवन में देखते है। 'अग्निबीज' में हुडदंगी और छबिया का मिलन करवाकर इस बात की पुष्टि करते है। दाम्पत्य जीवन के परस्पर सहयोग की भी वे कामना करते हैं।

'एक काला दायरा' कहानी में सामाजिक जीवन में फैले भ्रष्टाचार तथा पुलिस व्यवस्था पर प्रहार किया है। पुलिस, कानून और न्याय बड़े लोगों के हथकंडो पर चलते हैं। धन और ढोंग के बल पर सभापति बने हुये मिसिर का स्वार्थ गाँव के विकास में बाधक है। मिसिर जी हमारी ग्राम-सभा के सभापति हैं। धर्म परायण आदमी हैं।..... ..... बडी माया है इनके पास... कई स्कूलों के वे मैनेजर और ब्लाक कमेटी के ऊँचे अधिकारी भी हैं। इधर चार-पाँच कोस में वे विकास कार्यों के प्रतीक हैं।(70) बेईमानी एवं भ्रष्टाचार से लोगों की विकास योजनाओं का पैसा हड़प लिया जाता है।

गाँवों में स्वाधीनता-पूर्व दौर में ही पंचायत व्यवस्था अस्तित्व में आ चुकी थी। पंचायत के अस्तित्व के कारण गाँव का प्रत्येक व्यक्ति प्रशासन व्यवस्था सत्ता का साझेदार बन सकता था। जिससे विभिन्न योजनाओं की कार्यवाही सुचारू रुप से चलायी जा सके यह भी उद्देश रहा था- सरकारी स्तर पर पंचायती राज का उद्देश्य प्रजातंत्र के कार्य में करोडों व्यक्तियों को लाकर प्रजातंत्र को वास्तविक बनाना है। इस प्रणाली से स्थानीय प्रशासन कार्य सम्पादित होता था। लेकिन जिस उद्देश्य से पंचायत स्थापित हो गयी थी उनका निर्वाह करना दूर की बात थी। लोगों में भी इसके प्रशासन कार्य को लेकर कोई उत्साह नहीं था लोगों के मन में 'जुर्माना' भरना सहीं न्याय का प्रतीक नहीं रहा था जिसको 'बिन्दी' कहानी में गेंदासिंह ने व्यक्त किया है- ''अरे यह जरिमाना है बचिया की अनरथ की जड़ है। न धरम रह गया, न न्याव इस लोक में। बस पाल्टीबार्जी।''(71) गेंदासिंह न्याय व्यवस्था की असंगति और गरीबों को लूटने के और एक साधन पर प्रकाश डाल रहे है।

जमींदार, महाजन, साहूकार के शोषण के कारण सामान्य लोगों की दयनीय दशा बन गई है। 'महुए का पेड़' की दुखना के पति के मृत्यू के दूसरे दिन ही ठाकुर ने बेदखली का हुकुमनामा भेज दिया, दस बीघे की काश्तकारी से उसे हाथ धोना पड़ा। 'बादलों का टुकड़ा' कहानी में कर्ज की अदायगी के रुप में महाजन के आदमी उसकी बकरी को खोलकर ले जाते है।

जमींदारों को शोषणमूलक मनोवृत्ति का दर्शन 'कल्यानमन' कहानी में होता है। मंगी की जीविका का एकमात्र साधन पोखरी भी वे उसके लड़के को साजिश के जाल में बुरी तरह फँसाकर प्राप्त करते है। उच्चवर्ग के अन्याय एवं शोषण

का उदाहरण 'सत्ती' भी है। मालिक के अन्याय एवं अत्याचार का विरोध न कर सत्ती अपना सर्वस्व गँवा बैठती है।

'अग्निबीज' उपन्यास में हिरनी की हत्या भी ठाकुरों द्वारा किये गये अत्याचार का उदाहरण है। समाज में छूआछूत, जातीयता का नष्ट होना, आदि को लेकर निरन्तर मत मतान्तर तथा विचार विमर्श कहानियों में होता रहा है। मार्कण्डेय भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। 'अग्निबीज' उपन्यास में उनका यह विचार प्रमुख रहा है जिसकी चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे। मार्कण्डेय की कतिपय कहानियाँ ऐसी है जो इसी जातिवाद एवं उनसे उत्पन्न चेतना को व्यक्त करती है। 'धुन' कहानी में बरसों से उनलोगों को अछूत कहने से उनकी विचारप्रणाली अपने को हीन समझती है। इस कहानी में पात्र नाथू अपने जोखू महाजन की छोटी बिटिया को बजडी की मोटी लिट्टी खाते हुये देखकर हकबका जाता है और लड़की के हाथ से लिट्टी दूर मिट्टी में फेंकता है। ''यह का अनरथ करती हो, भगेलू की माँ? अगर कोई अड़ोस-पड़ोस देख लेगा तो आग लग जाएगी सारे गाँव में। एक तो वैसे ही गाँव में रहना मुहाल है; दूसरे लोग यहीं कहेंगे कि चमार-सियार की जात भले घर के लड़कों को अपनी रोटी खिलाकर भंडासराध कर रहा है।''(72)

साहित्यालोचना में भले ही हम लोग वर्ग चेतना की बातें करें लेकिन हमारे जीवन में वर्ण-व्यवस्था ही हावी है। यह हमारे यथार्थ की विद्रुपता ही है। जातिव्यवस्था की जड़ें समाज में गहरी होने के बावजूद उपर्युक्त कहानी में बदलते जीवन संदर्भों के परिवर्तन दर्शाया है, भगेलू की माँ फिर से छोटी बिटिया को लिट्टी का टुकड़ा देती है क्योंकि सहुआइन ने रो-रो कर कहा था- ''भगतिन, इस नन्हीं बिटिया को लेती जाओ। एकाध टुकड़ा रोटी हो तो दे देना। दो दिन से कुछ भी मुँह में नहीं गया है बेचारी के।''(73) सहुआइन का जब स्वार्थ है तब जातिवाद को भूलकर रोटी का टुकड़ा उसे दिलाया जा रहा है। ''कितनी बड़ी विडम्बना है कि समाज के सारे कानून, समाज के इन्हीं तथाकथित और स्वनिर्मित रक्षकों द्वारा बनाये हुये है, जो अपने स्वार्थ-पूर्ति के लिये जब चाहे उसे तोड़ मरोड़ सकते है। उन्हें कोई पाप नहीं लगता। सजा नहीं मिलती और भुगतना सिर्फ दलितों के लिये पड़ता है।(74) उसी प्रकार भारत के समाज में जाति-प्रथा का विष युगों से फैला है उसने सामाजिक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त और कुंठाग्रस्त कर रखा है।''(75) मार्कण्डेय ने इसके दुष्परिणामों को अग्निबीज में रेखांकित किया है साथ ही साथ 'अस्पृश्यता निवारण कानून' की राह भी बतलायी है।

जातिव्यवस्था की इन स्थितियों में बदलाव की सम्भावना 'बीच के लोग' कहानी में भी है। ''परानपुर गाँव में ऊँच-नीच लोग सब मिलकर किसी बात का फैसला कर लेते है। आपस में कोई मतभेद नहीं और इसी कारण इस

जवार में फउदी-सा सरदार दूसरा नहीं।''[76] इससे 'आनेवाले समय में परिवर्तन तथा इससे होने वाला फायदा सब के एक होने में ही भलाई है', का विचार व्यक्त होता है। सचेतन विचारों से जातियता की खाई को पाटने का कार्य मार्कण्डेय ने किया है।

मार्कण्डेय की एक विलक्षण कहानी 'गनेसी' कहानी है। 'गनेसी' कहानी में बनैले सुअर का मांस ब्राह्मण से लेकर हरिजन तक जितनी भी जातियाँ थी सबके घर में पकाया गया। इससे उन्होंने जातिप्रथा के प्रति विद्रोह का भाव जगाकर अपनी युग-चेतना तथा समाजवादी समाज की रचना की चाह व्यक्त की है।

सारांशत: मार्कण्डेय के कथासाहित्य में संस्कार और मानवता के तत्व निहित है। समाज के हर तरह के शोषण के खिलाफ आवाज उठाकर गरीब तथा दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति परक दृष्टिकोण है। रुढ़ियों, अन्धविश्वासों, अशिक्षा, भूख, गरीबी की सड़ांघ से भरी गांवो की दुनिया का पर्दाफाश किया है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सबमें वे किसी एक के पक्षधर नहीं है। जो भी परिवेश की विसंगतियाँ उपलब्ध होती है, उसकी यथार्थपरक अभिव्यक्ति मार्कण्डेय के कथासाहित्य में मिलती है।

3.213 आर्थिक पक्ष

आंचलिक क्षेत्र में आर्थिक विपन्नता के मूल में शोषकों के शोषितों पर किये गये अत्याचार हैं। शोषित वर्ग श्रम करने के बावजूद अपनी बुनियादी जरुरतों को पूरा नहीं कर पा रहा है। 'चाँद का टुकड़ा', 'धुन', 'दानाभूसा', 'बादलों का टुकड़ा' आदि कहानियाँ आर्थिक विपन्नता का दर्शन कराती है। 'चाँद का टुकड़ा' कहानी में सरकार की विकास योजनाओं का ठेकेदार लाभ उठाते हैं, लेकिन गरीब मजदूरों के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आ पाता। वर्णन है कि ''चार-चार दिन कंकडियों वाली जमीन खोदी। पर सरकार की विकास योजनाओं का लाभ ठेकेदार उठाते हैं लेकिन आम गरीब मजदूरों के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आ पाता। उसे पानी पीकर भुइयाँ पर पड़े रहना है।''[77] शोषण की चक्की में पीसते चले जाने वाला मजदूर अपना सिर उठाकर जी नहीं सकता न ही वह अपने परिवार की खुशी को बढा सकता है। आर्थिक विपन्नता प्राकृतिक प्रकोपों के कार्यकारण स्वरुप दृष्टिगोचर होती है। 'दानाभूसा' कहानी में सूखे की पृष्ठभूमि एवं उसके विपरीत परिणामों को दर्शाया है। चींटे चिपका हुआ गुड़ उसमें पानी मिलाकर शर्बत बनाया जाता है और उसे पीकर दिन काँटे जाते है।

'दूध और दवा', 'बीच के लोग', 'मधुपूर के सिवान का कोना' आदि कहानियों में भी आर्थिक विपन्नता, अभावग्रस्त जिंदगी, भूख और गरीबी से जूझते

शोषित वर्ग, अन्याय एवं अत्याचार आदि को चित्रित किया है। 'दूध और दवा' कहानी में आर्थिक दृष्टि से स्थिरता उनके जीवन में नहीं आ पाती। "पैसा दिल को ठंडा और शरीर को गरम रखने की अद्‌भुत दवा है।"(78) लेकिन उसको पाने के लिए पापड बेलने पडते है। मुन्नी की आँखों के माँड़े की दवा या उसके दूध के लिए भी घर में फूटी कौडी नहीं है।

स्वतंत्रता के बाद ग्रामों में कुटीर उद्योग, औद्योगिकरण तथा कृषि के नवीन उपरकणों का समावेश हुआ। मार्कण्डेय चरखा केन्द्रों के साथ-साथ पंप सेट, ट्रेक्टर आदि औद्योगिक साधनों की आगमन की सूचना देते है। जमींदारों के शोषण, ज्यादतियों से आम किसान वर्ग राहत पाना चाहता है फलस्वरूप ट्यूबवेल ट्रेक्टर आने से अर्थप्राप्ती का साधन न रहने की चिंता उनको नहीं सताती बल्कि नरेश कहता है- "किसी तरह लग जाता साला ट्यूबवेल, तो इससे तो जान छूटती।"(79) इन कृषि के नवीन उपकरणों से परिवर्तित किसान जीवन तथा उनकी समस्याओं को मार्कण्डेय ने चित्रित किया है- "अब तो ट्यूबवेल नहर, जाने क्या-क्या बन रहे हैं। मुदा बरक्कत नहीं किसान के घर, उत्तर के सिवान में नहर आ गयी, उधर जो दौरी-दवन की मजूरी-धतूरी थी, वह भी गयी।"(80)

जिजीविषा के कारण विपरीत हालातों का सामना करने के लिए किसान वर्ग तैयार है लेकिन जमींदारों के शोषण से मुक्ति पाना चाहता है। सौ-पचास लोग बेकार होने से भी उनको एतराज नहीं है। इसप्रकार मार्कण्डेय के कथासाहित्य में आर्थिक भूमिका को सामाजिक समस्याओं के केन्द्र में रखा गया है। वास्तव में आर्थिक वितरण की असमानता से ही सभी समस्यायें पैदा होती है। जिनका हल मार्कण्डेय विविध रुपों से बतलाना चाहते है लेकिन इसकी जड़े इतनी गहरी है कि सामाजिक विषमता को हटा नहीं पाते। इसीलिए आलोचक सुरेन्द्र प्रसाद का कहना समीचीन है कि "असामंजस्यपूर्ण आर्थिक वितरण का ही परिणाम है कि आज की व्यवस्था के अन्तर्गत श्रम करनेवाला वर्ग तो अभावग्रस्त है और श्रम न करनेवाला वर्ग साधन-सम्पन्न है। मार्कण्डेय ने अपने कथा-साहित्य के अन्तर्गत इस बात को गम्भीरता से उठाया है"(81)

मार्कण्डेय भारतवर्ष के गाँवों में परिव्याप्त वर्ण संघर्ष बनाम वर्ग संघर्ष की धुरियों को कलात्मक ढंग से उकेरते हैं। वे 'प्रकृतवादी यथार्थवाद' के रचनाकार न होकर 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' और'आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद' के हस्ताक्षर है।(82)

उनकी कहानियाँ ग्राम को केंद्र में रखकर लिखी गयी है सन 1962 में प्रकाशित 'माही' कथा संग्रह की ज्यादातर कहानियाँ महानगरीय जीवन तथा उसके भावबोध को चित्रित करती है। 'दूध और दवा' के अलावा इस संग्रह की

सभी कहानियाँ सेक्स भावना तथा प्रेमजीवन पर आधारित है। 'सतह की बाते' (प्रेम और सेक्स), 'सूर्या' (मूलतः सेक्स पर आधारित), 'माही' (प्रेमसम्बन्ध) 'आदर्शों का नायक' (यौन संबंधों का चित्रण) पक्षाघात (आधुनिक भावबोध, पति के मित्र परेश से सन्तान की बलवती आकांक्षा) आवाज (अवैध प्रेम सम्बन्ध) तारों का गुच्छा (विवाहित पुरूष से सम्बन्ध) इन सभी कहानियों में वे मनोविश्लेषणात्मक चित्रण प्रस्तुत करते है। आलोचक विवेकी राय के अनुसार -''ग्राम कथाकार मार्कण्डेय आधुनिक नगर बोध और सेक्स पीड़ा को अंकित करने में प्रवृत्त हुआ है। इस संग्रह की समूची कहानियाँ नगर जीवन से सम्बन्ध है और विषय वस्तु के साथ शिल्प की दृष्टि में भी वह नवीनता उभरी है।जिसमें सुपरिचित मार्कण्डेय की पहचान खो जाती है।''(83) पर मार्कण्डेय ने युगीन परिवर्तन के अनुरूप अपने रचना कौशल को अपनाया है। उनका आत्मकथन है कि ''सम्पन्न रुचि और गहरी समझ की माँग आज की कहानी करती है तो सिर्फ इस कारण कि बदलते हुए जीवन के यथार्थ के प्रति लोगों को सजग करके, उनके सामने से भ्रम का कुहासा हटाना चाहती हैं। कहानी को नयी दिशा में विकसित करना तभी सम्भव है जब उसे समसामायिक जीवन के पूरे विकास के संदर्भ में वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये।''(84)

मार्कण्डेय देहात के यथार्थ से आम पाठक को परिचित करवाने के बाद महानगरीय यथार्थ तथा बदलते हुये तथ्यों को रेखांकित करना चाहते है, उनकी परिवर्तित दृष्टि एवं विचारधारा का बोध कराना उनका लक्ष्य है। हमें सुपरिचित मार्कण्डेय की पहचान कहीं-कहीं खोयी हुई महसूस जरुर होती है लेकिन शिवकुमार मिश्र के अनुसार ''तथाकथित नगर बोध की कहानियों में उनके रचनाकार का चेहरा पहले से कतई भिन्न नहीं है। संदर्भों के अनुरूप कहानी की रचनात्मक बुनावट में अथवा कहानियों के बीच से उभरने वाले सवालों के स्वरुप में फर्क हो सकता है, जो स्वाभाविक भी है, किंतु जहाँ तक मूलवर्ती रचनादृष्टि सवालों के बारे में रचनाकार के अपने रुख और इस रुख के सर्जनात्मक और विचारात्मक परिणति का सवाल है मार्कण्डेय की कला चेतना और यथार्थ चेतना, चाहे वह वस्तु बोध का धरातल हों, यहां और वहां वह अखंड ही है। वह कदापि विभाजित और बिखरी हुई नहीं है।''(85)

मार्कण्डेय की नागरी जीवन पर लिखी हुई कहानियों में चाहे वह 'माही' संग्रह की अधिकांश कहानियाँ हो या अंतिम कहानीसंग्रह 'बीच के लोग' की 'लंगडा दरवाजा', 'बयान', 'प्रियासैनी' जैसी लम्बी कहानी हो, विविध सवालों को घेरे में पाठक को लाकर खड़ा करते है। इन विविध कहानियों में प्रेम और उससे सम्बन्धित

अनेक समस्यायें ही येन केन प्रकारेण ऊभरकर आती है। लगता है ग्रामीण जीवन के संघर्ष और आंचलिक यथार्थ की सीमा लाँधकर आधुनिक मनोवृत्ति के रचनाकार बन गये हैं। पर विगत दिनों में जब नामवर सिंह गोवा विश्वविद्यालय के पुनश्चर्या पाठ्यक्रम से अवसर विशेष व्याख्यान हेतु आमंत्रित थे तब उन्होंने मार्कण्डेय की 'हलयोग' नामक कहानी की चर्चा की है जो वर्तमान साहित्य के शताब्दी महाविशेषांक अप्रैल-मई 91 में प्रकाशित हुयी है। 'हलयोग' कहानी आत्मवृत्तात्मक शैली में लिखी गयी है। जो जमीन्दारी शोषण, अमानवीय व्यवहार और जनसमाज के भीरू-चरित्र की लोमहर्षक गाथा है।

लकडी के कुन्हे पर मुंशीजी के एक पैर को लकडी के छेद में डलवाकर पच्चर मार दिया जाता है। जिससे एक पैर और दोनो हाथ खुले रखकर भी वह कहीं आने जाने में असमर्थ हो जाता है। सारी शौच क्रियाएँ उसे वहीं करनी होती है....[86] वहीं कटोरे में उसका खाना रख दिया जाता है। यही हलयोग मुंशीजी पर किया गया है। नामवर सिंह के साक्ष्य से कहा जा सकता है कि मार्कण्डेय के लेखन की मूल जमीन आंचलिक जीवन की त्रासदी और ग्रामीण यथार्थ है। वे उसी परिवेश के सार्थक हस्ताक्षर और यथार्थवादी रचनाकार है।

3.3 पुंडलीक नायक का जीवन एवं व्यक्तित्व

पुंडलीक नायक कथाकार के साथ-साथ नाटककार के रुप में भी प्रसिद्ध है। उनके जीवनानुभवों की प्रखरता, ग्राम जीवन का प्राकृतिक सौन्दर्य, आंचलिक परिवेश के झाड़-पौधे, जानवर-जमीन, पानी-आसमान, झरने-नदियाँ, ताल-कुलागर,खिले फूलों की भीनी खुशबु आदि रूप, रस, गंध से परिपूर्ण शब्द-चित्र उनकी कहानियों में प्रमुखता से उपलब्ध होते हैं।

पुंडलीक नायक की रचनाएँ सौद्देश्यपूर्ण होती है, उनकी कथाओं में गाँवों का परिवर्तनशील जीवन अंकित है, कहीं व्यक्ति चित्रण, कहीं गावों की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों की ज्वलंत समस्याएँ, कहीं मानव-मनोविज्ञान के साथ-साथ पशुओं की असहाय अवस्था, कहीं प्रकृति एवं पशुधन का मानवीकरण वे इन्द्रियबोध के अनुभव संपन्न जगत को यथार्थ के धरातल पर चित्रित करते हैं।

कोंकणी कथालेखक पुंडलीक नायक का जन्म गोवा के वळवय, फोंडा क्षेत्र में 21 अप्रैल सन 1952 में श्री नारायण-लक्ष्मी के सामान्य परिवार में हुआ। उनको प्रारंभिक जीवन में अनेक समस्याओं तथा दुःखों का सामना करना पड़ा। वे आपस में छह भाई-बहन थे जिसके कारण उनके पिताजी को जीवन-निर्वाह

के साधन जुटाने में बहुत सी कठिनाईयाँ सहनी पड़ी। पुण्डलीक नायक की पढ़ाई 10 वें वर्ष से शुरु हुई। तब तक गायगोरुओं का पालन करते हुए, गोबर जुटाकर उसे बेचते हुए, कभी-कभी बरसात से पूर्व मिर्ची के छोटे-छोटे पौधों को बेचकर उन्हें आजीविका का निर्वाह करना पड़ा। मराठी पाठशाला में प्रवेश लेने के बाद 15-16 साल की उम्र में मराठी साहित्य से परिचित हुए। उनको पेंडसे, थोरात, व्यंकटेश माडगुळकर आदि आंचलिक लेखकों ने प्रभावित किया। वे अपने लेखकीय जीवन में व्यंकटेश माडगुळकर की कहानी 'पोळा' का प्रभाव विशेष रुप से स्वीकारते है।

पुण्डलीक नायक का साहित्य उनकी निजी जिंदगी से बहुत प्रभावित है। बचपन में ही उन्हे वर्णाश्रम व्यवस्था की विषमताओं का प्रत्यक्ष अनुभव ग्रामोण परिवेश में हुआ। भाटकारों के शोषित घृणित व्यवहार का सामना उनके परिवार को करना पड़ा। पुण्डलीक नायक के कथा-साहित्य में अक्सर जमींदारों के प्रति विद्वेश की चिनगारी पायी जाती है। किशोरावस्था से ही उन्होंने अत्याचार का विरोध किया। जीवन में मार्क्सवादी दृष्टि अपनाने के कारण मनुष्य की समानता एवं ऊँच-नीच की भेद-भावना के विरोधी थे। उन्हें किशोरावस्था से ही महसूस होने लगा कि कहीं ना कहीं मन की इन भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति जरुरी है।

पुण्डलीक नायक के विचारानुसार साहित्य का प्रयोजन केवल मनोरंजन भाग नहीं है। कारण यह इतना प्रभावी माध्यम है कि वह मनुष्य के आत्मिक आनंद की वृद्धि करने के साथ-साथ उनकी जीवन दृष्टि को भी प्रभावित करता है। सातवें दशक के आरंभ में ही गोवा (19 दिसंबर 1961) पुर्तगाली शासन से मुक्त हुआ और वह भारतीय प्रशासन का हिस्सा बना। राजनीतिक एवं सामाजिक हलचलों ने भी इन्हें प्रभावित किया। कार्ल मार्क्स, महात्मा गांधी, काकासाहेब कालेलकर आदि के विचारों का भी प्रभाव इनके लेखन पर पाया जाता है। पुण्डलीक कथाकार का साहित्य आत्मपरक अनुभव, यथार्थ की विद्रूपता तथा आंचलिकता से परिपूर्ण है। ऐसा कहे तो गलत नहीं होगा की पुंडलीक नायक ने जिन वैचारिक क्षणों को भोगा है उसकी कलात्मक पुनरावृत्ती साहित्य में परिवेश गत चित्रण के साथ-प्रस्तुत की है।

पुण्डलीक नायक ने मराठी कथा लेखन से अपनी रचनायात्रा संबंधी शुरुआत की। प्रारम्भिक दौर में 'स्वातंत्र्योत्तर गोव्यातील मराठी कथा-साहित्य' (साहित्य सेवक मंडल, प्रकाशन गोवा) में उनकी कहाणी एका मांजरीची' संग्रहीत हुई। मराठी में उनकी अन्य रचनायें प्राप्त होती है -'अर्धूक' (लक्षदा दिवाळी अंक-85), 'हिरव्या काळजाचा प्रतिभावंत' (लक्षदा दिवाळी अंक 1986),

'प्रेमजागर'('गोमन्तक' दिवाळी अंक 1991) आदि।

कोंकणी के यशस्वी लेखक लक्ष्मणराव सरदेसाय और बाकीबाब बोरकर ने भी पहले मराठी भाषा में लिखा है और बाद में कोंकणी भाषा को अपनाया उसी प्रकार विवेच्य लेखक के लेखनकार्य की शुरूआत भले ही मराठी से हुई हो लेकिन आगे चलकर वे जिस देहात परिवार से आये थे, जहाँ उनका बचपन बीता था उस वातावरण एवं कोंकणी भाषा को उन्होंने अपनाया। उन्होंने गोवा की अलक्षित जगहों तथा वहाँ के परिवेश एवं संस्कृति को साहित्य के माध्यम से उजागर किया। साहित्य की विभिन्न विधाओं को वे सरसता एवं पूर्णता से चित्रित करते हैं। जैसे नाटक, एकांकी, कविता, बाल साहित्य, समीक्षा, कहानी, उपन्यास, ललित निबंध आदि। इन विविध विधाओं में उन्होंने विपुल लेखन किया है और वे वर्तमान दौर में भी सक्रिय लेखक माने जाते हैं-

नाटक : 'खण खण माती' (1977), 'रक्तखेव' (1979), 'राखण' (1980), 'सुरींग' (1982), 'सुर्सावट' (1982), 'देमांद' (1986), 'मुक्तताय' (1986), 'श्री विचित्राची जात्रा' (1986), 'पिंपळ पेटला' (1986) 'शबै शबै भौजन समाज' (1986), 'दायज' (1991), 'चैतन्याक मठ ना' (1992), 'आत्मवंचना' (1993), 'परिक्रमा' (अप्रकाशित) आदि।

एकांकी : 'गांवधनी गांवकर' (1975), 'छप्पन थिगळी येसवंत' (1980), 'चौरंग' (1982), 'आकाशमंच' (1987), 'दिगंत' (1990) आदि।

बालसाहित्य : 'रानसुंदरी' (1974), 'आळशांक वाग खातलो '(1984), 'मनू' (1988)

कविता: 'गा आमी राखणे'(1976- 44 कविताओं का संग्रह)

कहानी संग्रह : 'पिशान्तर' (1977), 'मुठय' (1977), 'अर्दूक' (1989)

उपन्यास : 'बांबर' (1976), 'अच्छेव' (1977), 'वसंतोत्सव आनी दायज' (1985) जुगाजी (1998)

समीक्षा: 'रंगपाट' (1992)

पुण्डलीक नायक की कृतियों को विविध संस्थाओं, अकादमियों से पुरस्कार प्राप्त हुए है। जिनके चर्चित पुरस्कार हैं- 'रानसुंदरी' (1975) एवं 'अच्छेव' (1977) को गोवा कला अकादमी का राज्यपुरस्कार।

'मर्णकिटो' ('चौरंग' एकांकी संग्रह से सन् 1980) को आकाशवाणी पुरस्कार।

'चौरंग' (1984) को साहित्य अकादमी पुरस्कार।

'श्री विचित्राची जात्रा' (1988) पर आस्ट्रेलियन अकादमी ऑफ

ब्रॉडकास्ट, आर्टस अ‍ॅण्ड सायन्स का पेटर्स ऑस्ट्रेलियन पुरस्कार

पुण्डलीक नायक ने भारत वर्ष के कई प्रांतों की यात्राएँ की है। अभी हाल ही में उन्हें पेन्सेलिनिया विश्वविद्यालय की तरफ से (सन् 2002 में) शिष्यवृत्ती प्राप्त हुई। जिसके अंतर्गत उन्होंने दो माह अमेरिका में रहकर वहाँ के विद्यार्थियों को भारतीय साहित्य पर व्याख्यान दिए है। वे साहित्य-सृजन के सुधी पक्षधर एवं यथार्थवादी रचनाकार माने जाते है।

3.4 पुंडलीक नायक का सृजनात्मक साहित्य

पिशान्तर (1977)

'पिशांतर' कहानीसंग्रह में छह कहानियाँ संग्रहीत हैं। सामाजिक आशय पर लिखी गयी 'भागेलपण' कहानी के अलावा अन्य कहानियाँ 'प्रेम' एवं 'काम' विषय पर आधारित है। सतीश-शोभा की 'पिशांतर'(87) कहानी फ्लैशबैक तथा पत्र शैली में लिखी हुई प्रेमकहानी है जिसमें किशोरावस्था में उत्पन्न प्रेमानुभूति का विकसित रुप दिखाया है। दोनों का मिलना, प्रथम धरातल पर वार्तालाप, उसके बाद स्पर्शसुख की कामना तथा उसके लिए किये गये प्रयत्न, जानबुझकर किया गया स्पर्श, और स्पर्श में ही स्वर्गसुख पाना; एक दूसरे पर गुस्सा करना, और शादी करने की इच्छा व्यक्त करना आदि का अत्यंत संयम से चित्रण किया हुआ मिलता है। संवादशैली एवं निवेदन की तकनीक का उपयोग किया हुआ मिलता है।

भाषा की संकेतधर्मिता, कम शब्दों में व्यापक अर्थ-फलक को रेखांकित करना, पुंडलीक नायक की अपनी विशिष्ट शैली है। 'भागेलपण'(88) गोवा के भाटकार और मुंडकार संबंधों पर लिखी गयी कहानी है। 'भागेली' का मतलब पार्टनर होता है लेकिन भाटकारों ने इसका संदर्भ ही बदल दिया है। 'भागेली' अब सिर्फ मजदूर का पर्याय न रहकर गुलामी का सूचक बन गया है। भाटकारशाही के बंधनों से मुक्ति देने के लिए गोंदलो अपने लडके को पढाता है और भाटकर के चिट्ठी से उसकी पत्नी को नौकरानी अथवा बच्चे को नारियल के बदले में रखवाली करने के लिए लिखा हुआ आशय जान लेता है। बच्चा जब रखवाली करने का मंतव्य पिता को सुनाता है तब उसको थप्पड मारा जाता है और पत्नी भी नारियल के बदले में काम करना चाहती है तो वह निश्चय करके पार्टनरशिप छोडता है और दिपू एवं पत्नी को लेकर गाँव से बाहर निकल जाता है। 'भागेली' कहानी में मुक्ति का संकेत प्रगतिशील विचारों का द्योतक है। बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों का प्रभाव भी यहाँ पर यत्किंश्चित दिखाई देता है। ''कभी बाबासाहब

के फल का अस्तित्व नहीं है। पेड़ से कोई नाता नहीं है। देठ यह लघुत्तम कहानी है, लेकिन आशय से युक्त है। इस कहानी का नायक स्वतंत्र, स्वावलंबी एवं 'स्व' का अस्तित्व स्थापित करने हेतु घर से बाहर निकलकर दूसरे प्रदेश में रहने लगा है। वह परतंत्र का तिरस्कार करता है। माँ द्वारा भेजा गया 'सीताफल' उसकी बचपन की यादें ताज़ा-तरोजा कर देता है। सीताफल को देखकर उसको खाने की इच्छा नहीं रहती क्योंकि उसका डंठल निकालकर वह उसे भेजा गया है। रात में सपने में गुंड आकर उसकी स्वतंत्रता खींचने का प्रयास कर रहे हैं ऐसे उसे आभास होता है और सपनावस्था में 'सीताफल' उसपर हँस रहा है। इसलिए उसे उठाकर बाहर फेंकता है। बाल्यावस्ता में पेड़ पर पके हुए सीताफल को खाने हेतु झाड पर चढने के बाद वहाँ से गिरने की अवस्थातक सब कुछ याद आने लगता है। और उसी में पके हुए फल में से वो बीज गिरते समय उसके मुँह में गिरे थे, उसके पास के मगज की मिठास उसकी जिव्हा पर आज भी है।

अस्तित्ववादी विचारधारा से लेखक मनुष्य का अपने अस्तित्व एवं जीवन के उद्देश्य तथा व्यक्तित्व निर्मिति के क्षण का महत्व इससे दिखाया गया है। गिरने के बाद भी मिले अमृत रुपी मिठास की याद करना शायद पीडा से समस्त जीवन में सुख के दो क्षणों की प्राप्ती है। इस प्रकार से डंठल-विरहित फल त्रिशंकु जीवनावस्था का प्रतीक है। तो डंठल के साथ जीवन कहीं ठोस भूमिपर मनुष्य के होने का, तथा समाज के साथ जुड़े हुए रिश्ते-नातों का प्रतीक बनकर इस कहानी में आया है।

मुठ्यः (1977)

'वळख' याने पहचान किसी को कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है इसकी अभिव्यक्ति 'मुठय' कथासंग्रह की इस कहानी से होती है।

समाज में निम्नवर्ण की पहचान होने के बाद उनके प्रति किया गया व्यवहार और उससे 'हम सब भाई भाई' का पाठ पढ़नेवाले बच्चे 'दादा' के मन पर पड़े प्रभाव का चित्रण गहराई से किया है। ड्रायव्हर की जाति मालूम होने से पहले उसकी माँ अपने भाई की तरह उसकी आवभगत कर, उसको खाना स्टील की प्लेट में परोसती थी लेकिन उसी की जाति मालूम होने पर पत्तल पर खाना परोसा[92] जाता है। छोटी सी उम्र में दादा को जातिभेद, हरिजन को अलग पंक्ति में खाना देना, उनके लिए अलग बर्तन, जिस जगह पर वे बैठते हैं तथा जिस चीज को छूते है उसपर गोबर का पानी डालकर शुद्ध करना आदि की पहचान होती है। स्कूल में पढ़ाया गया समानता का पाठ यथार्थ जीवन में कहीं बह जाता है। गोवा में भी व्यक्तिगत धरातल पर जाति भेदों एवं वर्ण व्यवस्था की प्रथा है

यह इस कहानी से स्पष्ट होता है।

दो व्यक्तिचित्रणों की कथा 'हार' जिसमें भिवा एवं कथावाचक पात्र अपने स्वभाव एवं विशेषताओं के साथ यथार्थ रूप में सामने आते हैं। भिवा किसान अपनी खेती के लिए बहुत मेहनत करता है तथा सारे गाँव पर उसका अधिकार है। लेकिन युवा कथावाचक उसको हराना चाहता है। अपनी खेती की सीमा को वह भिवा की जमीन में ले जाता है, उसका पानी अपनी जमीन पर आता है लेकिन भिवा सामना करने के बजाय नरमाई से वह स्वीकारता है और भिवा के इस अनपेक्षित व्यवहार से स्वयं युवा कथावाचक की हार होती है। दोनों का आमने-सामने संघर्ष होने की राह देखने के लिए उत्सुख पाठक कही अंत में भिवा के परिवर्तन से महसूस करता है कि जो ज्यादा शक्तिमान है वह परिस्थिति को बदल सकता है।

'पाज्ज' वह जगह है, जहाँ पर चढ़ाई होती है। जीवन की चढान पर चढते वक्त विठाबाय की साँस फूलने का प्रतीक यह पाज्ज है। विठाबाई की शक्ति के बाद दस सालों में चार बच्चे पैदा करने के अलावा उसके पति अत्मा ने और कुछ काम नहीं किया था। बच्चे भूखे न मर जाये इसलिए वह सूर्ला की खदान पर काम करने जा रही थी। वहीं सादिक ड्रायव्हर से उसकी दोस्ती हो गयी और सबकुछ छोड़कर वह उसके साथ भाग गयी। खनीज व्यवसाय के कारण गोवा के ग्रामीण जिंदगी के मूल्य मिट्टी में मिल गये है। अपने बच्चों एवं पति आदि रिश्ते-नातों को छोडकर आत्मसुख के लिए सादीक ड्रायव्हर के साथ पलायन करना भारतीय मानमूल्यों के विरोध में है। औद्योगिक विकास एवं विज्ञान युग के उपरांत समाज का नारी वर्ग तथा जीवन की ओर देखने का दृष्टिकोण ही बदल गया है। समाज में अस्थिरता, स्वच्छंदवृत्ति, पनपने लगी है। इस आशय को यह कहानी व्यक्त करती है। 'काणी एका माजराची' (कहानी बिल्ली की) मानवी संवेदना और समस्याओं को प्रस्तुत करनेवाली कहानी है। ऊपरी तौर पर कहानी में बिल्ली की तडप, अपने पिल्ले खानेवाली काले बिलाव की राक्षसी वृत्ति, मुँह बंद कर सबकुछ सहना आदि को सांकेतिक रुप में चित्रित किया है। बिल्ली और रघु की भौजाई और काला बिलाव और रघु को इस कहानी में समान धरातल पर सांकेतिक रूप से चित्रित किया है।

''जीव वचना म्हुण जगता तसले जिवाळें, ताच्या मनांतली खेद-खंत कोणाक कळना, ताका सांगपाकूय तोंड ना जल्माक येत पासून मोनेंच. माजरुच तें. घराच्या वणटी भायर ताणे केन्ना मान काडली ना''(93) जिसका हिन्दी अनुवाद है ;''मृत्यु नहीं हुई इसलिए जीवित प्राणी, उसके मन का दु:ख, दर्द किसीको नहीं मालूम, उसे कहने के लिए मुँह भी नहीं है, जनम से ही गूंगी है, बिल्ली ही

है वह, घर की भित्ती के बाहर कभी गर्दन नहीं निकाली।''

प्रकारान्तर से इसमें बिल्ली की जगह रघु की भौजाई को रखे तो उसका भी पति के मरने के बाद वहीं हाल रघुने किया है। बिल्ली तीन बार अपने पिल्ले को जन्म देती है तो रघु तीनों बार उसे दवा पिलाकर गर्भपात करवाता है। ऊपर से हनुमान की तरह ब्रह्मचारी होने का दिखावा करता है। इस प्रतीकात्मक कहानी की भाषा में चित्रात्मकता एवं असीम काव्यात्मकता भी है।

वर्तमान दौर मे मनुष्य में मेहनत करने की प्रवृत्ति कम होने लगी है अगर मेहनत करे भी तो तुरंत उसका फायदा होना चाहिए इस दृष्टिकोण का विकास होने लगा है। 'बळार' (बगुला) नामक कहानी में भी 'येसुलो' खेती काम छोडकर बंदूक हाथ में लिए बगुलों की शिकार कर तुरंत मेहनत का फल पा रहा है।

प्रकृति एवं परिस्थिति का संयोजन कर पुंडलीक नायक ने बगुले की येसुलो के प्रति भावनाओं को, संवेदनाओं को व्यक्त किया है। उसी को वह गोली से मार गिराता है। तब उसकी दृष्टि में 'तुम्हारा लक्ष्य निशानेपर नहीं लगा'(94) की वेदना व्यक्त होती है। यहाँ लेखक यह भी सूचित करना चाहता है कि भला चाहनेवालों को ही मार खानी पडती है। क्षणिक सुख के लिए बगुले को मारना हमारी बिना मेहनत करके जिंदगी जीने की वृत्ति है।

'भिकारो' नामक कहानी में एक व्यक्ति का चरित्रचित्रण है लेकिन उसमें वहाँ के गाँव की पालखी का वर्णन किया है। मार्गशीर्ष महिने में वेरे (गोवा का गाँव) के श्री अनंत की जत्रा में उसकी पालखी सावईवेरे में श्री लक्ष्मी नारायण के मंदिर में सजधजकर निकलती है। वह रास्ते में रुकती है जहाँ तोरण बांधा जाता है । लोग आकर श्रद्धा से फूलों और नारियल फलों को रखते है। पुरोहित घंटी बजाते हुए उनका प्रसाद स्वीकार कर उन्हें फूल की पँखुडिया देते है। इस सबका सूक्ष्मता से चित्रण खींचा गया है। पुंडलीक नायक को इन त्योहारों, उत्सवों और मेलों की समुचित जानकारी है और उसी गाँव के निवासी होने से यह गंभीरता तथा सूक्ष्मता उनके लेखन में आयी है। 'भिकारों' भी पालखी में शरीक होता था लेकिन सतरह बरस की आयु में ही वह गुजर गया। उसकी मन:स्थिती उसका स्वभाव आदि का वर्णन इस कहानी में रेखांकित किया है।

'हांव हारलो, हांव जिखलो', (मैं हारा मैं जीता) कहानी में स्कूली जीवन एवं वही पनपता हुआ प्यार व्यक्त हुआ है। रुपा कक्षा में कथावाचक की सहयोगी है उसके प्रति छोटी-छोटी घटनाओं से आकर्षण उत्पन्न होना, दोनों के मन में उत्पन्न प्यार के बीज तथा उसको कक्षा प्रतिनिधी बनाने के लिए निर्णायक वोट न देकर उसकी हुयी हार लेकिन रुपा का वोट न देने के पीछे बताया गया कारण उसको जीत हासिल करवा देता है। इस तरह कथावाचक एवं रुपा का प्यार

स्कूली जीवन की किशोरावस्था में पनपता हुआ प्यार है।

'खळ' वास्तव में अंधविश्वास पर आधारित एक कहानी है जिसमें परंपरा एवं यथार्थ का संघर्ष चित्रित है। 'खळ' का मतलब है वह आँगन जिसमें चावल के पौधों को पैरों के नीचे कुचलकर भात और पौधों को अलग किया जाता है। उस खळ का वर्णन देखिए - "मानायांनी शेण सारयल्ल्या खळ्यांत तण घातलें तणाचेर हांतोर शेकानशेक पातळळ्यो हातराच्या दोनूय बोकांनी म्हेडिचें तिकडे उबें केले, म्हेडिचेर कोंड्याचे आडंबर घालें" जिसका हिन्दी अनुवाद है :- 'मजदूरों ने गोबर लिपे आँगन में घास डाला, उसपर हातोंर (बड़ी चटाई) पसार दी। दोनों बाजू में दंडे का त्रिकुट खडा किया और उसपर बांबू डाल दिया।'

इस कहानी में 'खळ' की पूजा करने से पहले किसी को अनाज नहीं दिया जाता और यह भी अंधविश्वास है कि किसीने वह अनाज चुरा लिया तो वो पागल हो जाता है। 'खळ' की पूजा न करने की वजह से अनाज लिये बिना ही पागो घर चला जाता है। बच्चों को भूखे पेट सोते हुये देखकर वह बेचैन हो जाता है, और खळ पर से अनाज की एक पोटली चुराकर ले आता है[95] और दूसरे दिन ही वह पागल हो जाता है। इस प्रकार कहानी में गाँव के लोगों में परिव्याप्त जो अंधविश्वास है उसको दर्शाया है। धान छाँटने की प्रक्रिया चल रही है। धनधान्य की परिपूर्णता के कारण सबके घरों में खुशी का वातावरण है, लेकिन पागो के घर में पूरे दिन मेहनत करने के बाद भी चूल्हें में आग नहीं जलती। दोपहर और रात में बिना कुछ खाये बच्चे सोये हुये है, यह स्थिति देखकर पात्रों से रहा नहीं जाता वह बेचैन होकर कहानीगत वर्णन में दुगेबाब के 'खळ' पर जाकर पोटली चुराकर ले आता है और बच्चों को पेज खिलाता है। दूसरे दिन खळ की पूजा में चोरी करनेवाले को सजा देने के लिए ईश्वर से कहा जाता है और उधर पागो पागल हो जाता है। अंधविश्वास के कारण यह कथा श्रद्धा का रुप लेती है। प्रसंगवश कहा जा सकता है कि मार्कण्डेय की 'नीम की टहनी'[96] कहानी में भी ग्रामीण जनता में फैले हुए अंधविश्वास को रेखांकित किया गया है।

'उचंबळ' कहानी में जवानी में पदार्पण किये हुए प्रकाश की कथा है। जिसमें लैंगिक आकर्षण एवं उसकी शारीरिक एवं मानसिक हलचलों का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। लेकिन कहानी में कहीं भी विवेक खोकर सीमातीत वर्णन नहीं हुआ है। पुण्डलीक नायक संयम एवं संकेतधर्मिता से पात्रों की भावना को चित्रित करता है। जो उनके लेखन शैली संबंधी विशिष्टता मानी जा सकती है।

'म्हज्या जल्माची गजाल' कहानी भी आंचलिक जनजीवन में व्याप्त अंधविश्वास की कहानी है। आज भी गोवा में अंधश्रद्धा, तथा परंपरागत विश्वास कायम है, 'मेरे जन्म की बात' नामक कहानी में जन्में बालक की तीन आँखे

श्रद्धा का विषय बन जाती है। शिव-महादेव की तीन आँखे हैं तो परिवार में पैदा हुआ तीन आँखों वाला बालक कोई साधारण बालक न होकर शंकर का अवतार है, इस तरह का प्रचार उसकी माँ करती है और गाँव के भोलेभाले लोग अंधश्रद्धा से उस बालक को देखने आते हैं और प्रसाद के रूपमेंपैसे भी थाली में रखे जाते हैं। अपने माँ-बाप का रुप रंग न लेकर पैदा हुए बच्चे के मन में भी शंकाएँ उत्पन्न होती हैं। माँ द्वारा विद्रुप बच्चे को ईश्वर बनाकर पैसे इकट्ठा करते वक्त पति पत्नी से कहता है कि ''यह गैर मर्द की संतान है ना''(97) , इसीलिए यह तीन आँखों वाला विद्रुप रूप है। कहना न होगा इस विद्रुप बालक के माता-पिता काले रंग के सामान्य नर-नारी है और वह बालक गोरा-चिट्टा है ''पूत, म्हणजे हो काळो मनीस म्हजो बापूय। मागीर ह्या बापायसारको हांव काळो कसो जालोना?''(98) जिसका भाव यह है कि ''बेटा, मतलब यह काला आदमी ही मेरा बाप है। ऐसा है तो मैं पिताजी की तरह काला कैसे नहीं हुआ।'' आगे उसके पिता का कथन है-''चेडये, मीण करून हो देव जाला तुगेर।''(99) अर्थात् ''तुम्हारे यहाँ किसी परपुरूष के सम्बन्धों से बस ईश्वर ने जन्म लिया है!''

यहाँ पर पाठक वर्ग लड़के की माता के किसी अन्य पुरुष से गैरसम्बन्धों से परिचित होता है।

पुंडलीक नायक की प्रत्येक कहानी निसर्ग की विविध छटाओं से परिपूर्ण है। चाहे वह प्रेमकहानी हो, व्यक्ति चित्रर हो या 'कासाय' जैसी आशयप्रधान कहानी हो। कासय याने बड़ा कछुआ, वासु नामक एक मछुआरा सुबह सुबह मछली पकडने जाता है, वहाँ नदी में छोटी नाव पर बैठकर वह दिनभर मछलियाँ पकड़ने का कार्य करता है, कौनसी मछली फँस गयी है; यह ऊपर निकालने से पहले ही वह पहचान लेता है। मछलियों के नाम, उनकी प्रवृत्तियों और मछुआरों के तीज़ त्यौहारों से पुण्डलीक नायक परिचित है। इसीलिए वे मछुआरा समाज के सफल चित्रण-कर्ता माने जाते है।

मछुआरा समाज में प्रचलित कुछ परम्पराएँ है और उसके मुताबिक 'कछुआ' मिलने पर वे उसे मारकर खाते नहीं है बल्कि उसकी पूजा करके फिर वे उसे पानी में छोड़ दिया जाता है। इस कहानी में वासू को पूजनीय 'कासय' को परिस्थिति वश बेंचना पड़ता है तो वासू महसूस करता है कि उसके गाल पर किसीने तमाचा मारा हो और लकड़ी चीरनेवालों लकडहारों ने कछुआ खरीदने के बाद अपना काम शाम हो जाने के कारण बंद किया है, लेकिन वासु अपराध बोध महसूस करता है कि लकड़हारों की आरी उसके हृदय पर चलायी जा रही है। आर्थिक अभाव और गरीबी से देश ही हमारी मान्यताओं और परम्पराओंको तोड़ देते है। कार्ल मार्क्स ने भी कहा है कि पूँजीवादी व्यवस्था ने सभी संबंधों

को बदल डाला है। पूँजीवादी व्यवस्था ने "एक शब्द में धार्मिक तथा राजनीतिक भ्रान्तियों से अवगुण्ठित शोषण को उखाड़कर इसने नंगा बेशर्म प्रत्यक्ष और बाहरी शोषण कायम कर दिया है। इसने डॉक्टर पुरोहित, कवि, वैज्ञानिक सभी को मजदूरों में बदल दिया है।"(100) मनुष्यों के आपसी सम्बन्ध और मानमूल्य पैसे और धन पर ही आधारित है। 'कासय' कहानी प्रकारान्तर से पूँजीवादी व्यवस्था की विकृतियों को दर्शाती है।

'मोगाची धूव' नामक कथा में ग्रामीण जीवन का चित्रण किया है। लड़की की इज्ज़त और आबरू की विशेषता एवं महत्व को रेखांकित किया है। अपनी लड़की गलत मार्ग का अनुसरण न करे इसलिए उसकी माँ उसे स्कूल में भेजने से मना करती है। गाय-गोरु की रखवाली करने भेजती है वहाँ भी उसे वह अन्य ग्वालों और गड़ेरियों से अलग रखती है। वह लड़की उनसे बात नहीं कर पाती है। इस मितभाषी लड़की में शारीरिक बदलाव के साथ-साथ मानसिक धरातल पर भी प्रेमभाव जागृत होते है और वह ट्रक ड्रायव्हर की वासना का शिकार बन जाती है। अपनी लड़की से चरित्र-शील तथा अपनेपर गर्व करनेवाली उसकी माँ उसके गर्भवती होने के बाद "मुझे भी कुमारीवस्था में ऐसे ही प्रतीति हुई थी।"(101) इस कथन से ज्वलंत सत्य पर प्रकाश डालती है।

गोवा के प्राकृतिक सौंदर्य एवं विद्रूपभरी व्यवस्था का चित्रण 'माड' (नारियल पेड़) की प्रतीकात्मकता के द्वारा जाहिर हुआ है। यह विघटन सिर्फ प्राकृतिक नहीं है बल्कि सामाजिक एवं व्यक्तिगत धरातल पर भी हुआ है। पत्नी द्वारा खनीज व्यवसाय को अपनाने पर उससे मिलनेवाले रुपयों पर पति की दृष्टि रहती है और वह मानसिक दुर्बलता एवं शक्तिहीन होने के कारण पत्नी की स्वच्छंद वृत्ति का विरोध भी नहीं कर पाता। दिन में शालीन सुसंस्कृत रहने वाली पत्नी रात में ड्रायव्हर को अपनाती है और 'खुशाली' शराब में अपना दुःख डुबोने लगता है। यहाँ सांस्कृतिक मूल्यों का ऱ्हास तथा गाँवों की पारंपारिक जीवन शैली का भी विघटन दर्शाया है।

'मरण इतलें सुंदर आसता' नामक कहानी दर्शन पर आधारित कहानी है। 'मृत्यु इतनी सुंदर होती है' कहानी में दिखनेवाला सब झूठ और आभास निर्माण करनेवाला है, उसमें सत्य नहीं है। मृत्यु ही सत्य है मनुष्य में मरने की शक्ति है तो जगमें जीवित रहने की इच्छाशक्ति भी है। इसलिए जब जीना मुश्किल हो जाता है तब मृत्यु भी सुंदर दृष्टिगोचर होती है। इस दर्शन को कुत्ते के पिल्ले के माध्यम से व्यक्त किया गया है। कथावाचक की पड़ोसन अपने दूर रहनेवाले श्वसुर के निधन के उपरांत जोर-जोर से रोती है उससे कुछ देर पहले वह उसके नाम से गालियाँ दे रही थी। प्रसिद्ध कथाकार दामोदर मावजो के शब्दों में "यह कोंकणी

साहित्य में एक अलग मानवीय धरातल पर चित्रित कहानी है।''(102)

'पारज' (पारा) नामक कहानी में श्रृंगार भावना एवं भिन्न जाति के पात्रों के प्रेमसंबंधों का चित्रण हुआ है। बुधो (ग्वाले) एवं श्यामल (भाटकार जमीन्दार की बेटी) के बीच परिवेशगत वासनापूर्ण प्रेमसंबंध निर्मित हुये है। श्यामल को झरने पर नहाते हुए देखकर बुधो के मन में उसके प्रति संभोग की वासना प्रवृत्ति जागृत होती है। जिसको पुण्डलीक नायक ने स्वप्न के माध्यम से कलात्मक एवं संकेतभाव से चित्रित किया है। श्यामल उसके आकर्षण भाव को जानकर वह पहले पहल तो तिरस्कार करती है लेकिन श्यामल की उम्र ज्यादा होने से परिस्थितिवश अनेक स्थलों से उसे रिश्तें की नकार सुननी पडती है। श्यामल के मन में प्रकारान्तर से बुधो के प्रति प्रेमभाव जन्म लेता है, लेकिन बुधो उसके प्रेमभाव एवं संकोच को न समझने के कारण पलायन करता है। उन्माद एवं प्रणय का चित्रण पुंडलीक नायक बहुत ही संकेतधर्मिता एवं संयम से करते हैं। इस कहानी में कहीं भी अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन नहीं हुआ है।

'खाटीक' (खाटिक-वधिक) नामक कहानी में कुष्टा नामक वृद्ध पात्र को उसकी अनुपयोगिता के कारण घर से बाहर निकाल दिया जाता है। यह उपभोक्तावादी एवं पूँजीवादी व्यवस्था से पनपती हुई वृत्ति है। कुष्टा अपनी पत्नी के मृत्यु के उपरांत पुत्र 'पुतु' को सौतेली माँ के बिना पालपोसकर बड़ा करता है और उसके साथ-साथ दो बैलों का भी पालन-पोषण करता है। पुतू के विवाह-योग्य होने पर, उसकी शादी के वक्त आर्थिक अभाव के कारण कुष्टा दुःखी होकर दोनो बैलों को बेचता है। अपने सुख की परवाह न करते हुए पुतु के लिए सर्वस्व त्याग देता है। जिसका फल उसे वधिक कहकर घर से बाहर निकाल कर मिलता है। आज के समाज में मूल्यों में आयी गिरावट तथा परिवार में स्वार्थी भाव से रहने की इच्छा को यह कहानी दर्शाती है। प्रकारान्तर से महानगरीय जीवन में जब कोई आजीविका कमानेवाला व्यक्ति वृद्ध हो जाता है तब उसके पुत्र-बहु आदि संबंधी अपने स्वार्थ पूरे न होने के कारण उसका तिरस्कार कर देते है यहीं भाव उषा प्रियंवदा की चर्चित कहानी ''वापसी' में अभिव्यक्त हुआ है। यह सत्य किन्तु विलक्षण सच है कि देशकाल, प्रांत-परिवेश की विभिन्नता के बावजूद पुंडलीक नायक की 'खाटीक' और उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी की भावभूमि एक जैसी है।

अर्दूक (1989)

'भाग्योदय' कहानी अर्दूक कहानी संग्रह में संग्रहीत है। जिसमें गाँव की गरीबी एवं दारिद्रय का दारूण रेखांकन किया गया है। साथ ही यह बताने

की कोशिश की है कि भाग्योदय योजना के माध्यम से गरीबों के घर में नि:शुल्क बिजली जलाने के लिए खुद बिजली मंत्री आनेवाले है। इस कारण गांव के पंचायत सदस्यों की तैयारी की धांदली का सुंदर एवं सटिक चित्र पुंडलीक नायक ने खींचा है। गोवा में आज भी बहुत सारे ऐसे गाँव है जहाँ कोई भी सुखसुविधाए उपलब्ध नहीं है, न तो पीने का पानी है और न ही बिजली है। यहाँ तक कि सड़के भी नहीं है। अत: इसप्रकार के माहौल में गाँववाले जिस उत्सुकता एवं निराशा से मंत्री महोदय के आगमन का अवलोकन करते है यह देखनेलायक प्रसंग है। दूसरी ओर धर्मा का लड़का जो नौकरी पाने की इच्छा से शहर गया है पर ''त्या एल.डी.सी. च्या पोस्टाखातीर कोणाक घेवपाचे ते आदींच थल्लां. त्या मनशाखातीरुच तर तो एक पोस्ट मुद्दाम क्रियेट केला. खासा वीजमंत्र्याचे सांगणेन''(103) जिसका हिन्दी भावानुवाद होगा- उस एल.डी.सी. के पोस्ट के लिए पहले से ही उम्मीदवार तय हो गया हैं उसे नौकरी को बिजली मंत्री के कहनेपर, रिश्तेदार को पूर्व प्लानिंग से पोस्ट क्रियेट करके दी जाती है।'' इस प्रकार का आजीविका और ज्ञान की प्रतीक रोशनी का आयोजन संबंधी अन्तर्विरोध इस कहानी में व्यक्त किया गया है। घर में तो दिया जलाया जाता है लेकिन घर का दारिद्र्य नष्ट करने के लिए आर्थिक सुविधा की, रोजगार या नौकरी की आवश्यकता होती है। अत: 'भाग्योदय' कहानी में गाँव में व्याप्त गरीबी तथा सरकारी योजनाओं में भ्रष्टाचार और विकास के नामपर लोगों को धोखा दिया जाने का यहाँ प्रतीकात्मक चित्रण किया गया है।

गोवा के गाँवों के निवासी ज्यादातर गरीब होते हैं। उनके पास कच्चे मकान होते है। वे लोग मिट्टी भिगोकर रखते है और उससे मकान को बांधते हैं। 'घर' कहानी में भी 'आवो' और उसके पतिने दूसरों की जमीन पर घर बाँधा था। आवो का पति नहीं है लेकिन तीन बेटे है जिसमें दो शादीशुदा और तीसरा पढ़ रहा होता है। बड़े और मँझले में रातदिन स्वभाववश लढ़ाई चालू रहता है, इसी झगड़े की वजह से वह अपना घर छवाते नहीं है। आवो महसूस करती है कि अब उसके बच्चे एक दूसरे को मानते नहीं है, ना ही बातचीत करते है। वह उनको आनेवाली बरसात की याद दिलाकर उन्हें घर की खपरैल पर चढ़ाती है। सारे खपरैलों को वे उतारते है। बहुएँ भी एक दूसरे के प्रति उपजे गुस्से को त्यागकर साथ में काम करती है। बीच में भाटकार (जमीन मालक) आकर खपरैल छवाने का काम रुकवाता है।(104) उसकी बगैर इजाजत के काम करना गलत होगा यह सोचकर आवो भाटकार के पास चली जाती है, गिड़गिड़ाकर, रो-धोकर इजाजत लेकर वापिस आती है। इतनी देर से चूपचाप बैठे उसके बेटे फिर से काम करना शुरु करते है। अचानक बरसात शुरू होती है। आवो कहतो है कि माड़ नारियल

के पत्तों से ही भित्तियों को ढकते रहो, लेकिन ढकते ढकते नारियल के पत्ते भी खतम हो जाते हैं और उसी बरसात में, बिजली की चमक, मेघों के गर्जन में 'आवो' नारीयल पत्ते इकट्ठा करने 'भाट' में चली जाती है। तभी बिजली के गिरने से नारियल का पेड़ एवं उसके पास पत्ते इकट्ठा करती हुयी 'आवो' दोनो नि:शेष होकर राख बन जाते हैं। इस प्रकार आवो अपने पति द्वारा बनाये हुए घर को बचाने का प्रयत्न तो जरुर करती है। लेकिन उसकी मृत्यू के तुरन्त बाद तेज़ बरसात की थपेड़ो से बीच की भित्ती गिर जाती है और घर नष्ट हो जाता है।

'घर' नामक कहानी में संयुक्त परिवार के विघटन को घर के सदस्यों में पनपते विद्वेष एवं बिखराव को रेखांकित किया है। कहानी का कथ्य सामान्य होते हुए भी विलक्षण है। ''पुंडलीक नायक की घर नामक कहानी केवल गोवा के अंचल की, प्रांत की ग्राम की 'घर' जैसी अवधारणा की कहानी न होकर भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतो, क्षेत्रों, घर की कहानी है, जो टूटते-बिखरते मानवीय सम्बन्धों को उजागर करती है। माँ टूटते हुए घर को बचाना चाहती है वह एक ओर प्रकृति के कोप-बारिश बिजली से विनष्ट होती है, साथ ही भाटकार के शोषण-एवं आतंक के बीच जीती हुयी घरेलु परिवेश के बीच अपनत्व के बीज बचाये रखना चाहती है पर घर विद्वेष, विध्वंस और विनाश के कगार पर है यह कटु यथार्थ है हमारे भारतीय परिवेश का रोंगटे खडे कर देने वाला आंचलिक यथार्थ है।''(105)

पुंडलीक नायक ने संयुक्त परिवार के जिम्मेदार पात्र के मन:स्थिति के बारे में उपर्युक्त 'घर' कहानी रची है। जिसका विवेचन संवेदना, अनुभूति और यथार्थ भावबोध-से ग्रहण किया जा सकता है। हिन्दी कथा साहित्य में सुषमा मुनींद्र की 'शोभा पुरुष'(106) कहानी भी संयुक्त परिवार के वरिष्ठ सदस्य हरिकृपा के मन:स्थितियों का अंकन है। कहना न होगा कि पुंडलीक नायक के 'घर' कहानी का परिवेश आंचलिक जन जीवन और ग्रामीण भावबोध का है जबकि सुषमा मुनींद्र द्वारा रचित 'शोभा पुरूष' कहानी का परिवेश गाँव और शहर दोनों में व्याप्त है। कथाकार द्वय की अनुभूतियों में 'घर' ही केन्द्र में है। जहाँ बनते-बिगड़ते रिश्तों को संभालने और सँवारने की जिद वरिष्ट सदस्य निभाता है।

गोवा में आज भी संयुक्त परिवार-प्रथा प्रचलित है, और संयुक्त परिवारों में बहू पर ढ़ाये जानेवाले अत्याचारों की कहानी 'अर्दूक' (अर्द्ध) है। बहू उर्मिला पर ढ़ाये गये जुल्मों और उसकी व्यथा-वेदना को यह कहानी यथार्थ रुप से निरुपित करती है। किसी भी लड़की को स्वतंत्र नहीं रखा जाता है। बचपन में वह पिता पर जवानी में पतिपर तथा वृद्ध होने पर बेटे-बहु पर वह आश्रित होती है। यहाँ पिता एवं पति पर आश्रित उर्मिला की वेदना, उसकी ननद एवं सास द्वारा किये

गये अत्याचार और छोटे बच्चे के मरने के बाद उर्मिला के आत्मसमर्पण से स्त्री की जीवनगाथा का अंत होता है। पति अगर पत्नी का खयाल न करे तथा अपनी बहन एवं माँ के विचारों को ही वहन करनेवाला हो तो उसे शादी नहीं करनी चाहिए कारण उसकी पत्नी को विचारों एवं कर्मों की स्वतंत्रता उससे प्राप्त नहीं हो सकती है, ऐसी ही पारिवारिक समस्याओं को इस कहानी में चित्रित किया गया है। संयुक्त परिवार में जहाँ कुछ सुविधायें होती हैं वहाँ थोडे बहुत संघर्ष और दोष भी होते है।

'भोंवर' कहानी में शिक्षित युवावर्ग की बेरोजगारी उनकी अकर्मण्यता और प्रवंचनाभरी जिन्दगी का विवेचन हुआ है। आज का युवावर्ग शिक्षित होने के बाद सफेदपोश बनकर बाबूगिरी करने तैयार होता है, लेकिन परंपरा से चले आये खेती व्यवसाय में हाथ बँटाने का कार्य उनको क्षुद्र कार्य महसूस होता है । युवा अनिल भी बेरोजगारी के कारण अपने रिश्ते नातोंदारों के यहाँ दिनभर घूमकर हाथ फैलाकर, झूठ बोलकर, पचास एक रुपये इकट्ठा करता है और अपनी माँ को देकर यह छिपा लेता है कि वह रिश्तेदारों से पैसे माँगकर लाया है। पिताजी यथार्थ स्थिति को न जानकर प्रसन्न भाव से कहते है- 'शाब्बास पुता शाब्बास!पंचवीस रुपया न्हय, पंचवीस पैसे जरी तुवें जोडून हाडिल्ले तरी आमका ते लाख मोलाचे! मनशान चार पैशे जायना, जोडचे, पुन स्वकष्टाचे, हरामाचे ना, दुसऱ्याच्या फुड्यांत हात पसरुन गळबसा येवन भीक मागुन मेळोंवचे न्हय.''(107) जिसका हिन्दी भावानुवाद है- ''शाब्बास बेटे, शाब्बास ! पच्चीस रुपये नहीं, पच्चीस पैसे भी तुमने कमाकर लाये तो वह हमारे लिए लाखों के बराबर है। मनुष्य चार पैसे ही स्वकमाई से प्राप्त करें पर हराम के नहीं, दूसरों के सामने हाथ फैलाकर भीख माँगकर नहीं।''

पिता के आत्मसम्मान भरे शब्द और श्रम की महिमा सुनकर उसको हार्दिक पश्चात्ताप होता है जिसको छुपाये बिना वह रोने लगता है। आज इस तरह के मान-मूल्यों में कमी आयी है। बिना मेहनत किए बहुत कुछ पाने की चाह युवावर्ग में उत्तरोत्तर विकसित हो रही है। शोध प्रबन्ध की सीमा में हम उल्लेख करना चाहेंगे कि मार्कण्डेय की 'साबुन' कहानी का नायक राजेश भी बेरोजगारी दूर करने सफेद पोशवाला कार्य करने के लिए शहर की ओर प्रस्थान करता है।

बुकलो (बिलाव) नामक कहानी में शक्तिवान ही जीने में समर्थ होता हैं, भाव की प्रतिष्ठा की गयी है। इस कहानी में कथावाचक बिल्ली के बच्चे को बिलाव से बचाने के लिए प्रयत्न करता है। बिल्ली के एक बच्चे को बिलाव द्वारा खा लेने के उपरांत वह दूसरे बच्चे को कोशिश करके बचाता है लेकिन वह बच्चा जब बड़ा बिलाव बनकर पड़ोसी बिल्ली के बच्चे को खा डालता है तब कथावाचक बैठने के (लकडी के) पीठे से उस बिलाव को जान से मार डालता है। बुकलो(बिलाव)

नामक कहानी कथाकार के वैचारिक अन्तर्द्वन्द्व की कहानी है। जिसके माध्यम से मनुष्य स्वभाव और पशु-स्वभाव के अन्तर को कलात्मकता से दर्शाया गया है। मनुष्य में दया करूणा और संरक्षण की भावना होती है। लेकिन पशु जगत में केवल शक्ति ही साधन और साध्य भाव होता है। मनुष्य अपना आत्ममंथन और आत्मविश्लेषण करता है। परन्तु पशु, भूख, वासना और ईर्ष्या संघर्ष में अपनी संतान या करीबी जीव को नष्ट कर देता है। पुंडलीक नायक ने विवेच्य कहानी में मनुष्य और पशु के भावसंबंधी अंतर को दर्शाया है।

'बाजार' नामक कहानी में मध्यमवर्गीय मनुष्य की लूट-खसोट को दर्शाया गया है। 'जीवन सिर्फ मिथ्या है प्रवंचना है, धोखा है;' यही 'दृष्टिकोण' यहाँ व्यक्त होता है। 'मदलो' नामक पात्र जिस भिखारी को दो रुपये देता है वही उसे किसी 'वेश्या' के कोठेपर आगे सीढ़ी चढ़ता हुआ दिखाई देता है। दुकानदार खराब माल बेचकर धोखा देता है तो किसी की पत्नी शराब में धुत बाजार में नाच रही है। एक ओर पति ने अपनी पत्नी को धोखा दिया तो दूसरी ओर पतिने ही उसे प्रारम्भ में इस धंधे में लगाया है। कहानी के अन्तर्पाठ से अल्प संतुष्ट वृत्ति, लाचारी एवं पाखण्डी प्रवृत्ति के साथ छलछद्म की भावना होती है।

'बळी' नामक कहानी में धन संपत्ति पाने और तृष्णा के मायाजाल का मार्मिक वर्णन है। गोवा के गाँवों में भाटकार (जमींदार) के यहाँ मजदूरी करते-करते उनके कुळागरों में रहते-रहते कामगारों के मन में एक अतृप्त इच्छा रहती है कि मै भी कभी मालिक बन जाउँ, उनकी ही तरह अधिकार जताऊँ। अपनी जमीनपर खड़े रहकर मजदूरों को काम करने के लिए आज्ञा दूँ। ऐसी अतृप्त इच्छा बँक में क्लर्क के रूप में कार्य करनेवाले दिनकर के पिताजी की पहले से रही है। युवा दिनकर भी मन से यही तृष्णा पालता है और अपने बँक में पचास हजार की अफरातफरी करके कुळागार खरीद लेता है। इस 'बळी' (बलि) नामक कहानी में पुंडलीक नायक ने सावईवेरे गाँव के कुळागर और वहाँ की सुरम्य प्रकृति को चित्रित किया है। यथा- "पाझ देवताना तांचे नदरेच्या अस्करांत आयले, ते कुळागर तागेले वैभव, अस्तें ते कडल्यान सूर्याची किरणां कुळागराचेर शिवरिल्ली एका केळिच्या पिंजक्या चार्वटाचेर कांय किरणां तिकतिकताली आनी तिस्तांतल्यान सकल सांडताली, कोण्या दळदिऱ्याच्या पोशांतल्यान धन गळून पडचें तशी।"(108)

जिसका हिन्दी भावानुवाद है- "चढ़ाई उतरते वक्त उसकी दृष्टि में सम्पूर्ण कुळागर आया। उसका वैभव, ढलान की ओर जाने वाले सूरज की किरणें संम्पूर्ण कुळागर पर छायी थी। केले के फटे हुए पत्तें पर कुछ किरणें रम्य रुप से प्रकाशमान हो रही थी, और कुछ किरणें नीचे की ओर लुढ़कसी रही थी- जैसे गरीब की अंगुली से गिरता हुआ धन।" गोवा में प्राय: ज्यादातर भूमी जिसप्रकार सागरी

किनारों की पास की है। उसी प्रकार से यहाँ विभिन्न प्रर्वतीय प्रदेश भी है और पर्वतीय प्रदेशों के नीचे के हिस्सों में कई कुलागार स्थित है। इन में पहुँचने के लिए ज्यादातर जगहों के रास्ते से नीचे घर तक जाती हुयी सीढ़ियाँ होती है। उन-सीढ़ियों पर चढ़कर ही अलग-अलग रास्तों तक पहुँचा जाता है इस को 'पाझ्र' कहा जाता है। इस तरह के गोवा के टिपिकल(विशिष्ट) कुळागर घरों की पहचान पुंडलीक नायक की विभिन्न कहानियों में उपलब्ध है। हिन्दी कहानी साहित्य में संभवत: 'नागवेणी के पुष्प' नामक कहानी किसी अन्य रचनाकार ने 'कुळागार' के परिवेश व जीवनशैली पर रची है। जो कथादेश पत्रिका के अंक में प्रकाशित हुयी है।''(109)

'खाटकागेर एक रात' (वधिक के घर एक रात) नामक कहानी में एक वधिक और उसके घर आगत पथिक का वर्णन हुआ है। 'पथिक' रास्ता अनवगत होने से वधिक के घर रात में आश्रय लेता है। उसे जब 'वधिक' का व्यवसाय ज्ञात होता है तो वह उसके द्वारा बतायी गयी हर बात पर अविश्वास करता है। भय से वह रातभर परेशानी से सो नहीं जाता है। सुबह होने से पहले ही वह पलायन कर जाता है- ''भोर होते ही बूढ़ा उठा। उसकी आहट से पथिक भी जाग उठा। छुरा तराशे जाने की आवाज उसने सुनी। पथिक उठ बैठा। ओढ़ने की चादर आदमी की आकृति के समान फुलाकर रख दी और धीमी चाल से वह बाहर आया और झिलमिल प्रकाश में वह रफ़ूचक्कर हो गया।''(110) इधर बूढ़ा कसाई आग जलाकर चाय के लिए पानी रखकर उसके द्वारा बिछौने में बनायी मनुष्याकृति से उठने की राह देखता है। 'खाटकागेर एक रात' नामक कहानी में मनुष्य के स्वाभाविक डर और मानवीय विश्वास एवं अविश्वास की भावनाओं को कलात्मकता से चित्रित किया गया है।

'बळजबरी' नामक कहानी में आंचलिक जीवन की विद्रुपता को प्रस्तुत किया गया है। पत्थरों के एक व्यापारी ने एक गधा पाल रखा था, उस गधे की गाय के पीछे भागने की वृत्तिपर गांववाले, आक्षेप करते हैं तथा पंचायत बुलाते हैं। 'दादी' पंचायत समिति का मुखिया है जो पत्थरों के व्यापारी को इस घटना की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए, ऐसे निर्देश देकर उसे गुनाह से मुक्त करता है। कहानीगत वर्णन में पंचायत का मुखिया दादी अवसर देखकर पत्थरों के व्यापारी की जवान लड़की जनी पर बलात्कार करता है। आगे वर्णन है कि दादी हर रोज युवा जनी पर बलात्कार करता है और व्यापारी अपने गधे को मारता है। यथार्थ को जानकर पाठ विक्षोभ भाव से बौखला जाता है। लगता है कि पुंडलीक नायक कहीं-कहीं पाठकों की अतिरिक्त सहानुभूति बतेरने के लिए पात्र एवं परिवेश का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करते है।

'अग्निदिव्य' नामक कहानी में शिरगाँव की देवी की जत्रा और वहाँ का प्रसिद्ध एवं विशेष प्रसंग 'अग्निप्रवेश' का यहाँ चित्रण किया है। इस जत्रा की यह खास विशेषता है कि भक्त दो या पाँच दिन का व्रत रखते हैं, पवित्र हो जाते है और जत्रा में एक तरंग (बंबू की काठी) लाल-पीले, केशरियाँ, हरे रंग के खूबसूरत कुन्दों (गोंडो) से उसे सजाया जाता है, उसे कंधे पर डालकर सुनहरे रंग का पितांबर पहनकर गोवा के विभिन्न प्रांतों के भक्त जत्रा में जाते है। वहाँ मंदिर में मोगरे की कलियों की मालायें पहनकर देवी का दर्शन कर रात भर के सारे विधि-विधान रचते हैं। उसके बाद मध्यरात्रि के समय 'होमकुंड' जलाया जाता है और सभी भक्त जिन्होंने माँस-मछली (मांसाहार) दो या पाँच दिन से नहीं खायी हो, जो पवित्र माने जाते हैं, वे मंदिर के पास के पोखर में नहाते हैं। वे पवित्र भक्त उस होमकुंड के जलते हुए अंगारों पर पैदल चलते हैं। एक-एक भक्त इस तरह चलकर जाता है और बाद में मंदिर में तीर्थ प्रसाद ग्रहण करता है। ऐसा ही एक भक्त एक गाँव में जत्रा करके आया है, उसको सभी जत्रा की घटनायें सुनाने के लिए कहते है। कस्तूर मौसी भी उत्सुकता-वश अपने पोते को झोपड़ी में सुलाकर आयी है। तथा खाना बनाने के लिए चूल्हें में आग सुल्गायी है। वह 'अग्निभक्त' को सुनने के लिए उत्सुक है वह सारी कथा कहता है। उसके बाद मौसी अपनी झोंपडी में उसके लिए पानी लाने जाती है तो एकाएक उसके अपनी झोपड़ी के भीतर आग जलती हुयी दिखायी देती है। वह घबरा जाती है कि अपने पुत्र और बहू को क्या जवाब देगी अगर वह अपने पोते को बचा न सकी। वह 'अग्निभक्त' को उसे बचाने के लिए बुलाती है। लेकिन वह अग्निभक्त आग जलकर उसके बाद धधकते अंगारे की राह देख रहा है जब अंगारे बन जायेंगे तब तक उसका पोता आखरी साँस लेगा। जिस तरह अग्निभक्त अंगारों की राह देखता रहता है, उसे बच्चे की मृत्यु से कोई लेना देना नहीं है, अपने आप में अजीबोगरीब कहानी है, जिसका यह क्लाइमेक्स है- "तीच जात्रा.... तेंच होमखण... तोच मळबाक भिडपी उज्याचो जाळ... उजो आपसूक पालोवन केन्ना इंगळे जातले ताची वाट तो पळयत रावता."(111) जिसका हिन्दी अनुवाद है- 'वहीं जत्रा.... वही अग्निकुंड... वहीं आकाश तक धधकने वाली अग्निज्वालाएँ... अग्नि से अंगारे बनने की भक्त राह देखता रहता है।'

'अग्निदिव्य' नामक कहानी गोवा के आंचलिक यथार्थ का सटिक वर्णन है। जलते हुये अंगारोपर चलना संत, भक्त या दिव्यशक्तिवाले योगी का काम है, प्रज्वलित अग्नि सबकुछ स्वाहा कर देती है। विवेच्य कहानी में 'अग्निभक्त' जलते हुये अंगारों पर चलता है लेकिन होमकुंड के भीतर प्रदर्शन हेतु वह भी केवल धार्मिक विश्वास पाले भक्तों के सामने कस्तुरमौसी आग की धधकती ज्वाला में अपने पोते

को बचाने के लिए प्रार्थना करती है, लेकिन वह भक्त कुछ नहीं कर पाता। पुंडलीक नायक एक ओर आस्था, विश्वास आंचलिक परिपाटी का वर्णन कर रहे है और दूसरी ओर स्पेस, मिसायल और टेलीव्हिजन की इस दुनिया में उस नग्न यथार्थ की ओर संकेत करते है जिसमें जलती हुयी आग में से बच्चे को बचाया नहीं जा सकता। कहानी का अंत पाठक को विक्षुब्ध कर देता है, उसे परंपरा और आस्था के बजाय कटु यथार्थ के आगे रुबरू खड़ा कर देता है। कहानी का अंत पाठक को धर्मांध न बनाकर यथार्थपरक दृष्टि अपनाने को सौद्देश्यता ज्ञापित करता है। यहीं पुंडलीक नायक की प्रगतिशील एवं यथार्थवादी आंचलिक दृष्टि है।

पुंडलीक नायक की 'समकालीन कोंकणी लघुकथा' में प्रकाशित 'प्रेम जागर' कहानी आंचलिकता की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। इसमें 'बाबूराय' और 'मोगा' की प्रेमकहानी को ही नहीं बल्कि गोवा के प्रसिद्ध लोकनाट्य 'जागर' को भी चित्रित किया गया है। 'बाबूराय' और 'मोगा' कुलागार में सुपारी एवं केले के पेड़ो को पानी देते समय प्रेम की कोमल डोर से बँध जाते है। बाबूराय के कारण मोगा पैतीस वर्ष के देमु का रिश्ता नकारती है। 'जागर' में बाबूराय लंगडा बनकर लोकवाद्यों के ताल पर नाचता है जिसकी सभी दर्शक प्रशंसा करते है। लेकिन किसी लड़की से शादी करने के लिए किसी युवकद्वारा जागोर की निभायी हुई भूमिका ही खाने-पीने का सामान नहीं जुटा पाती है। उसे कुलागार में काम करना पड़ता है। मोगा के साथ रिश्ता तय करने के लिये उसके पिता द्वारा इसी कटु यथार्थ को मोगा के सामने रख देते हैं। ''आनी सुपारी पाडटना एके माडये वयल्यान दुसरे माड्येर झोंपय घेवंक जायत तेच्यान? कुळगरी मनशाचे सगळ्यांत व्हडलें कसब तें हें पायांत दांडे बांधून नाचपा इतले सोपे न्हय ते.''(112) जिसका हिन्दी अनुवाद है- ''पेड़ पर से सुपारी उतारते वक्त एक सुपारी के पेड़ से दूसरी सुपारी के पेड़ पर छलाँग लगाना होगा उससे? यह कुळागर में काम करनेवाले मनुष्य का सबसे बड़ा कौशल होता है। पावों में ड़डे बाँधकर नाचने जैसा यह सरल कार्य नहीं है।''

कहानीगत विवेचन में इसी कौशल को आत्मसात करने के हेतु एक पेड़ पर से दूसरे पेड़पर छलांग लगाते हुये बाबूराय नीचे गिर जाता है। घायल हो जाने से उसका बाँया पैर काट दिया जाता है लेकिन इसके बाद 'जागर' में उसे नाचने नहीं दिया जाता। उसकी नृत्यवाली भूमिका कोई दूसरा व्यक्ति अदा करता है। जागोर लोकनाट्य में लंगडे नर्तक की अदाकारी तथा वास्तव में बाबूराय के लंगडे हो जाने की त्रासदी को पुंडलीक नायक ने कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है।

'प्रेमजागर' कहानी का अंत सुखांत और दुःखांत भाव के मिश्रित भाव

से परिपूर्ण है। लोकनाट्य 'जागर' में 'बाबूराय' की अनुपस्थिति को भाँपकर वह उसी कुलागर के 'पाणवठे' (जोहड़) के करीब पहुँचतीहै, छिटकी हुयी चांदनीवाले परिवेश में...... जहाँ कभी मोगा और बाबूराय के दिल में प्रेम के बीज प्रस्फुटित हुये थे। मोगा देखती है कि छिटकी हुयी चांदनी में बाबूराय लंगडा होकर भी 'जागरनृत्य' की दूर से आती हुयी संगीतमय धून को सूनते हुये नृत्य कर रहा है। वह अपनी मदहोशी में प्रेम के विषाद भाव से बेसुध नृत्य कर रहा है, संगीत की ताल पर क्लाईमेक्स की अवस्था में गिरते हुये लंगडे बाबुराय को अपने बाँहों में मोगा सँभाल लेती है।

कहानी का अंत सांकेतिक है जीवन के वास्तविक विषाद को चित्रित करते हुये पाठक एक संतोष की साँस लेता है कि संभवत; 'जागर नृत्य' में लंगडे की भूमिका अदा करनेवाला बाबूराय जब यथार्थजीवन में विकलाँग हुआ है उसके विक्षोभ, पराभव और लोकजागर की भावना में शायद मोगा सहयात्री बनेगी। कहानी की संवेदना, मार्मिक अनुभूति भावों की संप्रेषणीयता पाठक को उद्वेलित ही नहीं विस्मित भी कर देती है कि आज अनास्था स्वार्थ और विषमताभरी जिंदगी में प्रेमजागर वाला भाव कायम है।

बांबर (1976)

'बांबर' (कीचड़) उपन्यास सन् 1976 में प्रकाशित हुआ। जिसमें यथार्थ जीवन की विद्रुपताओं का दर्शन होता है। धर्म प्रमुख रूप से गाँव की पिछड़ी हुई अनपढ़ लोगोंकी जिंदगी को त्यागकर शहरी जीवन में अध्ययन हेतु[113] से प्रवेश करता है। लेकिन वहाँ उसे यौन विकृतियों की सडी हुई जिंदगी देखने को मिलती है। बांबर उपन्यास में विघटित मान-मूल्यों की यथार्थ जिंदगी को अभिव्यक्ति मिली है। जीवन में वह पढ़ते हुये किशोर के रुप में यौन विकृतिवाले प्रसंगों को देखता है।[114] क्षणै: क्षणै: उसकी शहरी जिंदगी की कल्पना, नैतिक संकल्पना तथा जीवनदृष्टि में बदलाव आता है। मनुष्य की संस्कार रहित जिंदगी का चित्रण बांबर(कीचड़) में किया है। भरण्याआका, घाटीण पार्वती, चेडू और फिगरेद की पत्नी की यौन विकृतियाँ, शारीरिक एवं मानसिक रूप से पीड़ित शंकर और फिगरेद, छोटीसी उम्र में ही सबकुछ जानने के कारण कच्ची उम्र में सयाना बना हुआ धर्मु आदि का चरित्रचित्रण एवं परिवेश का जीवंत वर्णन इस लघु उपन्यास में किया है। गाँवों के नैसर्गिक सौंदर्य, आर्थिक अभाव, शहरी संस्कृति के जीवन मूल्य और उनका न्हास आदि का नग्न यथार्थ 'बांबर' उपन्यास में व्यक्त होता है।

'बांबर' उपन्यास पुंडलीक नायक का प्रारंभिक उपन्यास है जिसे हम आलोचनात्मक यथार्थवाद की कृति न मानकर प्रकृतिवादी (Naturalistic) यथार्थ

की अनुकृति मानेंगे। नग्न और विभत्स यथार्थ का चित्रण करना आलोचना की भाषा में फोटोग्राफिक चित्रण माना जाता है। यथार्थ का यथावत वर्णन करना कोई लेखकीय कौशल नहीं है, 'बांबर' उपन्यास फोटोग्राफिक यथार्थ की अनुकृति है। वह सौद्देश्यतापूर्ण जीवनमूल्यों और जिजीविषा की सफल कृति नहीं है।

अच्छेव (1977)

'अच्छेव' नामक उपन्यास में पुंडलीक नायक ने समाज तथा परिवेश की सूक्ष्म अनुभूतियों के माध्यम से गोवा के परिवर्तित जीवन मूल्यों को रुपायित किया है। उनका 'अच्छेव' उपन्यास सन् 1977 में प्रकाशित हुआ। पुंडलीक नायक ने 'अच्छेव' उपन्यास के माध्यम से एक ओर प्रवाहमयी भाषा नहीं रची बल्कि खनिज-व्यवसाय में आनेवाले भविष्य की ओर भी संकेत किया। 'अच्छेव' उपन्यास में कृषक जीवन, उनका आचार-विचार, संस्कृति संस्कार, और विद्या अध्ययन के स्थान पर आर्थिक लाभ जिसकी गहन अभिव्यक्ति मिलती है। गोवा प्रदेश की समग्र स्थितियों का वास्तव चित्रण 'अच्छेव' उपन्यास में उपलब्ध है। कथ्यरुप में 'कोळंब' गाँव कृषि प्रधान है, वहाँ के लोग रब्बी और खरीप की फसल में चावल तथा अन्य धान्यों की खेती करते है। देर तक खेत में काम करनेवाले पंडरी के घर में औद्योगिकरण की प्रवृत्ति ने प्रवेश किया। पंडरी खेती को रौपने के काम को कल पर टालकर खनिज-कण ढोने के लिए अपनी बैलगाडी लेकर चल पडा। रुक्मिणी द्वारा विरोध करने पर उसे थप्पड मारकर वह आनेवाले 'अच्छेव'(कलह) की शुरुआत कर लेता है। 'अच्छेव' शीर्षक संपूर्ण उपन्यास के कथ्य के लिए एक संकेतधर्मी रुपक है। कथ्यगत वर्णन में ''पंडरीच्या एकाच थापटान रुक्मीण वणटीर आदळ्ळी, न्हिन्नडली, घर वांशां सकट सगळे घर लेगीत हाल्लें।''(115) जिसका हिन्दी अनुवाद है- ''पंडरी के एक थप्पड से रुक्मिण भित्तीपर गिर पडी, चकरा गयी, जिसके आँखों के सामने पूरा घर हिलने लगा।''

पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में आधुनिकता बोध की प्रवृत्ति पायी जाती है। दरअसल आधुनिकता एक ऐसा प्रत्यय है जो परंपरा से अपने आप को अलगाकर एक नयी दृष्टि नयी पद्धति और नयी जीवन-शैली का पर्याय है। गंगा प्रसाद विमल के विचारानुसार- ''आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकीकरण तथा आधुनिकताबोध आदि के पारस्परिक संबंधों की छान-बीन के बिना आधुनिक-आधुनिकता को नहीं समझा जा सकता। यह एक मूलभूत शर्त है कि इन धारणाओं के अंतर्सबंधों और इनकी अंतर्धाराओं को प्रासंगिकता के आधार बिंदुओं पर परखा जाए। कहीं न कहीं इन सब धारणाओं की अंतर्धाराओं में एक मूल तत्व विद्यमान है।(116)

'अच्छेव' उपन्यास कोळंब गाँव के परिवर्तनशील समाज और औद्योगिकीकरण की विषमता को चित्रित करनेवाला सशक्त उपन्यास है। मन में यह प्रश्न उभरता है कि ''क्या आधुनिकता केवल कुछ मूलतत्वों की निर्मिती है अथवा वह इतिहासधारा का एक विकासक्रम है। स्पष्ट है कि ऐतिहासिक क्रम में सदैव अपने से नएपन के पर्याय के रुप में 'आधुनिक' एक संज्ञा है। आधुनिक उस क्रिया की संज्ञा है जो उसे पूर्ववर्ती से अलगाती है। इस क्रिया अर्थात गतिविधि की चेतना एक ऐतिहासिक चेतना है। यह एक लंबे आत्मान्वेषण के पश्चात जन्मे यातनादायी इतिहास के पश्चात् निर्मित होती है। पूर्ववर्ती परिवेश से अलगाव की भूमिका उसी आधुनिकता को निभानी पड़ती है जो 'आधुनिक' के बोध का वहन करती है।''(117)

'अच्छेव' उपन्यास में 'पंढरी' नायक अपने जीवन में स्वेच्छा से आधुनिकताबोध का पथ ग्रहण करता है। वह प्रारम्भ के कृषिव्यवसाय करनेवाला किसान रहता है, पूँजीवादी व्यवस्था औद्योगिक विकास में 'तुरंत काम और शीघ्र दाम' की अवधारणा अपनाकर वह पारंपारिक कृषि व्यवसाय को त्याग देता है। खनिज कणों को ढोनेवाला गाड़ीवान बनकर आधुनिकता की राह अख्तियार करता है। जब आधुनिकिकरण की प्रक्रिया से ट्रक परिचालक अस्तित्व में आते है तब वह बैलगाड़ी छोड़कर हॉटेल का प्रबंधक बन जाता है। अन्य लोगों के हॉटेल व्यवसाय में आ जाने से पिछड़ापन और हीनभाव महसूस करता है। पंडरी पूर्णतः परंपरा और आधुनिकता के बीच एक संशयग्रस्त प्राणी है जो आर्थिक प्रगति की कामना से नये मार्ग, नये साधन अपनाता है पर विकसित टेक्नालॉजी के समक्ष विवश और निरुपाय बना रहता है। औद्योगीकरण और आधुनिकता बोध से समग्र कोळंब गाव परिवर्तित हो गया है। जिसके फलस्वरुप सामाजिक-मानवीय संबंध, नैतिकता संबंधी मान-मूल्य, अर्थ की विषमता के कारण न जाने कहाँ बहने लगे। खनिज व्यवसाय के कारण नीतिमूल्यों के साथ-साथ प्राकृतिक परिवेश एवं सौंदर्य का ऱ्हास हुआ यथा 'जल, जमीन, जंगल, जनावरां आनी जन ह्या पर्यावरणाच्या पांचुय घटकांचो ऱ्हास जावन केल्ल्या बदलाक विकास जाल्ल्यांचे चिन्न म्हणपाचे काय भकासपणाचें?''(118) जिसका हिन्दी अनुवाद है- ''जल, जमीन, जंगल, जानवर और जन पर्यावरण के इन पाँच तत्वों के ऱ्हास से जो बदलाव आया उसे विकास का चिह्न कहना ठीक होगा कि उजाडपन का।'' पाँचो तत्वों के बदलाव से विकास जरुर आया है लेकिन यह विकास सहीं दिशा में नहीं हुआ है। औद्योगीकरण से नवीनतम यंत्र-सामग्री का उपयोग नयी टेकनॉलोजी का विकास आदि कार्य आधुनिकता बोध एवं विकास के चिह्न है लेकिन इस उपन्यास में नीतिमूल्य, संस्कार मानवता आदि को दाँव पर लगाकर भविष्यगत विकास के लिए वर्तमान जीवन शैली से

खो दिया गया है, अत: चारो ओर बरबादी ही नजर आती है।

औद्योगिक विकास ने मनुष्य को मनुष्य के रुप में पहचानना अस्वीकार किया है। पंडरी और रुक्मिणी के संबंधों में दरार पैदा हुई है। उनके बच्चों के मन पर इसका असर हो रहा है, शिक्षा पाने के चाह दबाकर केसर और नानू को शैशवकाल में खनिज-कण ढोने के लिए नावेली जाना पडता है। गाँव के जनजीवन पर भी इसका प्रभाव दिखाई पड़ता है। आर्थिक संपन्नता एवं उन्मुक्तता से गाँव के नौजवान तथा नारियाँ अनैतिकता के शिकंजे में कसती जा रही है। गाँव के उत्सवों एवं लोकपदों में किसी की दिलचस्पी नहीं रहती है। इतना ही नहीं, नानू अपने पुत्रधर्म को भूल जाता है। आबू जैसे सहृदय व्यक्ति का क्रियाकर्म करने का नैतिक कार्य गाँववाले भूल जाते है और अपनी दैनिक मजदूरी पाने के लिए खदानों की ओर चले जाते है। यह प्रक्रिया आबू की मौत के दो दीन तक दुहरायी जाती है। पूंजीवादी व्यवस्था और औद्योगिक उत्पादन की जटिलता ने मानवीय संवेदनाओं को पूर्णत: खत्म कर दिया है। इसका आभास 'अच्छेव' उपन्यास के इस प्रसंग में पाया जाता है- ''आनी अकस्मात कॅपूच कोसळ्ळें ताज्या माथ्यार. आवाजासरशी ट्रक उसपोवपी मानांयानी तेवटेन पळयलें...... पुण रुक्मीणीन झोपय घालून नानूच्या माथ्याकडच वेंग माल्ली. मानायान तिका तशीच फाटीं ओडून काडली. ......
.........आनी सगल्यांनी एकदम किलांट मारुन आंगां शिरशिरायली. रुक्मीणीचे वेंगेत नानूचें फकत मस्तक आशिल्लें. तिणें सकाळी तेल थापिल्लें''(119) इसका हिन्दी भावानुवाद है- ''और अचानक कॅप उसके मस्तक पर गिरा। आवाज होने के कारण ट्रक रिक्त करनेवाले मजदूरों ने उस ओर देखा... लेकिन रुक्मीणि ने झड़प डालकर नानु के मस्तक को बाँहो में भर लिया। मजदूरों ने उसको पीछे खींचा। .... और समस्त जनों ने एकदम शोर किया, उनके बदन थरथराने लगे. रुक्मीण की बाँहो में सिर्फ नानू का सुबह तेल चुपड़ा हुआ मस्तक था।''

शॉव्हेल ड्राइवर (लोहखनिज को ट्रक में भरनेवाली बड़ी मशीन) से नानू को लोहकणों के ढ़ेर में से निकालते वक्त उसके विराट दातों की जकड़न से नानू का मस्तक और शरीर अलग हो जाता है। नानू की माँ लोहकणों के ढेर में से अपने पुत्र खींचती है और कटा हुआ मस्तक ही उसके हाथ लगता है। उसकी दारुण और असमय मृत्यु से मनुष्य के गुणधर्मों को,परिवर्तन कामी चेतना के प्रयासों का प्रतीकात्मक अंत हुआ है।

'अच्छेव' उपन्यास में जनजीवन पर जिसप्रकार देश-कालगत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है वैसे ही जल जमीन जंगल रुपी पर्यावरण भी प्रदुषित हुआ है यथा- ''त्रक्स तळ्यांत धुता, तेजीवयलीं माती आनी तेल उदकांत मागीर तशेच शेतांत''(120) जिसका हिन्दी भावानुवाद है- ''ट्रक तालाब में धोये जाते है, उन

ट्रकों की मिट्टी और तेल पानी में चला जाता है, और फिर खेत में'' यह प्रक्रिया मनुष्यों के जीवन तत्वों की है, वे मिट्टी आदि पंचतत्वों से उपजे हैं और उन्हीं पंचतत्वों में लीन होने वाले है।

पुंडलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में पर्यावरणसंबंधी चिन्ता भी पायी जाती है पर कहना न होगा कि मार्कण्डेय के उपन्यासों में पर्यावरण के प्रति सजगता नहीं के बराबर है। कहा जाता है कि बिना पेडों के वर्षा नहीं होती इसलिए जमीन बंजर हो रही है। जिस जगह पहले हरियाली ही हरियाली थी उसी जगह पर अब मिट्टी ही मिट्टी दिखाई पडती है। विवेच्य उपन्यास में वर्णन है कि ''नावेलेच्या मड्डांतली शेतां सामकी करपल्ली, धिंपरभर लेगीत वाडूंक पावूं नाशिल्लीं. पोटांत पोटूर येवंक आनी पावसान घात मारिल्लो. आख्खे नखेत्र सुकें सडसडीत गेल्ले. मड्डाचो पाचवो कोर वोतांत बावून हळडुवो जाल्लो. आनी कांय काळान मरड करपून गेल्लें पोटांतलो आंगूर भायर येवचे आर्दींच भितल्ले भितर करपून गेल्लो.''(121) जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है - ''नावेली की खेती प्रखर किरणों से कोयला बन गयी है। एक डेढ़ फुट ऊँची उठी थी। धान में कणीस(बाली)आने से पहले ही बरसातने मुँह फेर लिया है, पूरा मृग नक्षत्र सूखा सा हो गया है। हरा रंग सूरज की तपीश से पीला पड गया है। जमीन से अंकुर प्रस्फुटित होने से पहले ही अंदर ही अंदर भस्मावृत हो गये है। ऐसी काव्यात्मक, रुपकात्मक शैली संकेतगर्भी अर्थो के साथ पुंडलीक नायक ही प्रस्तुत कर सकते है।

औद्योगिक विषमता में सास लेनेवाले कोळंब गाँव की आम जनता में लोकोत्सव मनाने के प्रति उत्साह कम हो गया है। 'कोळंब' गाँव के प्रकृति-परिवेश, मनुष्य, समाज एवं संस्कृतिगत ऱ्हास को 'अच्छेव' उपन्यास में वास्तविक जीवन की घटनाओं के समानान्तर चित्रित किया गया है। आबू तथा सावळो मास्तर के न रहनेपर गाँव की नैतिकता, माया-ममत्व से सराबोर जिंदगी कहीं खो जाती है। निर्मल हवा,निर्मल पानी एवं स्वच्छ मन किसी प्रवाह में प्रवाहित होकर बिखर सा जाता है। मिथकीय धरातलपर पंचपांडवों के पाँवों से पूज्य यह कोळंब गाँव ट्रक, शॉव्हेल, बुलडोझर आदि यंत्रों के आगमन से रक्तरंजित हो जाता है। ट्रकड्राइव्हर किसी कुंवारी कन्या की इज्ज़त पर हाथ डालते हिचकिचाते नहीं है। न ही पहाड़ो को काटकर, उन्हें असंतुलित बनाने वाले बुलडोझर बीभत्स-उजाड़ दृष्य को देखकर रो पडते हैं, शेवाल मनुष्य की गर्दन काटकर भी निर्विकार यंत्र सा निरुपाय है। विभिन्न संवेदनशील एवं यथार्थ दृश्यों के अंकन से लेखक की अनुभवों से परिपक्व जीवन-दृष्टि गोचर होती है। लोकगीतों के सुंदर प्रयोग से कोळंब गाँव की आंचलिकता और भी निखरकर सामने आती है।

'अच्छेव' उपन्यास में प्रमुख पात्र पंडरी, रुक्मिणी, आबू, सावळो

मास्तर, नानू और केसर हैं, कोई भी केन्द्रीय पात्र नहीं है। कोळंब गाँव का परिवेश तथा विविध घटनाएँ ही प्रसंगानुकूल चित्रित हुयी है। इन प्रसंगों में कोई एकसूत्रता नहीं है लेकिन पुंडलीक नायक की किस्सागो शैली से छोटे-छोटे प्रसंगों से महत्वपूर्ण आशय प्रकट होता है, जिन्हें बहुत पहले ही संकेत रूप में सूचित किया जाता है लेकिन परिणाम बाद में दृष्टिगोचर होते है। खनिज व्यवसाय के मुखिया गुजीर को लेकर शैतानरुपी बाबुसो पंढरी के घर में घुस जाता है और खेती का रोंपना दूसरे दिन पर टालकर खनिज-कण ढोने का काम पंडरी स्वीकारता है। कोंकणी समीक्षक हरिश्चंद्र नागवेकर के अनुसार- " श्री नायक हाणी गांवजिणेच्या एका म्हत्वाच्या तासाचें दर्शन आमकां घडयलां आनी ह्या प्रसंगाच्या पार्श्व-भूंयेचेर, बाबुसो आनी गुजीरबाबूचें येवप चितारुन निर्मळ गांव-जीण आनी ह्या गांव जिणेचो निर्मळपणा इबाडून वडवपी मिन-उद्योग हांच्या भितल्लो भविश्यांतलो संघर्ष वाचपांच्या दोळ्यांमुखार उबो केला."(122) जिसका हिन्दी में अनुवाद इसप्रकार है- "श्री नायक ने ग्राम्य जीवन के एक महत्वपूर्ण पहलू का दर्शन हमें करवाया है। इस प्रसंग (खेतों की रोपनी) की पार्श्वभूमी पर, बाबुसो और गुजीरबाबू के आने का चित्रण कर निर्मल ग्राम्य-जीवन और भविष्य में ग्राम्यजीवनकी निर्मलता नष्ट करनेवाले खनिज व्यवसाय के भीतरी संघर्ष पाठकों के सम्मुख खड़ा किया है। विवेच्य प्रसंग में रुक्मिणी का विरोध एवं उसपर पंढरी द्वारा लगाया गया थप्पड आनेवाले तांडव की शुरुआत है। पंढरी द्वारा किये गये अनैतिक कार्यों का स्वीकार, गलत राह से आगे बढ़कर की गयी उन्नती से कथ्यपरक विरोध 'अच्छेव' उपन्यास में पाया जाता है। लोह-कणों के काम में ज्यादा पैसे मिलने की चाह ने पंढरी को स्वार्थी एवं मोहांध बना दिया है, जिसमें उसे रुक्मिणी का शील-धर्म, नानू, केसर का भविष्य कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता। सभी खेतीहरों के जीवन में यह प्रतीकात्मक वर्णन दिखाई देता है।

'अच्छेव' उपन्यास नीतिविरोधी व्यसनाधीन वासना से परिपूर्ण समाज के परिवर्तन को चित्रित करता है। लेखक वस्तुस्थितियों के साथ ही पात्रों की मानसिकता चिन्तन के माध्यम से आगामी घटनाओं के संकेत देता है। आबू और मास्तर के संवादों से आगत भविष्य में कोळंब की दुर्दशा दिखाई पड़ती है। कोळंब का परिवर्तनशील विकृतिमय चित्रण भी कथाकर ने रचा है, आबू की सुबह मूर्गे की बाँग से होती थी, लोहपत्थर की गडगड' आवाज से तथा शिफ्ट का भोंपू सुनने से उठना, चाँदनी रात, प्रकृति का हरा रंग आज बदलकर "गाड पाचवो कोर काळखांत भरसून सगळो वाठार किट्ट काळो जाल्लो-"(123) जिसका हिन्दी अनुवाद है- "गहरा हरा रंग अंधेरे में मिलकर अब पूरा परिवेश काला हो गया है।"आदि प्राकृतिक परिवेश का चित्रण एवं सामाजिक परिवर्तन से कोळंब की

परिस्थिति का यथार्थ रूप प्रतीकात्मक रूप में साकार हुआ है।

वसंतोत्सव आनी दायज (1985)

पुंडलीक नायक के सन् 1985 में प्रकाशित दो लघु उपन्यास संकलन 'वसंतोत्सव आनी दायज' अलग-अलग विषयवस्तु पर रचे गये है। 'बांबर' एवं 'अच्छेव' उपन्यास के कथ्य, विषयवस्तु एवं शिल्पविधि से अलग चित्रण 'वसंतोत्सव आनी दायज' में पाया जाता है। वसंतोत्सव में कामवासना से पीड़ित समाज के उच्चवर्ग का चित्रण है। सम्भ्रान्त वर्ग के उपेन्द्रनाथ एवं मनोरमाबाय तथा उनके दोनों बच्चों भूषण और चारु की कहानी ही वसंतोत्वस में केंन्द्रीय स्थान पा सकी है। चैत्र-पूर्णिमा की रात में शान्तादुर्गा का वसंतोत्सव सांतेगाव में मनाया जाता है जो उपन्द्रनाथ(नाथा) के कुलदेवी की जत्रा का उत्सव है, उनके घर के बूढ़े नौकर हरीदाद का गाँव भी सांतेगाँव है। मनोरमाबाई को छोड़कर चारों जन जत्रा में शामिल होने के लिए दौलताबाद से सातेगाँव प्रयाण करते हैं, रास्ते में लोग उनको असत्य बोलकर लूट लेते है। आगे रास्ते में पीपलवृक्ष में आग लगने से उनको रुकना भी पड़ता है पीपलवृक्ष का प्रसंग एक अन्योक्तिपरक प्रतीक भी है। कोंडी धनगर की पत्नी गंगी रुपवति होती है और माँसल सौन्दर्य की अप्रतिम रुपसी थी। नाथा का पुत्र महेन्द्र भी उसके माँसल सौन्दर्य के प्रति आकर्षित है। स्त्री सुलभ ज्ञान एवं तृष्णा से आपूरित वह गंगी धनगर स्त्री कहती है ''पान्याची गाडी घेवून ये तुस्नी क्या मागशील त्या देईन.''(124) जिसका हिन्दी अनुवाद है- ''पानी की गाडी लेकर आ जाओ, तुम्हें जो चाहिए मैं दे दूंगी।'' इस धनगर पात्र कोंडी की पत्नी गंगी के उद्‌गारों तथा उसके आकर्षण से 'फायर ब्रिगेड' बुलाने भूषण जीप लेकर चला जाता है। इधर गंगी के ग्रामीण सौंदर्य एवं सरल स्वभाव से नाथा आसक्ति भाव से पगला जाते है और दोनों उन्मुक्त भाव से यौन संबंध अपनाकर उपभोक्ता संस्कृति का उपादान बन जाते है। 'वसंतोत्सव' उपन्यास अपनी प्रतीकात्मकता में देहभोग के स्तर पर एक ओर नाथा और गंगी (उच्चवर्गीय पात्र और निम्नवर्गीय पात्र) में उन्मुक्त भोग दर्शाता है। तो दूसरी ओर उस गाँव के पागल और चारु (नाथा की पुत्री) में प्रणयलीला है। कथा प्रसंग में भूषण 'फायर ब्रिगेड' लेकर उसी स्थानपर वापिस आता है, हरीदाद उनको 'वसंतोत्सव आज ही हो गया', उसकी तिथी का हिसाब करने में हुयी भूल कबूल करता है और अपनी युवा लड़की जनी की चिंता से अपने गाँव की ओर प्रयाण करता है। भूषण को अपने पिता नाथा और धनगर स्त्री गंगी तथा चारु और पागल के काम सम्बन्धों का (अनोखा) वसंतोत्सव बूढ़े नौकर हरिदाद के माध्यम से मालूम हो जाता है।

पुंडलीक नायक गाँव में चरितार्थ होती इस सहज मानवीय घटना को संकेतगर्भित भाषा से रेखांकित करते है। अन्य लेखकों में जहाँ ऐसे प्रसंगों को चित्रित करने में संकोच महसूस होता है वहाँ पुंडलीक नायक की यह विशेषता है। ''वे मानवीय संबंधों की रागात्मकता को नैतिक-अनैतिक पारम्परिक, आधुनिक, ग्राह्य-अग्राह्य की सीमा रेखाओं को न मानकर उन्मुक्तता की विकृतियों और सहज वृत्तियों को शब्दाकार रुप में अंकित कर देते है।''(125)

भूषण सबको लेकर रात में ही वापिस घर आता है। तो नाथा के मित्र नगरकर को मनोरमाबाय के बेडरुम में पाता है। सभी एक दूसरे से सच्चाई बतलाते नहीं है। वे झूठ की परछाइयों का हाथ थामकर जीवन की राह पर चलना चाहते हैं। वासना का अग्निकुंड इस उन्मुक्त और अनैतिक व्यवहार करनेवाले समाज के नर-नारी को भस्मावृत कर सकता है। पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन आदि कई सारे रिश्ते-नाते वासनारुपी अग्नि में भस्म हो जाने से बचे रहने चाहिए। जलते पीपल का रुपक अपनाकर उस परिवेश का यथार्थ चित्रण, धनगर की बोलीभाषा वहाँ का नैसर्गिक सौन्दर्य, पागलद्वारा पेडों के जड़ी संबंधी जानकारी आदि वसंतोत्सव उपन्यास में जादुई यथार्थवाद की सृष्टि करते है। क्या पुंडलीक नायक की रोमांटिक वृत्ति एक एलिगरी अपनाती है अपने कथा-विन्यास में? यह प्रश्न पाठक के मन में ऊभरना स्वाभाविक है कि युवा पात्र भूषण देह के स्तर पर मांसल सौंदर्य की स्त्री गंगी से एकाकार नहीं होता है जबकि वृद्धावस्था की कगार से गुजरनेवाले नाथा उपभोक्तावादी संस्कृति के दृश्य प्रस्तुत करते है।

''मार्कण्डेय के उपन्यास 'सेमल के फूल' में प्लेटोनिक प्रेम, आदर्श प्रेम का निर्वाह है जो हमारे स्वातंत्र्यपूर्व रचनाकार की पीढ़ि का आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद रहा है।''(126) जबकि पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में 'वसंतोत्सव' के पात्र प्रकारान्तर से कामोत्सव के पात्र के रुप में रुपायित होते है। यहाँ आधुनिकता बोध की वैचारिक सरणी युरोपीय देशों की देह उन्मुक्तता संबंधी पर्याय बन गयी है।

विगत दिनों में डॉ. नूरजहाँ ने अपने वक्तव्य में यह अभिमत जाहिर किया है कि तेलगु के प्रसिद्ध रचनाकार शेषन्द्र शर्मा ने भी एक 'कामोत्सव' उपन्यास रचा है। जो उन्मुक्त देहभोग और यौनप्रसंगों का उपन्यास है।''(127) अभी हाल ही में सुधीर कक्कड का 'कामयोगी' उपन्यास राजकमल प्रकाशन से छपा है लेकिन उसमें वह कलात्मकता नही है जो राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुयी'(128) में रही है।

'दायज' उपन्यास का कथ्य दरअसल युद्ध में शरीक और शहीद मुक्तिदा के परिवार का रुपांकन है। इस लघु उपन्यास 'दायज' में उनकी विधवा पत्नी,

भाई के साथ-साथ उनके तीन पुत्रों का संसार चित्रित हुआ है। बड़ा लडका डॉक्टर विनय शहर के अस्पताल में कार्यरत है। दूसरा लड़का विद्यानंद स्कूल में शिक्षक है। तीसरा पूत्र रणजीत बेरोजगार है, जिसने पिता की कर्तव्यप्रधान जिंदगी में काला धब्बा लगाया है। गाँव में मुक्तिदा का घर सम्मान से देखा जाता था। मुक्तिदा ने अपने छोटे भाई पद्मनाथ का विश्वास घात करने के कारण खून कर दिया था। पद्मनाभ पुर्तगीज-शासकों से मिला हुआ मुखबिर था और गुप्त चर्चायें पुलिस तक पहुँचाता था। यहीं उसका विश्वासघात था। मुक्तिदा के छोटे पुत्र रणजीत ने मवालीपन से बहुत सारी लडकियों का शील भंग किया। इतना ही नहीं उसने मझली भाभी मृदुला की सहेली नीला के साथ भी जोर-जबरदस्ती की थी। येदू की लड़की सुरंगा पर जब उसने बलात्कार किया तो सुरंगाने आत्महत्या की राह पकड़ ली। परिवार की नौकरानी दुलू पर भी अत्याचार किया। रणजीत द्वारा लोगों को मारपीट करना, अत्याचार करना धमकी देकर विद्यानंद का हेडमास्टर बनना आदि उपन्यास के कथ्य की गंभीरता को कम करती है। माई के अंधविश्वास से किये गये उपचारों के बाद भी उनके अत्याचार की घटनाएँ होते रहती है और अंत में माई मुक्तिदा के द्वारा रक्षण करने हेतु दिये गए खंजर को वह मझली बहू को सोंप देती है। प्रसंगवश माई कहती है- ''हो दवर तुजेकडेन. पारतंत्र्यात माका काय केन्ना ताची गरज भासली ना, घडये ह्या स्वातंत्र्यात तुका ताची गरज भासत.''(129) जिसका हिन्दी भावानुवाद है- ''तुम्हारे पास यह रखो। गुलामी के दिनों, विदेशी शासक के दिनों में मुझे इसकी जरुरत महसूस नहीं हुयी। शायद इस आजाद देश में तुम्हें इसकी जरूरत पड़ सकती है।'' माँ के द्वारा अपने ही पुत्र के चरित्र पर किया गया 'व्यंग्य' एक अलग ही दृष्टिकोण, हमारे स्वातंत्र्योत्तर जीवन के उपभोक्ता समाज के आधुनिकीकरण को पेश करता है ।

हालांकि रणजीत युवावर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। वैसे ''युवा वर्ग समाज का सबसे अधिक संवेदनशील और कार्यशील वर्ग होता है। यह वर्ग नवयुवकों का प्रतिनिधित्व करता है जो स्वतंत्र भारत में नए संस्कार लेकर पैदा हुआ था। ये संस्कार एक ओर उसे आधुनिकता की प्रेरणा दे रहे थे दूसरी ओर वे उन्हें परंपरा से भी जोड़े हुए थे। धर्म में विश्वास रखते हुए, अथवा न रखते हुए भी ये नए लोग सामाजिक कुंठाओं और धर्मप्रसूत 'भीरुभाव' से मुक्त थे। विज्ञान ने उनमें अपनी बुद्धि, अपनी नई चेतना और कार्यक्षमता के बारे में गहरा आत्मविश्वास भर दिया था।''(130)

कहना न होगा कि 'दायज' उपन्यास का रणजीत और 'अच्छेव' उपन्यास के नानू युवावर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। पर दोनों के व्यवहार और चिंतन में गुणात्मक अंतर है।

स्वातंत्र्य पूर्व काल में हम पुर्तगालियों के अत्याचार सहन कर रहे थे लेकिन तब नारी जितनी स्वतंत्र थी उतनी स्वतंत्रता उसे स्वातंत्र्योत्तर काल में नहीं मिली रणजीत जैसे व्यक्ति के शिकंजे से नारी कभी मुक्त नहीं हो सकती।

रणजीत अपनी भाभी मृदुला पर भी जबरदस्ती करना चाहता है। तब वह जान लेती है कि विद्यानंद पति होते हुए भी नामर्द जैसा है, वह कुछ नहीं कर सकता इसलिए बेहतर होगा कि अन्यों की इज़्ज़त पर हाथ डालने से पहले रणजीत का काँटा निकाल दिया जाए। वह माई द्वारा दिये गये खंजर से उसका खून कर देती है। अन्य लडकियों पर हाथ डालनेवाले, बलात्कार करनेवाले उस नराधम के चंगुल से अन्य लडकियों को वह इस प्रकार छुडा लेती है। अपनी पर्वाह न करते हुए भी मुक्तिदा के शौर्य एवं उसकी मान-बान-शान को कायम रखती है।

गुणाजी (1998)

'गुणाजी' उपन्यास में गाय-गोरु की रखवाली करनेवाले ग्वाले का आत्मकथन चित्रित किया गया है। वैसे इसको उपन्यास की श्रेणी में रखा गया है लेकिन उपन्यास के सभी तत्व इस कृति पर लागू नहीं होते हैं। गुणाजी का स्वकथन-आत्मकथन होने के कारण उसके जीवन में घटनायें घटती आयी है वह उनको कहते चले जाता है। उपन्यास में अपेक्षित पात्रों का परिवेश, काल्पनिकता जीवन समस्याओं एवं विकास समाधान पूर्ति अथवा सोद्देश्यता आदि का इसमें चित्रण नहीं हुआ है। इसलिये स्पष्ट रुप से इसे उपन्यास कहना मुश्किल है। गुणाजी के जीवन में बाह्य परिस्थिति के अनुरुप बदलाव आता है। विविध यांत्रिक चीजों की जानकारी न होने के कारण आयी हुयी उसकी असमंजस स्थिति का वर्णन इस उपन्यास में हुआ है। गुणाजी का नाम राष्ट्रपति एवार्ड के लिए सरपंच के माध्यम से प्रस्तावित किया जाता है। अतः विविध प्रांतों के ग्वालों के साथ साथ गुणाजी को भी यह एवार्ड घोषित किया जाता है। एवार्ड लेने उसे अकेले दिल्ली जाना पड़ा। वह भी हवाई जहाज से। गुणाजी अनपढ़ अज्ञानी और ग्रामीण-स्वभाव का एक सरल सीधा इन्सान है। उसने कभी महानगर नहीं देखे अतः हवाई जहाज द्वारा दिल्ली की यात्रा एक प्रकार से किसी आदिवासी व्यक्ति की अनथक परेशानी एवं कौतूहल की यात्रा रही है। गुणाजी को राष्ट्रपति द्वारा एवार्ड की प्राप्ति होती है जो अभिमान की बात होकर भी एक प्रकार से एलिस इन वण्डर लॅण्ड जैसे आश्चर्य लोक की बात है।

अपने देखे गये ग्रामीण अनुभवों के आधार एवं प्रतीकों से वह एयरपोर्ट के विशाल रनवे को सुपारी सुखाने का मैदान समझ लेता है। एयरपोर्ट के ए.सी.रुम

में जब वह प्रवेश करता है। वह उसे सावईवेरें के 'अनंत(विष्णु)-मंदिर' की तरह महसूस होता है उस मंदिर के पास घना तालाब होने से वह मंदिर अंदर से शीतल है वैसे ही यहाँ प्रवेश करते ही शीतलहर से स्वागत महसूस होता है। गुणाजी के बारे में भूषण भावे की टिप्पणी है। ''गुणाजी हें स्वकथन, एका स्फटीक-पारदर्शक आनी निरागस मनाच्या गुणानी त्या गुणवान राखण्यान आपल्याक राष्ट्रपतिचो अॅवार्ड घोषित जाल्यापासुन स्वीकारपामेरेनच्या घडणुकांचे आनी त्या अनुषंगान आपले जिणेचें मनमेकळे आनी यथार्थ कथन केला।''(131) उपर्युक्त कोंकणी कथन का हिन्दी अनुवाद है- ''गुणाजी यह आत्मकथात्मक वर्णन एक स्फटीक, पारदर्शी और निश्पाप मन के गुणवान गुणाजी ग्वाले का आत्मचरित्र है। राष्ट्रपति अॅवार्ड घोषित होने के बाद उसे प्राप्त करने तक की घटनाओं उसके प्रभावस्वरूप जीवन में आये हुए यथार्थ दृश्यों को इसमें रेखांकित किया गया हैं।''आत्मकथानक रूपी 'गुणाजी' पात्र की कतिपय विशेषतायें इसप्रकार है जो उसके जीवन का यथार्थ चित्रण भी है।

वस्तुत: पुंडलीक नायक यथार्थवादी लेखक है और उनकी प्रतिबद्धता यथार्थपरक चित्रण की होती है। मनुष्य जीवन, उसका अपना परिवार, गाँव के लोग, शहर की संस्कृति आदि का यथार्थपरक चित्रण गुणाजी में अभिव्यक्त हुआ है। पत्नी, बहू, पुत्र और पोते के संयुक्त परिवार वाले कुटुम्ब में गाय-गोखरू की जिन्दगी भी एक हिस्सा होती है। बिना कुछ छिपाये गाय-गोरुओं की रखवाली दूसरों के जानवरों की सेवा करते वक्त आयी विभिन्न समस्याएँ, गुणाजी के आत्मगत जीवन की समस्याएँ आदि का यथार्थ चित्रण 'गुणाजी' उपन्यास की विशेषता है।

भारतवर्ष के गाँवों में आज भी एक-दूसरे की खोज-खबर चिठ्ठी-पत्री द्वारा ली जाती है। टेलीग्राम-तार को वे संशय एवं डर की नजर से देखते है। प्राय: टेलीग्राम मिलने पर किसीकी मृत्यु की ही उसमें खबर हो सकती है अथवा कोई अनिष्ट होनेवाला हो ऐसा लगता है। गाँव में जब गुणाजी के नामपर टेलीग्राम आता है तो वह घबरा जाता है। उसका पोता कांतु एक शिक्षित किशोर है पर वह भी एवार्ड का सही अर्थ नहीं लगा पाता है। बहरहाल सरपंच के माध्यम से उसे दिल्ली जाकर पुरस्कार प्राप्त करने की बात समझ में आती है। सम्पूर्ण उपन्यास में टॅक्सी गाडी में बैठना, एयरपोर्ट की गहमागहमी, कार के ड्राइवर की गडबड़ी, वातानुकूल होटल में शौचालय और दैनिक कार्य की परेशानी का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है।

पुंडलीक नायक ने परिवेश को ही सजीव चित्रण का माध्यम रखा है कोंकणी साहित्य ग्रामीण परिवेश को आधार बनाकर कहानी कम लिखी है। आदिवासी, ग्रामीण अंचल आज भी शहरी संसार की आधुनिकता से अलग है। ज्ञान-विज्ञान

की उपलब्धियाँ आज भी गाँवो में पहुँच नहीं पायी हैं। दिल्ली जाने-आने का हिसाब गुणाजी लगभग पंद्रह बीस दिनों का करता है तो सरपंच उसे हवाई जहाज से सिर्फ ढाई घंटों में दिल्ली पहुँचने की बात बताकर अचरज में डाल देता है। गायों को चरने के लिए छोड़ना, ग्वालों का बरगद वृक्ष के नीचे बैठना, झरने पर गाय-गोरूओं को धोना, नहलाना, गोठ का वर्णन वहाँ की सफाई, हवाई अड्डे पर आये हुये लोग उनकी वेशभूषा विदेश नर-नारी को देखकर गुणाजी का यह समझना शायद जल्दी में आने के वजह से वे पूरे कपड़े बदन पर चढ़ाना भूल गये होंगे, ऐसी प्रतीति करना, उसके ग्रामीण स्वभाव के अनुकूल ही है। उसकी तथा सामान की जाँच, दिल्ली में पहुँचने के बाद वहाँ का परिवेश, सुबह उठकर महात्मा गांधी की समाधी का दर्शन करने जाना और वहाँ की हरियाली आदि का वर्णन पाठकों के समक्ष जीवंत दृश्य के समान ऊभर कर आता है।

गुणाजी के आत्मचरित्र से ग्वालों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। उसने ग्वालेपन का कार्य सिर्फ उदरनिर्वाह के लिए साधन के रूप में नहीं अपनाया है। उसके सामने अनेक व्यवसाय नारियल तोड़ना, बालू-रेत निकालना, पेडोंपर से नारियल, आम, कोकम-काजू निकालना आदि अनेक काम उसके लिए आसान थे। लेकिन गुणाजी गाय-गोरुओं के प्रति सहानुभूति रखता है, अतः व्रत के रुप में इस व्यवसाय को अपनाता है।

गुणाजी के चरित्र की यह विशेषता है कि वह गाय-गोरुओं की रखवाली के कारण इनाम मिलने से उनके पास जाकर अपनी संवेदना व्यक्त करता है। उनको अच्छी तरह साफ-सुथरा रखना, औषधियाँ लगाना, उनके बालों में छुपे बारीक किटाणुओं को निकालना, बिना पिटाई किये उन्हें रास्ते पर चलाना आदि अनेक कार्य वह कुशलतापूर्वक तथा सहानुभूति से करता है। जिसका उसे सार्थ अभिमान भी है।

गुणाजी को जब पता चलता है कि कुछ वधिक लोग एक बूढ़ी गाय को खरीदकर उसकी हत्या करने के लिए ले जा रहे है तब अपने मालिक से बिनती करके उसे खरीदने के लिए आग्रह करता है। यह घटना उसके निर्मल एवं संवेदशील हृदय की परिचायक है। वह बहुत ही सरल और निष्पाप मन का व्यक्ति है। इसका आभास हमें 'गुणाजी' उपन्यास पढ़ते वक्त होता हैं। गाँवो के आदमी पुस्तकीय शिक्षा से भले ही परिचित न हो लेकिन वे अपने-अपने क्षेत्र में पारंगत होते हैं। शहरी सभ्यता से अनभिज्ञ गुणाजी गाय-गोरुओं की हर एक विधि एवं उपचार से परिचित है। उनकी बीमारी, लक्षण और उनको देने की दवाईयाँ उसे पूरी तरह से मालूम है। लेकिन गाडी में बैठना, हवाई अड्डे पर उसे अंग्रेजी न आने से होने वाली

कठिनाईयाँ, हवाई जहाज में घटित घटनायें, दिल्ली के हॉटेल की तकनीकी अनभिज्ञता आदि अनेक प्रसंग उसके अशिक्षित होने का प्रमाण देते हैं। लेकिन इन विपरीत परिस्थितियों पर व्यक्त विचार पाठक के मन मस्तिष्क में हास्य और व्यंग्य का आभास दे देता है। हवाई अड्डा उसने पहले देखा नहीं था उसमें प्रवेश करने के उपरांत उसे अनंत के मंदिर और वहाँ के टाईल्स की याद आती है। वातानुकूलित हवाई अड्डे में प्रवेश करने पर तालाब पर बांधे हुये अनंत मंदिर की शीतलता महसूस होती है और उसे लगता है कि यह हवाई अड्डा भी किसी तालाब के पास ही बना होगा। हवाई अड्डे में जहाँ कई हवाई जहाज खड़े हैं, वह जगह उसे गोविंदबाब के सुपारी सुखाने वाले आंगन की याद दिलाती है।(133) एयर होस्टेस की सूचनाओं के बाद उसका तालियाँ बजाना, और उस एयरहोस्टेस का गुणाजी के पास आना ऐसी अनेक घटनायें पाठकों के सामने कौतूहल और विस्मय के अनबूझ द्वार खोल देती है। मराठी के एक प्रसिद्ध उपन्यासकार रामनगरकर ने भी 'रामनगर' उपन्यास में ऐसी ही हास्यास्पद शहरी घटनाओं का जिक्र किया है। जो ग्रामीण स्त्रियाँ बम्बई शहर के फ्लैटों में रहती हुयी महसूस करती है।

गुणाजी अपने स्वकथन से कहीं भी किसी की प्रशंसा अथवा निंदा नहीं करता। न ही अपने व्यवहार से किसी का दिल दुखाने का प्रयास करता है। इस दीर्घ कथा में गाँव एवं शहरी जिंदगी के भेदभाव उनकी नजर में सुख-सुविधा विज्ञान आदि के कारण पायी हुयी तबदीली गाँव से दिल्ली की यात्रा में वह अजीबोगरीब घटनाओं से परेशान होता है। कहीं अचरज में पड़ता है और इसमें भी उसके अपने संस्कार उसे बार-बार अपने अस्तित्व को न खोने के लिए प्रेरित करते हैं। लोगों के निर्विकार चेहरे, व्यावहारिक वृत्ति आदि का चित्रण यहाँ पर हुआ है, जिससे शहरी पाठक कभी-कभी उद्वेलित होता है तो कहीं सुखद अनुभवों से भावविभोर हो जाता है।

सारांशतः 'गुणाजी' नामक आत्मकथात्मक उपन्यास एक सरल, सहज, निश्चल, निस्वार्थ भाव का चरित्रप्रधान उपन्यास है। संभवतः संपूर्ण भारतीय साहित्य में किसी ग्वालेपर, गाय-गोखरु के रखवाले पर लिखा गया पहला उपन्यास है। वैसे तेलगु भाषा में सूअर पालन कर्ता समूह के जनजीवन पर एक उपन्यास लिखा गया है। लेकिन उसमें शहरी और ग्रामीण जीवन के अंतर्विरोध (Contrast) को बतलाया नहीं गया है। जो 'गुणाजी' उपन्यास की अन्यतम विशेषता है। प्रसंगतः नसरूद्दीन शाह और शबाना आजमी ने कभी 'पार' पिक्चर में यथार्थपरक अभिनय किया है, जो भेड़-बकरी के पशु-पालन पर रोंगटे खडे कर देनेवाली फिल्म रही है।(134)

3.41 पुंडलीक नायक के कथासाहित्य का मूल्यांकन

गोवा के कथासाहित्य में पुंडलीक नायक का नाम आदर तथा सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने करीब-करीब चालीस पुस्तकों की रचना की है- तीन कथासंग्रह, पाँच उपन्यास-लघुउपन्यास, तीन एकांकी संग्रह, बारह नाटक, तीन बालनाट्य, दो बालसाहित्य, नाटकों की समीक्षा पर एक पुस्तक, एक कवितासंग्रह आदि शामिल है। पुण्डलीक नायक अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हुए हैं- जिनमें कोंकणी भाषा मंडळ (गोवा पुरस्कार) कलाअकादमी (राज्य साहित्य पुरस्कार), केंद्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार, अखिल भारतीय आकाशवाणी(नभोनाट्य पुरस्कार) अकादमी ऑफ ब्रॉडकास्टींग आर्ट एन्ड सायन्स का पेटर्स ऑस्ट्रेलियन पुरस्कार, प्रथम गोवा राज्य फिल्म महोत्सव 'पटकथा' का पुरस्कार आदि । 'ज्युनियर चेंबर' नामक समाजकार्य करनेवाली संस्था की ओर से 'सर्वोत्कृष्ठ व्यक्ति पुरस्कार' भी उनको प्राप्त हुआ है। वे विभिन्न सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाओं के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष आदि पदों पर भी कार्यरत रहे हैं।

पुंडलीक नायक एक सेवाभावी व्यक्ति के रुप में जितने गोवावासियों से परिचित है उतने ही बड़े साहित्यकार के रूप में भी। उनके आत्मगत अनुभवों की अभिव्यक्ति साहित्यिकधरातल पर बड़े पैमाने पर सक्रिय भूमिका अदा करती रही है। विविध सामाजिक संस्थाओं में कार्यरत होने के कारण उनके साहित्य में साधारण तथा निम्नवर्ग के प्रति सहानुभूति अभिव्यक्त हुयी है। साहित्य को उन्होंने मानवीय सरोकारों से जोड़ा है। उनकी साहित्य साधना निरंतर गतिशील रही है। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं पर लिखा है। चाहे श्रेष्ठ नाटककार हो या कवि हो या कथाकार हो या बालसाहित्यकार हो सभी विधाओं में वे सक्रिय रहे है। नयी कहानी के प्रवर्तक और विवादास्पद संपादक 'कमलेश्वर' ने भारतीय शिखर कथा कोश की भूमिका में उनका मूल्यांकन निम्न शब्दों में किया है- पुण्डलीक नायक की कहानियॉं कोंकणी कथालेखन की परम्परा में अत्यंत महत्वपूर्ण है- ''इनकी रचनाओं में भीतरी आँच भी है, आक्रोश और आहत करने की शक्ति भी। कभी-कभी तो पुण्डलीक नायक की कहानियाँ परम्परागत नैतिकता को भी झकझोर कर रख देती है। ऐसी कहानियों से कोई असहमत तो हो सकता है परंतु उन्हें बिना पढ़े नहीं रह सकता।''(135)

उनके कथासाहित्य का मूल्यांकन करते समय हमें उसे प्रमुखत: चार विभागों में बाँटना होगा, जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक विषय

विभाग माने जायेंगे।

3.411 सामाजिक पक्ष

पुण्डलीक नायक की कथापरक रचनाएँ सौद्देश्यता से परिपूर्ण है। व्यक्ति और समाज, स्त्री-पुरुष संबंध, प्रेम और विवाह की अनबूझ पहेली; पारिवारिक जीवन की समस्याएँ, नैतिक मूल्यों का अध:पतन, जातिप्रथा की विषमताएँ आदि विविध सामाजिक समस्याओं को लेखक ने अपनी कथारचना का केंद्रीय आधार बनाया है।

एक प्रतिबद्ध रचनाकार व्यक्ति-पात्र के माध्यम से एक तरफ समाज के विविध विषयों, एवं अन्त:संघर्षों को प्रगट करता है तो, दूसरी तरफ सामाजिक व्यवस्था बनाम व्यक्ति स्वतंत्रता की भावना ही जीवन समस्याओं की जड़ प्रमाणित होती है। सामाजिक जीवन में नारी जीवन की समस्याओं, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने नारी की स्वतंत्रता तथा नारी के समानाधिकार की चाहत व्यक्त की है। ग्रामीण अंचलों में व्यवहृत नारी समस्या को उन्होंने अनेक रुपों में उभारा है। 'दायज'[136] नामक लघुउपन्यास में रणजीत द्वारा मृदुला की सहेली तथा नौकरानी दुलु पर किये गये अत्याचार मालूम होने के उपरांत उसकी भाभी मृदुला की सहनशीलता का अंत होता है। और वह अपनी सास(माई) द्वारा दिये खंजर से रणजीत का खून करती है। यहाँ मृदुला ने अन्याय, अत्याचार का बदला लेने के लिए प्रतीकात्मक रुप से महिषासुर मर्दिनी का रुप धारण किया है। तानाजी हळर्णकर ने पुण्डलीक नायक की रचनाशीलता और सौद्देश्यता को कोंकणी भाषा की भावभूमि और जीवन संघर्ष के स्पन्दन से जोड़कर कहा है- ''पुंडलीक नायकाच्यो कथा ह्यो कोंकणी मातयेच्या स्वभावाचो प्रामाणिक आविष्कार आसा, कोंकणी समाज मनाचे विशेश करुन गांवगिऱ्या समाजमनाचें स्पंदन ताच्या कथेतल्यान प्रभावीपणान प्रतीत जाता'' [137] जिसका भावानुवाद इसप्रकार है- ''कोंकणी भाव-भूमि को स्वभाव का प्रामाणिक शब्दकार पुण्डलीक नायक है। कोंकणी भाषी समाज का मन: विशेषरुप से प्रादेशिक,सामाजिक मन का स्पंदन इनकी कथाओं में प्रभावशाली रूप से स्पन्दित होता है।

समाज के बदलते परिवेश में आज भी नारी की स्थिति परतंत्र नारी की तरह है । वह कहीं भोग्या के रुप में दृष्टिगोचर होती है तो कहीं पर पुरुष वर्ग द्वारा बलात्कार की शिकार-निरीह पशु-सी प्रतीत होती है। 'बळजबरी' कहानी में 'जनी' पर पुरुष पात्र दादी द्वारा किया गया बलात्कार, 'मोगाची धूव' कहानी में लड़की का ड्राइव्हर की वासना की शिकार हो जाना, कुछ ऐसा ही प्रसंग है

जो भोग्या नारी की विवशता के प्रमाण है। 'काणी एका माजराची' कहानी में रघु की भौजाई की स्थिति उपभोक्ता वस्तु जैसी ही है। इससे अलग रुप विवाहिता नारीयों का प्रसंग भी है जहाँ अपने पति से यौन सूख की प्राप्ति न होने से दमित वासना की पूर्ति संबंधी अभिव्यक्ति की भी प्रचुरता है। पुंडलीक नायक ने यथार्थवादी ईमानदारी प्रदर्शित करते हुए यौन-वर्जनाओं एवं कुण्ठित वासना आदि का चित्रण 'वसंतोत्सव' में किया है। 'अच्छेव' की रुक्मिण, 'माड' कहानी की साळू, 'पाज्ञ' की विठाबाय आदि स्त्री-पुरुष के विवाहोपरांत काम सम्बन्धों पर आधारित वर्णनों को प्रस्तुत करते हैं। 'गोदू' 'अच्छेव' आदि रचनायें यथार्थ परक दृष्टि से भले ही उच्चकोटि की रचनाएँ कही जा सकती है किन्तु गोदू, केंसर आदि पात्रों की मानसिकता भारतीय परिवेश, संस्कारों के प्रतिकूल उपभोक्ता संस्कृति का प्रमाण देती है।

पुण्डलीक नायक नारी की स्वतंत्रता एवं समानाधिकार की चाहत रखते है। वैसे यौन-शुचिता संबंधी प्राचीन परम्पराएँ व मान्यतायें अब खत्म हो गई है। इनकी कहानियों में माँ-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका आदि के पारस्परिक सम्बन्धों में नैतिकता और आदर्श की पुरानी मान्यतायें यथार्थ की वेदी पर बली होती नजर आती है। सम्बन्धों का परिवर्तित स्वरुप भी कथा-साहित्य में चित्रित हुआ है।

व्यापक धरातल पर जब सामाजिक ढाँचा बदलता है तो अनेक नई समस्याओं को अपने में समेटे हुए रेखांकित होता है और उसकी स्पष्ट झलक पारिवारिक सम्बन्धों पर भी पड़ती है। पारिवारिक मूल्य आदर्श और मानदण्ड स्वतंत्रता के बाद बदलते जा रहे हैं। इस परिवर्तन के कारण संयुक्त परिवार ने अब छोटी- छोटी इकाईयों का रुप धारण कर लिया है। पारिवारिक सम्बन्धों के इस बिखरे हुए रूप को आंचलिक कथाकार पुंडलीक नायक ने 'घर' कहानी में कलात्मक स्तर पर चित्रित किया है। उनकी बुजुर्ग माँ 'घर' को संयुक्त रुप में बचाना चाहती है लेकिन उसके तीनों पुत्र अलग होकर अपना विभक्त परिवार स्थापित करते है। संयुक्त परिवार के झगड़े-कलह, देवरानी और जेठानी के आपसी ईर्ष्या भाव से उत्पन्न संघर्ष आदि का दर्शन 'घर' नामक कहानी से होता है।

मनुष्य अपने विषय में सोचने-समझने जानने व निर्णय लेने तथा रुचिपूर्वक कार्य करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है। पुंडलीक नायक ने समाज में व्याप्त अशिक्षा, निधर्मता, शोषण, बलात्कार, हिंसा आदि सामाजिक बुराईयों के प्रति सक्रिय विद्रोह प्रकट किया है। 'अच्छेव' उपन्यास में 'आबू' का बच्चों को पढाने के लिए मास्तर रखना, 'भागेलपण' कहानी में अपने लडके को पढाने हेतु 'भाटकार' की नौकरी को छोड़ना आदि के माध्यम से उनका विद्रोह स्पष्ट रुप से प्रकट हुआ है।

पुंडलीक नायक की कुछ कहानियाँ अस्तित्ववादी दर्शन से भी प्रभावित है। ज्यां-पॉल-सार्त्र ने अस्तित्ववादी दर्शन का विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया है। अस्तित्ववाद में मानव अस्तित्व पर धर्मनिरपेक्ष एवं धर्मसापेक्ष स्तर से विचार किया जाता है। वे मनुष्य को नैसर्गिक रुप से स्वतंत्र घोषित करते है। 'पारज' कहानी में श्यामल पिताजी के कंधे पर बोझ बनी हुयी है, उसका प्रेमी बुधो निम्नजाति से है वह उच्चवर्णीय है। फिर भी उसके मन में बुधो के प्रति उत्पन्न प्रेमांकुर और एक क्षण में 'पारज' के तरह उसके अदृश्य होने पर अस्तित्ववादी जीवन दर्शन के क्षणविशेष का प्रभाव माना जा सकता है। क्योंकि अस्तित्ववादी दर्शन जीवन मे निर्णय के क्षण को ही महत्वपूर्ण मानता है।(138)

'देठ' कहानी में भी स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं 'स्व' का अलग अस्तित्व स्वीकार करनेवाला नायक है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जन जीवन में मानवतावादी सिद्धांतों की ओर आकर्षण बढ रहा था किन्तु जो परंपरागत जातिप्रथा के बीज थे उनका भी मानव-मन पर गहरा प्रभाव था। उसकी कहानी 'वळख' में ड्रायव्हर के हरिजन होने की पहचान से, सबके व्यवहार में अलगाव बोध उत्पन्न करती है। सर्वधर्मसमभाव के मूल्य का पाठ पढनेवाले लडके का मानसिक द्वन्द्व, आक्रोश इस कहानी में यथार्थ परक ढंग से प्रकट होता है। साथ ही यह 'अलगाव बोध' की भी सशक्त कहानी है।

3.412 राजनीतिक पक्ष

स्वतंत्रता के पश्चात भारत की राजनीति में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इस क्षेत्र में भ्रष्ट और अवसरवादी लोगों में गद्दी पाने के लिए होड लगी रही। परिणामस्वरूप शासन व्यवस्था और आर्थिक स्थिति विश्रृंखल होती जा रही है। 1961 में गोवा में आजादी के बाद भी यहीं दृश्य उभरकर आने लगा मंत्रीमण्डल में प्रवेश पाने हेतु नेतागण नीति, सिद्धांत, देशभक्ति, ईमानदारी आदि मानवीय गुणों का क्षण-क्षण जुआ खेलते नजर आते है। आजादी से पूर्व जो आदर्श थे उनको कहीं स्वतंत्रता संग्राम में ही बलि चढा दिया गया। 'दायज' कहानी इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। 'मुक्तिदा' का संघर्ष तथा मुखबिर रणनीति के कारण किया हुआ भाई का खून, स्वतंत्रता संघर्ष में दिया हुआ बलिदान, तथा आजादी के उपरांत छोटे लडके रणजीत द्वारा किया हुआ दुरुपयोग, लडकियों पर बलात्कार, लोगों की हत्या, धमकियाँ देना, स्कूल के व्यवस्थापन में हस्तक्षेप आदि से समाज में फैला हुआ असंतोष एवं गतिरोध यहाँ व्यक्त होता है।

राजनीति से सामाजिक परिदृश्य अलग नहीं हो सकता। राजनीतिक

भ्रष्टाचार ने व्यक्ति को बेगाना बना दिया है पूँजीपतियों के भ्रष्टाचार ने सामान्य मनुष्य को भी विस्थापित किया है। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार 'राजनीतिक शक्तियों, खोखली नैतिकताओं और व्यवसायिकता ने मनुष्य की स्वतंत्रता को अपहृत कर उसे अनेक प्रकार के यंत्र-तंत्रों का जड अंग बना दिया। संवेदनशील व्यक्ति समाज से टूटकर बेगाना और अजनबी हो गया। आज वह गहरी वेदना और अकेलेपन के अहसास के बीच मर कर जी रहा है। अधिक अच्छा होगा कि यह कहा जाए कि वह जीकर मर रहा है।''(139)

आर्थिक शोषण एवं राजनैतिक भ्रष्टाचार के साथ-साथ व्यावसायिक अलगाव बोध का चित्रण पुण्डलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में हुआ है। पंढरी 'व्यवसायिकता एवं स्वार्थ की दृष्टि से अपनी पहचान भूल गया है। वह यंत्रों एवं मत्स्य पालन व्यवसाय के कारण धरती से जुड़ा नाता, घर परिवार ही नहीं अंत में अपना लडका भी खो देता है। अर्थव्यवस्था संबंधी पूँजीवादी विकृति, समाजवाद का मखौल,नैतिक दलबन्दी, विभिन्न समस्याओं की उलझन, जीवन की छोटी से छोटी आवश्यकता के लिए भी सरल, साफ सुधरा मार्ग कथानायक के पास नहीं बचा है। 'बाजार' कहानी में 'मदलो' चायपत्ती और फल खरीदता है तो पाता है कि ''दुवाब येवन पावडर हातांत घेवन पळय जाल्यार पावडरींत कितें तरी मिस्तूर ताणे चट् करून दोन तुसां तोंडात वडयली एकदा दाडेक लागलो, लाकडाचो भुसो आनी दुसरे फावट हळशीक कितेंतरी. घडये घोड्याची सुकयिल्ली लीदूय आसूंये''(140) जिसका भावानुवाद है कि ''साशंकित होकर पाउडर हाथ में लेकर देखा तो उसमें मिलावट थी। उसने थोड़ा पाउडर मुँह में डाला तो लगा एक जगह लकडी का भूसा है तो दूसरी बार कुछ घिनौना था शायद वह घोडे की सूखी हुई लीद भी हो सकती है।

रोहिताश्व के शब्दों में ''अच्छेव उपन्यास औद्योगिक विकास की विषमता यांत्रिकीकरण के भयावह दृश्य और पूँजीवादी व्यवस्था की विषमता को चित्रित करनेवाला उपन्यास है। पंढरी क्षणैः क्षणैः नये-नये रोजगार अपनाकर भी अलगाव बोध का शिकार बनता है। वह परम्परागत व्यवसाय को छोड़कर आधुनिकता बोध को लाभांश हेतु अपनाता है। पर वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था उसे केवल Saleable Commodity की तरह पेश आती है और वह एक दिन बेकार कल पूर्जे की तरह विनष्ट हो जाता है।''(141) कहना न होगा पुण्डलीक नायक की रचना प्रगतिशील जरुर है लेकिन वे मानवीय संवेदना और सार्थक अनुभूतियों के पक्षधर रचनाकार है।

हमारे देश में बेरोजगारी, निर्धनता प्रतिदिन बढती जा रही है। सरकारी स्तर पर जिसे भाषणों, लम्बे-लम्बे दावों, कागजी आँकडों तथा टैक्सों के भार

से भ्रमित कर देने की चेष्टा की जाती है । 'भाग्योदय' कहानी में बिजली मंत्री के कर कमलों के द्वारा छोटेसे घर में प्रकाश तो फैलाया जाता है लेकिन जीवन में गरीबी का अंधेरा नष्ट करने हेतु अशोक को बिजलीकार्यालय की नौकरी नहीं मिलती वर्तमान सडी भली राजनैतिक व्यवस्था एवं प्रशासकीय भ्रष्टाचार का पर्दाफाश पुंडलीक नायक ने 'भाग्योदय' में किया है।

3.413 आर्थिक पक्ष

स्वतंत्रता के पश्चात् राजनीतिक, सामाजिक और औद्योगिक परिवर्तन ने देश की आर्थिक स्थिति को पूरी तरह प्रभावित किया है। स्वातंत्र्योत्तर गोवा में औद्योगिक व्यवसाय का प्रचार प्रसार तेजी से होने लगा। खनिज व्यवसाय को दु:ष्परिणाम खेती व्यवसाय पर हुए हैं। 'अच्छेव' उपन्यास में पंडरी का खेती छोड़ खनिज व्यवसाय के लिए जाना इसी का द्योतक है। आंचलिक क्षेत्र की आर्थिक स्थिति में कष्ट भोगते हुए पंडरी ज्यादा धन कमाने के लिए अपनी पत्नी एवं बच्चों को भी खनिज व्यवसाय के लिए ले जाता है। उसके बदले में खेती का बंजर होना, मरते हुए बच्चों का भविष्य, पत्नी की दुर्दशा, बाबुसो की देह भोगी वृत्ति से रुक्मिणी का नैतिक अध:पतन, केसर का बाल्यावस्था के स्वप्नों का भंग तथा क्रिश्चियन ड्राइवर के साथ उसका पलायन, और अंत में नानू की मृत्यु आदि उस के गलत निर्णय के परिणाम प्रतीत होते है। खनिज व्यवसाय की पूँजीवादी व्यवस्था के कारण यह अध:पतन सिर्फ पंढरी का नहीं है। पुरे कोळंब गाँव के जनसमाज का हुआ है।

आंचलिक जीवन में निम्नवर्ग हमेशा मध्यवर्ग की और मध्यवर्ग प्राय: उच्चवर्ग की सुख-संपत्ति को पाने के लिए लालयित रहता है। इसीका प्रतीकात्मक विवेचन 'बळी' कहानी में उपलब्ध होता है। मध्यवर्गीय परिवार में जन्म लिये हुए बेटे को बँक में नौकरी प्राप्त होती है तो उसके पिता की इच्छाएँ भी वृद्धिंगत होती है । यह भाटकार बनने के स्वप्न देखने लगता है तो इधर बेटा इस उस स्वप्न-पूर्ती के लिए बँक में 50 हजार रुपयों की अफरातफर कर कुळागर खरीद लेता है। 'बळी' कहानी में जमींदार वर्ग के सुख व वैभव के आकांक्षी बाप-बेटों की स्वार्थी वृत्ति का परिणाम पुण्डलीक ने कलात्मक एवं यथार्थपरक रुप से दर्शाया है।

पुण्डलीक नायक की 'खळ' कहानी में एक ओर आर्थिक पिछडापन पुरुष पात्र 'पागो' की दयनीय स्थिति से चित्रित किया है तो दूसरी ओर मानवजीवन के दु:खभरे क्षणों को भी वे रेखांकित करते हैं। जीवन में आनेवाले आनंद के क्षण

भी अर्थाभाव के कारण दु:खदायी प्रतीत होते है। परंपरा से चली आयी पद्धतिनुसार (कासय)कछुए की पूजा वासु करता है और उसे शाम को दरिया में विसर्जित करने के बजाय उसे भूखमरी के कारण बढ़ई के हाथों बेचता है। सुबह से पेट में कुछ न होने के कारण वह चावल खरीदने दुकान पर चला जाता है। निम्नवर्गीय जीवन में उत्साह और इच्छा के बावजूद भी ये पात्र आनंद के क्षणों का लाभ नहीं उठा सकते हैं। क्योंकि वे भरण-पोषण के साधन भी जुटा नहीं पाते है। परम्परागत संस्कारों के कारण मछुआरों के जीवन में कासय (कछूए) को मछली की जगह पकड़ लेने पर बेचा नहीं जाता है। पर वर्तमान जीवन की विभीषिका हमारे सारे मान-मूल्यों को विनष्ट कर रही है।

आर्थिक विपन्नता के बावजूद गाँवों में नैतिक मूल्यों का पतन पूर्णत: नहीं हुआ है। चोरी न करना, दूसरों के सामने हाथ न फैलाना, लाचारी को न अपनाकर संघर्ष भाव को अपनाना, मेहनत-मजदूरी कर जीवन यापन का उपदेश पिता द्वारा अनील... को 'भोंवर' कहानी में दिया गया है। अपने हाथों से कमाये हुए 25 पैसे भी मनुष्य को स्वाभिमानी तथा आर्थिक रुप से स्वतंत्र बनाते हैं। इसप्रकार आर्थिक स्वतंत्रता के लिए अपने पैरों पर खड़े होने की आंचलिक यथार्थ की भावना को 'भोंवर' कहानि में व्यक्त किया गया है।

3.414 धार्मिक पक्ष

भारत सदैव से धर्मानुप्राण देश रहा है। धर्म की व्यापक अर्थ में व्याख्या हुई है। वह मानव-जीवन के संपूर्ण पहलुओं को स्पर्श करता है। वास्तव में धर्म कर्तव्य का पर्याय बन गया है। सामाजिक, राजनीतिक, अर्थिक समस्याओं के सांथ-साथ आंचलिक लेखन का भौगोलिक परिवेश अलग है और उसका प्रभाव सांस्कृतिक एवं धार्मिक पक्ष पर भी निर्भर होता है। गोवा में प्रमुखत: तीन धर्म के लोग पाये जाते है। हिन्दु, मुसलमान, एवं ईसाई। गोवा में विभिन्न धर्मावलंबी परस्पर प्रेम के साथ अपनी आजीविका कराते हुए अपने-अपने धर्म का पालन करने में निमग्न है। गोवा में भौगोलिक रूप से समानता होते हुए भी काणकोण की शीशारान्नी पेडों की पुनव, माशेल की मालनीपुनव, साळ के गडे, सावईवेरे के काले आदि भी अलग अलग सांस्कृतिक पहचान है। समाज के विभिन्न वर्गों में रहन-सहन रीति-रिवाज की विशेषताएँ भी यहाँ भिन्न-भिन्न रूपों में मिलती है।

स्वतंत्रता के पश्चात गोवा ने भी औद्योगिक प्रगति आर्थिक दृष्टि से की है परन्तु यहाँ भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, मानवता का स्थान झूठ, हिंसा, निर्दयता और कपट भाव आदि ने लिया है। धर्म में अनास्था और नास्तिकता के कारण मानव हैरान है। इसी कारण मानवीय संबंध भी प्रभावित हुए है इसी

अनास्था के कारण भी रिश्ते तथा आदर्शता खो गये है।

किसी भी समाज के रीति-रिवाज, उत्सव, त्यौहार ---भाव से वहाँ की सांस्कृतिक छवि बनाते हैं। वैज्ञानिक अविष्कारी ने धर्म के प्राचीन रुप को बदल दिया है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'अच्छेव' उपन्यास है। धार्मिक कृत्य तथा विश्वास औद्योगिक, यांत्रिक युग में बदलने लगे है। तालाब पर होनेवाली सत्यनारायण पूजा, मंदिर में होनेवाले हरिविजय, रामविजय के पाठ, विविध धार्मिक विधिविधान खनिज व्यवसाय में नष्ट होने लगे है।

गोवा में अनेक अंधविश्वास आज भी पारम्परिक रुप में चले आ रहे है। कभी-कभी परिस्थिति व्यक्ति को उन अन्ध-विश्वासों को मानने को बाध्य करती है। पुण्डलीक नायक की 'खळ' कहानी इसका सशक्त उदाहरण है। भात की 'मलनी' के बाद खळ (आँगन) की पूजा की जाती है और उसके बाद ही खळ से धान उठाया जाता है। इससे पहले अगर धान उठाया गया तो वह दोषी प्राणी पागल हो जाता है। 'पागो' के घर में बिना कुछ भी खाये सोये हुये बच्चों को देखकर पागों से रहा नहीं जाता वह 'खळ' से धान उठाकर ले जाता है और बच्चों को माड़ तैयार कर खिलाया जाता है, दूसरे दिन 'पागों' पागल हो जाता है। यहाँ पर परिस्थिति तथा परिवेशगत धार्मिक अंधविश्वास ही है जो पागो को पागल बना देता है। आदमी और आदमी के संबंधों को मात्र आर्थिक संबंध सूत्रों ने बदल दिया है।

पुंडलीक नायक की बहुत सारी कहानियाँ हिन्दू संस्कारों की कहानियाँ है। वे हिन्दूओं की प्रथा, जीवन पद्धति, सामाजिक रहन सहन आदि को लेकर लिखी गयी है। यद्यपि इन कहानियों में साम्प्रदायिक भावना उभरी नहीं है फिर भी हिन्दूपन का असर जरुरत से ज्यादा है। उनके यहाँ कहीं-कहीं एकाध पात्र मुस्लिम एवं ईसाई समाज से दृष्टिगोचर होते हैं।

निष्कर्षत: पुंडलीक नायक का कथासाहित्य जीवन के विविध पक्षों-राजनीतिक, समाजिक एवं धार्मिक आदि के यथार्थ अंकन में सक्षम प्रमाणित होता है।

o-o-o-o-o

सन्दर्भ सूची : तृतीय अध्याय

1.	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	:	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	पृ.90
2.	नामवर सिंह	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता	
3.	मार्कण्डेय	:	कलम 12 दिसंबर 1985	पृ.108
4.	वही	:	वही	पृ.109
5.	सुरेन्द्र प्रसाद	:	मार्कण्डेय का रचनासंसार	पृ.14
6.	रोहिताश्व	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता 9/1/03	
7.	देवेश ठाकुर	:	गोमांचल विशेषांक नवम्बर 1992	पृ.28
8.	सुरेन्द्र प्रसाद	:	मार्कण्डेय का रचनासंसार	पृ.14
9.	आनंद प्रकाश	:	कल के लिए अक्तूबर-दिसम्बर 1966	पृ.13
10.	शिवकुमार मिश्र	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता 13 मार्च 03	
11.	जार्ज लुकाच	:	कथा अंक 4	
12.	मार्कण्डेय	:	तारों का गुच्छा	पिछला कवर
13.	मधुरेश	:	हिन्दी कहानी का विकास	पृ.172
14.	वही	:	वही	पृ.172
15.	संतबख्श सिंह	:	नयी कहानी कथ्य और शिल्प	पृ.167
16.	मार्कण्डेय	:	महुए का पेड़	पृ.
17.	विवेकी राय	:	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम्य जीवन	पृ.164
18.	सुरेन्द्र प्रसाद	:	मार्कण्डेय का रचना-संसार	पृ.97
19.	बनवारी लाल शर्मा	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता 6 फरवरी 03	
20.	मार्कण्डेय	:	माही	पृ.15
21.	मार्कण्डेय	:	माही	पृ.25
22.	वही	:	वही	पृ.25
23.	सुरेन्द्र प्रसाद	:	मार्कण्डेय का रचना-संसार	पृ.103
24.	नामवर सिंह	:	'सहज और शुभ' कहानी संग्रह के कवरपेज से	
25.	मधुरेश	:	हिन्दी कहानी का विकास	पृ.173
26.	मार्कण्डेय	:	सहज और शुभ	पृ.41

27.	वहीं	:	वहीं	पृ.37
28.	आनंद प्रकाश	:	अक्तूबर-दिसंबर 1966	पृ.14
29.	सुरेन्द्र प्रसाद	:	मार्कण्डेय का रचना-संसार	पृ.125
30.	मार्कण्डेय	:	बीच के लोग	पृ.61
31.	मधुरेश	:	सिलसिला	पृ.60
32.	मार्कण्डेय	:	बीच के लोग	पृ.74
33.	वही	:	वही	पृ.76
34.	मार्कण्डेय	:	सेमल के फूल	पृ.17
35.	वही	:	वही	पृ.18
36.	वही	:	वही	पृ.79
37.	वही	:	वही	पृ.25-26
38.	वही	:	वही	पृ.26
39.	वही	:	वही	पृ.39
40.	वही	:	वही	पृ.11-12
41.	वही	:	वही	पृ.14
42.	मार्कण्डेय	:	सेमल के फूल	पृ.46
43.	वही	:	वही	पृ.47
44.	वही	:	वही	पृ.45
45.	वही	:	वही	पृ.79-80
46.	नेमिचन्द्र जैन	:	वही (भूमिका)	पृ. 6
47.	रोहिताश्व	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता 18/1/03	
48.	चन्द्रशेखर कर्ण	:	आंचलिक हिन्दी कहानी	पृ.41
49.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.56
50.	वहीं	:	अग्निबीज	पृ.
51.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.205-206
52.	अरुण माहेश्वरी	:	'नयापथ' अक्तूबर-दिसंबर-86	पृ.48
53.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.236
54.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.124
55.	वही	:	वही	पृ.204
56.	अरुण माहेश्वरी	:	नया पथ अक्तूबर-दिसंबर-86	पृ.48
57.	सुरेन्द्र प्रसाद	:	मार्कण्डेय का रचनासंसार	पृ.61
58.	राजकुमारी सैनी	:	मूल्यांकन मार्च 1985	पृ.49
59.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.112

60.	वही	:	वही	पृ.480
61.	संतबख्श सिंह	:	नयी कहानी : कथ्य और शिल्प	पृ.166
62.	धनंजय वर्मा	:	नई कहानी - दशा दिशा सम्भावना	पृ.
63.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.232
64.	राजकुमारी सैन	:	मूल्यांकन मार्च 1985	पृ.49
65.	लक्ष्मण दत्त गौतम	:	आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगतिचेतना	पृ.420
66.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.78
67.	सुरेन्द्र प्रसाद	:	मार्कण्डेय का रचनासंसार	पृ.129
68.	नेमिचन्द्र जैन	:	बदलते परिप्रेक्ष्य	पृ.154
69.	वही	:	वही	पृ.39
70.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.403
71.	वही	:	वही	पृ.280
72.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.403
73.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.407
74.	रेणु शाह	:	फणीश्वरनाथ रेणु का कथा-शिल्प	पृ.143
75.	वही	:	वही	पृ.83
76.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.478
77.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.228
78.	वही	:	वही	पृ.326
79.	वही	:	वही	पृ.428
80.	वही	:	वही	पृ.424
81.	सुरेन्द्र प्रसाद	:	मार्कण्डेय का रचना संसार	पृ.131
82.	रोहिताश्व	:	शोधकत्री की वार्ता 3/2/03	
83.	विवेकी राय	:	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम्यजीवन	पृ.164
84.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.323
85.	शिवप्रसाद सिंह	:	दर्शन साहित्य समाज	पृ.180
86.	मार्कण्डेय	:	हलयोग (वर्तमान साहित्य महाविशेषांक अप्रेल-मई 91)	पृ.271
87.	पुण्डलीक नायक	:	पिशान्तर	पृ.5

88.	पुण्डलीक नायक	:	पिशान्तर	पृ.37
89.	राजेन्द्र पटौरिया	:	आंबेडकर विशेषांक	
90.	रोहिताश्व	:	शोधकर्त्री की निजी वार्तानुसार 26 फरवरी 03	पृ.12
91.	पुण्डलीक नायक	:	पिशांतर	पृ.34
92.	पुण्डलीक नायक	:	मुठय	पृ.8
93.	वही	:	वही	पृ.27
94.	वही	:	वही	पृ.33
95.	वही	:	वही	पृ.51
96.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.17
97.	पुंडलीक नायक	:	मुठय	पृ.67
98.	वही	:	वही	पृ.67
99.	वही	:	वही	पृ.67
100.	मार्क्स एंगेल्स	:	कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र	पृ.38-39
101.	पुण्डलीक नायक	:	मुठय	पृ.80
102.	दामोदर मावजो	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता	पृ.102
103.	पुण्डलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.7
104.	पुण्डलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.19
105.	रोहिताश्व	:	निजी वार्ता	26/02/03
106.	सुषमा मुनींद्र	:	साहित्य अमृत अप्रैल 03	पृ.9
107.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.45
108.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.60
109.	रोहिताश्व	:	नागवेणी के पुष्प कथादेश फरवरी 02	पृ.20
110.	सं कमलेश्वर	:	भारतीय शिखर कथाकोश	पृ.159
111.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.116
112.	पुंडलीक नायक(सं)	:	समकालीन कोंकणी लघुकथा	पृ.76
113.	पुंडलीक नायक	:	बांबर	पृ.7
114.	वही	:	वही	पृ.12
115.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.24
116.	गंगा प्रसाद विमल	:	आधुनिकता: साहित्य के संदर्भ में	पृ.19
117.	वही	:	वही	पृ.20

118.	राजू नायक	:	वेंचीक पुंडलीक	पृ.209
119.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.196
120.	वही	:	वही	पृ.186
121.	वही	:	वही	पृ.166
122.	हरिश्चंद्र नागवेंकर	:	आस्वादन	पृ.38
123.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ. 116
124.	पुंडलीक नायक	:	वसंतोत्वस और दायज	पृ.32
125.	रोहिताश्व	:	निजी वार्ता	18/1/03
126.	शिवकुमार मिश्र	:	यथार्थवाद	पृ. 25
127.	डॉ. नूरजहाँ	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता फरवरी	03
128.	राजकमल चौधरी	:	मछली मरी हुयी	
129.	पुंडलीक नायक	:	वसंतोत्सव आनी दायज	पृ.87
130.	रघुवीर सिन्हा,	:	आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य	
	शकुंतला सिन्हा	:	मूल्यों से प्रमाण	पृ.6
131.	राजू नायक (सं)	:	वेंचीक पुण्डलीक	पृ.214
132.	पुण्डलीक नायक	:	गुणाजी	पृ. 12
133.	पुंडलीक नायक	:	गुणांजी	पृ. 36
134.	किशोर वासवानी	:	पार फिल्म पर टिप्पणी	
			गोवा विश्वविद्यालय	14/03/03
135.	कमलेश्वर(सं)	:	भारतीय शिखर कथा कोश	
			कोंकणी कहानियाँ	पृ.14
136.	पुण्डलीक नायक	:	वसंतोत्सव और दायज	पृ. 83
137.	तानाजी हळर्णकर	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता	9/3/03
138.	प्रभा खेतान	:	ज्यॉ पाल सार्त्र का	
			अस्तित्वादी दर्शन	पृ. 20
139.	बच्चनसिंह देवीप्रसाद अवस्थी	:	नई कहानी और प्रकृति	पृ.221
140.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.59
141.	रोहिताश्व	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता	18/1/03

***

4. मार्कण्डेय का कथा साहित्य : आंचलिक परिवेश एवं लोकजीवन

भारतीय साहित्य के वृहत परिप्रेक्ष्य में, विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखे गये उपन्यास साहित्य का जायजा लिया जाय तो यह विस्मयकारी तथ्य सामने आता है, कि अनेकानेक यशस्वी कथाकारों ने ग्रामीण और आंचलिक जीवन को केन्द्र में रखा है। विश्वनाथ सत्यनारायण ने 'वेथिपडगलु' (सहस्त्रकण अनुवादक पी.वी.नरसिम्हाराव) में आन्ध्रप्रदेश के जनजीवन को रुपायित किया है तो मास्ती व्येंकटेश अय्यंगार ने, चिक्विर राजेन्द्र राव ने कुर्ग-म्हैसूर जिले के जनजीवन को रुपायित किया है। पन्नालाल पटेल गुजरात के जनजीवन को, नागार्जुन-रेणु बिहार के जीवन संघर्ष को, मार्कण्डेय और शिवप्रसाद सिंह उत्तरप्रदेश के जीवन संघर्ष को, आंचलिकता के ताने-बाने पेश करते हैं।

यही कार्य लगभग मराठी में पेंडसे, दया पवार और कोंकणी में पुंडलीक नायक और महाबळेश्वर सैल ने अपने कथासाहित्य में पुन:सृजित किया है। कतिपय समीक्षकों ने मार्कण्डेय को आंचलिक कहानीकार स्वीकार नहीं किया है। शिवकुमार मिश्र का भी कथन रहा है कि "समय विशेष में चले फैशन के अनुसार मार्कण्डेय

और उनकी कहानियों को कुछ लोगों ने आंचलिकता की सीमा में बांधने का प्रयास किया है जो उनकी रचनात्मक बुनावट, उनके वैचारिक ताप और उनकी दूरवर्ती व्यंजना को देखते हुए एकदम बेमतलब है।''(1) ''वे वस्तुतः रेणु की परम्परा के आंचलिक कथाकार न होकर एक अन्य संवेदनात्मक धरातल पर ग्रामीण जनजीवन के कथाकार है।''(2)

वास्तव में मार्कण्डेय के यहाँ अंचल नहीं बल्कि जीता जागता मनुष्य अपनी पूरी अहमियत और उसे नेस्तनाबूद कर देनेवाली ताकतों के आमने सामने खड़ा रहता है। लेकिन कुछ सूत्र इसकी बुनावट में आ गए है जिनको आंचलिकता की कसौटी पर कसने से इन्कार नहीं करना चाहिए और दूसरी तात्विक बात यह है कि शिवकुमार मिश्र ने मार्कण्डेय की कहानियों के आचंलिक न होने की प्रवृत्ति को स्वीकार किया है। 'अग्निबीज' संबंधी विवेचन भी इस पक्ष में नहीं है।

कतिपय अन्य समीक्षकों ने उनको आंचलिक स्वीकार किया है। युवा आलोचक आनंद प्रकाश हिन्दी कहानी की विकास प्रक्रिया में मार्कण्डेय को रेणु के बहुत करीब मानते है। उनका कथन है कि - ''आंचलिकता को यदि एक स्वतंत्रता कारक तत्व न मानें, बल्कि साहित्यिक सांस्कृतिक समझ का एक विशिष्ट प्रतिफलन मानें तो रेणु अकस्मात मार्कण्डेय ..... के काफी करीब आ जाते हैं। सिवा उस भावुकता के जो उनमें इन लेखकों की निस्बत कुछ ज्यादा मात्रा में मौजूद है।''(3)

वेद प्रकाश अमिताभ ने आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण में आंचलिकता को परिभाषित करते हुये, मूल्यों में आये हुए परिवर्तन तथा विभिन्न परिपार्श्व में मूल्यों की स्थिति का मूल्यांकन किया है। उनके अनुसार ''जातिवर्ण से जुड़े पूरे मूल्यों पर जबरदस्त प्रहार अंतर्जातीय विवाहों खासतौर पर प्रतिलोम विवाहों ने किया है। हालाँकि उपन्यासों में अनुलोम विवाह के उदाहरण ही अधिक हैं। समझदार सवर्ण युवक 'अस्पृश्यता' या ऊँचनीच की लक्ष्मण रेखा लाँघते हुए अन्त्यज युवतियों के हाथ थाम लेते हैं। जबकि उनके पूर्वज उनका यौन शोषण करना बहुत साधारण बात समझते थे। उदाहरणतः 'परती परिकथा' में सुवंश और मलारी, 'अग्निबीज' में हरिजन छबिया और हुड़दंगी ब्राह्मण, 'जल टूटता हुआ' में कुंजुतिवारी और बदमी कहारिन,... के विवाह परंपरागत मूल्यों को खुली चुनौती देते हैं।''(4)

वेदप्रकाश अमिताभ ने 'परती परिकथा', 'जल टूटता हुआ', 'आधा गाँव', आदि आंचलिक उपन्यासों की परम्परा में 'अग्निबीज' को भीं आंचलिक उपन्यास स्वीकार किया है। डॉ. उषा डोंगरा ने 'अग्निबीज' को आंचलिक उपन्यास स्वीकार करते हुये लिखा है। ''मार्कण्डेय लिखित 'अग्निबीज' नवीनतम आंचलिक

उपन्यास है।'...... उपन्यास में मुख्यतः एक ही गांव और उसके आंचलिक जीवन यथार्थ को लेखक ने वर्णित किया है।''(5) आगे इस बात को स्वीकार किया है कि- ''अंचल की प्रचलित बोली में नित्य प्रयुक्त होने वाले शब्दों के द्वारा जिस अपनत्व भावना की अभिव्यक्ति उपन्यास की कथावस्तु में हुयी है वह आंचलिकता की सिद्धि के लिये एक महत्वपूर्ण तथा सहयोगी संदर्भ है।''(6)

हाल ही में प्रकाशित सुरेन्द्र प्रसाद की 'मार्कण्डेय का रचना संसार' पुस्तक में स्थानीय रंगत एवं ग्रामीण परिवेश के सजीव चित्रण के फलस्वरूप मार्कण्डेय को आंचलिकता की श्रेणी में स्वीकारा गया है। उनके विचारानुसार- ''वातावरण के साथ-साथ उसके स्थानीय रंगत का भी विशेष महत्व होता है इसे ही हम दूसरे शब्दों में आंचलिकता कह सकते हैं। वस्तुतः देशकाल वातावरण एवं स्थानीय रंगत का जो महत्व उपन्यास रचना के संदर्भ में प्रतिपादित किया जाता है उसका मूल उद्देश्य यही है कि उपन्यास जिस समय और समाज का चित्र दे रहे हों उसे पूरी स्वाभाविकता और सजीवता में प्रस्तुत करें। यद्यपि आंचलिक उपन्यास की विशिष्ट परिभाषा के आधार पर यह उपन्यास आंचलिक नहीं कहा जा सकता तथापि समूचे उपन्यास में ग्रामीण परिवेश इतनी स्वाभाविकता एवं सजीवता से उभरा है कि कुछ लोग इसे आंचलिकता की कोटि में रखने के पक्षधर है।''(7)

सुरेन्द्र प्रसाद ने यह भी माना है कि ''ग्रामीण समाज की प्रस्तुति संबंधी सजीवता एवं जीवंतता के कारण यह उपन्यास आंचलिक होने का भी आभास देता है। यद्यपि, कुछ समीक्षकों ने उपन्यास की सजीवता और जीवंतता को रेखांकित करते हुए इस उपन्यास को आंचलिकता के अंतर्गत भी स्वीकार किया है।(8) वैसे आंचलिक लेखक अपनी रचनाओं में वातावरण का महत्व स्वीकार करता है। यह वातावरण न केवल लेखक को बल्कि पाठकों को भी निरंतर प्रभावित करता रहता है। इसलिए आंचलिक लेखक का यह विश्वास होता है कि वह अपने को प्रभावपूर्ण ढंग से तभी व्यक्त कर सकता है जब उसका वातावरण उसकी जनता और स्थान उसके माध्यम से उसके भीतर से अपने को अभिव्यक्त कर सकें।''(9)

रचना विधान एवं शिल्प के तहत् ''यद्यपि यह उपन्यास आंचलिक नही है किंतु इसके शिल्प पर आंचलिक शिल्प का प्रभाव देखा जा सकता है।''(10)

इस प्रकार 'अग्निबीज' उपन्यास में कथ्य की सजीवता जीवंतता, देशकाल, वातावरण के कुछ अंशों में आंचलिक है, शिल्प पर भी आंचलिकता का प्रभाव है तो क्यों न हम उसे आंचलिक कोटि में स्वीकार करें?

आंचलिकता की परिभाषाओं के अनुसार मार्कण्डेय को आंचलिक उपन्यासकार कहा जा सकता है, हो सकता है ग्रामीण परिवेश पर लिखा गया उनका संपूर्ण कथासाहित्य आंचलिक न हो, लेकिन आंचलिकता के बीज, थोडी

प्रवृत्तियाँ उनके साहित्य में प्रतिफलित हुई है। कतिपय समीक्षकों का कहना है कि स्वयं मार्कण्डेय ने अपने उपन्यास को स्वतंत्रता के बाद '53-54' के आसपास के ग्रामीण संदर्भों में उभरते पात्रों की सामाजिक, राजनैतिक चेतना की विकासयात्रा को रेखांकित करने वाले कथानक का पहला उपन्यास माना है। शिवकुमार मिश्र ने भी 'अलग-अलग वैतरणी' को आंचलिक नहीं माना था लेकिन समीक्षकों द्वारा उसे भी आंचलिक स्वीकार किया गया है। आंचलिकता की परिभाषा के अनुसार- ''किसी अंचल विशेष के निवासियों के जीवन एवं प्रगति को सविस्तार चित्रित करने वाली लेखकों की प्रवृत्ति आंचलिकता कहलाती है।''[11] हिन्दी साहित्यकोश के अनुसार ''आंचलिकता की सिद्धि के लिए स्थानीय दृश्यों, प्रकृति जलवायु, त्यौहार, लोकगीत बातचीत का विशिष्ट ढंग, मुहावरे-लोकोक्तियाँ, भाषा व उच्चारण की विकृतियाँ, लोगों की स्वभावगत व व्यवहारगत विशेषताएँ, उनका अपना रोमांस, नैतिक मान्यताएँ, आदि का समावेश बड़ी सतर्कता और सावधानी से किया जाना अपेक्षित है।''[12] ''आंचलिक की परिभाषा चाहे किसी भी विद्वान ने किसी भी शैली में की है, परंतु सभी बातों का मूल स्वर एक ही है कि आंचलिक उपन्यास नगर से अपरिचित विशिष्ट अंचल के समस्त वैविध्यपूर्ण जीवन का उपन्यास होता है। उसके अंतर्गत इस विशिष्ट अंचल को संस्कृति, लोकगीतों उनकी भाषा, मुहावरे, तथा लहजे, रीति रिवाजों, वेशभूषा, आचार-विचारों, परंपराओं तथा आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जागरण आदि का सजीव चित्रण होता है।''[13]

इन सभी परिभाषाओं को मद्देनजर रखते हुए यह कहना समीचीन है कि 'अग्निबीज' में अंचल विशेष 'रामपुर-सेतपुर' के निवासियों श्यामा, साधीकाका, सागर ज्वालासिंह, सुनीत, मुराद, भागोबहन आदि के जीवन एवं प्रगति को सविस्तार चित्रित किया गया है। उस अंचल की संस्कृति जरई बांधना(37) पतरी उतारना(160), मातृपूजन(166), भाई के हाथों दान करना(182) आदि का अपना अलग वैशिष्ट्य है। लोकगीतों, भोर पिछवरवॉ, लवँगियाक पेडवा(162), आटन छोडलू मै पाटन छोडलूँ(169), गेड़ुआ उठावत भइया हथवा न काँपे(182) आदि से उस प्रदेश की स्थायी पहचान व्यक्त हुई है।[14] भाषा, रीतिरिवाज, वेशभूषा आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तन आदि का सजीव चित्रण 'अग्निबीज' उपन्यास में उपलब्ध होता है।

आंचलिकता को हम सार्वजनीन तथा बहुआयामी कह सकते हैं। आंचलिक रचना भले ही सीमित क्षेत्र से सम्बद्ध हो, पर प्रभाव की दृष्टि से वह सार्वजनीक हो सकती है, बशर्ते उसका सृष्टा वैसी प्राणवत्ता व अतल स्पर्शी सूक्ष्म-दृष्टि रखता हो, तथा उसके विचारों में गरिमा और कला में सौष्ठव हो।[15] मार्कण्डेय के रचनासंसार में यह विश्वजनीन प्रवृत्ति नजर आती है। उनका साहित्य शायद इसीलिये

शिवकुमार मिश्र के अनुसार ''विश्वबोध, उनकी यथार्थ चेतना, उनके प्रशस्त मानवीय सरोकार, उनका प्रतिनिधिक यथार्थ चित्रण और उनके अनुभवों का व्यापक संसार उन्हें अंचल जैसी किसी सीमित जमीन का वारिस बनने ही नहीं दे सकता, वह उसका अतिक्रमण करता है।''(16)

4.1 मार्कण्डेय का आंचलिक कथासाहित्य : जीवन परिदृश्य

साहित्य की सोद्देश्यता उसके समाज सापेक्ष होने में है। प्रेमचन्द्र ने साहित्य को समाज से जोड़ते हुये यथार्थवादी परम्परा का सूत्रपात किया। इसी कड़ी में मार्कण्डेय उत्तरप्रदेश के ग्रामीण जीवन के यथार्थ को उसकी विसंगतियों को अत्यंत विषदता से अंकित करते हैं। वैसे देखा जाये तो साहित्य में सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने का कार्य प्रगतिशील लेखकों ने किया है। व्यक्तिवादी एवं मनोविश्लेषणवादी प्रवृत्तियों से बचकर प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपनाकर लेखक साहित्य को समाजोन्मुख बनाता है। लेखक का व्यक्तित्व साहित्य और समाज में गहरा सम्बन्ध स्थापित करता है। डॉ.नामवर सिंह के अनुसार ''लेखक और साहित्य परस्पर एक दूसरे को इस तरह प्रभावित करते है कि इनमें से प्रत्येक क्रमश: परिवर्तित और विकसित होता रहता है। समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज।''(17)

मार्कण्डेय की जनसमाज से गहरी संपृक्ति रही है। वे सामाजिक दायित्वों से सर्वथा मुक्त नहीं हैं। प्रगतिशील दृष्टि होने के कारण सामाजिक पक्षधरता उनके कथासाहित्य की विशेषता है।

परिवेश विशिष्ट अंचल की स्थानगत एवं कालगत विशेषताओं को समेटता है और आंचलिकता में यह सबसे महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। डॉ. ज्ञानचंद्र गुप्त के कथानुसार ''अन्य उपन्यासों में मात्र भौगोलिक तथा सामाजिक वातावरण के अभौतिक रुप को ही प्रतिपादित किया जाता है, जबकि इन उपन्यासों में परिवेश के समस्त भौतिक स्वरुप को ही अभिव्यक्ति दी जाती है। प्राकृतिक एवं भौगोलिक स्थितियों के यथार्थ प्रत्यांकन से अंचल विशेष की समग्रताओं, जटिलताओं एवं विविधताओं के स्वर दिए जाते है। चित्रात्मकता इनकी विशिष्टता है जिससे जिए हुए जीवन की गहरी अनुभवशीलता का एहसास होता है।''(18)

परिवेश दो प्रकार के होते है मानवीय एवं प्राकृतिक भौगोलिक उपन्यासों के समान मानवीय परिवेश महत्व प्राप्त करता है और परिवेश की सजीवता कथानक को पुष्ट करती है, पात्रों को मुखर बनाती है। चरित्र की मन:स्थितियाँ उत्पन्न

होती रहती है। मनुष्य के रीति-रिवाज, खान-पान, आचार-विचार, इसी परिवेश से जुड़े होते है और "प्राकृतिक परिवेश ही सामाजिक परिवेश को विशिष्ट बनाता है और दोनों के सहयोग से समग्र अंचल मुखर हो उठता है।"[19]

4.11 सामाजिक जीवन परिदृश्य

मानव जीवन के यथार्थ जीवन दृश्य का चित्रण आंचलिक कथा साहित्य में प्राप्त होता है मानव हमेशा परिवेश से प्रभावित होता है, इसलिए उसका सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन परिदृश्य से परिचालित होता हैं। अतः हम मार्कण्डेय के कथासाहित्य में चित्रित प्राकृतिक परिवेश की चर्चा करने का प्रयत्न करेंगे।

भारत बहुभाषी देश रहा है। वह प्राकृतिक संसाधनों में विविधतापूर्ण तथा प्राकृतिक बहुलता से समृद्ध है। समुद्री तट, पर्वतीय प्रदेश तथा समतल भूमियों की विविधता के अनुरूप यह प्राकृतिक सौंदर्य में भी वैविध्य है। समुद्री तट पर बसे लोकजीवन का सम्बन्ध पानी तथा उसके बहाव उससे जुड़े मत्स्य व्यवसाय से है। पर्वतीय प्रदेशों का जीवनमान ही अलग है पानी की बहुलता न होने से अन्य व्यवसाय और साधन भी खेती प्रधान नहीं है जो समतल प्रदेशों में होते हैं। इस प्रकार लोकजीवन से जुड़े हुये त्यौहार-उत्सव में भी अलगाव पाया जाता है।

नारियल पूर्णिमा के दिन समुद्र की पूजा मछुआरा वर्ग तथा उनसे सम्बन्धित अन्य व्यवसायिकों का अविभाज्य घटक है। बिना समुद्र की पूजा किये वे बरसात में विश्राम के बाद अपनी नावें मछलियाँ पकड़ने नहीं छोडते है। खेती से जुड़े अलग-अलग त्यौहार किसानों के जीवन का अविभाज्य घटक है। बैलों की पूजा करना-खेतिहर कभी नहीं भूलता।

उपर्युक्त आधार पर हम यह कह सकते है कि भौगोलिक विशेषतायें मानव-जीवन को अनेक प्रकारों से प्रभावित करती है। आंचलिक उपन्यासों में प्राकृतिक एवं सामाजिक जीवन का अटूट सम्बन्ध होता है। आदर्श सक्सेना के अनुसार "आंचलिक उपन्यासों में यदि एक ओर प्राकृतिक विशेषताओं का अंकन हो जाता है तो दूसरी ओर सामाजिक वातावरण का भी। संक्षेप में हम कह सकते है कि आंचलिक उपन्यासों में भौगोलिक परिवेश एवं सामाजिक जीवन का चित्रण, प्राकृतिक एवं सामाजिक विशिष्टताओं के परिणाम-स्वरुप निर्मित होनेवाले वातावरण से पृथक एवं स्वतंत्र रुप में भी होता है।[20]

समाजशास्त्रीय अध्ययन के अनुसार भौगोलिक परिवेश का समाज निर्माण एवं साहित्य निर्माण पर घनिष्ठ प्रभाव होता है।[21] उससे व्यक्ति के खानपान, रहन-सहन, वेशभूषा, नृत्य-गान आदि पर भी प्रभाव पड़ता है। इसी से एक अंचल

की जीवनचर्या दूसरे अंचल से भिन्न भी होती है। "अंचल को अंचल बनाने में सबसे महत्वपूर्ण हाथ भौगोलिक परिवेश का होता है क्योंकि वही उसे विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करता है तथा सामान्य सामाजिक जीवन से भिन्न करता है।"[22] मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में भौगोलिक परिवेश की विशिष्टताओं से भिन्नता आयी है। जो उनके कथ्य एवं शिल्पविवेचन में दृष्टिगोचर होगी।

मार्कण्डेय ने अग्निबीज में रामपुर, सेतपुर और दोनों के बीच की बजमा पोखरी का वर्णन किया है। उससे सम्बन्धित मानिकपुर गाँव की चर्चा भी बीच बीच में आती है। यथा "बरसात शुरु होती और लड़के देवी-देवता मनाकर बजमा माई को बुलाने लगते। पोखरी धीरे-धीरे भरती। फिर दूसरे तालों का पानी बूदकर उसमें मिल जाता और तेजी से चढ़ता हुआ पानी रामपुर और सेतपुर के बीच इस पतले, निचले भाग में भर जाता। फिरंगियों ने कंपनी के जमाने में नील की खेती करके यहाँ रंग बनाना शुरु किया था। उन्हें यहाँ के लोगों ने पहले निलहे साहबों के रुप में ही जाना था। रामपुर को ही केन्द्र बनाकर आस-पास का नील सडाया जाता था। गाँव के दक्षिण में अब भी विशाल कुंड टूटे पड़े हैं। उन्हीं से लगे बड़े तालाब में अब भी कहीं कहीं सीढ़ियाँ तथा प्लास्टर की दीवारें शेष रह गयी हैं। बजमा उसी तालाब का बिगड़ा हुआ वृहद् रुपाकार है।"[23]

अन्य आंचलिक उपन्यासों की तुलना में इस उपन्यास में भौगोलिक परिवेश को महत्व नहीं दिया गया है। फिर भी 'बनारस से पूरब और उत्तर में पटना के पास[24] दो मील का ऊबड़-खाबड़ रास्ता पार कर भीड़ का सिवाले पाट पर पहुँचना[25] आदि से उत्तर-प्रदेश के बनारस की निकटवर्ती गाँवों की सूचना इससे मिल जाती है। फिर भी यदि बिना भौगोलिक योजना किये वातावरण अथवा विशिष्ट जीवन प्रणाली की अवधारणा की जा सके तो भौगोलिक परिवेश का कार्य पूरा हो जाता है।[26] भौगोलिक वातावरण का निर्माण प्राकृतिक परिवेश से भी होता है। आंचलिक उपन्यासों में इस प्रकार प्राकृतिक स्थितियों के यथार्थ रेखांकन से वहाँ के विशिष्ट भूप्रदेश की समग्रता को स्पष्ट किया जाता है। जिसमें आंचलिकता के निर्माण में सहायता मिलती है।

मार्कण्डेय के प्राकृतिक चित्रण में चित्रात्मकता की विशिष्टता है। जिससे जीवन की गहरी अनुभवशीलता का एहसास भी होता है। यथा मुराद के कंधे पर श्यामा का पूरा शरीर झूलता है, ठंड जैसे धीरे-धीरे रेंगती, निगलती हुई ऊपर चढ़ रही है[27] और प्रकृति के इस दृश्य से तीनों की मन:स्थितियों एवं मुराद-श्यामा की गहरी अनुभूति को मार्कण्डेय ने व्यक्त किया है- "सावन के महीने के निर्मल आसमान में जिधर देखो तारे ही तारे छाये थे और चतुर्थी का चाँद पेड़ों की झुरमुट से खिसककर बाहर आ रहा था बजमा का रुपहला आँचल जैसे

रत्नों से भर गया हो। गाँव का उफनता हुआ गंदला धुँआँ जाने कहाँ उड़ गया था। वे तीनों किन्हीं भटके हुए जल-पक्षियों की तरह, स्वच्छ जल में चित्र-लिखित से खड़े एक-दूसरे को देख रहे थे।''(28)

रामपुर, सेतपुर की सुहागिनों द्वारा बजमा के फफाये हुये पानी को कम कराने हेतु आरती उतारी जाती है जिसका वर्णन मार्कण्डेय ने इस प्रकार किया है। ''बजमा आँचल पसार रही है- पानी के मन्दिर की सीढ़ी छूते ही औरतें कहतीं, बजमा सिंधूर-टिकुली माँगती है। चलो, बहिनी, सुहागिन का माथा भर आएँ। घर-घर से कतार बनाकर, गाती-बजाती वे निकलती

बजमा हथवा कगनवां मैं लायी हो ना।
बजमा मंगिया सेंधुरवा मैं लाई हो ना।।
बजमा अथवा टिकुलिया मैं लाई हो ना।(29)

हरे भरे धान के ऊँचे, लहराते पौधों के बीच, पतली पेड़ों पर चलते, उनकी कमर कई-कई बार बल खा जाती। हाथ की दीपों भरी थाली गिरने-गिरने को हो जाती। बजमा नई, सुहागिन बहुओं की ही आरती स्वीकार करती है और गाँव की कुँआरी कन्याओं का पुरइन के पत्तों पर रखा पाँव पखार कर वापस उतर जाती है-

बजमा गंउआँ क कुंअरी चिरइया होना,
बजमा रचि-रचि पइयाँ मेंहदिया हो ना
बजमा भुइयाँ थरे पुरइनियाँ हो ना
बजमा मांगेनी तोहरी असिमियाँ हो ना(30)

सारांशतः 'बजमा' तालाब का इस गाँव में विशिष्ट महत्व है। वह लडकियों और सुहागिनों के जीवन का वह अविभाज्य घटक है। उनके रीति-रिवाजों, संस्कारों में बजमा की मिट्टी कभी जरई के लिए निकाली जाती है तो कभी शादी के लिये। इतना ही नहीं मकान बनाने की मिट्टी निकालते-निकालते अब बजमा तालाब बेडौल बन गया है। इस प्रकार 'अग्निबीज' उपन्यास में प्रकृति चित्रण, परिवेश और रीति रिवाजों आदि का बड़ी कुशलता से चित्रण किया गया है। सामाजिक व्यवस्था, वर्गसंघर्ष, नारी विषयक विविध समस्याएँ, वैवाहिक प्रथाएँ, विभिन्न आंचलिक क्षेत्रों के अनुरुप भिन्न-भिन्न होती है।

सामाजिक व्यवस्था : शिक्षा का प्रचार, शहरीकरण, राजनीतिक हस्तक्षेप, समान अधिकार की मांग आदि अनेक कारणों से सामाजिक व्यवस्था में बदलाव आ रहा है। कहीं कहीं आधुनिकता ने रुढ़ियों को तोड़ने की महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है तो कहीं रुढ़ियों ने निम्नवर्ग को ध्वस्त कर रखा है। रुढ़ियों से जर्जर परिवार, रीतिरिवाज जाति संस्कार आदि समाज को नरकमय बना रहे है। सामाजिक

व्यवस्था में वैवाहिक प्रथाओं तथा उसकी मानमर्यादाओं का महत्व है क्योंकि विवाह-संस्कार द्वारा ही अंचल में स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध एवं पारिवारिक व्यवस्था का संयोजन होता है। मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' उपन्यास में श्यामा के विवाह अवसर पर समाज सम्बन्धी रुढ़ियों एवं प्रथाओं को व्यक्त किया है। हिन्दू जाति में कन्या पक्ष की दयनीय स्थिति होती है, वधुपक्ष की ओर से मूरत महाराज द्वारा विवाह तय करने के बाद दहेज एवं मानपान, स्वागत, आवभगत, बारात, शादी, बिदाई आदि का मार्कण्डेय ने रुढ़ियों के अनुसार चित्रण किया है। वैसे ही शादी के पूर्व निभाई जानेवाली रस्में, तिलक, हल्दी लगाना, मातृपूजन आदि विधियों का भी लेखक ने सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किया है।

पारिवारिक स्तर पर संयुक्त परिवारों का विघटन एवं उसके कारण पारिवारिक व्यवस्था को हिला देनेवाले परिवर्तन को वर्तमान समाज में देखा जा सकता है। लेकिन मार्कण्डेय के आंचलिक कथासाहित्य में बड़ो के प्रति अवज्ञा या अवहेलना का दृष्टिकोण नहीं है। मूल्यों में हेर-फेर होने के बावजूद आंचलिक कथासाहित्य में पुरानी मान-मर्यादाओं को खारिज नहीं किया गया है। प्रसंगवश प्रगतिशील श्यामा भी कुल की मान-मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुये बिना देखे लड़के से शादी के लिए तैयार होती है। विवेच्य उपन्यास में विवाहपूर्व निर्द्वन्द्व एवं स्वच्छन्द देय का प्रसार भी छबिया एवं हुडदंगी के माध्यम से दर्शाया है।

4.12 सामाजिक रीतिरिवाज एवं प्रथाएँ

भारतीय सामाजिक जीवन का प्रमुख आधारस्तंभ वर्णव्यवस्था का विकृत रुप जातिभेद-व्यवस्था है जिसके अंतर्गत दलित वर्ग, निम्न जातियाँ सदैव अमानवीय शोषण का शिकार रही हैं। ग्रामीण अंचलों में ऊँच-नीच, छुआ-छूत का भेद-भाव करने वाली कुप्रथाएँ सदैव विद्यमान रही है। आंचलिक एवं ग्रामीणजन का उन पर विश्वास होने के कारण स्वार्थी लोग उससे अनुचित लाभ भी उठाते रहे हैं। 'अग्निबीज' में ज्वालासिंह द्वारा हरिजन के मतों का लाभ उठाना तथा उनके कहने पर मुसई को पुलिस द्वारा पकड़वाना, ज्वालासिंह द्वारा हिरनी के हत्यारों को छुड़ाना आदि से निम्नजातियों के प्रति शोषणपरक वर्णन साफ झलकता है, जमींदारों द्वारा किसानों पर किये अत्याचारों का जिक्र 'मधुपुर के सिवान का कोना' कहानी में व्यक्त किया है। पिता के कर्ज को चुकाने के लिए मुन्नन को बखरी को सौंप दिया है और एक आँख फूटने पर भी जुल्म ढाये जा रहे है तो दूसरी ओर 'अग्निबीज' उपन्यास में छुआछूत की भावना को दूर करने के लिए प्रयत्न किये गये है।

उच्चवर्गीय साधोकाका के घर पर मुसई महतो, बाकर, सागर मुराद

आदि का आना जाना, श्यामा, सुनीत, मुस्लिम मुराद, हरिजन सागर का एक ही पाठशाला में साथ-साथ पढ़ना समाज के कई लोगों को अखरता है। 'छोटी जात की सोहबत ठीक नहीं' का इशारा पाकर भी सुनीत-मुराद एवं सागर से सम्बन्ध बनाये रखता है। सुनीत द्वारा सागर को अपने थर्मस से दूध पिलाना, निम्नवर्गीय छबिया और उच्चवर्गीय हुड़दंगी का पलायन एवं शादी, अस्पृश्यता निवारण कानून का बनना आदि से जातिभेद संबंधी परम्परागत व्यवस्था में थोड़ा बहुत बदलाव दिखाया गया है। लेकिन दुलरा आजी मानसम्मान एवं मर्यादा के निर्वाह को श्रेष्ठ समझती है। वह कहती है- "कहो, बचवा तू केकर बेटवानाती हो? हरिभजन सिंह को इस लोक में कौन नहीं जानता था। सूरज के समान मर्जाद थी उनकी। बड़े-बड़े साहब-सूबा आगे-पीछे भेड़ी की तरह घूमते हैं। एक तुम हो कि चमार-सियार के फेर में पड़कर अपनी जसोदा जैसी माँ को कल्पाय रहे हो। चरखावालों का कोई बिस्सास है। जूठ-मीठ, छूआ-छिरका का कोई भेद है उनमें। चमार मुसुरमान सब एक ही हैं उनके लिए।........ सगरा का संग छोड़ दो। भले आदमी कै लड़िका का लच्छन नहीं है यह सब।[31]

दुलरा आजी परंपरागत संस्कारों से बंधी हुई है। उसकी दृष्टि में सामाजिक परिवर्तन नैतिकता रीतिरिवाज, मानसम्मान को मिटाकर रखेगा। इसलिए सागर, मुराड और सुनीत से दूर रहे तो उसकी भलाई है। इतना ही नहीं "देश के गाँवि के निम्न वर्ग-गरीब शोषित और अधिकार वंचित लोगों के अंदर एक क्रांतिकारी परिवर्तन मानसिक धरातल पर हुआ है।"[32] जो नयी चेतना पैदा हुई है उसका साफ चित्रण अग्निबीज में हुआ है।

इस उपन्यास में युवा चरित्रों द्वारा छुआछूत के भेद को दूर करने के कई प्रयास दिखाये गये हैं लेकिन रुढ़िवादी परम्परा वादी बूढ़ों द्वारा उसमें भंडासराध (भर्त्सना वाला कार्य) ही नजर आता है, "ई मुसईवाला सब भंडासराध किये रहता है। सब कुछ छूता छिरकता है। बस, अब थोड़े दिन की मेहमान है समवां। जहाँ इसे बिदा किया तब देखती हूँ कैसे चौखट लाँधते हो।"[33]

वर्गसंघर्ष की समस्या आंचलिक जीवन की प्रमुख समस्या है। स्वाधीनता के बाद भी वर्णव्यवस्था अपने पुराने रुप में गाँवो-अंचलों में अभी तक जड़ जमाये हुए है। समाज में शोषण का शिकार होनेवाले लोग शोषक के चंगुल से अपने आपको मुक्त कराने में असमर्थ है। फिर भी मार्कण्डेय ने सवर्ण-हरिजन सागर को शिक्षक नियुक्त करना, बजमा नदी के पानी पर सबका समान अधिकार आदि से वर्ण-व्यवस्था और वर्ग चेतना के प्रस्फुटन की अवधारणा पर बल दिया है। मार्कण्डेय ने 'गनेसी' कहानी में सभी वर्गों को जंगली सूअर का मांस खिलाना, 'धून' कहानी में सेठानी की लडकी को चमारिन द्वारा लिट्टी का टुकडा खिलाना

आदि से वस्तुस्थिति का अतिक्रमण करने और भावी यथार्थ को रेखांकित करने की कोशिश की है।

4.13 नारी समस्या

भारतीय गाँवों के जन-जीवन में नारी, माता, पत्नी, बहन, पुत्री आदि प्रमुख भूमिकाओं का निर्वाह करती है। सामान्यतः पुत्र की अपेक्षा पुत्री के जन्म से परिवार में कम प्रसन्नता का अनुभव किया जाता है। 'अग्निबीज' उपन्यास में श्यामा का प्रभावशाली भाषण उसके विचारों का प्रतिनिधित्व करता है उसका कथन है- ''कन्या के घर में जनमते ही कुल में खोट आती है। खुशी की जगह रंज मनाया जाता है। मैंने खुद देखा है कि गाती ब्राह्मणियाँ सिर झुका कर उठ जाती हैं। बूढ़ी दादियों के मुँह से कवर नीचे गिर जाता है। स्त्री हीन जात है, उसे परदे में रखना ही ठीक है। पढ कर करेगी क्या? घरों में दो तरह का खाना होता है। रूखा-सूखा खा कर ही पत्नी पतिव्रता बनी रह सकती है। जीभ चटोरी तो कुलकलंकिनी होती है। होश सँभालते ही वह घर-आँगन ताकने लगती है। चूल्हे-चौके से आगे दुनिया में उसके लिए कहीं कुछ नहीं। लडकी को दूध कौन देता है? दूध से वह जल्दी बढ़ कर मोटी हो जायेगी। रेड की जात है लडकी।[34] परंतु आज इसमें परिवर्तन हो रहा है। नारी शिक्षा के प्रसार ने नारी चेतना को बल प्रदान किया है।

दंगल झाल्टे ने आंचलिक उपन्यास में परिवेश घटना, परम्परा आदि को कम महत्वपूर्ण नहीं माना है। उनका कथन है कि ''आंचलिक उपन्यास न तो घटना-प्रधान होता है और न मनोवैज्ञानिक। इसकी दृष्टि बहुआयामी होती है और उपन्यासकार उसके परिवेश, समय तथा उद्देश्य से जुड़ा होता है ताकि उस विशिष्ट अंचल की सभी खूबियां और विशेषताएँ प्रामाणिकता के साथ उद्घाटित की जा सकें।''[35]

नारी जीवन संबंधी विषमता एवं समस्या पर 'अग्निबीज' उपन्यास के श्यामा कहती है- ''हमारे सामने सीता, सावित्री के आदर्शों के होते हुये भी आज वह राम-कृष्ण, अर्जुन, भीम का जमाना नहीं रहा है। यह घुरहू-कतवारु का समाज है। ..... मैं यह सब कहीं पढ़ कर नहीं, अपने चारों ओर की देखी कह रही हूँ किताब में द्रौपदी की कहानी है, आँखों के सामने हिरनी की हत्या है। मुझे लगता है हम द्रौपदी-सीता नहीं बन सकतीं। आप सह नहीं सकेंगे सीता को। आप चाहते भी नहीं कि कोई वैसा बने, जैसे समाज का आदर्श है। आप चाहते हैं, हम उसे सोचकर, अपने को अयोग्य समझ उदासीन हो जाएँ लाचार हो कर तिनके की तरह धारा में अज्ञात की ओर बह जाएँ।[36]

नारी के प्रति संवेदनायें व्यक्त करते हुए 'श्यामा' वर्तमान युगीन परिस्थिति, भयावह सत्य से सामना करना चाहती है। समाज में नारी की शोभनीय और गरिमा वाली स्थिति नहीं रहीं है। आज नारी भले ही अधिकारों की माँग करे, पर वस्तुतः वह समाज की वेदी पर परम्परा व मर्यादा के नामपर बली चढ़ायी जाती है।

नारी की पढ़ने लिखनें के बाद भी कुल की मर्यादाओं को निभाते हुये शादी होती है चाहे वह कितनी भी प्रगतिशील क्यों न हो वह विरोध नहीं कर पाती। श्यामा की शादी के वर्णन माध्यम से तो मार्कण्डेय ने यही चित्रित किया है।

नारी के विद्रोह की स्थिति तब तक नही आयेगी जब तक नारी स्वयं न कमाये। मुराद के माध्यम से मार्कण्डेय ने यही सुझाया है। "जिस परिवार में वह पैदा हुई है उसकी मर्यादा का सिकंजा उस जैसी हर लड़की के गले में फँसा है। जब तक उसे ढोला नहीं किया जाता, श्यामा जैसी लड़कियों का रास्ता सदा बन्द रहेगा। लड़कियाँ जब तक अपने पैर पर खड़ी नहीं होती वे समाज के किसी निर्णय का विरोध कैसे कर सकती है। श्यामा जैसी लड़कियों के लिए विरोध का मतलब है आत्महत्या।"(37)

मृणाल पाण्डे ने भी माना है कि जब तक लड़कियों के पास दूसरा विकल्प नहीं है तबतक वह आर्थिक शोषण का विरोध नहीं कर सकती।(38) छबिया निम्नजाति की होकर भी दूसरा विकल्प उसने तैयार किया था, तब वह हुडदंगी के साथ भाग गयी। मतलब निम्नवर्ग में चेतना का प्रस्फुटन उच्च वर्ग की अपेक्षा जल्दी आ पाता है। क्योंकि वे कमाने का जरिया जानती है। बचपन से मेहनत मजदूरी करना उनका धर्म बन गया है इसलिए आगे भी वह काम करना उसके लिए तकलीफ देह नहीं होता।

पतिनिष्ठा, यौनशुचिता आदि को आंचलिक उपन्यास में परंपरागत रुप में स्वीकार किया गया है। नारी उसका स्वेच्छा से उल्लंघन नहीं करती। कहीं भी यौन उच्छृंखलता या व्याभिचार को गौरवान्वित नहीं किया गया है।

4.14 वैवाहिक प्रथाएँ

विवाहोपरांत नारी के सामाजिक स्तर में बदलाव आता है। नारी समाज में अनेक रुपों में परिचित होती है। विवाह, परिवार की मूलभुत इकाई है, समाज में विवाह से नारी-पुरुष के सम्बन्धों को मान्यता मिलती है। भारतीय समाज में शादी को सामाजिक एवं धार्मिक संस्कार माना जाता है। उसके बिना नारी पूर्ण नहीं मानी जाती।

मार्कण्डेय ने अग्निबीज में श्यामा का विवाह पुण्य कार्य माना है। ज्ञानचन्द्र

गुप्त के अनुसार ''विवाह मानवीय समाज की एक संश्लिष्ट सांस्कृतिक घटना है जिसके फलस्वरुप युवक-युवती पति-पत्नी में परिणत होकर यौन-सम्बन्धों का सामाजिक निर्वाह करते हुए परिवार की स्थापना करते है।''(39)

परम्परानुसार श्यामा का विवाह लगनपत्री देखकर तय किया जाता है विवाह के विषय में ग्रामीण युवतियाँ लगभग माता-पिता के निर्णयों से बँधी होती है। प्रगतिशील श्यामा बिन देखे वर से विवाह करने के लिए तैयार है क्योंकि समाज में जिस प्रथा का प्रचलन है उसका निर्वाह करना उसका धर्म है। उन रस्मों, को बिना विरोध किए निभाती है। प्रसंगवश पति-पत्नी के संबंध से जुड़े पातिव्रत, सतीत्व आदि को जालाबाबू की पत्नी निभाती है।

अन्तर्जातीय विवाह का उदाहरण ब्राह्मण हुडदंगी एवं हरिजन छबिया के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जीवन मूल्यों में आये बदलाव के परिणाम स्वरुप ही दोनों पलायन करते है और उसके बाद विवाह बंधन में बँध जाते है।

आज शहरी सभ्यता एवं संस्कृति, शैक्षणिक चेतना ने विवाह की पारंपारिक धारणाओं में परिवर्तन लाया है। लगनपत्री की जगह वैज्ञानिक जाँचपडताल, युवक-युवतियों का आपस में मिलना-जुलना, दहेज प्रथा का विरोध, कोर्ट मॅरेज आदि परिवर्तन समाज में विवाह सम्बन्धी मान्यताओं को ठुकरा रहे हैं। संपूर्ण उपन्यास में लेखक ने श्यामा को निर्धूम अग्नि के तरह तेजस्वी विचारों से प्रेरित, चित्रित किया है और अंतिम मोड पर सब कुछ स्वाहा कर विवाह की वेदी पर बलिदान दिया है। इसके पीछे क्या मार्कण्डेय एक युवती का विवाह में परिणत जीवन ही सर्वश्रेष्ठ समझते है? या मर्यादाओं का शिकंजा इतना कठोर है कि नारी स्वतंत्रता की अभिलाषा नहीं कर सकती। मुराद के माध्यम से मार्कण्डेय शायद इसी विचार को व्यक्त करना चाहते हैं- ''क्या श्यामा हम लोगों के लिए सारी जिन्दगी इसी गाँव में बिन ब्याही बैठी रहेगी? रास्ता भी क्या था, उसके आगे? वह छबिया की तरह हो नहीं सकती। श्यामा जैसी लड़कियों के लिए विरोध का मतलब है आत्महत्या।'' (40)

मार्कण्डेय ने अपनी समाजवादी आस्था और प्रगतिशील दृष्टि के अनुरुप श्यामा का चित्रण किया है पर वह चरित्र अपने ग्रामीण परिवेश की सीमा में ही मुक्तिकामी चरित्र बन पाया है। पुष्पा मैत्रेयी के 'विजन' या 'इदन्नमम' के नारी पात्रों की तरह बहुत मुखर पात्र मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' उपन्यास में श्यामा(पात्रा) नही है। श्यामा परिवर्तन की आंकाक्षा रखती है।(41)

मार्कण्डेय 'अग्निबीज' उपन्यास के कथ्य को बहुत ही सधे हुए शिल्प-विवेचन और भाषा-भंगिमा में प्रस्तुत करते हैं।

4.15 राजनीतिक विचारधारा

मार्कण्डेय मूलतः प्रगतिशील विचारक है। उनकी दृष्टि में पूँजीवादी व्यवस्था श्रमजीवी वर्ग के शोषण का मूल कारण है। उन्होंने अपने कथासाहित्य में विभिन्न राजनीतिक दलों तथा उनकी नीतियों पर कटु प्रतिक्रियायें व्यक्त की है। राजनीति दोगली है, हाथी की तरह उसके खाने और दिखाने के दाँत अलग है उसी प्रकार आज की राजनीति में अलग-अलग हथकंडे अपनाये जाते है। मुँह से हमेशा समाजवाद और हरिजन उद्धार की बात करने की आदत डालने को कहा गया है। लेकिन ऐसा नहीं कि राजनीति में सिर्फ हरिजन रहे और राजनीतिज्ञों को (ब्राह्मण) अपना बिस्तर गोल करना पड़े।[42] ओट पाने के लिए वे लोग तरह-तरह के नुस्खे अपनाते है। एक पर्चे में काँग्रेस ने पाँच सालों में किया कार्य प्रस्तुत किया है... पंडित नेहरु की मुस्कराती बटन में लाल गुलाब के फूल वाली फोटो ऊपर ही छपी थी और नीचे मोटे-मोटे अक्षरों में एक के बाद एक सुर्खियाँ थी।जमींदारी उन्मूलन, कृषि-सुधार और भूमि-सुधार द्वारा जोतदारों को मालिकाना, जनता के हाथ में बड़े-बड़े उद्योग, राज्यों का पुनर्गठन, समाजवादी देशों से मैत्री, गट निरपेक्ष आन्दोलन में भारत का नेतृत्व।[43] वैसे भी राजनीतिज्ञ समय समय पर कुछ आकर्षक नारों से बहकाकर फुसलाकर उनके राजनीतिक अधिकारों को ठग लेते है।

अज्ञान एवं अशिक्षा के कारण चुनाव प्रणाली विभिन्न विसंगतियों का समुच्चय मात्र बनकर नही है क्योंकि "स्वाधीनता के बाद भारत के ग्राम जीवन कोउन्नत करने के जो प्रयत्न हुए उन्होंने उल्टे उसको तोड़ दिया। सबसे अधिक तोड़ा चुनाव ने, चाहे वह लोक-सभा, विधान सभा का चुनाव हो या ग्रामपंचायत का चुनाव हो जहाँ-जहाँ प्रजातांत्रिक पद्धति का प्रवेश हुआ, वहाँ-वहाँ उसने विष बीज बोया। फलस्वरुप राजनीति के दाँव पेंच ने गाँव में घुसकर उसे विषाक्त बना दिया।"[44] 'अग्निबीज' उपन्यास में भी स्वातंत्र्योत्तर समाज की विसंगतियों से उत्पन्न तिक्तता का स्वर विद्यमान है। उसे अँचल में व्यवहार अकेले ज्वालासिंह द्वारा परिचालित होता है। आज भी गाँवों में आज भी ज्वाला सिंह जैसे अवसरवादी, धूर्त और कमीने लोगों की भी एक अच्छी खासी संख्या है जो साधो काका जैसे लोगों के त्याग और तपस्या का फल आजाद भारत में भोग रही हैं, अपनी जय-जयकार करा रही है।"[45]

ज्वालासिंह की मनमानी को भाईजी ने इस प्रकार व्यक्त किया है कि "कितना समय बीत गया तब से, देश आजाद हो गया, लेकिन ज्वाला ने जो चाहा वही कर लिया, सुराजियों को पिटवाया। उनकी सभा तुड़वायी, आश्रम का विरोध किया, हरिजनों को डाके में फँसाया और स्वतंत्र भारत के पहले ही चुनाव

में जनता का चुना हुआ प्रतिनिधि बनकर विधायक भी बन गया है। जिस जनता के मुँह पर वह थूँकता था, उसी से उसने अपनी जय बुलवायी और यह सब हमें बाह्य होकर देखना और सहना पड़ा।......जैसे यह एक लाचारी है। यह खद्दर, चरखा, प्रार्थना, क्या यह सब मिलकर इस समाज को बदल सकते है।(46)

समाज के इस विषाक्त वातावरण को राजनीतिक अपने हथकंडो से उसे और विषभरा बना देते है। चुनाव जीतने के लिए अनेक अनुचित मार्गों का अवलंब किया जाता है- सोशलिस्ट धनिकलाल की सभा को तहस नहस करना, तथा समाजवादियों और साम्यवादियों की सभा में कॉंग्रेसी नेता ज्वालाबाबू के कहने पर मारपीट किया जाना। इससे उन दोनों पक्षों को मुँह की खानी पड़ी- ''समाजवादियों और साम्यवादियों में चुनाव-सभा के दौरान पहले बहस, फिर मारपीट हुई, जिसमें चार समाजवादी कार्यकर्ता घायल हो गये। समाजवादी नेता अगिया बैताल के पाँव और हाथ में गम्भीर चोट लगी है। साम्यवादी नेता हरगोन सिंह और उनके हमलावर साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया है।''(47)

ज्वालाबाबू ने इतना सबकुछ किया; लेकिन कहीं नामोनिशान नहीं छोड़ा है। राजनीति पर इन नेतावर्गों का पूर्ण अधिकार हो गया है। धरती, धन, शक्ति, सम्पदा, और प्रतिष्ठा इसी तथाकथित वर्ग की स्थायी पूँजी बन गयी है और जब यह पूँजी हाथ से निकलने लगती है तब अनेक जाली योजनायें बनायी जाती हैं और उनको अमल में लाया जाता है। नदी के पार जिस भाग से बोट उनके पक्ष में नहीं है वहाँ के हरिजनों को बन्दूक के दबाव में रोका जाता है- उनको मतदान केन्द्र तक पहुँचने के लिए गाँव से बाहर निकलने ही नहीं देना। उदाहरण दृष्टव्य होगा ''सुबह पाँच बजे ही हर चमरौटी के इर्द-गिर्द बन्दूक के फायर हो जाएँगे। लोग मुश्तैदी से तैनात हैं। साथ ही हमारे कार्यकर्ता अन्दर जाकर उन्हें निकलने के लिए कहते हुए भी नगेसर के बदमाशों से गम्भीर खतरे की बात बताकर उन्हें जहाँ-का-तहाँ रोक देंगे। उनके नाम जाली ओट भी सुबह के पहले ही दौर में पड़ जाएँगे। सारे चुनाव अधिकारी हमारी सहायता करेंगे। इससे तुम निश्चित रहो। मैंने अफसरों से बात कर ली है और एक-एक चीज कई-कई बार समझा कर पक्की की जा चुकी है।''(48)

साधो काका को भी राजनीतिक दाँवपेंच का हथियार बना लिया जाता है। उनके नाम पर जाली पर्चो को बाँट दिया जाता है- ''यह सिर्फ एक पंक्ति का कहना था- हरिजन भाइयों से मेरा निवेदन है कि वे अपना ओट कांग्रेस को ही दें। कांग्रेस का चुनाव चिह्न दो बैलों की जोड़ी है। आपका साधो काका।''(49) इतनी ही कार्यवाहियों से जीतने की संभावना नहीं बनती तब कुर्ते, जनानी धोतियाँ, कम्बल बाँटे जाते है, पोलिंग के इंतजाम के लिए नोटों की गड्डी दी जाती है।

रामपुर, सेतपुर, माणिकपुर भी राजनीतिक भ्रष्टाचार और शोषण के प्रभाव से अछूता नही है। भारत की राजनीतिक जिन्दगी की यह एक सच्चाई है कि उसका हर दल जातियता के प्रति सतर्क है। चाहे कांग्रेस हो या जनसंघ, कम्युनिस्ट हो या सोशलिस्ट सभी के निर्णय जाति पर होते है।(50) 'अग्निबीज' उपन्यास भी इसका साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में गांधीवाद का प्रभाव रहा है। अतः विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखे गये स्वातंत्र्यपूर्व उपन्यासों में गांधीजी का वर्णन उपलब्ध होना स्वाभाविक बात है। चाहे वह आर. के. नारायण का 'मालगुडी डेज' हो (अंग्रेजी व कन्नड भाषा में) अथवा पन्नालाल पटेल का 'आमावस'(गुजराती) उपन्यास गुजराती के रघुवीर चौधरी हो अथवा हिन्दी के भीष्म साहनी एवं मार्कण्डेय। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों व अंचलों पर गांधीवाद का प्रभाव राष्ट्रीय चेतना और समसामयिक राजनीतिक घटनाओं में किसी न किसी रुप में देखा जाता था। गांधीवादी सिद्धान्तों अहिंसा, व्रत, अनशन, सत्याग्रह आदि को आश्रमवासियों के माध्यम से उभारा है लेकिन उसकी विफलता भाई ने साफ-साफ व्यक्त की है- ''कांग्रेस सरकार ने गाँधी को सुविधा का हथियार बना लिया है।.... गोडसे ने गोली चलायी थी, कांग्रेस सरकार मीठा जहर पिला रही है और मजेदार बात यह है कि संत विनोबा जैसे लोग गांधीवाद के यथार्थ को मात्र कर्मकाण्डी चोंगा पहनाकर उसे राजशक्ति के दामन से बाँध देना चाहते हैं।(51)

राजनीतिक दलों के नेतागण अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अंचलों की भोली भाली जनता को बहकाते है। कोई ठोस उपाय या योजना अपनाना नहीं चाहते। सरकार ने जमींदारी-उन्मूलन का कानून बनाया- जिसमें 'भारतीय कृषि और भूमि व्यवस्था के पुनरुद्धार की दशा में लगान उपजीवी जमींदार और जागीरदार वर्ग के अधिकारों और आधिपत्य को किसी हद तक घटाकर कृषि विकास की पूर्व-स्थितियाँ पैदा की जा सकें। यह पूर्णतः राजनीतिक कदम था, उसकी असफलता को अग्निबीज में इस प्रकार व्यक्त किया गया है- ''सरकार ने जब जमींदारी उन्मूलन का कानून बनाया तो उसे लागू होने से पहले ही जमींदारों ने अपनी ज्यादातर ऊसर-पापर तथा जोत के बाहर की भूमि नज़राने पर लोगों को पट्टा कर दी। कानून लागू होने के पहले ही अलाभकारी अथवा साधारण लाभ देने वाली जमीन के बदले लाखों रुपये जमींदारों ने खड़े कर लिये थे, जो बाद में व्यापार में लग गये अथवा बैंकों में सूद कमाने के लिए जमा कर दिये गये।''(52)

स्वातंत्र्योत्तर अवसरवादिता कानून का लचीलापन और तत्संबंधित आक्रोश का स्वर इस उपन्यास में सर्वत्र विद्यमान है। बाकर के बरसों से बोयी जमीन के टुकडे को उसे खरीदने के लिए कहा गया। एक हजार नज़राना देने की हैसियत

बाकर में कहाँ थी? मुरली महाराज ने पैसे देकर पट्टा अपने नाम करवा लिया और दूसरे ही दिन बोये हुए खेत को उलटकर उस पर कब्जा कर लिया। बाकर इसे आजादी का प्रसाद समझकर चुप रह गया।.......वाह रे आजादी। ××× मिली भी तो आदमी को नहीं, हिन्दू-मुसलमान को मिली। आदमी के लिए इससे बड़ी गुलामी और कौन सी होगी कि वह जहाँ रहना चाहे, वहाँ न रह पाये?''(53)

भागो बहन ने 'जमींदारी उन्मूलन' का सही उपाय सुझाया है, सामाजिक बदलाव की सच्ची चाहत अगर राजनीतिज्ञों में है तो उन्होंने ''एक अधिनियम बनाकर सरकार अतिरिक्त भूमि लोगों के कब्जे से क्यों नही निकाल लेती और उसे गरीब किसानों में बाँट देती?....... इसलिए यह भूदान आन्दोलन चलाया गया है। गरीब जनता के सामने आशा और गाँधीवादी आदर्शों की मृग-मरीचिका उपस्थित करके उसे बहलाया जाएगा।''(54) मार्कण्डेय की भूदान कहानी भागो बहन के इन्हीं विचारों को वहन करती है।

रामजतन के सामने गांधीवादी आदर्शों की मृग-मरीचिका उपस्थित कर उसके स्वप्नों का गला घोंटा गया है निरुपमा भट्ट के विचारानुसार ''रामजतन, भूदान को लेकर स्वर्णिम भविष्य की कल्पना करता है लेकिन ठाकुर के जिस दान से उसे भूमि मिलती है वह तो केवल पटवारी के कागज पर थी।... ग्रामीण चरित्रों के सजग विश्वास और मानवीय आस्था के विपरीत उस वर्ग की कुटिल नीतियों की यह कहानी उन ग्रामों की वास्तविकता उभारती है।''(55)

प्रसंगानुसार आंचलिक उपन्यासों में प्रगतिशील चेतना तथा नयी मानसिकता की विवृत्ति भी अनेक आयामों के साथ दृष्टिगोचर होती है। जवाहर सिंह के कथनानुसार ''आजादी के बाद जनमानस में उत्पन्न नयी चेतना एक नया आत्मविश्वास, संघर्षशीलता, अपने अधिकारों के प्रति सजगता, प्रगतिशीलता तथा हर रुढ़ि अंधविश्वास, अन्याय-अत्याचार और प्रतिक्रियावादी प्रगति-विरोधी शक्तियों से लड़नेवाली नयी मानसिकता का चित्रण भी इनका प्रतिपाद्य है।''(56)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आंचलिक परिवेश में आम आदमी के अंतर्गत अधिकार-बोध जागृत हुआ है। आये दिन की आपाधापी से मजदूर वर्ग खासकर कृषक वर्ग अपने अहम पर चोट होने के उपरांत विद्रोह करने लगा है। बजमा के पानी पर टिकस लगाने के बाद, मुसई की झूठे जुल्म में गिरफ्तारी तथा बैठुकी सागर पर होने वाले अत्याचारों का विरोध सामूहिक धरातल पर किया गया है। यह सामाजिक जनचेतना सिर्फ 'अग्निबीज' में ही नहीं 'बीच के लोग' कहानी में भी उदित हुई है। मनरा द्वारा फऊदी को रोककर अन्याय के विरुद्ध लड़ने की क्षमता नयी पीढ़ी में दर्शायी है।

रमेश कुंतल मेघ ने आंचलिक जनजीवन के परिवर्तन के एशियाई जीवन

पद्धति की अनिवार्य देन माना है। उनके विचारानुसार ''भारत जैसी तीसरी दुनिया के परंपरागत समाजवाले तिकासशील एवं पिछड़े हुए देश में जीवंत जातीय स्मृति की पहचान तीन तत्वों से करायी है। एक ओर तो लोकसंस्कृति (लोकगीत, लोकमिथक, लोककथा, लोकप्रथा, लोकभाषा आदि) की परंपरा के द्वारा होगी तो दूसरी ओर जनजीवन (निम्न वर्गों के क्रांतिकारी अनुभव और वर्गीय चेतना) के साथ सक्रिय ढंग से जड़ने पर। यह पहचान आंचलिक जीवन को केवल सौंदर्यबोधकता अथवा बौद्धिक विष्पक्षता के द्वारा नहीं हो सकती। फणीश्वरनाथ रेणु इसकी प्रत्यक्ष मिसाल है। यह पहचान कस्बाई एवं ग्रामीण भारत के वर्गीय समाज के अंतर्विरोधों एवं आर्थिक संबंधों को कलात्मक ढंग से तलाश करने पर ही हुई है। नागार्जुन (बलचनमा) भैरवप्रसाद गुप्त (गंगा मैया) मार्कण्डेय (बीच के लोग) इसराइल(फर्क) में इस पहचान के आरंभिक सबूत मिलते है। यह तत्व 'निरर्थकता' के बजाय संघर्ष के बिंदु पर तथा फूहड़ता के बजाय जिजीविषा के बिंदु पर शक्तिमान हो रहा है।''(57)

मार्कण्डेय के कथासाहित्य में सामाजिक परिवर्तन की लहर और मानसिकता के साथ साथ राजनैतिक संक्रमण भी रेखांकित होता है। वे उच्च वर्ग की अभिलाषाओं का विवरण न देकर आम आदमी का आश व आकांक्षा को चित्रित करते है। विवेकी राय ने भी माना है कि मार्कण्डेय कृत 'बातचीत' शीर्षक कहानी में भी यही आम आदमी चित्रित हुआ है। स्वराज्य-सुख का अहसास करता हुआ रामू किसान-चतुर्दिक के भ्रष्टाचार से भौंचक्का है। उसे लग रहा है कि समूचे विकास में से उसके हिस्से में कुछ भी नहीं पड़ रहा है। विशेषकर पंचायत के प्रति अनास्था का स्वर इस कहानी में बहुत तीव्र है। इसी प्रकार 'चाँद का टुकड़ा' शीर्षक कहानी में एक आदमी यातायात-सम्बन्धी नवनिर्मारि के सम्बन्ध में सोच रहा है कि 'देहात के इलाके में यह सड़क स्वतन्त्रता की पहली निशानी है।... यह एक ऐसी जगह है जहाँ मोटरें नहीं जा पातीं इसीलिए यह नेताओं की उपेक्षित भूमि है। राजनीति के सम्पर्क में न आने का सबसे बड़ा कारण मोटरों का न आ सकना ही है। इसीलिए इस बड़े इलाके के निवासी वोट देते हैं और वह भी कांग्रेस को।''(58)

अतः राजनीतिक चेतना ही वह धुरी है जिससे हमारे सामाजिक जन-जीवन का रथ गतिशील होता है। विभिन्न राजनीतिक दल कभी 'धुरी' निकाल देने का काम करते है तो कभी चुनाव तंत्र में धुरी बदल देने का काम जनता अन्जाम देती है।

4.16 आर्थिक परिदृश्य

आर्थिक शोषण संबंधी समस्या हमारे देश की प्रधान समस्या है। स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक, सामाजिक एवं औद्योगिक परिवर्तन ने देश की आर्थिक स्थिति को पूर्णत: प्रभावित किया है। एक ओर नये-नये उद्योग धंदो की स्थापना हुई और पूँजीपतियों के हाथ में देश की बागडोर आयी और दूसरी ओर सामान्य जनजीवन आर्थिक दुर्दशा की खाई में चला गया। नयी योजनाओं से आर्थिक क्षमता को बढ़ाने का कार्य सरकार कर रही थी लेकिन इन ''विकास योजनाओं की झूठी चर्चा और बहस के आड़ में लखनऊ और दिल्ली से चला हुआ धन गाँव के किसानों तक पहुँचते-पहुँचते रास्ते में ही काफूर हो जाता था।''[59] केंद्रीय एवं प्रांतीय सरकार सभी उद्योगधन्दों को अपने हाथ में लेकर चलाने में असमर्थ थी, अत: शोषक और शोषित में यह समाज बँटता गया। वर्गसंघर्ष की स्थिति सामने आयी।

ग्रामविकास को दृष्टि में रखकर भारत सरकार ने सामुदायिक विकास योजनाएँ, भूमि-सुधार योजनाएँ, कुटीरोद्योग, आदि को व्यवहृत किया। पर उसमें सफलता नहीं पा सकी। ''गाँव में सत्तर प्रतिशत लोग निरन्तर भूख और नंगेपन में आज भी जीवन बिता रहे है। बच्चों को रात-दिन में आधी-रोटी भी मयस्सर नहीं है और वहीं बगल में बैठा मामूली-सा जमींदार तथा बड़ा किसान चोजन का सारा रस खोलकर मस्त हो गया है। .... वही सरपंच है, वही मुखिया है, वही विकास समिति का अध्यक्ष है, वही जिलाबोर्ड का भी अध्यक्ष है और अब तो उसने ऐसी हालत पैदा कर ली है कि विधान-सभा और लोक-सभा में उसके अलावा बिरला ही कोई पहुँच पाएगा।''[60]

समाजवादी व्यवस्था सभी को उत्पादन क्षमता के आधार पर समान वितरण विनिमय और उपभोग की पद्धति पर बल देती है। सामाजिक विकास की विभिन्न मंजिलों में कार्ल मार्क्स के अनुसार ''हम युगों में प्राय: हर जग विभिन्न सामाजिक श्रेणियों में विभाजित समाज का एक पेचीदा ढांचा पाते हैं सामाजिक श्रेणियों की नानारुपी दर्जाबन्दी। प्राचीन रोम में पेट्रीशियन, नाइट प्लेबियन और दास मिलते हैं। मध्ययुग में सामंती प्रभु, अधीन जागीरदार, उस्ताद-कारीगर मजदूर-कारीगर, भूदास दिखाई देते हैं और लगभग इन सभी वर्गों में गौण दर्जा बन्दियाँ होती हैं ।

आधुनिक पूँजीवादी समाज ने, जो सामन्ती समाज के ध्वंस से पैदा हुआ है, वर्ग विरोधों को खतम नहीं किया। उसने केवल पुराने के स्थान पर नये वर्ग, उत्पीड़न की पुरानी अवस्थाओं के स्थान पर नयी अवस्थाएँ और संघर्ष के पुराने रुपों की जगह नये रुप खड़े कर दिये हैं। किन्तु दूसरे युगों की तुलना में हमारे युग की, पूँजीवादी युग की विशेषता यह है कि उसने वर्ग विरोधों को सरल

बना दिया है; आज पूरा समाज दो विशाल शत्रु शिबिरों में, एक दूसरे के खिलाफ खड़े दो विशाल वर्गो में पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग में अधिकाधिक विभक्त होता जा रहा है।''(61)

कार्ल मार्क्स के विचारानुसार हमने पूँजीवादी व्यवस्था में वर्ग विरोधों को सरल बनाने का प्रयास किया, जिसके कारण वर्तमान समाज में दो विशाल वर्ग प्रतिस्पर्धी के रूस में आमने-सामने है। मानवीयता के धरातल पर भारतीय जनजीवन में समान वितरण विनिमय के आधार पर और उपभोग की भावनाए के आधार पर आर्थिक समानता पर बल देते हैं। वे प्रत्येक भारती जन की प्रगति चाहते है। उनका कथन है कि ''प्रत्येक व्यक्ति के पास सचमुच एक बराबर रकम होगी। इसका अर्थ सिर्फ यह है कि प्रत्येक मनुष्य के पास जरुरत भर का पर्याप्त धन होगा ×× हाथी को चींटी के मुकाबले हजार गुना ज्यादा भोजन चाहिए लेकिन यह असमानता का द्योतक नहीं है। आर्थिक समानता का वास्तविक अर्थ है हर मनुष्य को उसकी जरुरत के अनुसार मिले।''(62) अत: कहा जा सकता है कि गांधी ने एक ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आर्थिक शोषण का विरोध किया है तो दूसरी ओर वे भारतवर्ष में पूँजीवादी व्यवस्था को बढावा न देकर आम आदमी के अर्थिक विकास और समान विनिमय वितरण और उपभोग की प्रवृत्ति पर बल देना चाहते थे। अत: इन्हीं बिन्दुओं पर रामविलास शर्मा ने महात्मा गांधी, आंबेडकर और लोहिया की समान वैचारिक नीति की विवेचना की है।

वर्तमान भारतवर्ष में राजनैतिक आर्थिक दुष्चक्रों से विभिन्न योजनाओं का फायदा किसी एक वर्ग को मिल रहा है और एक वर्ग ऐसा है जिसमें पेट पालने के लिए दो वक्त की रोटी का भी जुगाड नहीं हो पाता है। फिर वह अपने अधिकारों की माँग कैसे कर सकता है? समाज में अर्थव्यवस्था इतनी लड़खड़ा गयी है कि भाई जी के अधिकारों की माँग का वक्तव्य लोगों पर कोई असर नहीं करता। वैकुंठी तो यहाँ तक कहता है कि ''जिसका पेट ही जल रहा है, उसके लिए अधिकार कैसा, जिस के पास रोटी का एक टुकड़ा नहीं वह सम्पत का अधिकार लेकर क्या करेगा?''(63)

मार्कण्डेय इसी भ्रष्ट और मूल्यहीन सामाजिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन लाना चाहते है तथा पूँजीवादी उत्पादन का वर्तमान ढाँचा जितना विस्तृत होता जाएगा। गरीबी उतनी ही बढ़ेगी और समस्याएँ विकराल रुप धारण करती जाएँगी। बिना बुनियादी परिवर्तन के ऊपरी ढाँचे में हेर फेर से कोई नतीजा नहीं निकल सकता।(64) एक प्रकार से यह सोच और अभिव्यक्त उनके प्रगतिशील चिन्तन के अनुरुप है। साम्यवादी हरगोन सिंह भी इसी विचार एवं परिवर्तन को व्यक्त करता है।

महात्मा गांधी का भारतीय ग्रामों से अटूट लगाव था। गाँव की गरीबी को हटाने हेतु उन्होंने कुटीर उद्योगों का प्रारंभ किया था जिसमें चरखा चालना अर्थ उवार्जन का एक साधन था। लेकिन जीवन की सच्चाईयों को सिद्धान्तों में जकड़कर कतिपय लोग जीवन की वास्तविकता से, समस्याओं से दूर हो जाते हैं। भागो बहन इन सिद्धान्तों का जीवन की सच्चाइयों से तादात्म स्थापित नहीं कर पाती वह कहती है ''सच्चाई यह है कि किसी दूसरे काम का अवसर नहीं है, साधन ही नहीं है, उनके पास। वह चरखा कब चलाएगा उसे चरखा और रुई कहाँ मिलेगी। उसका सूत कौन लेगा और सबसे ऊपर उसके पास समय कहाँ है। उसका समय और श्रम इस समाज व्यवस्था में शोषकों के यहाँ गिरवी है। वह जैसे ही इसे दूसरी ओर लगाता है, वे उस पर हमला कर देते हैं।''(65)

गांधीवादी आदर्शो तथा कुटीर-उद्योगों की योजनायें दिन ब दिन टूटती जा रही है अब नौबत यहाँ तक आयी है कि ''बापू का नाम सिर्फ जन्म दिवस और मृत्यु-दिवस पर लिया जाता है। × × × योजनाओं का सारा धन घूम फिर कर इन्हीं पूँजीपतियों के पेट में समाया जा रहा है।''(66)

चरखा सेंटर के फेलीयर की घटना रेणुकृत 'मैला आंचल' उपन्यास के मेरीगंज में भी घटती है, राजनीतिकों के भ्रष्टाचार, महाजनों एवं फोरम के लोगों का ग्रामीण विकास की योजनाओं का धन हड़पना 'सती मैया का चौरा' उपन्यास के कथ्य में होता है तथा 'जमींदार का बेटा' उपन्यास में भी देश की योजनाओं से ग्रामीणों का मोहभंग होता है। ऐसे अनेक आंचलिक उपन्यास है जिसमें जमींदार, महाजन, सरकारी अफसर आदि का ऊपर उठना माल हड़पना तथा किसान एवं आम आदमी की जिंदगी बदतर होने की घटनायें इसकी साक्ष्य प्रस्तुत करती है। मतलब इनसे मुक्ति पाने की छटपटाहट गाँवो में जरुर आरंभ हुयी है। गाँवों में नये बीज बोये जा चुके हैं, चाहे वह अग्नि के ही क्यों न हो। शिवकुमार मिश्र के अनुसार- ''अग्निबीज गाँव की विद्यमान विकृति के बीच से उगते ऐसे ही अंकुरों की पहचान हमें कराता है। इन अंकुरों को मार्कण्डेय ने अग्निबीज कहा है जो उस भावी आग के संकेत है जो देर सबेर गाँव की धरती पर सुलगनेवाली है।''(67)

मार्कण्डेय के कथा साहित्य के आधार पर कहा जा सकता है कि राजनीतिक स्वतंत्रता के पश्चात् आर्थिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति का मार्ग स्वावलम्बन से खोजा गया। स्वावलम्बन का एक रास्ता कुटीर उद्योगों का था, बाकर के घर में करघा लगाकर स्वावलम्बन की राह तो बतलायी है साथ ही इन कुटीर उद्योगों को सामूहिक धरातल पर भी अपनाने की योजना 'आदर्श कुक्कुट गृह' कहानी में बनायी है। रमजान बसावन अपने मुर्गियों को जतन से पाल रहे थे लेकिन 'आदर्श कुक्कुट गृह' बनाने की योजना में भविष्य के आर्थिक आमदनी के सुनहल सपने

में खोकर अपनी मुर्गियाँ लाकर रखी और साढ़े सात सौ रुपये महीना कमाने के नाम पर मुर्गियों का जो उनकी एक मात्र सम्पत्ति थी उसको बीडिओ, कलक्टर के घरों में पहुँचाया गया- ''एक..दो...दो..तीन..मुर्गे इक्कों पर बँध गये साइकिलों के कैरियरों में टँग गये, झोलों में कस लिये गये और मेहमानों के जाते-जाते आदर्श कुक्कुट-गृह खाली हो गया।''(68) इतना सब कुछ होने के बावजूद आदर्श कुक्कुट गृह तो बाकायदा स्थापित हो दी चुका था।

इसी तरह अनेक योजनायें कागज पर बनती बिगड़ती थी। विभिन्न योजनाओं में प्रभूत धन-व्यय हुआ वह मंत्री तथा जमींदारों के पेट में चला गया। आर्थिक स्वरुप उभरने के बजाय रामजतन जैसी स्थिति अनेकों ने सहीं है- ''भूदान-कमेटी के मंत्री जी ने तो कब का रामजतन को समझा-बुझा दिया है कि ठाकुर के जिस दान से उसे भूँय मिली थी वह केवल पटवारी के कागज पर थी। असल में तो वह कब की गोमती नदी के पेट में चली गयी है।''(69)

यही हमारे स्वर्गादपि भारतवर्ष की पंचवार्षिक योजनाओं का हश्र है। चाहे वह मार्कण्डेय ने रचा हो या पुंडलीक नायक ने दोनों अपने अपने कथात्मक परिवेश में इन आर्थिक स्थितियों पर आघात कर रहे हैं।

4.17 सांस्कृतिक परिदृश्य

संस्कृति मानव समाज की एक प्रमुख विशेषता है। यह व्यक्ति के हृदय में बौद्धिक चेतना को जगाती है जो पशुओं या असभ्य समाज में नहीं पायी जाती है। संस्कृति का संबन्ध व्यक्ति के भौतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, दार्शनिक, कलात्मक, प्राकृतिक आदि विविध प्रकार के महत्वपूर्ण विकासशील सोपानों एवं जीवन के अनेकानेक पक्षों से हैं।

भारत का भौगोलिक ढाँचा पर्वत, नदी, सागर समतल, तलहरी और पठार आदि में विभाजित हैं। नदी-सागर के किनारे बसने वाले लोग बाढ का सामना करते है, पर्वतीय प्रदेशों में बनों में झाँकते रहते हैं। वहाँ के प्राकृतिक सुषमा के अनेक बिम्ब लेखक के आंचलिक वर्णन में आकर्षक, मोहक बनकर आते है।

विभिन्न ऋतुओं का वर्णन सामाजिक जीवन में उर्जा लेकर आता है बरसात तथा जाड़े के मौसम की अलग अलग संवेदनाओं से हमारे जीवन के नवीनता का संचार होता है।

कहना न होगा कि विवेच्य कथाकार मार्कण्डेय की ज्यादातर कहानियाँ ग्रामजीवन तथा उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक समस्याओं से जुडी हुयी है। ग्राम-संस्कृति, रीतिरिवाज, बोलीबानी के साथ-साथ उसके साथ

जुड़ी हुयी प्रकृति का वर्णन भी मार्कण्डेय ने यथार्थ धरातल पर किया है। वैकुण्ठी मछली पकड़कर बेचता है जो उसकी आजीविका का साधन है, उसके द्वारा तरह तरह की मछली पकड़ना है। वह अलग अलग साधनों जैसे छोटा जाल, हत्या, छन्नी, कटिया, तडेरी आदि से मछली मारने का काम करता है। मछली पकड़ने के लिए पानी के बहाव का पता होना चाहिए- "बैकुंठी उथले बहते हुए पानी में दोनों ओर मेड डालकर पहरा गाड़ देता और मछलियाँ अपने आप उसमे सपड़ती जाती थीं।..... उसे पानी और मछली के शिकार की गहरी पहचान थी।.... पहरे की दिशा में थोड़ा हेर फेर करके पानी में अगल बगल वह इस हिसाब से घूमता कि मछलियाँ सपडने लगती।.... फैले हुए छिछले पानी में अखने की जगह चुनना ही असली बात थी। बैकुंठी एक नजर में मछलियों के विहार की जगह पहचान लेता और वहीं खडा होकर चारों ओर मेंड डाल देता। एक क्यारी से पानी निकालकर जमीन को कुछ ऊँचा कर देता, फिर उसपर हल्का सा पानी तैराकर छोड़ देता था।"(70) चेल्हवा और झींगे अपने आप उछलकर अखने में जा पड़ते थे प्रकृति की पहचान के बिना गाँव के मत्स्य-व्यवसाय की यथार्थ स्थितियों की सही पहचान करना अन्यथा मुश्किल है। मार्कण्डेय गाँव की भूमि की इस सोंधी महक तथा बजमा के पानी के बहाव, वहाँ के बदलते हुए ऋतुओं से काफी परिचित है।

'अग्निबीज' उपन्यास में ही सावन की बरखा से बजमा में आयी बाढ़ का वर्णन किया है। बरसात के दिनों में रामपुर से सेतपुर स्कुल में आने के लिए नदी की पतली धार की बजाय बढते हुये बजमा के पानी को पार करके आना पडता था। जाते वक्त ऊँचे चन्ने पर पाँव रखकर पानी का अंदाजा लेते हुए मुराद सुनीत और श्यामा शाम को पानी से उस पार जा रहे हैं। प्रकृति की सहायता से श्यामा के मन में कहीं अंदरूनी कोने में प्यार की किरण फूट पडी थी जिसका वर्णन यहाँ किया है। यह सिर्फ संकेत है लेकिन प्रकृति के कारण ही वह संकेत पाठक को मिल पाता ह। उसके पानी में फिसलने के बाद श्यामा मुराद के बाँटों में आयी और बार-बार सिर्फ यही बुदबुदाहट निकल रही थी, "मु....रा...द, मु...रा...द"..... कुल मिलाकर यह अद्भुत दृश्य था। सावन के महीने के निर्मल आसमान में जिधर देखो तारे ही तारे छाये थे और चतुर्थी का चाँद पेडों की झुरमुट से खिसककर बाहर आ रहा था। बजमा का रुपहला आँचल जैसे-रत्नों से भर गया है। "गाँव का उफनता हुआ गंदला धुआँ जाने कहाँ उड गया था। वे तीनों किसी भटके हुए जल पक्षियों की तरह, स्वच्छ जल में चित्र लिखित से" (अग्निबीज पृ.20) और एक बार संकेत किया है जब जले हुए मुराद के हाथ को अपने हाथ पर लेती है "तो मुराद की देह में एक सिहरन सी दौड़ गयी। न जाने क्यों अनायास आज फिर फफायी हुयी बजमा का चाँदनी सिक्त जल विस्तार उसकी स्मृति में

कौध गया।''(71) लेखक ने बजमा के चाँदनी सिक्त-जल -विस्तार से मुराद तथा श्यामा की प्रेमभावनाओं को व्यक्त किया है। इसप्रकार विभिन्न पात्रों और घटनाओं के बीच रागात्मक भावसाम्य एवं प्रतिकुलता की सृष्टि में प्रकृति चित्रण पृष्ठभूमि का कार्य निभाता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

जवाहरलाल नेहरु ने कभी कहा था कि भारतवर्ष एक कृषिप्रधान देश है, गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी व महंगाई में जीता हुआ यह देश अपने पर्व-त्यौहारों को भूल नहीं पाता है। उसके एकरस जीवन में पर्व और त्यौहार संस्कृति के विभिन्न उपादान बनकर जीवन-रस का संचार करते है। अतः यह कृषि प्रधान देश प्रकारान्तर से संस्कृति मय देश भी है। तब भला ग्रामीण जनजीवन और आंचलिक जीवन शैली की कथा रचनेवाले मार्कण्डेय संस्कृति प्रसंगों से भला अलग कैसे रह सकते हैं। वे अपने कथा साहित्य में शकुन-अपशकुन की मान्यताओं को 'सहज और शुभ' कहानी में चिड़ीयो के माध्यम से दिखाते हैं। 'मधुपुर के सिवान का कोना' में हवा एवं वहाँ के अरहर के खेतों का पर्व आदि में प्राकृतिक विवेचन से कृषक जीवन की संस्कृति का भी पता चलता है।

वास्तव में शिक्षा मनुष्य को सुसंस्कृत बनाती है। शिक्षा के साधन गाँव में पहुँचने का संकेत मार्कण्डेय ने दिया है। रामपुर से सेतपुर में जाकर पढनेवाले बच्चे (अग्निबीज) हरिजन बालिका पाठशाला का खुलना(अग्निबीज) गाँव में सौतेले बच्चे को पढाने की द्रौपदी लालसा(मन के मोड़) 'राजेश' का पढ़ने के बाद भी बेरोजगार होने के कारण संघर्ष(साबुन) आदि कथासाहित्य में आजाद भारत में शिक्षा के साधन गाँव तक पहुँचे गये है। परंपरागत खेती व्यवसाय से अपने बच्चों को मुक्त कराने के लिए उन्हे पढ़ाने लिखाने का कार्य पुरानी पीढ़ी करने लगी है। इससे परिवर्तित संस्कृति एवं आधुनिकताबोध का गांव में प्रवेश हुआ है। नवीन परिस्थितियों के प्रभाव में ग्रामीण जिंदगी में नयी संस्कृति पनप रही है। फिर भी गावों में शिक्षा के अधूरे साधनों एवं पाठ्यपुस्तकों में नवीन संदर्भो के न होने पर बिसेसर द्वारा टिप्पणी की है। ''शिक्षा को तो शासकों ने अपनी चेरी ही बना लिया है। पाठ्य-पुस्तकों में वहीं परंपरावादी विचार और रुढ़ियाँ अटी पड़ी है। जिससे छात्र कुछ भी नया न सोच सके। पन्ना धाय की कहानी का कलंक आज भी उसके माथे में भरना जरुरी है, जब कि न बच्चा उस समाज में रह रहा है और न उसे उसकी जरुरत है।''(72)

इस प्रकार एक ओर यह भी स्थिति है कि जनजागरण के नारे के नीचे अज्ञान और निरक्षरता की वही पुरानी काली छाया मंडरा रही है। तो दूसरी ओर हमारे देश के शिक्षित नौजवान (उच्चमध्यवर्ग के) विदेशी सेवा में, विदेश में रोजगार प्राप्ति के लिए प्रयाण कर रहे हैं।

4.2 मार्कण्डेय का आंचलिक कथासाहित्य : लोकसंस्कृति संबंधी विवेचन

लोकसंस्कृति को प्रथम अध्याय में व्याख्यायित किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में हम मार्कण्डेय के कथासाहित्य में प्राप्त लोकसंस्कृति के विभिन्न अंगों की विस्तृत चर्चा करेंगे। अंचल का सम्बन्ध लोकसंस्कृति से होता है, बिना आंचलिक लोकसंस्कृति से अंचल का समग्र रुप अभिव्यक्त नहीं हो सकता। ह. क. कडवे के अनुसार ''आंचलिक उपन्यासों का उद्येश्य अंचल विशेष के जनजीवन की संस्कृति का अर्थात लोकसंस्कृति का चित्रण करना है।''(72) वेदप्रकाश अमिताभ के विचारानुसार लोकसंस्कृति एवं लोकजीवन के रसग्रहण एवं विचारग्रहण का प्रमाण आंचलिक उपन्यास देते है ''लोकजीवन के गहरे जुड़ाव के फलस्वरूप जहाँ एक ओर इन उपन्यासों में धर्म, पाप-पुण्य आदि की रुढ़ और स्थिर मान्यताओं के पुन:परीक्षण का भाव प्रबल है। दूसरी ओर श्रम, समानता, सद्‌भाव आदि मानवीय मूल्यों को महत्व देने का प्रयास हुआ है। इनमें सांस्कृतिक पर्वों और उत्सवों तथा लोकगीतों-लोककथाओं का विस्तृत उल्लेख केवल 'तथ्य निरुपण' आग्रहवश नहीं हुआ है। ये लोकमानस में धँसे हुए मूल्यों का परिचय देने के साथ आज के संदर्भ में इनके विचलन और परिवर्तन को भी रेखांकित करते है।''(73)

4.21 धार्मिक जीवन

धर्म भारतीय लोकसंस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। धर्म को ज्ञानचन्द्र गुप्त ने इसप्रकार व्याख्यायित किया है। ''धर्म मनुष्य को सामाजिक विरासत में मिला वह पवित्रतम विश्वास है जिसे सांस्कृतिक मान्यता प्राप्त है तथा जिसके सहारे वह जीवन के विविध क्रियाकलापों का क्रम निर्धारित करता है तथा संश्लिष्ट समस्याओं से जूझने का संबल प्राप्त करता है। असत् कार्यो से सत् कार्यों की ओर प्रेरित कर मनुष्य को अभ्युदय एवं नि:श्रेयस प्राप्ति कराना धर्म का मान्य लक्ष्य है।''(74)

महान् उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मनुष्य को स्वार्थ की जिंदगी त्यागकर परमार्थ गुणों की प्रतिष्ठा करनी होती है। मानव धर्म के उदात्त मूल्यों की ओर मार्कण्डेय की सजग दृष्टि रही है। 'अग्निबीज' उपन्यास में 'साधोकाका' उदात्त मूल्यों के प्रति सजग है। मानव-धर्म की स्थापना में 'साधोकाका' को त्याग और तपस्या करनी पड़ती है। धर्म के दो पक्ष होते है, दो रुप होते हैं- अभिजात वर्ग का धर्म

तथा जनसामान्य का। अभिजातवर्ग प्रमुखत: स्वार्थ की भावना से प्रेरित लोकप्रचार एवं लोकहित का कार्य करते हैं। उनका धर्म दिखावा, बाह्याचार, पाखंड, खोखलेपन से युक्त होता है। तो जनसामान्य सब कुछ लुटाकर सदाचार, पापपुण्य आदि को धर्म मानता है। मार्कण्डेय ने दोनों वर्गो-रुपों के माध्यम से धर्म एवं उसकी विडंबना को दर्शाया है। ज्वालासिंह हरिजन उद्धार की बात मुँह से कहने एवं वोट पाने तक धर्म की अवधारणा का निर्वाह करना चाहता है तो भागो बहन 'सेवा हमारा धर्म है वहीं हमारा जीवन और हमरी शांति है'(75) ऐसे स्वीकारती है। बाकर काम की व्यस्तता में भी बडकी बखरी से बुलावा आनेपर रुक नहीं सकता यही उसका धर्म है।

भारत अनेक जातियों एवं धर्मों में बटाँ हुआ देश है। विविध धर्मों के लोगों में एकता सहिष्णुता की भावना आज भी गावों में कायम है। बाकर, मुसई, साधों काका का एकसाथ उठना बैठना, मुसई महतो को छुडाने हेतु सबका संघर्ष, हिन्दुओं के कार्यों में मुसलमानों का सहयोग यह सब जातीय एवं धार्मिक कट्टरता को कम करने में सहायक है।

दूसरी ओर सांप्रदायिक दंगों में भारत देश का बँटवारा कराया जिसका परिणाम इस आजाद देश के हिन्दू-मुसलमानों दोनो जातियों पर हुआ। आजादी मिलना उनके नसीब में नहीं या जिसकी वे बरसों से राह देख रहे थे। 'अग्निबीज' में 'बाकर' अपनी बोयी हुयी जमीन पर कब्जा होने के बाद चुप रह गया, वह उसे आजादी की प्रसाद समझकर मौन हो गया।

वैसे बाकर धर्म निरपेक्ष व्यक्ति था। वह ईद-बकरीद वैसे ही मनाता था जैसे होली और दिवाली। धर्म का बंधन बाकर को कोई काम करने से नहीं रोकता था। साई के आशीर्वाद से ही कठिनाइयों का बेड़ा पार लगता है ऐसे उसका विश्वास था।

4.22 लोकविश्वास (रुढ़ियाँ एवं अंधविश्वास आदि)

अनेकानेक रुढ़ियों परम्पराओं और अंधविश्वासों का पालन आज भी अंचलों में पारम्पारिक रुप से किया जाता है। धर्म के नाम पर समाज में ढोंग अधिक है। 'यात्रा पर जाना' और 'गंगा में नहा लेना' धर्म कमाने का उत्तम साधन है जो अभी तक अंचलों में ग्रामवासी परंपरागत तौर पर निभा रहे हैं। 'महुँए का पेड़' इस कहानी की प्रमुख पात्रा दुखना भी तीर्थ यात्रा करना चाहती है। ''कई साल से दुखना के मन में तीर्थ यात्रा की बड़ी लालसा है। अगल-बगल की पडोसिनें कई बार गंगा-स्नान कर आयी। मलमास नहा डाला, गरहन में पैदल चलकर काशी का पुण्य लूट आयी पर दुखना कहीं न जा सकी''(76) संगम में गोता लगाकर आत्मा

को पवित्र करने, तथा पाप धोने की महिमा 'तीर्थ-यात्रा' में ही संभव है।

एक ओर परम्परागत मान्यताओं एवं रुढ़ियों पर विश्वास किया जाता है तो दूसरी तरफ उसकी अर्थहीनता, निःसारता भी मार्कण्डेय की कहानियों में व्यक्त हो रही है। रनिया शादी के बाद जब विदा होती है, तब उसकी माँ 'सोहगइला' को हाथ से न छोडने के लिए कहती है। सोहगइला हाथ से न छूटे इसलिए रास्ते भर भूखी प्यासी ही बैठी रहती है, लेकिन प्यास को काफी देर तक नहीं रोक पाती। प्यास से बेहाल हो जाती है। इससे दु:खी होने के बजाय व्यंग्यभरी मुस्कान उसके चेहरे पर बिखर जाती है। यहाँ माँ की स्थिति को याद कर, 'सोहगइला' की रुढ़ी की निस्सारता व्यक्त होती है।

'अग्निबीज' में प्रभावशाली भूमिका में उभरती हुई श्यामा को भी पारंपारिक रुढ़ियों, मान्यताओं का पालन करता है, शादी के अवसर पर सभी विधियों को परंपरा से चले आये हुए रीति-रिवाजों के आधार पर निभाना पड़ता है।

ठाकुर के सामने चारपाई तथा ऊँचे आसनों पर बैठने की परंपरा को शिक्षित सागर भी निभाता है- ''मुराद तख्त पर मजे में बैठे गया लेकिन सागर नीचे चौखट से सटा खडा रहा। क्यों? यह घर तो सुरानी साधों काका है। लेकिन हैं तो वे ठाकुर, मुसई के पुश्तैनी ठाकुर।''(77)

गाँव में परंपरा से हर ब्राह्मण या ठाकुर का हरिजन होता है और मुसई महतो साधो काका के घर से सम्बद्ध थे और यहाँ परम्पराओं का निर्वाह किया जा रहा है। ''मुसई भी सदा उसी चौखट पर बैठता था, जहाँ आज सागर खडा था। यह सब इतना सामान्य और सहज था कि इसपर न तो कोई सोचता था और न कुछ कहता।''(78) इन विचारों से गाँववालों की मानसिकता, वर्ण-व्यवस्था के बन्धन के प्रति अन्धी आस्था व्यक्त होती हैं।

4.23 अन्धविश्वास

ग्रामांचलों में प्राय: पंडे पुरोहित, बाबा, लोभी, एवं लालची होते है और उनके मठ मंदिर, आश्रम धर्म भीरू जनता को फँसाने के अड्डे। पण्डे धर्म के नाम पर अन्धविश्वासी, अज्ञानी एवं अशिक्षित वर्ग को अपने हथकंडे रचाकर जाल में फँसाते है। मार्कण्डेय की कहानी 'शवसाधना' में भी धूरे बाबा को ईश्वर मानकर भोली-भाली जनता उन्हें पूजने लगती हैं। धूरे बाबा अपनी झूठी शक्तियों का प्रचार गांव में करके गाँव वालों के मन में आतंक पैदा करता है। 'शवसाधना' के नाम पर गांव की भोली भाली युवतियों को अपनी वासना का शिकार बनाता है और उनके अज्ञान एवं अंधविश्वास का फायदा उठाकर घेंचू और उसकी पत्नि

सुखी में बिखराव पैदा करता है। इसप्रकार प्राय: पाया जाता है कि ग्रामीण अंचलों में काम कुंठित व्यक्तियों में ईश्वरी शक्तियों का वास होता है और वे अपने स्वार्थी एवं काम पिपासा की पूर्ति के लिए ढोंग रचाकर ग्रामीणों को ठगते है और पथभ्रष्ट करते हैं।

अंचलों में डाक्टरों की कमी है जिसके फलस्वरूप दैवी विश्वासों अथवा झाड़-पेड़ों के औषधियों द्वारा उपचार कराया जाता है ''अनेक अन्धविश्वास अंचलों में आज भी अपने इसी पारम्परिक रुप में चले आ रहे हैं। कभी-कभी परिस्थिति व्यक्ति को उन अन्ध-विश्वासों को मानने को बाध्य करती है।''(79) 'नीम की टहनी' नामक कहानी में यह विश्वास गाँव में प्रचलित है कि महारानी देवी वाली नीम की टहनियों से चेचक की व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति रोगमुक्त हो जाता है। अंधविश्वासों को श्रद्धापूर्वक पालन करनेवाले यह भी मानते है कि महाराजिन बुआ के अलावा उन टहनियों को दूसरा तोड नहीं सकता। गांव में फैली चेचक की महामारी का कुमार की प्रेमिका पियारी शिकार हो जाती। गाँव में महाराजिन की अनुपस्थिति में नीम की टहनियाँ तोडने का साहस किसी में नहीं है उनके विचार से परम्परागत धार्मिक व सामाजिक विश्वासों का उल्लंघन पाप है और कुमार अपनी प्रेमिका की जान बचाने हेतु नीम की टहनियाँ तोड़कर चेचक का शिकार हो जाता है और उसे बचाकर स्वयं मृत्यु की चपेट में आ जाता है।(80) मिथ्या अंधविश्वासों के कारण कभी कभी अंचलवासियों को अपने प्राणों से हाथ धोने पडते है। गाँवों में अभी अज्ञान और अशिक्षा इतनी है कि इनकी मान्यताओं से समाज प्रभावित है।

भारत का ग्रामीण अंचल आज भी पिछड़ा है। अनेक सामाजिक समस्यायें मुँह फैलाये खड़ी है। सामन्ती समाज की समस्यायें, नारी की विविध समस्यायें जातिप्रथा, विविध रुढ़ियाँ, अज्ञान, अशिक्षित होना, खोखली मान्यतायें आदि आज भी ग्राम-अंचल में प्रचलित है। प्रसंगवश सामन्ती समाज का दम्भ एवं अहंकार, झूठी शानो-शौकत, रुढ़िवादी मान्यताओं के पक्षधर ब्राह्मणों की खोखली मान्यताओं और नैतिकताओं पर तीखा प्रहार मार्कण्डेय के कथा साहित्य में किया गया है।

'अग्निबीज' में सागर एवं बैकुंठी का बजमा में मछली पकडने के कारण मानिकपुर के ग्रामप्रमुख खेलावन पंडित के आंगन में मुर्गी बना बैठा देना उसके खिलाफ उठायी गयी आवाज और बजमा का पानी सबके लिए करना, हरिजन की बालिकाओं के लिए खोला गया स्कूल और हरिजन होकर सागर का पढना आदि में प्रगतिशीलता दृष्टिगोचर होती है। समाज में परिवर्तन लाने की चाहत, समाजवाद और क्रांति पुनर्निर्माण और नयी सामाजिक व्यवस्था आदि को उपन्यास के माध्यम से समाज के साथ जोडा है। सुनीत द्वारा सागर से अपने थर्मस से दूध पिलाना गाँव की रुढिवादी, सुखी मिट्टी से फूँटनेवाले नये अंकुर है- ''श्यामा दूध

पीते हुए हर घूँट पर तनिक और चैतन्य होते सागर को क्षीण काय सुनीत को बारी-बारी से देख रही है। उसका मन अनायास आज किसी मुक्त पक्षी की तरह आकाश में उड़ चला था। उसे गाँव की रूढ़िवादी रुखड़ी मिट्टी से फूटते हुए नये अंकुर दिखाई पड़ रहे थे।''(81)

वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत जातिभेद व्यवस्था हमारे भारतीय सामाजिक जीवन का प्रमुख आधार है। जिसके अंतर्गत दलित-पीड़ित निम्न जातियों सदैव अमानवीय शोषण का शिकार रही है। ग्रामीण अंचलों में ऊँचनीच व छूत अछूत का भेदभाव करनेवाली कुप्रथाएँ सदैव विद्यमान रही है। जिनपर ग्राम वासियों का विश्वास होने के कारण स्वार्थी लोग अनुचित लाभ उठाते है। जातिगत ऊँच-नीच का भेदभाव भारतीय समाज में इतनी गहरी जड़ें जमा चुका है कि इससे मुक्ति पाना अत्याधिक कठिन कार्य है। 'धून' कहानी में लिट्टी का टुकडा देने के लिए सेठानी द्वारा भगेलुकियाँ से कहना तथा नाथू द्वारा टुकड़ा हाथ से छीनकर फेंक देना भगेलु की माँ द्वारा फिर से उसे लिट्टी का टुकड़ा देना । जिसकी विवेचना हमने द्वितीय अध्याय में की है।

'मधुपुर के सिवान का कोना' में मुन्नन पर ढाये गये जुल्म, 'बीच के लोग' कहानी में कसी हुयी जमीन से आलू को खोदना, उखाड़ना और उसको हथियाने का प्रयत्न करना आदि किसान तथा निम्नवर्ग पर जमींदारों द्वारा किये गये अत्याचारों को मार्कण्डेय ने अभिव्यक्ति दी है।

प्रत्येक जाति में विवाह संस्कार को शोभापूर्वक उत्सव के रूप में मनाया जाता है। विविध रस्मों से विवाह कार्य संपन्न होता है। श्यामा के विवाह में भी बहुत सारी रस्में साधोकाका के हाथ में कुछ भी न होते हुए निभायी जा रही है।

ग्रामीण अंचलों में कन्या के जन्म को अशुभ माना जाता है। निम्नवर्ग में तो हीन दृष्टि से उसे देखा जाता है। ऐसे अंधविश्वास और परम्पराबोध को मार्कण्डेय के कथासाहित्य में देखा जा सकता है पर वे उसकी तरफदारी नहीं करते हैं। यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि मार्कण्डेय अंचलों के विभिन्न विश्वासों, अंधविश्वासों, रुढ़ियों, का यथार्थ चित्रण करते है। निम्नवर्गीय जातियों के जन-जीवन को लेखक ने अपने उपनन्यासों में यथार्थ धरातल पर अभिव्यक्ति दी है। उनके जमींदारों द्वारा किए गए कठोर अत्याचार से उत्पीड़ित जनता का एवं उन अत्याचारों के विरुद्ध शोषण के प्रति संघर्ष की आवश्यकता का यथार्थ तथा प्रभावी चित्रण किया है। सुमित्रा त्यागी के विचारानुसार ''अंचलों में निम्न वर्ग का अन्याय के विरुद्ध प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण रुढ़िगत, धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं के विरोध एवं उन्नत्ति की आशा का प्रगतिशील दृष्टिकोण, पिछड़ेपन का अनुभव और जन जागृति की नवीन चेतना की अभिव्यक्ति आंचलिक उपन्यासों में यथार्थवादी

धरातल पर हुयी है।''(82)

4.24 मार्कण्डेय के कथासाहित्य में लोकगीत

संसार की सभी भाषाओं में 'लोकगीत' मिलते है। लोकसाहित्य साधारणतः लोकगीतों, लोकमानस को भी सुख-दुख, हर्ष-विषाद, संयोग-वियोग की तरल अनुभूतियों से आप्लावित कर देता है। डॉ.पूरन सहगल के विचार से ''लोकगीत हमारी युग युगांतर से पोषित संस्कृति के राजदूत है। लोकसंस्कृति के अक्षय स्त्रोत ये लोकगीत आज भी काव्य-विधा की किसी भी शैली से बढकर है। शिल्प में या अपनी सहजता, सुघडता और सुगमता में किसी भी स्तर पर अपने समय के श्रेष्ठ काव्य प्रतीक और प्रासंगिक है ये लोकगीत।''(83)

इन्होंने लोकगीतों को संस्कृति के राजदूत की उपमा दी है तो ब्रजरानी वर्मा ने उनको जंगली पेड़ कहा है, उनके विचार से- ''लोकगीत न पुराना होता है और न नया वह तो उस जंगली पेड की तरह है जिसकी जडें अतीत की गहराइयों में घुसी होती है परंतु जिसमें नित नई शाखाएँ-नई पत्तियाँ और नये फूल निकलते रहते हैं।''(84) हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार- ''लोकगीत वस्तुतः समाज सापेक्ष्य नहीं हो सकता है जिसमें रचयिता का निजी व्यक्तित्व नहीं होता। वह लोक-मानस से तादात्म्य रखता है और ऐसी व्यक्तित्वहीन रचना करता है कि समस्त लोक का व्यक्तित्व ही उसमें उभरता है और लोक उसे अपनी चीज कहने लगता है। वह लोक का अपना गीत होता है, जो परम्परा में पड़ जाता है और परम्परा उसमें समय समय पर अनुकूल परिवर्तन करती रहती है।''(85)

इसप्रकार लोकगीत लोकमानस से तादात्म रखता है। रच्नाकर्ता का निजी व्यक्तित्व उसमें उभगरता नहीं है बल्कि वह रचना समस्त लोक की होकर रह जाती है। डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय ने उसका प्रमुख लक्षण लयबद्धता माना है। ''लोकगीत का मुख्य लक्षण है गेयता या गीतात्मकता। वह लयात्मक कथन है जिसमें हृदय को बहा के जाने की क्षमता है। लोकगीत लोकमन की नाना आयामी अभिव्यक्ति है इसलिए वहाँ नवरस का संचार भी होता है। श्रृंगार, करुण, वीर और वात्सल्य रस की वहाँ प्रधानता देखी जाती है।''(86)

4.25 विवेच्य कथासाहित्य में लोकगीत

भारतीय संस्कृति मूलतः कृषिसंस्कृति है। गांव में आचार-विचार, रीति-रिवाज त्यौहार, कृषि संस्कृति से जुडे हुये होते हैं। किसानों पर सामंतों का प्रभाव बरसों से परंपरागत रुप से चला आ रहा है। लेकिन उनकी संस्कृति उनपर हावी

नहीं हो पायी है। किसानों एवं सामंतों की संस्कृति में अंतर है। तथाकथित उच्चवर्ग के बारे में शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है, ''ऊपर के वर्ग के लोग सामन्ती संस्कृति के भ्रष्ट रुप को विदेशी संस्कृति के फैशन मूलक अनुकरणात्मक तत्वों से मिला जुलाकर खाल की तरह ओढे हुए हैं। यह निर्जीव संस्कृति नाना प्रकार के माध्यमों से बेहतर संस्कृति के रुप में प्रचारित-प्रसारित होती रही है और पढा-लिखा वर्ग इसी के इर्द-गिर्द अपने घोंसलें बनाता है।''(87)

लोकसंस्कृति के अधिकतर तत्वों पर कृषि जीवन का असर पडा हुआ है। कृषक मूलत: जमीन एवं नदी तालाब से जुडा हुआ होता है। इसलिए उनके त्योहार भी प्रमुखत: मिट्टी एवं जल से संबंधित है। जैसे 'अग्निबीज' में जरई बान्धकर होता है- ''श्यामा कजली के दिन जब अपनी जरई बहाकर लौटती है तो हर साल सागर जरई बँधाने जरुर आता है। परिवार की हर बहन अपने भाई को जरई बाँधती है''(88) यह त्यौहार गोवा व महाराष्ट्र, कारवार आदि स्थलों पर सूत के धागे बांधकर मनाया जाता है, उसका स्वरुप आधुनिक संस्कृति में बदला होने पर भी उसमें प्रमुख तत्व धागा है। लेकिन ''बनारस से पूरब और उत्तर में पटना के पास तक किसान कन्याओं का रक्षाबन्धन जरई से ही होता है। नागपंचमी के दिन वे गाती बजाती तालाब के किनारे जाकर मिट्टी को पानी में बहा देती है और पूरे पखवारे के मन-प्राण के सिंचित, न जानें कितने गीतों और कथाओं से विभूषित जौ के हरे-हरे कोमल पत्तों का बन्धन लेकर घर लौटती है। वे इससे भाई को बाँधती हैं... कितना कोमल और भावभीना है यह बन्धन? वे भाई के दीर्घ जीवन की कामना करती हैं जिससे उनका बीरन संकट में सदा उनकी रक्षा करे।''(89)

इस लोकोत्सव की विशेषता और कहीं नजर नहीं आती। वहाँ के लोकसंस्कृति के तत्वों को मार्कण्डेय ने अपने कथासाहित्य में व्यक्त किया किसान की श्रम में आस्था होती है, पानी याने जीवन तथा उससे जुडी धरती माँ उनके लोकसंस्कृति के अभिन्न अंश है।

बजमा का पानी सबका पानी है, जिसकी वे लोग पूजा करते हैं। त्यौहार, ब्याह, शादी में भी इसका पूज्य स्थान है। उनकी जीवनदायिनी बजमा पर कोई संकट आने पर वे आमरण अनशन करने में पीछे नहीं हटते। बजमा उनके लिए पवित्र स्थान है, उसकी पूजा की जाती है तथा यह तालाब सब धर्मों जाति के लोगों के लिए समान रुप से खुला है। ''बजमा न जाने कितने दिनों से आप लोगों की अपनी पोखरी है। हमारी माताएँ इसकी पूजा करती हैं। हमारे तीज-त्योहार और ब्याह-शादी में भी इसका पूज्य स्थान है। हमारी लडकियाँ इसमें नहाती हैं

और जरई की मिट्टी काढती है।''(90) यह पोखर का धार्मिक महत्व होते हुए भी आर्थिक आमदनी का वह जरिया भी है। सागर बैकुण्ठी आदि का मछली मारकर पेट भरता है। धोबियों को कपडा धोने के लिए मानिकपुर ग्रामसभा से टिकट लगाने के प्रस्ताव पर गांववाले इकट्ठा होते है और 'बजमा का पानी सबका पानी' की साधोकाका के नेतृत्व में घोषणायें देते है। यथा-

''बजमा तोहरे चरन हम लागीं, ललन दुख काटा होना।
बजमा अंचरा पसार हम माँगी, ललन दुख काटा हो ना।''(91)

यह गीत औरते गुट गुट में गाकर बजमा को बचाने के लिए निकलती है। शोषकों के अन्याय और बेईमानी को नकारते हुए खेतिहर, मजदूर, निम्नवर्गीयों ने न्याय समता के लिए संघर्ष किया है जिसमें उनकी जीत हुई है।

प्रादेशिक आंचलिक परिवेश को प्रभावशाली एवं स्पष्ट रुप से चित्रित करने हेतु वहाँ के लोकोत्सवों के साथ-साथ श्यामा की शादी का 'अग्निबीज' उपन्यास में विस्तृत वर्णन किया गया है। सामंती संस्कृति के प्रतीक ज्वालासिंह के दबाव में आकर उसकी विवाह एक अनजान व्यक्ति से होता है। यह परंपरा हैं कि घर के बडे सदस्य विवाह तय करते है। वे ही सोचते है कि दोनों एकदूसरे के अनुरुप है, बीड़ी-सुलगाने का व्यसन तथा भविष्य के बारे में कोई बुनियादी विचार जिसके पास नहीं है ऐसे व्यक्ति से भविष्य के समुद्र में गोता लगानेवाली श्यामा का विवाह होना और रुढ़ियों, परंपरागत मान्यताओं के बोझ तले दबकर श्यामा का सारी रस्मों का निर्वाह करना एक प्रकार से अंचल की संस्कृति में नारी के महत्वहीन निर्बल होने का तथ्य स्वीकारना पड़ता है। शिवकुमार मिश्र ने इसी विचार को व्यक्त किया है- ''क्या लेखक इस पारंपरिक विश्वास के तहत् ही ऐसा करने को प्रेरित हुआ है कि भारतीय समाज में या परंपरित ग्रामीण समाज में नारी की नियति केवल सब कुछ को सहना ही है। अपने निरीह पिता और बीमार माँ की असमर्थता के नाते ही वह, इसके पहले कि अपनी सहज संभावनाओं के साथ विकसित हो ज्वाला सिंह की 'कृपा' का शिकार बन जाती है, उसका ब्याह तय कर दिया जाता है। अकेले में जी भर रो लेने के अलावा अपने जीवन के इस निर्णायक क्षण पर उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।''(92)

शादी के पहले होनेवाले लोकाचारों से बिदाई तक का वर्णन बनारस की शादी को जीवंत करा देती है। विवाहप्रणाली समाजव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है। विवाहसंस्कार द्वारा अंचल विशेष में स्त्री पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा पारिवरिक व्यवस्था का संयोजन किया जाता है। लोकाचारों में यह शक्ति है कि थोडी देर के लिए जातिभेद की दीवारें हट जाती है। हिराऊ की डुगडुगी, सोन्हू का सिंहा, नाईन का हल्दी का न्योता बाँटना, माँडो उठाने के लिए बाकर

का आना, हर जाति धर्म के लोगों का शादी में आना यह सूचित करता है कि विवाह के लोकाचारों की शुरुआत लगन से होती है लगन के बाद लडकियों को बाहरी समाज से काट दिया जाता हैं- लगन के दिन हल्दी के उबटन की मालिश और ब्याह से गीत शुरु होते है। श्यामा जब पतरी उतारने जाती है तब सुनीत खुली तलवार उसके सिर पर रखकर घर तक जाते है। दूसरे दिन नहछू-नहान होता है। लडकेवाले वर का मेटा लेकर आते है उसी में लड़के के नहान का किया हुआ पानी होता है। उसी से हल्दी-सनी वधु को नहलाते है। सबेरे मातृपूजन के वक्त ब्राह्मणियाँ लोकगीत गाती हैं जिसमें सिन्दूर का महत्व वर्णित है जिसके कारण उसे अपनी माँ तथा पिता के देश को छोड़कर जाना है।

''आँटन झोडलूँ, मैं पाटन छोड लूँ,
छोडलूँ मयरिया की गोद
एहि सेंधुरा के कारण बाबा
छोडलूँ मैं देस तिहार।''(93)

इस गीत में श्यामा यह महसूस करती थी कि शोषित कन्या का करुण आर्तनाद है। ''इन गीतों की रचना तब हुई होगी जब स्त्री ने अपनी वर्तमान सामाजिक नियति को स्वाभाविक मान लिया होगा। पुरुष-प्रधान समाज ने युगों तक उसके रोम-रोम को कुंठित करके उसे मात्र देह बना दिया होगा। मान-अपमान, विचार-अविचार का मतलब ही समाप्त कर दिया होगा और कालान्तर में बन्धन और गुलामी उसके स्वभाव का सहज हिस्सा बन गये होंगेय। कैसी विडम्बना है कि पुरुष के बिना वह कुछ नहीं उसका अपना कोई अधिकार नहीं। उसके घायल पक्षी की तरह तड़पते हुए मन का कोई मूल्य नहीं। उसकी दहला देनेवाली आकुलता को कोई मान्यता नहीं। सिन्दूर ही सबकुछ है, उसके जीवन में।''(94) और कभी समाज बदलने के बाद औरतों को उनका सहज, स्वाभाविक जीवन मिले तब इन गीतों ही से उनके हृदयहीन शोषण का सही इतिहास जाना जा सकेगा।

बारात-बारातियों का स्वागत, द्वारचार, शादी, कन्यादान, लावा परछन की विधि आदि का ही कुशलता पूर्वक प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है। सुनीत द्वारा बहन का दान हाथ से पानी की धार धीरे-धीरे बहाते हुए किया जाता है।

''गेडुआ उठावत भइया हथवा न काँपै,
टूटै न पनियाँ की धार,
दान करत बीरन छतिया न काँपै
जून धरम की लागि।''

बिना कंपित हुए धीरे-धीरे पानी गिराकर बहन का दान करना सुनीत के लिए कठिन कार्य था- इस लोकगीत अंचल में भाई-बहन के अटूट बंधन एवं

अंचल वासियों के रिश्ते-नातों की सहृदयता दर्शायी हैं।

इन लोकगीतों में गाँववासियों की सहज, सरल निष्कपट भावनायें व्यक्त होती है। लडकी अपने सिन्दूर के कारण बाबा का देश छोडकर परायी हो जाती है, विवाह की रस्में लोकगीत में व्यक्त भावनायें एवं नववधू की परंपरित ढंग से अपने घर-देहरी से बिदाई आदि भावभीने दृश्यों से पाठक भावविभोर हो उठता है।

विभिन्न लोकगीतों में अंचल की लोकरीतियाँ, लोकाचार व्यक्त होता है, लोकसंस्कृति के तत्व ही समाज में मनुष्य के सम्बधों एवं साहचर्य की भावना को अभी तक जीवित रख सके हैं। इन लोकगीतों के प्रयोग से अंचल के सजीव वातावरण की सृष्टि हुयी है। ''आंचलिकता को अधिक मुखर बनाने का कार्य लोग-गीतों की कुशल संयोजना द्वारा भी होता है। सभी आंचलिक उपन्यासों में लोक-गीतों की कड़ियां बिखरी हुई मिलती है। अवसरानुकूल होने के कारण इन गीतों का उपन्यास में रस-सृष्टि की दृष्टि से विशेष महत्व तो होता ही है, उत्सवों के नीरस विवरण इनके संयोग से सरस भी हो जाते है।''(95)

'हंसा जाई अकेला' कहानी में भी लोकगीत की धुन पर हंसा की आवाज गूँजी है-

''जब बेल्हमौलू जुलुम कहलू ननदी.... जग.... बरम्हा के मोहलू, बिसुन के मोहली सिवजी के बचिया नचौलू मोरु ननदी....जग।''(96)

उत्तर भारत में ग्रामीण जीवन की लय उनकी इस कहानी में मिलती है। लोकगीत के सुर में बहती जिन्दगी और लय में थिरकती हुई जिन्दगी का चित्रण इस कहानी में मिलता है। विवेकी राय के अनुसार ''हंसा जाई अकेला शीर्षक कहानी में लोकगीतात्मक कोमलता की छुवन है।''(97)

रेणु के 'मैला आंचल' में विभिन्न उत्सव-गीत, नृत्य-गीत, ऋतु-गीत, पूजा-गीत एवं वैयक्तिक सुखदुःखात्मक गीतों की अभिव्यक्ति हुई है। वैसे अभिव्यंजना मार्कण्डेय के कथासाहित्य में बडे पैमाने पर नहीं मिलती। मार्कण्डेय की 'अग्निबीज' में अभिव्यक्त लोकगीतों में संदर्भ चुनाव और तद्नुरुप अभिव्यक्ति इतनी गहरी है कि पाठकीय चेतना अनुभूतियों के सागर में तैरने लगती है और आम पाठक ने अगर उस प्रांत-परिवेश की यात्रा न भी की हो तो संवेदना के स्तर पर वह उस परिवेश को पात्रगत अनुभूति को अपने भीतर आत्मसात कर लेगा। आंचलिक कथा का प्रभाव नवगीत-विधा की तरह आम पाठकों पर अपनी अमिट छाप छोड देता है।

-o-o-o-

सन्दर्भ सूची : चतुर्थ अध्याय

1.	शिवकुमार मिश्र	:	दर्शन साहित्य और समाज	पृ.185
2.	शिवकुमार मिश्र	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता गोवा विश्वविद्यालय पंजिम	13/03/03
3.	आनंद प्रकाश	:	हिन्दी कहानी की विकास प्रक्रिया	पृ.117
4.	वेदप्रकाश अमिताभ	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण	पृ.95
5.	उषा डोंगरा	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का लोकतात्विक विमर्श	पृ.142
6.	वही	:	वही	पृ.145
7.	सुरेन्द्र प्रसाद	:	मार्कण्डेय का रचनासंसार	पृ.154
8.	सुरेन्द्र	:	मार्कण्डेय का रचनासंसार	पृ.42
9.	शिवकुमार मिश्र	:	आंचलिकता और आधुनिक परिवेश	पृ.115-116
10.	सुरेन्द्र प्रसाद	:	मार्कण्डेय का रचनासंसार	पृ.46
11.	जोसेप टी शिप्ले	:	वर्ल्ड लिटररी टर्म्स	पृ.337-38
12.	धीरेन्द वर्मा	:	हिन्दी साहित्य कोश	पृ.74
13.	दंगल झाल्टे	:	नये उपन्यासों में नये प्रयोग	पृ.29
14.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.37,160 166,182 162,169 189
15.	धीरेन्द्र वर्मा	:	हिन्दी साहित्य कोश	पृ.74
16.	शिवकुमार मिश्र	:	दर्शन साहित्य और समाज	पृ.185
17.	नामवर सिंह	:	इतिहास और आलोचना	पृ.17
18.	ज्ञानचंद्र गुप्त	:	आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प	पृ.21
19.	दंगल झाल्टे	:	नये उपन्यासों में नये प्रयोग	पृ.36
20.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि	पृ.204
21.	नगेन्द्र	:	साहित्य का समाजशास्त्र	पृ.21

22.	आदर्श सक्सेना	:	आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प	पृ.206
23.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.16
24.	वही	:	वही	पृ.37
25.	वही	:	वही	पृ.25
26.	वही	:	वही	पृ.41
27.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.19
28.	वही	:	वही	पृ.19
29.	वही	:	वही	पृ.20
30.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.17
31.	वही	:	वही	पृ.121
32.	जवाहर सिंह	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प-विधि	पृ.109
33.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.129
34.	वही	:	वही	पृ.107
35.	दंगल झाल्टे	:	नये उपन्यासों में नये प्रयोग	पृ.32
36.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.107
37.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.156
38.	मृणाल पाण्डे	:	स्त्री: देह की राजनीति से देश की राजनीति तक	पृ.18
39.	ज्ञानचन्द गुप्त	:	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना	पृ.122
40.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ. 156
41.	रोहिताश्व	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता	3/4/03
42.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.60
43.	वही	:	वही	पृ.82
44.	सियाराम तिवारी	:	नई धारा (लेख) दिसम्बर-जनवरी 1973	पृ.73
45.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.15
46.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.116
47.	वही	:	वही	पृ.117
48.	वही	:	वही	पृ.118

49.	ज्ञानचन्द्र गुप्त	:	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना	पृ.70
50.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.94
51.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.25
52.	वही	:	वही	पृ.25
53.	वही	:	वही	पृ.25
54.	जवाहर सिंह	:	हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प-विधि	पृ.110
55.	रमेश कुंतल मेघ	:	क्योंकि समय एक शब्द है	पृ.3
56.	विवेकी राय	:	हिन्दी कहानी: समीक्षा और संदर्भ	पृ.68
57.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.132
58.	वही	:	वही	पृ.136
59.	मार्क्स एंगेल्स	:	कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र	पृ.36
60.	रामविलास शर्मा	:	गाँधी, आम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ	पृ.343
61.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.49
62.	वही	:	वही	पृ.159
63.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.78
64.	वही	:	वही	पृ.78-79
65.	शिवकुमार मिश्र	:	सही इतिहास दृष्टि की पहचान : अग्निबीज कलम 82	पृ.15
66.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.267
67.	वही	:	वही	पृ.278
68.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.31
69.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.278
70.	ज्ञानचन्द्र गुप्त	:	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना	पृ.232
71.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.167
72.	ह. क. कडवे	:	हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति	पृ.19
73.	वेदप्रकाश अमिताभ	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य-संक्रमण	पृ.25

74.	ज्ञानचन्द्र गुप्त	:	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम-चेतना	पृ.195
75.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.12
76.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.132
77.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.36
78.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.37
79.	निरुपमा भट्ट	:	स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक हिन्दी कहानी	पृ.48
80.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.20
81.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.70
82.	सुमित्रा त्यागी	:	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में जीवन दर्शन	पृ.231
83.	पूरन सहगल	:	भाषा जनवरी-फरवरी-99	पृ.42
84.	ब्रजरानी वर्मा	:	आजकल- सितम्बर89	पृ.29
85.	धीरेन्द्र वर्मा	:	हिन्दी साहित्य कोश	पृ.594
86.	मृत्युंजय उपाध्याय	:	भाषा- मार्च-अप्रैल 2002	पृ.52
87.	शिवप्रसाद सिंह	:	आधुनिक परिवेश और नवलेखन	पृ.125
88.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.37
89.	वही	:	वही	पृ.37
90.	वही	:	वही	पृ.74
91.	वही	:	वही	पृ.73
92.	शिवकुमार मिश्र	:	सही इतिहास दृष्टि की पहचान : अग्निबीज	पृ.115
93.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.169
94.	वही	:	वही	पृ.170
95.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि	पृ.315
96.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.217
97.	विवेकी राय	:	हिन्दी कहानी : समीक्षा और संघर्ष	पृ.69

-o-o-o-

5. पुंडलीक नायक का कथासाहित्य : आंचलिक परिवेश एवं लोकजीवन

पुंडलीक नायक के कथा साहित्य में आंचलिक परिवेश एवं संस्कृति संबंधी विवेचन तृतीय अध्याय में किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में पुण्डलीक नायक के कथा साहित्य में उपलब्ध आंचलिकता और लोकजीवन संबंधी मूल्यांकन हमारा लक्ष्य है।

पुंडलीक नायक आम जन-जीवन के एक प्रतिबद्ध लेखक है। निम्नवर्ग के सुख-दु:ख, व्यथा, वेदना को व्यक्त करने के लिए उन्होंने लेखनी थामी है। गोवा में विगत लेखक आमतौर पर उच्चवर्ग के पात्रों तथा जमींदार एवं किसानों के संघर्ष पर कहानियाँ लिखते थे। उनकी जीवनचर्या, हावभाव, रहनसहन, स्वभाव आदि पर यथेष्ठ साहित्य रचा जा चुका था। कहीं-कहीं गोवा की प्राकृतिक सुषमा भी उनके साहित्य का विषय रहा है और एक उनका ज्वलंत विषय रहा था हिन्दुस्थान की स्वतंत्रता के उपरांत गोवा राज्य की मुक्ती संघर्ष का। तब अधिकांश रचनाकारों ने मुक्तिसंग्राम पर अनेकानेक कविताएँ तथा कहानियाँ आदि लिखी।

पूर्ववर्ती परम्परा से अलग हटकर गोवा की आंचलिकता तथा निम्नवर्ग के संघर्ष, नारी समानता तथा नारी-विमुक्ति पर लेखन करने का कार्य पुंडलीक नायक ने प्रारम्भ किया। निम्नवर्ग की दमित वेदनाओं, आशा-आकांक्षाओं को गोवा अंचल की विविधवर्णी छटाओं के साथ उन्होंने अभिव्यक्ति दी। परंपरा से चले आये हुये नीतिमूल्यों के तत्वों के साथ यथार्थ को मद्दे नजर रखते हुये पुंडलीक नायक जीवन के विविध प्रश्नों के साथ जूझते हैं।

आंचलिकता रुपी विवेचन उनके कथा साहित्य में उपर से लादा हुआ महसूस नहीं होता; बल्कि उनके कथा साहित्य में आंचलिक तत्व कहीं अंदर ही अंदर जीवित स्पन्दन बनकर उभर कर आता है। शिवप्रसाद सिंह ने आंचलिकता की व्याख्या जीवन-प्रसंगों और परिवेशगत विवेचन-निरुपण में ही संभाव्य मानी है। उनके विचारानुसार ''आंचलिक लेखक के पक्ष की सबसे बड़ी दलील यह हो सकती है कि आंचलिक जीवन की अभिव्यक्ति उसके लेखन कर्म की अनिवार्यता होती है। वह अपनी रचनाओं में वातावरण का महत्व स्वीकार करता है। यह वातावरण न केवल लेखक को, बल्कि पाठकों को भी निरन्तर प्रभावित करता रहता है। इसलिए आंचलिक लेखक का यह विश्वास होता है कि वह अपने को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से तभी व्यक्त कर सकता है जब उसका वातावरण, उसकी जनता और स्थान, परिवेश आदि के माध्यम से उसके भीतर से अपने को अभिव्यक्त कर सके ''(1)

कोंकणी के कथा समीक्षक लक्ष्मणराव सरदेसाय भी पुंडलीक नायक के कथासंग्रहों से उपर्लिखित विचारों की ओर निर्देश करते है। गोवा का वातावरण, यथार्थ उनकी कहानियों को अलग धरातल पर प्रस्तुत करता है। लक्ष्मणराव सरदेसाय के विचारानुसार - ''तांच्या कथांचे वातावरण हे कथांच्या बाकिच्या आंगानी इतले भरसून गेल्ले आसता कि ते वेगळे काडुंकूच येना, तरां-तरां रंगाचे पोड एकठांय विणून कारागिरान एक सुंदर लुगट तयार करचें तशें पुंडलिकाचे वातावरण ताच्या कथांच्या सगळ्या आंगांनी भरसून एकरुप एकजीव जाल्लें दिसता. हे वातावरण गाळ्ळे जाल्यार ताचे कथेतल्या प्रसंगाक अर्थ आनी म्हत्व उरना, असले हे वातावरण तयार करत आसताना पुंडलिक झाडां-पेडांचो, उदका पाटांचो, सावळ्यांचो, उजवाडाचो आनी काळखाचो, गोरवांचो आनी राखण्याचो शेतातल्या चिखलाचो, ल्हान-व्हड कितल्याश्याच गजालिंचो सरीस वापर करता.''(2)

जिसका हिन्दी में भावानुवाद है - ''उनकी कथाओं में परिवेश इतना एकरुप होता है कि हम उसको अन्य तत्वों से अलगा नहीं सकते। अलग-अलग रंगों के धागों को एकसाथ बुनकर वे उसका एक सुंदर वस्त्र तैयार करते हैं। इसी

प्रकार पुंडलीक की कथाओं का परिवेश कथा के अन्य तत्वों में एकरुप-एकजीव होता है। परिवेश को निकाल देने से 'घटना का अर्थ' एवं उसका महत्व नहीं रहता। इस वातावरण निर्मिती में पुंडलीक नायक पेड़ पौधे का, पानी की धारा का, छाया और धूप छाँहका, प्रकाश एवं अंधेरे का, गाय और गोखरुओं का, ग्वालें और गडरियों का, कीचड का- ऐसी छोटी मोटी कितनी ही बातों का वे परिवेशगत अंकन में वे उपयोग करते है।''हरिश्चन्द्र नागवेकर के अनुसार ''गोंयची गांव-जीण आनी गोयांतले सामाजिक बदल हांचे उत्कटतायेन आनी बारीक साणीन दर्शन घडोवन हाडपी अच्छेव''[(3)] जिसका हिन्दी में भावानुवाद है - ''पुंडलीक नायक कृत 'अच्छेव' उपन्यास गोवा के ग्राम वासियों के जीवनसंघर्ष तथा तत्सम्बन्धी चेतना के परिवर्तन का एक उत्कृष्ट तथा सूक्ष्मता से वर्णन करने वाला'' महत्वपूर्ण आंचलिक उपन्यास है। पुंडलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में ''अंचल विशेष की बहुत सघन बुनावट रुपायित हुयी है और इस बुनावट में लोकसंस्कृति के नैसर्गिक रंग बहुत ही टटके-चटख और आकर्षक है।''[(4)] वस्तुतः वेदप्रकाश अमिताभ रेणु की आंचलिकता की प्रस्तुति पर व्यक्त किये हुये विचार पुंडलीक नायक की आंचलिकता को सटीक ढंग से अभिव्यक्त करते है।

पुंडलीक नायक का कथासाहित्य समाज की अनेकानेक समस्याओं को परिवेशगत परिवर्तन, सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों को, औद्योगिक विषमताओं आदि को रेखांकित करता है। भारत की स्वतंत्रता (1947) के बाद करीब 15 वर्षों के उपरांत गोवा स्वतंत्र (19 दिसम्बर 1961) हुआ। पुंडलीक नायक के प्रथम दोनों कहानी संग्रहों 'पिशांतर' और 'मुठय' में 1960 से 1975 तक के गोवा के परिवेश का चित्रण उपलब्ध है। उनमें राजनैतिक समस्यायें व्यक्त न होकर बहुत सी सामाजिक समस्याओं का जिक्र ही उपलब्ध होता है। तीसरे कहानी संग्रह 'अर्दूक' में गोवा की स्वतंत्रता के बाद के परिवर्तन, सामान्य जन में आयी चेतना, भाटकार के अत्याचारों का प्रत्युत्तर देने के लिए प्रतिबद्ध जनसमूह, राजनैतिक भ्रष्टाचार आदि विषयों को अभिव्यक्ति मिली हैं।

गोवा में विकास हेतु अनेकानेक प्रयत्न किए गये। तरह-तरह की योजनायें बनायी गयी। इन योजनाओं को अविकसित ग्रामों तक पहुँचाने में शासकीय धरातल पर प्रयत्न किये गये। 'भाग्योदय' कहानी इन्हीं सारे संदर्भों पर प्रकाश डालती है। जिस गाँव में बिजली एवं पानी की सुविधायें नहीं पहुँच पायी है; जिसमें बिजली मंत्री खुद आकर उद्घाटन करनेवाले है। उस गाँव के सरपंच एवं पंचों की धांधली अभिव्यक्त हुयी है। जिसके घर में मंत्री महोदय जानेवाले है, उनको घर साफसुथरा रखने एवं अच्छे कपडे पहनने के लिए कहना, बैठके बुलाना आदि अनेक प्रसंग

दर्शकों, पर्यटकों, पाठकों और आलोचकों के सामने उद्घाटित होता है। सुधी पाठक जानते है कि पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में 'अच्छेद' उपन्यास के अंतर्गत आंचलिकता और आधुनिकता के द्वन्द्व को अभिव्यक्ति मिली है। उनके 'दायज' नामक लघुउपन्यास में मानवीय मूल्यों, जीवनमूल्यों, विश्वास, घृणा, और नैतिक श्रेष्ठता को चित्रित किया गया है। पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में जीवन के विविध परिदृश्य कलात्मक सृजना के रूप में उपलब्ध होते है। वे केवल वर्गसंघर्ष और वर्ग चेतना के प्रगतिशील आस्थाओं वाले रचनाकार नहीं है बल्कि वे अस्तित्ववादी और मनोविश्लेषणवादी विचारधारा के अनुरुप 'वसंतोत्सव' उपन्यास रचते है, जिसमें विभिन्न आयु और एषणाओंवाले पात्र सक्रिय है। कहना न होगा कि 'वसंतोत्सव' उपन्यास में शहरी और ग्रामीण जनजीवन में व्याप्त यौन कुण्ठाओं का दिग्दर्शन हुआ है।

'मुठय' नामक कहानीसंग्रह में विवेच्य कथाकार ने विभिन्न सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है, वे गोवा के जनजीवन में व्याप्त भाटकार (जमींदार) और मुंडकार (खेतीहर-किसान-श्रमिक) के आपसी वर्ग-संघर्ष का सूक्ष्मता से चित्रण करते हैं। पुंडलीक नायक ने विषय वस्तु और रूप (Content and Form) के द्वन्द्वात्मक सम्बन्धों में कथ्य-सामग्री, विषय वस्तु के अन्तर्गत पात्रों के मनमस्तिष्क में व्याप्त अंतर्द्वन्द्व को महत्व दिया है। वे रूपवादी और कलावादी रचनाकार नहीं है बल्कि जीवन संघर्ष के बीच, मार्मिक पक्ष के, हृदयगत संवेदनाओं के, मानवीय स्पंदनो के सक्षम रचनाकार हैं। उनके कथासाहित्य में सामाजिक परिवेश, पारिवारिक सम्बन्धों के परिवर्तित रूप, स्त्री-पुरुषों के बदलते हुए सम्बन्ध, चेतनागत परिवर्तन के परिदृश्य सशक्त रूप से उद्घाटित होते हैं।

5.11 सामाजिक परिवेश

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य के बिना समाज अपूर्ण है एवं समाज के अस्तित्व के बिना मनुष्य भी अपूर्ण होता है। मनुष्य की आशाएँ, इच्छाएँ, उसकी कल्पनाएँ, स्वप्न, संघर्ष आदि का निर्माण सामाजिक संबंधों में ही सम्भव हैं। व्यक्ति अपनी असीम इच्छाओं के आधार को एक दूसरे के सम्पर्क एवं अंत:क्रिया से पूर्ण कर पाता है, जिसमें परिवेश का भी महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ. ज्ञानचंद गुप्त के अनुसार - ''मनुष्य किसी भी समाज का सदस्य हो, वह अपने परिवेश के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता। परिवेश ही उसकी सामाजिक रीति-नीतियों, उत्सवों/त्यौहारों, गीतों, संघर्षों, रहनसहन की विधियों, आय-व्यय के साधनों, आदि विभिन्न क्रिया-व्यापारों का नियंता होता है। जैसे समुद्र के तटवर्ती प्रदेश

के वासियों का जीवन वहाँ की रीति-नीतियों से ही चलता है, वे लोग अपने ढंग से अपना जीवन चलाते हैं।[7]

वर्तमान राजनीतिक प्रदूषण से व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य सामाजिक संबंधों की पवित्र धारा सूखने लगी है। वर्ग-संघर्ष की समस्या अंचलों की प्रमुख समस्या के रुप में उद्घाटित हुयी है। समाज आज भी अनेक वर्गों में बँटा हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात् भी समाज में परिवर्तन नहीं आ पाया है। शोषक के चंगुल से मुक्ति पाने के लिए प्रयत्नशील है। पुंडलीक नायक की 'जैत' कहानी में भाटकार लक्ष्मीकांत के अन्याय का विरोध गांव के नागरिक तथा युवावर्ग का प्रतिनिधि विजय एवं उसके मित्र आदि करते है - ''आयज सांजवेळ पासुन दीस तुजे आसले आता आमचे दीस सुरू जाल्यात. तुज्या आंगणांत पळय रातिचो दीस करपाचे बळ आयज आमचे थांय आसा. तुज्या मुखार आमी ते सिद्ध करुन दाखयला. ह्यान फुडें तुज्यां भुजांतले शक्तिचो वापर चिंतून तुज्या भुजांइतकीच शक्त आनीक शंबर भुजांन आसा हांचो विसर पडूंक दिनाका।''[8] जिसका हिन्दी अनुवाद है - आज शामतक तुम्हारे दिन थे, अब हमारे दिन शुरू हुये है। तुम्हारे आँगन में देखो, रात को दिन में तबदील करने का सामर्थ्य हमने सिद्ध किया है। आगे तुम अपनी शक्ति का उपयोग सम्हलकर करना, तुम्हारी भुजाओं जैसा बल; - और सौ लोगों के भी भुजाओं में है इसको तुम भूल न जाना।

जनसमूह के सामने जन प्रतिरोध को लक्ष्य कर भाटकार माफी माँगता है लेकिन निर्धन जनता, बिना मेहनत, मुआवजे के घर बैठे कुछ कर नहीं पाती। हालातों से परेशान, जानु नायक पात्र फिर से भाटकार के घर पर मजदूरी करने चला जाता है। शोषक वर्ग के चंगुल से छूटने का प्रयत्न तो करते है लेकिन अपने-आपको मुक्त कराने में असमर्थ रहते है। कहना न होगा कि आर्थिक विपन्नता मनुष्य की नैतिकता एवं विरोध की शक्ति को खोखली कर देती है।

पुंडलीक नायक की एक अन्य कहानी 'भागेलपण' जिसमें भी भाटकार के शोषण का प्रतिरोध जाहिर होता है। बच्चे को पढ़ाने की इच्छा से गोदुलो भाटकारशाही का विरोध करता है। वह सबकुछ त्यागकर गाँव एवं 'भाट' छोडकर चला जाता है।

गोवा की सामाजिक व्यवस्था में गाँवो में प्रचलित जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध पाये जाते है। जिसमें भोजन संबंधी व्यवहार एवं यौन संबंधों की स्थापनाओं से सम्बन्धित प्रतिबंध भी मिलते है। उच्च जाति के लोग निम्नजाति के व्यक्तियों के साथ बैठकर भोजन नहीं करते हैं, तथा उनका जूठा नहीं खाते है। पुंडलीक नायक की 'वळख' [10] कहानी में निम्नवर्ग के ड्रायव्हर

की पहचान (निम्नवर्ग से सम्बन्धित) दादा और काजुलों के सम्बन्धों में दरार पैदा करती है। उसका भोजन अलग से पत्तल पर परोसा जाता है। निम्नवर्ग के पात्र द्वारा भोजन की हुयी जमीन पर गोबर से लिपकर शुद्ध किया जाता है। जिसका चित्रण इस कहानी में पाया जाता है। गोवा में जाति-व्यवस्था के प्रचलनानुसार भोजन सम्बन्धी प्रतिबंध की भाँति ही जनसमाज में यौन सम्बन्धों के प्रतिबन्धों का भी प्रचलन पाया जाता है। जो पुरूषा अथवा महिला सजातीय विवाह का पालन न कर विजातीय पुरूष अथवा महिला से सम्बध स्थापित करते हैं तो उसे समाज में सम्माननीय स्थान प्राप्त नहीं होता। वे समाज द्वारा निन्दा एवं उपेक्षा के पात्र बन जाते हैं। 'पारज' कहानी में बुधों एवं श्यामल के बीच उत्पन्न प्रेमसम्बन्ध में बुधो पलायन करता है। बुधो ग्वाल है, और कुलागर में काम करनेवाला एक मामूली श्रमिक है। श्यामल ब्राह्मण की लड़की है। दोनों के प्रेमसम्बन्ध विकसित होने से पूर्व बुधो का सामाजिक मान्यताओं के कारण पलायन दिखाया जाता है जो प्रकारान्तर से जाति-व्यवस्था के खिलाफ कदम उठाने में असमर्थता दर्शाता है।

दो धर्मो से संबंधित पात्रों के बीच के यौन सम्बन्ध भी सामाजिक उपेक्षा पाते है। 'पाज्ज' कहानी में विवाहित स्त्री विठाबायजी (चार बच्चों की माँ भी है) द्वारा मुस्लिम ट्रक ड्राइव्हर सादिक का पलायन तथा 'अच्छेव' उपन्यास में केंसर पात्रा का इसाई ड्राइव्हर मानुयेल के साथ भाग जाना आदि हमारी साम्प्रदायिक विषमताओं एवं जाति-पाँति का मान्यताओं को दर्शाता है। लोग टिप्पणी कर सकते है कि वासना के आगे सारा धर्म-कर्म भूल गये है। कहीं-कहीं अवयस्क लडकियाँ अपनी सुरक्षा की खोज में कतिपय व्यभिचारी भेडियों की शिकार भी बन जाती है जिसका उदाहरण 'मोगाची धूव' कहानी में दृष्टव्य है।

5.11 पारिवारिक व्यवस्था का परंपरागत एवं परिवर्तित स्वरुप

विश्व के प्रत्येक समाज परिवार नामक संस्था का कोई न कोई स्वरुप अवश्य पाया जाता है। भारतीय ग्रामीण समाज में भौगोलिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुरूप शताब्दियों से संयुक्त परिवार - व्यवस्था का प्रचलन रहा है। ''अपनी वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप परिवार समायोजित हो रहे हैं। संयुक्त-परिवारों की इस समायोजन-प्रक्रिया को परिवारों के विघटन के अर्थ में लिया जाता है, क्योंकि परिवार अपनी सारी सामाजिक शक्तियों में विभाजित हो रहे हैं। आदर्शो, मूल्यों एवं परस्पराओं के स्खलन से संयुक्त परिवार की व्यवस्था एवं संगठन टूट रहा है।'' (11) कहना न होगा कि गोवा में भी संयुक्त परिवार विखंडित हो रहे

है। कोंकणी के यशस्वी कथाकार पुंडलीक नायक ने भी गोवा-अंचल के संयुक्त परिवार की समस्या को उनके लड़ाई, झगड़े एवं कलह, घर को बचाने की 'आवो' की इच्छा-शक्ति आदि को चित्रित किया है। गोवा में मंगलोरी-खपरैलों से घर हर साल छवाने होते हैं, आवो तथा उसके पति द्वारा कभी इसी प्रकार का मिट्टी की भित्तियों का घर बांधा गया था। जिसको छवाने की घटना में तीनों पुत्रों का एक दूसरे के प्रति अविश्वास, जेठानी-देवरानी का आपसी संघर्ष, शिक्षित शिवा द्वारा परिस्थिति की समझ, माँ द्वारा आनेवाली बरसात में घर बचाने की कोशिश तथा बिजली गिरने से उसकी मौत, घर की भित्तियों का गिरना आदि विवेचन से पुण्डलीक नायक ने संयुक्त परिवार के विघटन, माता और संतान के सम्बन्धों में तनाव-संघर्ष को चित्रित किया है। एक तरफ से संयुक्त परिवारों को तोडने में घर की युवा-बहुओं ने ही अपनी क्रियाशीलता का परिचय दिया है तो दूसरी तरफ 'आवो' नामक वृद्धा माँ द्वारा मरते दम तक परिवार एवं घर को बचाने में वृद्ध नारी कार्यरत है।[(12)]

पुंडलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में पूंजीवादी-आधुनिकता की प्रक्रिया ने कोळंब गाँव के वातावरण को सामान्य नहीं रहने दिया है। मामूली स्वार्थ भी तूफान उठाने के लिए काफी होता है। आधुनिकता और अर्थोपार्जन की होड़ से गाँव की सामूहिकता, एकता, सांस्कृतिक उच्चता अब शेष नहीं रही है। युवक-युवतियाँ, नर-नारी, माँ-बेटी, बाप-बेटे सभी ने अपने-अपने अलग रास्ते अपनाये है। पूंजीवादी व्यवस्था और आर्थिक लाभ की दृष्टि से कोई किसी के सुख में कोई एक-दूसरे से मुक्त हृदय होकर नहीं मिलता ना ही किसी के दुःख में शरीफ होना जरुरी समझता है।

भारतीय गाँवों में पहले दूसरे की बहन-बेटी को अपनी बहन-बेटी स्वीकार किया जाता था। लेकिन औद्योगिक परिवेश के बदलाव के बाद अब ऐसी स्थितियाँ दृष्टिगोचर नहीं होती है। स्वार्थी, लोलुप, पतनोन्मुखी सामाजिक शक्तियाँ हमारे परम्परागत सामाजिक मूल्यों को खोखला किये दे रही है। इसका बड़ा ही निर्मम और यथार्थपरक चित्र 'अच्छेव' में प्रस्तुत हुआ है। 'अच्छेव' उपन्यास गोवा के जन-जीवन को बेबाक ढंग से पेश करता है। मूल्यों के विघटन तथा जीवन-सम्बन्धों के बदलते संदर्भों का उसमें सटीक वर्णन उपलब्ध है। यह कहना समीचीन है कि उच्चकोटि की सर्जनात्मकता और लेखकीय दृष्टि की व्यापकता का परिवेश ही रचना की सौद्देश्यता को बरकरार रखता है। लेखक ने पात्रों के बाह्य संदर्भों के साथ आन्तरिक सम्बन्धों को, बदलाव को, चारित्रिक विघटन को सहजता से चित्रित किया है। ''सम्बन्धों में बदलाव जहाँ आर्थिक सामाजिक है वहाँ यह मानसिक कम नहीं है। बाह्य परिवर्तनों के साथ-साथ आभ्यन्तरिक बदलाव को सहज ही

देखा जा सकता है।''(13)

मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था के विकास और आधुनिकता की होड़ में मानव-मूल्यों को खात्में की बात 1844 में बतलायी थी। उनके ही शब्द है कि- ''पूँजीपति वर्ग ने जहां पर भी उसका पलड़ा भारी हुआ, वहाँ सभी सामन्ती, पितृसत्तात्मक और काव्यात्मक संबंधों का अन्त कर दिया, उसने मनुष्य को अपने 'स्वाभाविक बड़ों' के साथ बांध रखनेवाले नाना प्रकार के सामंती सम्बन्धों को निर्ममता से तोड़ डाला; और नग्न स्वार्थ के, ''नकद पैसे-कौड़ी'' के हृदयशून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा संबंध बाकी नहीं रहने दिया। धार्मिक श्रद्धा के स्वर्गोपम आनन्दातिरेक को, वीरोचित उत्साह और कूपमंडूकतापूर्ण भावुकता को उसने आना पाई के स्वार्थी हिसाब-किताब के बर्फ़ीले पानी में डुबा दिया है। मनुष्य के वैयक्तिक मूल्य को उसने विनिमय मूल्य बना दिया है, और पहले के अनगिनत अनपहरणीय अधिकारपत्र द्वारा प्रदत्त स्वातंत्र्यों की जगह अब उसने उस एक अन्त:करणशून्य स्वातंत्र्य की स्थापना की है जिसे मुक्त व्यापार कहते हैं। संक्षेप में, धार्मिक और राजनीतिक भ्रमजाल के पीछे छीपे शोषण के स्थान पर उसने नग्न, निर्लज्ज, प्रत्यक्ष और पाशविक शोषण की स्थापना की है।''(14)

सामाजिक जन-जीवन में नारी विश्व का अर्द्धांग ही नहीं बल्कि महत्वपूर्ण अंग है, गाँव में अधिकांशत: नारी संकोची व अशक्षित होती है। वह अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ और मर्दों द्वारा सतायी हुयी विवश पात्रा के रूप में हमारे सामने आती है। 'अर्दूक'(15) कहानी की नायिका उर्मिला की अंदरूनी छटपटाहट, कुछ करने की क्षमता होते हुए भी पतिद्वारा प्रताडित, अपने बच्चे की मृत्यु से विव्हल होकर उर्मिला आत्महत्या करती है।

'काणी एका मांजराची'(16) कहानी में रघु की भाभी अपने जेठ द्वारा होनेवाले अत्याचार को सहन करती है। बलात्कार से गर्भवती होने पर भाभी तीनों बार अपने गर्भ की हत्या करने के लिए मजबूर है। 'बळजबरी' कहानी में जनी पर हुआ बलात्कार नारी की असहाय, अगतिक- मौनावस्था, वेदनाभोगी स्थिति को दर्शाता है।(17) उपर्युक्त कहानियाँ इस मार्मिक एवं दारुण सत्य का उद्घाटन करती है कि स्वातंत्र्योत्तर दौर में समाज के बदलते परिवेश में नारी की स्थिति आज भी ग्राम अंचलों में वहीं है जो आज से वर्षों पूर्व परतंत्र गोवा में रही है।

आंचलिक जीवन के भीतर कहीं-कहीं स्थितियों में बदलाव महसूस किया जा रहे है। सामाजिक जड़ता, बन्धन, रुढ़ियों के शिकंजे और शोषण के दायरे क्रमश: टूट रहे हैं। 'अच्छेव' उपन्यास में विवाहित रुक्मिणी के बाबलों से शारीरिक सम्बन्ध 'माड' कहानी की पात्र साळू के रात में ड्राइवर के साथ यौन संबंध, 'पाज्ञ' कहानी में विठाबाय का सादिक के साथ भाग जाना आदि विवेचन एवं परिप्रेक्ष्य

में रुढ़ियों तथा जड़ता, काम-विकार सम्बन्धी मान्यतायें टूटती हुयी नजर आती है। 'अच्छेव' उपन्यास में देवकी द्वारा पति के जीवित रहते हुये नानू के मृत्युपरांत सौभाग्यलंकारों को मिटाना सदियों से चली आयी हुयी रुढ़ियों के बदलाव को और बदलते मूल्यों को व्यक्त करता है।

रामदरश मिश्र का कथन उचित है कि- "समय तो गतिशील है और इस गतिशील समय के प्रभाव से अंचल कैसे अछूता रह सकता है। इसलिये अपने-अपने परिवेश में यहाँ के जीवन भी नये होते चलते है; इनसे भी नयी-नयी समस्याएँ और सम्बंध उभरते चलते हैं।"(18) वास्तव में गाँवों में परिवर्तनवश तथा सभ्यता-संस्कृति का प्रभाव कहीं नकारात्मक रूप में और कहीं सकारात्मक रूप में आंचलिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर पड़ा है।

5.12 आर्थिक एवं राजनीतिक परिदृश्य

साहित्यिक कृति में मानवीय संवेदनायें जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही राजनैतिक आर्थिक दृष्टि भी। लेखक अगर राजनैतिक चेतना एवं परिवर्तन से अछूता रहकर साहित्य सृजन करता है तो वह युग सापेक्ष्य और काल सापेक्ष्य संदर्भों के विवेचन नहीं कर पाता है। देवेश ठाकुर ने भी कहा है कि "जीवन की अभिव्यक्ति के लिए जिसप्रकार मानवीय संवेदनाएँ आवश्यक है, उसी प्रकार राजनैतिक-आर्थिक दृष्टि भी। क्योंकि जीवन इन सबसे मिलकर बना है। हाँ, यह कृतिकार के कौशल पर निर्भर करता है कि वह मानवीय संवेदनाओं के साथ जो व्यक्ति की मूलत: अन्तरंग प्रवृत्ति की परिचायक है, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियों का संयोजन किस प्रकार और किस अनुपात से करता है। इस संयोजन में ही लेखक की सफलता निर्भर करती है।"(19)

पुंडलीक नायक के कथा साहित्य में भी राजनैतिक चेतना के आवश्यक प्रभाव दृष्टिगोचर हैं। उनके कथासाहित्य में राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट चरित्रों तथा समाज की शोषित जनता के प्रति पक्षधरता को अभिव्यक्ति मिली है।

मुक्ति के पश्चात गोवा में सामाजिक और औद्योगिक परिवर्तनों ने प्रांत की आर्थिक स्थिति को पूरी तरह प्रभावित किया है। नवीन उद्योग धन्दों की स्थापना हुई। उद्योगधंदों में प्रशासकीय नीतियों के कारण प्राइवेटायझेशन (निजीकरण) हुआ। फलस्वरूप हमारी आर्थिक व्यवस्था पूँजीपतियों के हाथ में चली गयी। भूमिहीन किसानों को सरकार द्वारा कृषि के लिए भूमि प्रदान की गयी। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन होने के कारण कृषि-उद्योग का सरलीकरण हुआ। लेकिन कहीं कही गाँवों में शक्तीशाली जमींदार ही जमीन पर कब्जा जमाये हुये थे। जमीन कायदा (कूल) सरकारी कागजों पर ही रहे। वास्तव में भाटकार शाही खत्म नहीं हुयी। पुंडलीक

नायक की अधिकांश कहानियाँ भाटकारशाही को बेनकाब करती है। 'जैत' कहानी में लक्ष्मीकांत भाटकार के यहाँ काम करनेवाले पच्चीसों मजदूर है जिनकी रोजीरोटी उन्हे लक्ष्मीकांत भाटकार से मिलती है। इसी 'भागलेपण'[20] कहानी में भाटकारशाही दिखायी है जिसमें नारीयलों के डंठल का हिस्सा लगाकर बेटे अथवा पत्नी को काम पर भेजने के लिए कहा जाता है। भाटकार होने का सपना पूरा करने के लिए 'बळी'[21] कहानी में उसका पुत्र बँक में गबन करता है, 'घर' कहानी में भी भाटकार घर पर खपरैल डालने से मना करता है। ये ऐसी कहानियाँ है जिसमें गोवा के आर्थिक परिवेश पर भाटकारों के प्रभाव को सटीक रूप से दर्शाया गया है। यह वह शोषित वर्ग है जो श्रम करने के बावजूद जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति ना कर पाता है ना कर पायेगा।

औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरूप गोवा प्रदेश में भी खनिज व्यवसाय शुरू हुआ। खेतीहरों ने अपनी कृषि-धरती को उपजाऊ बनाना त्यागकर 'मेहनत कम पैसा ज्यादा' मिलने की वृत्ति से खनिज व्यवसाय में भागीदारी या मजदूरी को अपना लिया है। खेतिहर मजदूरों और श्रमिकों ने खेतों को वैसे ही बंजर छोड़कर, अपने परिवार सहित खदानों पर काम करना शुरु किया जिसमें बैलगाडियों, बालमजदूरों और नारी-श्रम का भी उपयोग किया गया। पुंडलीक नायक ने 'अच्छेव' उपन्यास में जिसका वर्णन किया है। पंडरी अपनी पुरखों की खेती 'कल धान रोपेंगे' कहकर खनिज व्यवसाय अपनाने चला जाता है तब उसकी पत्नी विरोध करती है लेकिन उसका प्रत्युत्तर रुक्मिण को थप्पड के रूप में मिलता है। आर्थिक धरातल को ऊँचा उठाने की दृष्टि से बढ़ाये इस कदम में पंडरी को आनेवाले 'अच्छेव' (कलह-संघर्ष) की आहट सुनाई नहीं पडती। अपने बीवी बच्चों को काम पर लगाने के बाद वह थोड़े दिनों के लिए कोळंब का सबसे धनवान व्यक्ति तो बन जाता है लेकिन उसके बदले में अपना बहुत कुछ खो देता है- खेती, अपनी पत्नी का शील-चरित्र, बच्ची केंसर का भविष्य एवं नानू की जान। पंडरी अत्यधिक लिप्सा और प्रगति की हवस में सब कुछ खो देता है। लोहपत्थर,(Iron-ore) धूल में काम करने से स्वयं पंडरी और पत्नी अनेकानेक व्याधियों से जर्जर हो जाते है। खेती बंजर बनती जाती है, जलप्रदुषण, जंगलों का विनाश होने से बरसात भी समय पर नहीं आती, यह पूरे कोळंब ग्राम-अंचल का दृश्य है।

पुंडलीक नायक ने 'अच्छेव' उपन्यास में विशिष्ट कालखण्ड के आर्थिक-सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में युगीन प्रभावों के तथा वहाँ के निवासियों की बदली हुयी मानसिकता को चित्रित किया है। 'अच्छेव' उपन्यास में वहाँ की प्राकृतिक परिवेश एवं लोकसंस्कृति के साथ-साथ सामाजिक चेतना और आर्थिक स्थिति के चित्रों को समन्वित करने पर ही आंचलिकता अपने पूर्ण उत्कर्ष बिंदु

पर रेखांकित हुयी है।

औद्योगिक उत्पादन शैली के प्रवेश से ग्रामीण अंचलों में एक प्रकार से आधुनिकता का ही प्रवेश हुआ है। परंपरा से चले आये हुये साधनों को निति विशेष व्यक्त किया गया है। कोळंब में परंपरा और आधुनिकता के संघर्ष को अधिक तीखेपन से महसूस किया जा सकता है। 'अच्छेव' उपन्यास में आधुनिकता का प्रभाव न केवल वेशभूषा साज-श्रृंगार पर है बल्कि नैतिकता एवं रिश्ते-नातों पर भी है। शिवप्रसाद सिंह के निम्नकथन में सच्चाई है कि "आधुनिकता या आधुनिक संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए ग्राम जीवन कहीं ज्यादा उर्वर और उपयुक्त क्षेत्र है। यह बात आधुनिकता को फैशन मानकर चलनेवालों के लिए शायद आश्चर्यजनक या निरर्थक लगे, पर मैं ऐसा मानने में कोई संकोच अनुभव नहीं करता।"(22)

'अच्छेव' उपन्यास में आधुनिकता के प्रवेश से विपन्नता आती है लेकिन पुंडलीक नायक इस आर्थिक विपन्नता पर कोई विकल्प नहीं सुझा रहे हैं बल्कि 'कोळंब' अंचल में परिव्याप्त खनिज व्यवसाय को अपनाने से सामाजिक आर्थिक विघटन को ही कथात्मक विन्यास में दर्शाते है। आधुनिक काल में बेरोजगारी तथा अभावग्रस्तता संबंधी आर्थिक दृष्टिकोण को पुण्डलीक नायक की विभिन्न कहानियाँ सामने लाने का प्रयास करती है। 'भोवर'(23) कहनी में अनिल की बेरोजगारी के कारण अभिव्यक्त मानसिकता, 'भाग्योदय' कहानी में अनिल का नौकरी के लिए दर-दर घूमना, 'जैत' कहानी में विजय, अनंत, शिवा आदि नवयुवकों का इधर-उधर घूमना आदि विवेचन पढे-लिखे नौजवानों को बेरोजगारी वाले परेशान रुप को दर्शाता है। जहाँ आर्थिक तंगी से कहीं-कहीं झूठ का सहारा लिया जाता है, वहाँ हम जीवन मूल्यों को बिखरते हुए महसूस कर सकते हैं।

पुण्डलीक नायक की कहानियों में सामाजिक-अंधविश्वासों, एवं परम्पराओं का भी चित्रण हुआ है। 'कासय' और 'खळ' कहानियों में भी आर्थिक तंगी होने से एक ओर पारंपरिक विश्वास को तोड़ा जा रहा है तो दूसरी ओर अंधविश्वास के कारण पागल होने की स्थिति चित्रित हुई है। आर्थिक अभाव एवं आर्थिक विषमता का यह रुप गोवा की समाज व्यवस्था में आज भी दृष्टिगोचर होता है जिसमें भाटकार धनवान होते जा रहे है और निम्नवर्ग अपनी शोषित एवं दीन-हीन अवस्था से अंदर ही अंदर धँसता चला जा रहा है। एकतरफ शिक्षित होने से मेहनत मजदूरी का काम निंदनीय माननेवाला, White coller job का सफेद पोशी चहेता और अपनी मिट्टी की महिमा को न जाननेवाला, मूल्यों का हनन करनेवाला निराश युवा वर्ग है, तो दूसरी तरफ आंबील एवं पानी पीकर गुजारा करने वाले, मूल्यों की रक्षा करनेवाला, दूसरों के द्वार पर जाकर लाचारी न करनेवाला 'आबू' जैसा वृद्ध वर्ग भी कथासाहित्य में चित्रित हुआ है जो हमारी आस्था एवं

संघर्ष चेतना का मूर्त पात्र है। अतः कहा जा सकता है कि पुंडलीक नायक ने दो पीढ़ियों की मानसिकता को, परिवर्तित मूल्य चेतना को भी संवेदनात्मक धरातल पर रचा है, जो कि अपने अंचल, प्रदेश और संस्कृति के विविध रुपों का कलात्मक दिग्दर्शन भी है। जिसे हम विरोधों की एकता (Unity of opposition) भी कह सकते हैं लेकिन इन्हीं विरोधी वर्गों, प्रवृत्तियों, अभिलाषाओं और अन्तःसंघर्ष संबंधी चित्रण से हमारे सामाजिक जनजीवन का 'समग्रता' वाला रुप आकार ले पाता है। जिसे जार्ज लूकाच ने समग्रतावाले प्रतिमान से विवेचित किया है।[24]

5.13 सांस्कृतिक परिवेश

आंचलिक परिवेश के अन्तर्गत भूमि, जन-जीवन तथा संस्कृति की त्रिधारा मिलकर क्षेत्रीय जीवन रुपायित होता है और इसमें चित्रित मनुष्य क्षेत्रीय संस्कृति का प्रतिनिधि पात्र होता है। नगीना जैन के अनुसार ''आंचलिक उपन्यास का लक्ष्य सम्पूर्ण भौगोलिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है।''[25] ब्रजविलास श्रीवास्तव ने भी ''भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं का चित्रण करना आंचलिक उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य माना है।''[26] आंचलिक उपन्यासों का संबंध ज्यादातर पिछडे या अज्ञात क्षेत्र एवं जन-जातियों से है उसकी संस्कृति भी अन्यों से भिन्न होती है। इसलिए उस क्षेत्र के सांस्कृतिक परिवेश को उद्घाटित करना जरूरी है। धर्म, लोकविश्वास आदि तत्वों को आगे के अनुच्छेद (5.2) में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इसलिए सांस्कृतिक परिवेश को प्रभावित करनेवाले अन्य घटकों का यहाँ जायजा लिया जा रहा है। संस्कृति में गाँव के भौगोलिक परिवेश, लोगों के आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान आदि व्यवहार को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है।

पुंडलीक नायक के आंचलिक कथा साहित्य में भौगोलिक परिवेश की सजीवता कथानक को पुष्ट करती है तथा पात्रों को मुखर बनाती है। चरित्र की मानसिकता को तथा चेतना को दिशा देने का कार्य परिवेश करता है। नदी-पर्वत, बन-लताएँ, पशु-पंछी मिलकर उस व्यक्ति के परिवेश को संपूर्णता प्रदान करते है। गोवा की संस्कृति को यहाँ की भौगोलिक विशेषतायें उजागर करने में सक्षम है। मानचंद्र गुप्त के अनुसार ''इन भौगोलिक विविधताओं एवं विशालताओं के आंगन में ही हमारी भारतीय संस्कृति के तन्तु बिखरे पडे हैं। लेखक कहीं पठार के हृदय में झाँकता है, कहीं वन के मन में विचरण करता है, तो कहीं समुद्री तूफान के झोंके सहता है। उसने प्रकृति के कोमल और उग्र दोनों स्वभावों को बडी ही मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है।''[27] पुंडलिक नायक ने गोवा की प्रादेशिक

संस्कृति का अपने कथासाहित्य में सतर्कतापूर्वक गुम्फन किया है। उसे यथार्थ रुप देने के लिए, उन्होंने वहाँ के अंचल एवं आंचलिक परिवर्तन का, व्यक्ति विशेष की संवेदनाओं के उद्घाटन की सफल योजना अपनी कलाकृतियों में सृजन की दृष्टि से की है। इसलिये डॉ. किरण बुडकुले का कथन उचित है- ''अच्छेवा' सारक्या गांवगिऱ्या वाठांरात प्रगटपी कथानकाक निसर्गाच्या निर्भेळ वातावरणाची पोशक साथ जाय ती आसल्यास तांतुतलो प्रादेशिक वा थळावो आशय जीवो तिगतलो।''(28) हिन्दी भावानुवाद है- ''अच्छेव उपन्यास सरीखे में, ग्रामीण जनजीवन के (कोळंब) स्थल पर उद्घाटित होनेवाले कथानक को, निसर्ग का परिवेश का सुदृढ साथ, आधार चाहिए, और अगर वह है तो (अच्छेव प्रति में) उससे आंचलिक वा प्रादेशिक आशय जीवित रुप में रहेगा।''

भौगोलिक परिवेश का कोळंबवासियों के जन-जीवन पर गहरा प्रभाव है। जो खेती खनिज व्यवसाय से पूर्व धन से समृद्ध थी वह अब औद्योगिकरण से बंजर हो गयी है। 'कोळंब' की प्रसन्न सुबह खनिज व्यवसाय से अब बदल गयी है। खेती व्यवसाय के वक्त सुबह का वर्णन करते हुये लेखक ने मुर्गे की बाँग से गाय-गोरुओं के घंटानाद, मंगलोरी खपरैलों से निकलने वाले धुआँ, भाकरी (जवारी की रोटी) बनाने प्रक्रिया आदि से एक प्रफुल्लित वातावरण चित्रित किया है। खनिज व्यवसाय से परिवर्तित जीवन में सुबह अब मुर्गे की बाँग से नहीं होती बल्कि रात की शिफ्ट खत्म करने के लिये कंपनी का भोंपू बजने से होती है। धूल का साम्राज्य चारों ओर छाया हुआ है। खनिज पत्थरों के गडगड आवाज रातभर जारी रहती है। भारतीय ग्रामव्यवस्था के शांत और रमणीय जीवन पर इस खनिज (औद्योगिक) व्यवसाय ने प्रहार किया है। भारतीय संस्कृति का मूल्य तत्व ग्रामजीवन आज अव्यथित हो रहा है। खेती में धान पकने के बाद ब्राह्मण, धोबी, नाई तथा अन्यों को धान देने का रीतिरिवाज अब खत्म होने लगा है।

'अच्छेव' उपन्यास में पुंडलीक नायक ने मानवीय सम्बन्धों एवं सांस्कृतिक मान-मूल्यों के खातमें को कलात्मकता से दर्शाया है। भारतीय जन-समाज कृषिप्रधान संस्कृति का एक विशिष्ट अंग रहा है। खेती-फसल के पश्चात् जब खलिहानों में धान-अनाज आ जाता है तब कृषि खेती से इतर व्यवसाय-धंदों से जुड़े हुये लोगों- नाई, धोबी, कुम्हार, शिक्षक, पंडित-पुजारी, तेली, लोहार आदि को उपज का एक हिस्सा दिया जाता था। जिसका साक्ष्य हम प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास से लेकर फकीर सिंह सेनापती (उड़िया भाषा), पन्नालाल पटेल (गुजराती भाषा) विश्वनाथ सत्यनारायण (तेलगु भाषा) आदि के साहित्य में देख सकते है। औद्योगिक उत्पादन शैली में विशेषकर गोवा प्रदेश के खनिज व्यवसाय ने हमारे पारंपारिक मान-मूल्यों को अपनी पूँजीवादी व्यवस्था की विकृतियों से खत्म कर दिया है।

कार्ल मार्क्स ने भी कभी कहा था- ''जिन पेशों के सम्बन्ध में अब तक लोगोंके मन में आदर और श्रद्धा की भावना थी, उन सब का प्रभामण्डल पूँजीपति वर्ग ने छीन लिया। डाक्टर, वकील, पुरोहित कवि और वैज्ञानिक, सभी को उसने अपना उजरती मजदूर बना लिया है।''(29)

सार रुप में कहा जा सकता है कि 'अच्छेव' उपन्यास में विभिन्न ऋतुओं के वर्णन तथा बदलते हुये प्रकृति के दृश्यों को लेखक अपनी निरीक्षण शक्ति के बल पर सूक्ष्मता से चित्रित करता है।

पुंडलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में हिन्दू कॅलेण्डर के अनुसार चैत्र से फागुन तक मनाये जाने वाले त्यौहारों तथा उत्सवों को अभिव्यकित मिली है। ''पुण्डलीक नायक को भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि रचनाकार और संयुक्त परिवार के विघटन से आहत एवं आस्था शील मानस का कथाकार माना जा सकता है। उन्होंने आधुनिक रचनाकारों की तरह, विशेषकर मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्रयादव की तरह आधुनिक मना बनकर जनवरी-फरवरी .... दिसंबर माह की घटनाओं और प्राकृतिक परिवेश का हवाला अपनी कृतियों में नहीं दिया है बल्कि 'अच्छेव' उपन्यास में चैत्र-वैशाख जेठ की प्राकृतिक सुषमा एवं गर्मी तथा आषाढ़-सावन भादों की वर्षा- का जिक्र प्रसंगानुसार किया है। अश्विन,कार्तिक मार्गशीर्ष की शीतलता और फागुन के पतझड , होली (वसंत) का त्यौहार शिगमोत्सव उनकी रचनाओं में विभिन्न जात्राओं, पर्वों, त्यौहार और नृत्य प्रसंग में उभर कर लाते है। 'प्रेमजागोर' कहानी और 'अच्छेव' उपन्यास के प्राकृतिक वर्णन तथा वसंतोत्सव कहानी की यौनाकांक्षाएँ उन्हे भारतीय भावभूमि और संस्कृति का संवाहक प्रमाणित करती है।''(30) सार रूप में कहा जायेगा कि पुंडलीक नायक के कथा साहित्य में गोवा प्रदेश की संस्कृति, जीवनशैली और प्रादेशिक मान्यताएँ मूर्त रुप में अभिव्यक्ति पाती है।

5.14 धार्मिक परिदृश्य

आंचलिक परिदृश्य में जहाँ एक ओर सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवेश हावी रहता है तो दूसरी ओर धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन भी आबाधित प्रवाह के रूप में सक्रिय रहता है। कोई भी प्रादेशिक अंचल विभिन्न धर्म, जाति और वर्ग के लोगों की निवास स्थली होता है। सदियों से साथ रहते रहते उनके आपसी सम्बन्ध प्रगाढ हो जाते हैं तथा वे एक दूसरे के देवी-देवताओं के प्रति गहरी श्रद्धा रखने लगते है। गोवां में 'गोंयचे फेस्त' (गोवा की जात्राएँ) जितना ईसाईयों के जीवन का अविभाज्य घटक है उतना यह हिन्दूओं के लिए भी अपना प्रिय उत्सव है। उनका श्रद्धास्थान है, ''शिवोली का जागर'' जैसे बिना हिन्दु और

ईसाईयों के एकत्रित हुये वह उत्सव ही नहीं लगता। वैसे तो महानगरीय जीवन में वैज्ञानिक अविष्कारों ने वर्तमान दौर में धर्म के पारम्परिक एवं प्राचीन रुप को बदल दिया है। पुराने रीतिरिवाज, संस्कार, धार्मिक रुढ़ियाँ, अन्धविश्वास हमारे औद्योगिक विकास के मार्ग में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। लेकिन अंचलों में जनजीवन अभी भी धार्मिक परम्पराओं के अनुसार जारी है।

धार्मिक उत्सव एवं मेले

अनेक तीर्थ स्थलों पर धार्मिक मेले लगते है। जहाँ श्रद्धालु लोग दूर दूर से आते है। पुंडलीक नायक की कहानी 'अग्निदिव्य' कहानी में जात्रा का वर्णन किया है। इस जात्रा की विशेष बात यह है कि यहाँ भक्त गण जलते हुए अंगारों पर नंगे पाँव रखकर चलते है। विभिन्न जातियों के अनेक लोग तालाब में नहाकर आते हैं जिसकी भावाभिव्यक्ति है- ''तळयेर न्हावन अग्नीभक्त वयर आयले, कपलाक गंधाची नामां काडून एका फाटोफाट एकले-जात्रेतलो सगळ्यांत म्हत्वाचो आनी निमाणों भाग सुरू जालो. एका फाटोफाट एक मागीर चोम्या-चोम्यानी अग्नीभक्त होमखणांत देवले आनी पेट्टे इंगळे माङ्डीत देवळांत धावले परंपरे प्रमाण भटान दिल्लें देवाचे तिर्थ आनी प्रसाद घेवपाक''(31) जिसका हिन्दी भावानुवाद है- ''तालाब में नहाकर अग्निपूजक भक्त ऊपर आये। मस्तक पर चंदन-गंध का टीका लगाकर वे एक के बाद एक जत्रा(मेला) में शामिल हुए।अंतिम और महत्वपूर्ण भाग शुरु हुआ, एक के पीछे एक और बाद में झूंड के झूंड अग्निभक्त होमकुंड में उतर गये। वे होमकुण्ड के जलते हुए अंगारों पर नंगे पैर चलकर बाद में मंदिर में प्रवेश करने लगे। परम्परानुसार उन्होंने ब्राह्मण के हाथों से ईश्वर का पूजा-तीर्थ एवं प्रसाद ग्रहण किया।

यहाँ मेले में अग्निभक्तों की महिमा वर्णित है लेकिन व्यवहार में उनकी निरर्थकता पर कहानीगत वर्णन में प्रकाश डाला गया है। श्रद्धा से हम अग्निभक्तों को पूजनीय मानते हैं। लेकिन झोपड़ी में लगी आग से, कस्तुरी मौसी के छोटे पोते को वह अग्निभक्त बचा नहीं पाता है। वह अग्निभक्त संस्मरण सुना रहा था वह अग्निदिव्य करने हेतु अग्निकुंड के अनुरुप अंगारे बनने की प्रतीक्षा करता है। पुण्डलीक नायक ने धार्मिक प्रवृत्तियों का विरोध नहीं किया है बल्कि व्यवहार में उसकी असफलता एवं निरर्थकता को चित्रित किया है। 'अच्छेव' उपन्यास में गोवा की लोकसंस्कृति के अनुसार 'सत्यनारायण' की पूजा-रसी आदि उत्सवों का वर्णन मिलता है। तालाब पर आयोजित सत्यनारायण की पूजा, उसमें शरीक होने वाले नावेली एवं वळवय के लोग, पावणी दोडामार्ग के मोचेमाडकर का दशावतारी नाटक आदि का वर्णन स्वाभाविक तथा रसात्मक बन पड़ा है। गणेश-चतुर्थी के नौ दिनों

के बाद कोळंब गांव में बारसी का आयोजन वार्षिक परंपरानुसार होता है। नावेली, आमोणे, वळवय, पाळी, उसगाव, रुमड, करंजाळ, आडपथ, घोंघरे आदि गाँवों से लोग आते हैं। शाम में बारस होने के बाद रात को सारे गाँवों के लोगों को भोजन परसा जाता है। बारस के अन्तर्गत एक टोकरी में चावल का गुड्डा बनाकर उसका विद्रुप रुप बनाया जाता है। जिसमें उसको देखने से आमदर्शक के मन में डर पैदा होता है। बाद में घाडी (ओझा-तांत्रिक) के माध्यम से 'सांगणे' (प्रार्थना) करने के बाद वाद्यों के आवाज में उसे छोड़ने के लिए नदी के किनारे लोग चले जाते है तभी उस गुड्डे से बदबू आने लगती है। और आबू और घाडी देखते है तो गुड्ड़े में कीड़े पडे हुये है।[32] लोकाचार की मान्यतानुसार लोगों का विश्वास रहता है कि बारस अगर ठीक हुई तो खेती पानी गोरु, पेड-पौधे ग्रामवासी खुशहाल जिन्दगी जी सकते है। अन्यथा उनके जनजीवन पर विपरीत परिणाम हो सकता है। उसी वर्ष आमोणे (गाँव) के घाडी (ओझा-तांत्रिक) का पगला जाना और 'आबू की मृत्यु से दर्शाया है कि कोळंबवासी इन पारम्परिक लोक मान्यताओं में विश्वास करते आये हैं। ऐसी प्रथाएँ और लोक संस्कृति संबंधी रीति-रिवाज उनके जीवन के अविभाज्य अंग है।

5.15 लोकविश्वास-रुढ़ि- परंपरा

लोकाचार-कुलाचार, व्रत-उत्सव एवं अन्धविश्वासों के श्रद्धापूर्वक पालन कों ही अपना धर्म समझने वाले ग्रामीणों में परिवर्तन के लिए आग्रह एवं साहस की कमी होती ह। 'अच्छेव' उपन्यास में इसी के परिणाम स्वरूप सामाजिक-आर्थिक प्रगति में बाधाएँ उत्पन्न होती है। अंचल वासियों की मान्यता नुसार परम्परागत धार्मिक व सामाजिक विश्वासों का उल्लंघन करना पाप होता है और पाप का प्रायश्चित होना ही चाहिए। अंचलो में यह लोकाचार रुपी धार्मिक विश्वास है कि मानव जीवन में प्रत्येक सुखदु:ख की उपलब्धि का दाता ईश्वर वा परमेश्वर है उसे कोई अनादि, अनंत शक्ति भी कहता है। इस तरह ईश्वर में अत्याधिक विश्वास को दर्शनशास्त्र की भाषा में ईश्वरवाद की संज्ञा भी दी जाती है।

गोवा में लोकाचार और अंधविश्वास संबंधी मान्यतायें आज भी कायम है। ईश्वर के कोप से बचने के लिए उनमें विश्वास रखा जाता है जिन्हें हम ईश्वरवादी या अंधविश्वासी कह सकते है। गोवा के आंचलिक प्रदेशों में इनका पलडा आज भी भारी है। इस तरह पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में पारस्परिक अंधविश्वासों और धार्मिकता के नाम पर चलनेवाले लोकाचार व पाखण्डो का चित्र धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को सजीव बनाता है।

'भिकारो' कहानी में वेरें गाँव के अनंत (विष्णुभगवान) की जात्रा का

वर्णन मिलता है जिसमें वेरें की अनंत की पालकी 'सावय' गाँव क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण मंदिर में आती है। रात के सात बजे के करीब भिकारो पात्र के घर के पास आती है। वहाँ पर वार्षिक पद्धति एवं परम्परा से तोरण बांधे जाते है और पालकी आने की राह देखते हुये दिये जलाये जाते है। पालकी के साथ आनेवाले लोग 'हरी रे मेरे पांडुरंगा'(33) गीत गाते हुये आते थे। साथ ही पटाखे और बम्ब आदि की आवाज कानों में गूँजती थी। पालकी हर एक घर के तोरण के नीचे रुकती थी वहाँ उसपर प्रसाद-फूल आदि चढ़ाये जाते थे। नैवेद्य-तीरथ आदि दिया जाता था और हरदास के अभंग 'सोनियाचा दिवस आजी अमृते पाहिला' से वातावरण भक्तिभावना से परिपूर्ण हो जाता था।

भिकारों की माँ को भिकारो के शारीरिक विकास होनेवाले और मानसिक विकास न हो पाने की चिंता सताये जाती थी। वह उसके अच्छे भविष्य की कामना करते हुये उसे पालकी के नीचे से निकालती है लेकिन उस टोने-टोटके का परिणाम भिकारो को मानसिक दृष्टि से सक्षम नहीं बना सकता और न ही वह बहुत लम्बी आयु जी पाया। सतरह बरस के भिकारो की मृत्यु हो जाती है तो लगता है कि ईश्वर में आस्था और विश्वास की बात व्यर्थ है। मनुष्य के जीवन चक्र को कोई अवरुद्ध नहीं कर सकता।

पुण्डलीक नायक की एक अन्य 'म्हज्या जन्माची गजाल'(34) कहानी में व्यभिचार से जन्मे तीन आँखों वाले बालक को महादेव का अवतार बनाकर उसकी माँ पैसा कमाती है और झुण्ड के झुण्ड लोग उनके गाँव से ही नही बल्कि पडोस के गाँवों से भी उस तथाकथित महादेव का दर्शन करने निकल पड़ते है। पुण्डलीक नायक ने प्रकारान्तर से सूचित किया है कि आम चेतना धार्मिक अंधविश्वास के आगे परिस्थिति का सही आकलन करने की शक्ति तथा सत-असत् संबंधी विवेक भी खो देती है।

ग्राम एवं अंचलवासियों का भूतप्रेत आदि में विश्वास होना एक सामान्य बात हैं। गोवा के ग्रामीण समाज में ईश्वरवाद एवं बहुदेववाद के अतिरिक्त आत्मवादी विचारधारा भी साधारण तथा प्रचलित है। हिन्दू-समाज में पापपुण्य की कल्पना सामान्य बात है तथा मरने के उपरान्त मोक्ष या सद्गति प्राप्त करना, जो सद्गति प्राप्त न कर सके वह भूतप्रेत बनकर धरा पर विचरण करता है तत्सम्बन्धी लोकविश्वास और लोकोक्ति आम प्रचलन की बात है। 'अच्छेव' में आबू की मृत्यु के बाद सन्तानहीन होने से उसकी अंत्येष्ठि विधि समुचित रुप से नहीं हो पाती है। हिन्दू धर्म एवं प्रथा के अनुसार उसकी लाश को चिता पर रखकर जलाना चाहिए लेकिन मास्तर, बाबुसो और शंकर आदि लोग खड्डा खोदकर उसे दफना देते हैं तथा उसपर मिट्टी डाल देते हैं जो क्रिश्चियन लोगों के दफनाने की आम प्रथा है। गाँव

की औरतों को यह महसूस होता है कि गाँव के लिए आबू के त्याग उसकी अच्छी विचारप्रणाली से सभी का भला होने की बात रही है। प्रत्येक घर के पुरुषों को उसकी अंतिम विधि में शरीफ होना चाहिए था। लेकिन उनकी एक दिन की मजदूरी चली जायेगी इस उद्देश्य से कोई गया नहीं। इसलिए आबु कहीं भूत बनकर तालाब के पास विचर रहा होगा। कोळंब गाँव-अंचल की औरतें आपस में कहती है कि ''हय गे, भूत तेजे, तो वचना आसलो तळ्यार, पयल्या कोंब्यासादार, दांडो वाजयतालो तो हाये आयकला म्हाज्या कानांनी, आगे बाये भिरांत मगे पोरातारांक, शी बाये, जितेपणी तशे सतायले, आता अशे भूत जावन निपद्री अशेच खय''(35) जिसका भावानुवाद है- हाँ भूत है उसका, वह सुबह मुर्गे की बाँग पर तालाब पर जाता था, उसके डण्डे की आवाज मैंने कानों से सुनी है। अरे बाप रे बच्चों को डर रहेगा। छीऽऽ छी जीवितावस्था में वैसे ही सताया, आबू मरकर हमें सतायेगा भूत बनकर हमें सतायेगा बिना बालबच्चे वाले निःसन्तान लोग ऐसे ही होते है।'' 'अच्छेव' उपन्यास में लेखक ने इससे पहले ही संकेत किये हैं कि आबु रोज सुबह डंडा लेकर तालाब पर जाता था। आज जब मास्तर आबु की मृत्यु के बाद तालाब पर यों ही डण्डा लेकर चला गया है तो भ्रमवश यह औरतें भूत मान रही हैं।

गोवावासियों में धार्मिक एवं लोकाश्रित भावनाओं का परम्परागत रुप पाया जाता है। लेकिन उनमें अब परिवर्तन भी आ रहा है। धार्मिक उत्सव, भूत-प्रेत सम्बन्धी पुरातन मान्यताएँ अब उन्मूलित हो रही है तथा नवीन धारणाएँ एवं मान्यताएँ उसका स्थान ग्रहण कर रही हैं। धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में आर्थिक-वैज्ञानिक कार्य-कारण अपना प्रभाव बढा रहे हैं तथा श्रद्धा एवं विश्वास के तत्व क्षीण होते जा रहे हैं। लेकिन उनको अब भी भारत के विभिन्न गावों में पाया जा रहा है। ज्ञानचन्द गुप्त के विचारानुसार उनमें नये स्वर रहे है- ''धार्मिक अंधविश्वासों और रुढ़ियों के बावजूद गाँवों में धार्मिकता की एक नयी मानसिकता उभर रही है। ग्रामपरक उपन्यासों में आये विभिन्न वर्णनों के आधार पर स्पष्ट रुप से कहा जा सकता है कि वहाँ अब धार्मिक प्रभुत्व के स्थान पर सांसरिक दृष्टिकोण विकसित हो रहा है। अब वह आधुनिक हो गया है। लोग किसी कार्य के धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य के स्थान पर अब अर्थ-लाभ ही से परिचालित होते हैं। ऐसे वर्णन अन्यान्य उपन्यासों में प्रस्तुत हुए हैं, अर्थ-लाभ के लिए धार्मिक-कार्य को बिलकुल तिलांजलि दे दी जाती है और कहीं ये कार्य भारस्वरूप निबाहे जाते है। भाग्यवाद के स्थान पर कर्मवाद का उदय, परम्परागत मान्यताओं के स्थान पर बौद्धिकताजन्य वैचारिकता का उन्मेष, धार्मिक कट्टरता के स्थान पर धर्म-निरपेक्षता, धार्मिक संगठनों में शैथिल्य-भावना तथा कर्मकाण्डों से निरंतर उदासीनता पनप रही है जिसे ग्रामीण परिवेश के नये स्वर कहा जा सकता है''(36)

कहना न होगा पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में इस नये स्वरों को बहुलता से पाया जाते हैं उनकी 'कासय' नामक कहानी में मछुआरे समाज की रुढ़ियों तथा परंपराओं पर (आर्थिक विपन्नता के कार्य कारण) आघात किया है। वासु को भिले कछुअे की श्रद्धा से पूजा की जाती है। लेकिन परिस्थितिवश उसे कछूएँ को बेचकर अपने बच्चों के पेट में दानापानी डालना पडता है। यहाँ पाप पुण्य की धारणा आर्थिक विपन्नता के कारण बदल जाती है।

सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश के अनुसार धार्मिक जीवन में बदलाव अवश्यम्भावी होता है। आम जनता में रुढ़ि, परंपरा, अन्धविश्वास, लोकविश्वास, सामाजिक परिवर्तन के अनुरुप अपने आप परिवर्तित होते रहते हैं। साथ ही अंचल विशेष में मनाये जानेवाले अधिकांश उत्सवों के धार्मिक महत्व के साथ-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व भी जुडा हुआ होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लोगों के वैचारिक एवं व्यावहारिक जीवन में परिवर्तन आया है। गाँवों में अधिकार बोध की भावना पनपी जिसके फलस्वरूप लोगों में नवीन चेतना जाग्रत हुयी है। इस चेतना ने नवीन संस्कृति के ताने-बाने बुनना शुरू किया। यह कहना समीचीन होगा कि ''विभिन्न आंचलिक उपन्यासों की रचना के पीछे स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की प्रेरणा है, अतः उनमें उठायी गयी आंचलिक समस्याओं में प्रगतिशील नयी चेतना का प्रवेश भी हो गया है।''(37)

शोध प्रबन्ध की अपनी सीमा मे षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत मार्कण्डेय और पुण्डलीक नायक के कथासाहित्य में उपलब्ध परम्परा और आधुनिकता वैचारिक स्थगन और परिवर्तन की समानता और विषमता का चित्रण किया जायेगा।

5.2 पुंडलीक नायक का आंचलिक कथासाहित्य : लोकसंस्कृति

लोकसंस्कृति ही वह मुख्य आधार है जिसके माध्यम से व्यक्ति ज्ञान, कला, नैतिकता, प्रथाएँ एवं परम्पराएँ आदि सीखता है। भारतीय संस्कृति का मूल एवं सच्चा रूप हमें ग्रामजीवन की लोकसंस्कृति में प्राप्त होता है। ज्ञानचन्द्र गुप्त के अनुसार ''संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य के उस समस्त घटनाक्रम से है जो वह एक सामाजिक सदस्य के रूप में सोचता है विचारता है अथवा विभिन्न क्रिया कलाप करता है। दूसरे शब्दों में वे समस्त काम, तौर-तरीके, आचार-विचार जिन्हें वह अपनी पूर्व-पीढ़ी के हस्तान्तरण के रुप में प्राप्त करता है, तथा जिन्हें सांस्कृतिक स्वीकृति प्राप्त है संस्कृति है।''(38) दरअसल संस्कृति गत आचरण और लोकविश्वास

परम्परा से प्राप्त होते है और वे हमारे जनसमाज के अनथक लोकविश्रुत निजन्धर legend भी होते हैं।

कभी-कभी संस्कृति और सभ्यता को पर्याय मान लिया जाता है। बच्चनसिंह ने इसको व्याख्यायित करते हुए कहा है कि "सभ्यता की तरह संस्कृति शब्द पर्याय के रुप में प्रयुक्त होते रहे हैं। पर इधर दोनों शब्दों के क्षेत्र और अर्थ की सीमाएँ निर्धारित कर दी गयी है। सभ्यता का संबंध मनुष्य के बाह्याचार से है यानी समाज में उठने-बैठने, खाने-पीने, बात-व्यवहार आदि से है तो संस्कृति का संबंध मानसिकता से है- उसके सर्जनात्मक क्रिया-कलापों तथा तज्जन्य सौन्दर्य बोधात्मक अभिरुचियों से है, सभ्यता का अर्थ एक प्रकार से व्यवहारगत अर्थ में संकुचित है तो संस्कृति से तात्पर्य हमारे जातीय अवचेतन लोकविश्वास और सौन्दर्यबोधी अभिशंसाओं से है।(39)

लोकसंस्कृति ही लोकजीवन की सहीं पहचान होती है। यह युगों से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दाय के रुप में प्राप्त होती है। आंचलिक कथासाहित्य वास्तव में लोकसंस्कृति के शाश्वत मूल्यों और सहज जीवन विधाओं की निजता का महत्वपूर्ण उपक्रम होता है। शशिभूषण सिंहल ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "आंचलिक उपन्यास समाज के क्षेत्रविशेष के सांस्कृतिक परिवेश को प्रस्तुत करता है। सामाजिक उपन्यास में देश के सामान्य सांस्कृतिक जीवन की झाँकी मिलती है किंतु आंचलिक उपन्यास प्रमुख सांस्कृतिक धारा में स्थित द्वीप सरीखे स्थिर प्राय: स्वत: पूर्ण अंचलों की लोकसंस्कृति को अपना कथ्य बनाता है।"(40) अगर हम विभिन्न प्रदेशों के आंचलिक साहित्य को एकत्र कर अध्ययन करें तो वह हमें भारत देश की आंचलिकता को 'समग्रता' में भारतीयता का दिग्दर्शन कराने वाला उपक्रम होगा। प्रस्तुत शोधकार्य मार्कण्डेय और पुण्डलीक नायक के कथा साहित्य के माध्यम से प्रकारान्तर से उत्तर भारत और दक्षिण भारत की लोकसंस्कृति संबंधी समानता और विषमता संबंधी वैशिष्ट्य का ही प्रमाण कार्य होगा।

5.21 आंचलिक कथासाहित्य में लोक-तत्व

किसी भी देश-काल एवं युग में प्रचलित 'लोकतत्व' साहित्य का शाश्वत एवं चिरस्थायी तत्व होता है। डॉ. सत्येन्द्र ने लोक एवं लोकतत्व के विषय पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते है वे लोकतत्व कहलाते है।"(41) जिसमें जनसमाज की परम्परागत मान्यताओं

रीतिरिवाज, रहनसहन, तीर्थ-मेले, जादू टोने आदि का जीवनदर्शन मूल रुप में मिलता है। इंदिरा जोशी के अनुसार ''मानव मात्र के मानसिक जगत में मूल लोकमानस की स्थिति प्रसुप्त भाव से रहती है जिसमें पुरातन काल से चली आनेवाली धारणाओं, विश्वासों एवं संस्कृति के विभिन्न आवरण भी इन लोकमानस तत्वों को निर्मूल करने में असमर्थ सिद्ध होते है।''(42) जिसकी व्याप्ति साहित्य को लगातार जीवंतता एवं मौलिकता प्रदान करती है।

आंचलिक उपन्यास साहित्य को लोकसंस्कृति के नियामक तत्वों ने जीवंतता एवं मौलिकता प्रदान की है। इन तत्वों में प्रमुखतः लोककथा, लोकगीत, लोक-नृत्य, लोककला आदि रुप मिलते हैं। कहना न होगा कि लोकजीवन में प्रचलित लोकगीत, लोककथाएँ, लोकवार्ताएँ, लोकोक्तियाँ और लोकधुने, लोकनृत्य जैसी अनेक विधाएँ वेद ऋचाओं की तरह महत्वपूर्ण है।

विवेच्य कोंकणी रचनाकार पुंडलीक नायक ने अपने कथा साहित्य में गोवा के लोकसंस्कृति के अभिन्न अंगों को व्यक्त किया है। अंचलवासियों की आशा, आकांक्षा, आस्था-विश्वास, पुरातन रुढ व्यवहार आदि को लोकतत्वों के माध्यम से उन्होंने अभिव्यक्ति प्रदान की है। लोककथाएँ- लोक मानस में चेतना एवं अचेतन स्तर पर प्रचलित कथाएँ लोककथाएँ होती है जो परंपरागत होती है। वे एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति द्वारा मौखिक परम्परा से उत्तराधिकार में प्राप्त होती है जिनका आधार लोककण्ठ होता है। उनकी कोई मौलिकता नहीं होती। इसलिए शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों ही वर्गों की ये मौखिक परम्परागत धरोहर होती है। इन लोककथाओं में ज्ञान एवं उत्साहवर्धक तत्व जुडे रहते हैं। आदिम पारम्परिक प्रथाओं और उसके विभिन्न मूल्यों एवं विश्वासों का ये लोककथाएँ प्रतिनिधित्व करती हैं। हमारे देश की विशाल और प्राचीन संस्कृति में विविधतागत एकता है तथा कभी एकसूत्रता थी इसका भी संकेत कहीं-कहीं लोककथाएँ करती हैं।

पुंडलीक नायक के आंचलिक उपन्यास 'अच्छेव' में पुरानी पीढी के प्रतीक पात्र 'आबू' नयी पीढी के प्रतीक पात्र 'मास्तर' को विभिन्न लोककथाए सुनाते हैं।

एक लोककथा कोळंब के बारे में इसप्रकार है- ''कोळंबाच्या गांवची काणी सांगता तुका. मांडवी न्हयेन सामको वेटकळो घातला. कोळंबाक तेजी काणी मांडवी न्हय लकत लकत आणि मोडत मोडत वयताली. वाटेत दिश्ट लाग सारको माणकुलोच कोळंब तिणें नदरेक पडलो तिजे फाटकुडो पळयलोना आवयच्या मोगान बालस कशें उखल्लो आनी हांडीर धल्लो न्हयेचे हांडीर कलसो कसो कोळंब आसा. सारको भल्लेलो बाराय म्हयने उदकाक मर ना. कोणेंय येवचें ताळो ओलो करून वयचें.''(43)

भावानुवाद है कि ''कोळंब गांव की लोककथा सुनाता हूँ तुझे। कोळंब को मांडवी नदी ने चारों तरफ से घेरा है। उसकी कहानी है कि पहले मांडवी नदी गिरते-गिरते, झूमते-झूमते जा रही थी। रास्ते में छोटा सा नजर लगे जैसा कोळंब द्वीप उसकी दृष्टि में आया। उसने न आव देवा न ताव , माँ की ममता ने बालक को कमर पर बांध लिया। नदी की कमर पर, मडकी(कलसी) जैसा 'कोळंब' गाव है। भरा हुआ, बारहों मास पानी की कमी नहीं, कोई भी आये और पानी पीकर तृप्त हो जाये। यहाँ कोळंब की एक लोककथा है जो उसकी प्राकृतिक सुषमा को व्यक्त करती है। तो दूसरी कथा पंच पांडवों के गोवा में आने के पौराणिक संकेतों को पुष्टि प्रदान करती है।

''पांच पांडव खंय अज्ञातवासांत आशिल्ले तेन्ना कोळंबा येयल्ले. एका रातीन आणि एका वातीन तेधी तळे तयार केलें. तुये पळोवंक ना, तळ्याची केदी. खडपां कातळ्यांत तीं, मनशांकडेन जावपाची बांदावळ न्हूच ती. पांच पांडव खय मागीर मुखार गेले. अलतडसून तेंफी पलतडचो गांव पळयलों आनी म्हणपाक लागले 'खय तो गांव वळवळो आमी थंय वयचें न्हू' आणि परतले. ते खातीर वळवय गांवाक वळवय नांव पडलें.''(44)

अर्थात जब पांच पांडव अज्ञातवास में थे तब कोळंब में आये थे उन्होनें एक रात में और एक वाती (दीये की बाती) की रोशनी में तालाब तैयार किया था। तुमने देखा नहीं तालाब की इतनी बडी शीलाएँ कैसी चीरकर रख दी है। मनुष्य के कौशल वाली बन्दिश यह नहीं है। पाँच पांडव बाद में आगे गये। इसपार से ही उन्होंने उस पार का गाँव देखा और कहाँ- 'वह गाँव वळवयो (बिलबिलानेवाला) हम वहाँ नहीं जायेंगे' और वे वहाँ से यहीं वापस आये। इसीकारण उस गाँव को वळवय नाम पडा है।

प्रकृति के प्रकोप से बचने के लिए गाँव में वार्षिक बारस (टोने-टोटके संबंधी पूजा) की जाती है, सत्यनारायण की पूजा होती है, तथा सावनमास में सोमवार की कथा कहीं जाती है। भजन आदि भी होते है। परिविजय, रामविजय की कथायें चौक में सुनी जाती है, इन लोकउत्सवों के साथ जुड़ी हुई कथायें गोवा के ज्यादातर प्रांतों में उसी प्रकार से सुनी और सुनायी जाती है।

इसप्रकार संस्कृतिक उत्सवों एवं पौराणिक कथावार्ताओं में गोवा के जन समाज का अटूट विश्वास रहा है। वे पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ इनको कहते और सुनते रहे है। लेकिन वर्तमान समाज में उसका परिवर्तित स्वरूप दृष्टि गोचर होता है। 'अच्छेव' उपन्यास में इसके संकेत मिलते हैं। सत्यनारायण की कथा सुनने में अब किसी की दिलचस्पी नहीं है। सब गाँववाले खान-खदानों पर काम करनेवाले ड्रायव्हरों का नाटक देखना चाहते है और इसलिए ब्राह्मण अपनी

पोथी उठाकर कथा सुनाये बिना ही चल देता है। जयदेव जो वार्षिक पद्धति से नारियल-सुपारी की पावणी लेता था वह भी उस साल ड्रायव्हरों की वजह से ले नहीं पाता है और मन ही मन कह उठता है कि 'आज आमचो थरिल्लो मान ड्रायव्हरांनी व्हेलो. फाल्या आमची सून व्हरत.'(45) जिसका हिन्दी अनुवाद है - 'आज हमारा परंपरागत मान सम्मान ड्रायव्हरों ने ले लिया। वे कल हमारी बहू भी ले जायेंगे।' गोवा में परंपरानुसार एक पद्धति रीति यह भी है कि भांजे से लड़की ब्याही जाती है इसलिए जयदेव के लड़के के साथ पंढरी के लड्की की शादी तय हो चुकी है। जिसपर टिप्पणी जयदेव ने की है। यह बदलता हुआ परिप्रेक्ष्य 'अच्छेव' उपन्यास में और दो-तीन संदर्भों में मिलता है। सावनी सोमवार चौक में सुनाने जाने वाली हरीविजय और रामविजय आदि की कथाओं के प्रति कोळबवासियों की भावनाएँ दिन-ब-दिन बदलती जा रही है। यह परिवेशगत परिवर्तन एवं स्वरूप औद्योगिक परिवर्तन के कारण आबू की मृत्यु के पश्चात तीव्रगति से महसूस किया जाता है।

आंचलिक उपन्यास और लोकगीत

लोककथाओं की भाँति लोकगीत लोकसमुदाय के जीवन एवं चिंतन प्रणाली के विविध रूपों की पूँजी होता है। उनमें ग्रामीण जनता की कोमलतम भावनायें भी व्यक्त होती है। लोककथाओं की तरह लोकगीतों का भी मौखिक परम्परा से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संक्रमण होता है। ''लोकगीत वस्तुतः वहीं हो सकता है जिसमें रचयिता का निजी व्यक्तित्व नहीं होता वह लोकमानस से तादात्म्य रखता है और ऐसी व्यक्तित्वहीन रचना करता है कि समस्त लोक का व्यक्तित्व ही उसमें उभरता है और लोक उसे अपनी चीज कहने लगता है वह लोक का अपना गीत होता जो परंपरा में स्वरूप पा लेता है और परंपरा उसमें समय समय पर अनुकूल परितवर्तन करती रहती है।''(46)

डॉ. रवींद्र ने लोकगीतों के बारे में कहा है- ''लोकगीत लोकमानव से व्यक्तिगत और सामूहिक सुख-दुख की लयात्मक अभिव्यक्ति होते हैं। लोक-कथा की भाँति, ये लोककण्ठ भी मौखिक परम्परा की धरोहर और लोकमानस की विविध चिन्ता धाराओं के कोष माने गये हैं।''(47) लोकमानव अपनी संवेदनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति करते है, जिसमें मनोरंजन का भाव भी होता है। ये लोकगीत विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक परम्पराओं से सम्बन्धित होते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में मानव मन के भाव इनके द्वारा व्यक्त किये जाते हैं। ज्ञानचन्द्र गुप्त के अनुसार ''लोकगीत ग्रामीण जनता की भावना, उनके संवेगों अनुभूतियों एवं उनकी सौंदर्य-भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं। देश के प्रत्येक भाग में प्रचलित इन गीतों की भाषा तो क्षेत्रीय होती है। लेकिन सभी में अनुभूत्यात्मक साम्य निहित

होता है। लोकगीतों का सम्बन्ध प्राय: किसी घटना या विशिष्ठ अवसर से जुड़ा होता है। आंचलिक उपन्यासों में लोकगीत ज्यादातर लोकभाषाओं में रचित पाये जाते हैं।''(48)

गोवा की स्वतंत्रता के बाद गाँवों में लोकगीतों के उन्मुक्त स्वर सुनाई पड़ते है। धार्मिक त्यौहारों एवं पर्वों पर सामूहिक लोक-गीत गाये जाते हैं। पुंडलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में 'धालो', 'होली' आदि उत्सवों पर गाये जाने वाले लोकगीत उपलब्ध होते है। इन लोकगीतों में व्यक्त होनेवाली अनुभूति किसी व्यक्ति विशेष की अनुभूति न होकर समस्त लोक की अनुभूति होती है। सारांशत: लोकगीत संपूर्ण जनसमाज की चेतन-अवचेतन भावनाओं को व्यक्त करते है परंतु इन गीतों के रचयिता का पता नहीं चलता।

गोवा के लोकजीवन में लोकसंस्कृति महत्वपूर्ण अंग है और इसके विभिन्न अंगो को पुण्डलीक नायक ने विभिन्न लोकगीतों में व्यक्त किया गया है। प्रसंगवश धालो लोकोत्सव सम्पूर्ण गोवा में मनाया जाता है। 'धालो' यह शब्द मुंडारी भाषा में से आया है।(49) और उसका अर्थ है 'हवा के लहरों पर डोलना'(1) 'हवा के बहाव पर डोलना' यह शब्द आज तीन अर्थों से अभिप्रेत है- ''1)नाच 2)गीत 3)उत्सव''(50) इसप्रकार 'धालो' यह नृत्य भी है और उसमें गीत भी गाये जाते हैं। इस अनुच्छेद में हम सिर्फ गीतों की चर्चा करेंगे जो 'अच्छेव' उपन्यास में व्यवहृत हुए हैं। धालो लोकोत्सव पौष मास की चांदनी रातों में मनाया जाता है। जिसके पीछे मनोरंजन के साथ-साथ अन्य उद्देश्य भी होते हैं। जिस जगह पर धालों खेला जाता है, उसे 'मांड' कहा जाता है।

धालोत्सव की शुरुआत से पहले उस जगह को गोबर से लिप-पोतकर साफ किया जाता है। गावकान्न (गाव की प्रमुख स्त्री) उस जगह पर दीप प्रज्वलित करती है, गांव के बड़े-बूढ़े व्यक्ति तुलसी के पौधे के सामने नारियल सुपारी-पान रखते है और चंदन गंध-फूल का तिलक लगाने पर आवाहन किया जाता है। नारियल फोडकर उसके बारीक-बारीक टुकड़े सबको प्रसाद के रूप में दिया जाते हैं और दूसरा नारियल 'अच्छेव' उपन्यास में तालाब के देवचार(शैतान) को देने के लिए 'आबू' नामक पात्र निकल पड़े।

यहाँ गाँव की सुहागिन औरतों ने जो गीत गाया है उसका वर्णनात्मक दृश्य है-

> ''नाल्ल फोडूनी शिर्न्यो करुनी
> वाटिल्यो तुळशी बिल्लावणी गे
> वाटिल्यो जाल्यार बऱ्यो जाल्यो
> तळ्या वयल्याक साद घाला गे''(51)

मागीर एक एकली कोळंबाच्या थळांतल्या देवा देवांची नावा सुचयत रावली आनी पंगडान घोळयत घोळयत गायत रावली।

इसका हिन्दी में भावानुवाद इसप्रकार है : नारियल फोड टुकडे टुकडे करके/ बाँट दिये तुळसी वृंदावन के पास/ बाँट दिया तो अच्छा हुआ। तालाब पर जो है उसको पुकारे। उसके बाद एक एक नारी कोळंब के सभी देवदेवताओं के नाम सुझाती गयी और कतार में रहकर अन्य नारी वर्ग वह नाम गाता रहा। इसतरह यह लोकोत्सव जितना गीतों पर आधारित है उतना ही वह लोकनृत्य पर। फुगडी और धालोनृत्य आदि की चर्चा अगले अनुच्छेद में करने का प्रयास किया जायेगा।

खेती में धान की उपज होने के बाद आनेवाले शिगमोत्सव में सभी कोळंबवासी आनंदित एवं उल्लासित है। जनजीवन के विभिन्न उत्सवों, जात्रा , मेलों का भी रेखांकन किया है- ''अंचल के लोकव्यवहार, उत्सव-पर्व संस्कृति, सामाजिक चेतना, राष्ट्रीयता और मानवीय सम्बन्धों की झाँकी लोकगीतों के माध्यम से जितनी प्रभावात्मकता के साथ व्यक्त होती है, उतनी सम्भवतः भाषा शैली के अतिरिक्त अन्य किसी माध्यम से नहीं।''[52] कहना न होगा 'अच्छेव' में लोकगीतों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इन उत्सवों से प्रकृति निरुपण के साथ वहाँ के शिगमोत्सव का वर्णन पुंडलीक नायक ने इसप्रकार किया है। ''आनी शिगम्याचे धांदळीक सुरवात जाली पोरूं वरसा खुंट्याळाक हुमकाळायल्ले धोल ताशे भायर सल्ले, कासाळी, जगाटी सगळी वाजपाची आयिद्या एकठांय जाली नमी दिसा शेण सारयल्ल्या मांडार शितळ शितळ चान्ने सांडले, सगळे चौखेर जमले. बायल भुरग्यांनी गर्दी केली. आबू तळ्यार न्हावन आयलो सुक्या वाल्याक आंग पुशीत मांडार पावलो. ताणे चंदनाचे काणयेन सांडीर गंद झरयले. वाती पेटयल्यो मांडावयले म्हाल तुळशीमुखार सगल्यांनी हात जोडले. आबून वोठांत गुजगुजत सांगणे केले. तुळशी पेडयेर पवल्लेले तळयेंतले सुरय तांदूळ सगळ्यांनी हातांत घेतले. वरसावळी प्रमाण पंडरी झाडो म्हणपाक मुखार आयलो. आबून फर्मायिनाफुडें ताणें सुरवात केली.

म्हाज्या गुरून काय रे केला
सकाळी उठला न्हाला धुला
अंगास काडल्या बावन चंदनउटी
कास नेटल्या पीतांबराची

सगळ्यांनी 'बले-बले' करून तांदूळ शिंपडायले खरस येसर पंडरीन झाडो म्हणून सोंपयलो.''[53]

जिसका हिन्दी अनुवाद है 'और शिगमोत्सव की धांदली शुरू हो गयी, विगत साल में खूँटियों पर लगे हुए ढोल ताशे बाहर आये। अन्य वाद्ययंत्र भी एकत्रित

हुये। नवमी के दिन गोबर से लिपे पुत्र मांड (स्थान) पर शीतल निर्मल चांदनी छाने लगी। सभी चौक में इकट्ठा हुये। नर नारी बच्चों की भीड की गहमागहमी में 'आबू' तालाब में नहाकर सूखे कपडे से बदन पोछते हुये मांड (धालोस्थान) पर पहुँचे। उसने चंदन की बट्टी घीसकर निकाला और दिया बाती जलाई। मांड पर स्थित तुलसी-वृंदावन के सामने सभी ने हाथ जोडे। आबू ने देवी-देवताओं का प्रार्थना कर (सांगणे) आशीर्वाद लिया। तुलसी-वृंदावन के सामने रखे हुये चावल सब ने हाथ में लिये, वार्षिक पद्धति से पंढरी 'झाडो' गीत गाने के लिए सामने आया। आबू की अनुमति लेकर से उसने शुरू किया।

मेरे गुरु ने क्या किया?
सुबह उठा नहाया धोया,
बदन पर निकाली पावन चंदन उटी (लेप)
परिधान किया पितांबर

और सब ने 'भला भला' का उच्चारण करते हुए चावल बिखेर दिये। पंढरी की 'झाडो' गाते वक्त दम फूलने लगा। अनेक लोकगीत शिगमोत्सव पर गाये जाते हैं। जिसमें ईश्वर तथा अवतार गुरु का नमन किया जाता है और मांड (धालो शिमगोत्सव स्थल) पर नृत्य भी किया जाता है।

पयले नमन घालूं धतरि माते
दुसरे नमन घालूं चंद्रसूर्या देवा
तिसरे नमन घालूं माणाच्या गुरु
चौथे नमन घालूं देवचारा देवा
पांचवे नमन घालूं पाच पांडवा
सवें नमन घालूं पूर्वचाप्या देवा
सातवें नमन घालूं सातव्या अवतारा
आठवे नमन घालूं आठव्या अवतारा
नवें नमन घालूं नव्या अवतारा
धावें नमन घालूं तेतीसकोटी देवां
बारावें नमन घालूं बारशा गुणा.(54)

ऐसा प्रतित होता है कि गोवा-कोंकण प्रदेश मे कभी राजा भोज के शासन काल (7-8 वी शताब्दी) में नाथ सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव रहा है जिसका असर यहा के शिगमोत्सव संबंधी परिधान चँवर, जात्रा और 'झाडो' संबंधी गीतों की परम्परा में मिलता है। उपर्युक्त 'झाडो' गीत का भावानुवाद है-

पहला नमन करें माता धारित्री को
दूसरा नमन करें देव चंद्र सूर्य को

तीसरा नमन करें भुपंड गुरु को
चौथा नमन करें शैतान को
पांचवा नमन करें पंच पांडव को
छठा नमन करें पूर्व चार देव को
साँतवा नमन करें सप्त अवतार को
आठवाँ नमन करें अष्ठ अवतार को
नवाँ नमन करें नवम अवतार को
दसवाँ नमन करें तैतीस कोटी देवों को
बारवाँ नमन करें बारह गुणा को

कृष्ण पक्ष संबंधी फाल्गुन मास की नवमी तिथि से शुरू कर फाल्गुन पूर्णिमा तक 'शिगमोत्सव' गोवा के विभिन्न अंचलों में मनाया जाता है। पुण्डलीक नायक की 'प्रेम जागर' कहानी में भी लोकगीतों का सशक्त प्रयोग उपलब्ध होता है। 'जागर' उत्सव गोवा में वार्षिक परंपरानुसार पौष मास में मनाया जाता है। स्थलीय देवता को प्रसन्न करने हेतु विभिन्न कलाकार अपनी अपनी भूमिकाओं को अदा करने के लिए एक-एक करके मंच पर आते हैं। इस कहानी का नायक बाबुराय भी इसमें सक्रिय भूमिका निभाता है। एक पाँव में लम्बा डंडा बांधकर उस एक डंडेपर वह नृत्यकौशल दिखाता है। यहाँ जागर लोकोत्सव में स्थानीय लोकगीत विभिन्न लोकनृत्यों के ताल पर गाये जाते है जिसका एक उदाहरण दृष्टव्य होगा-

''थोटों पैया भिंग रे लैया
सरपळी शेणली रे गळ्या
थोट्या बाबड्या देवान राखलो
बाझेचा खूर लकलो''(55)

× × ×

पाँव से लंगडा लट्टू की तरह भिर-भिर नाचे
गले की कण्ठी खो गयी है रे कहीं
लंगडे को दिया है ईश्वर ने आधार
खाट का एक पाया खिसक गया है रे कहीं

कहना न होगा कि 'जागर' संबंधी लोकगीत गोवा की लोकसंस्कृति के अनमोल धरोहर है। यह वह संस्कृति है जिसका हमारी शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी लोकगीतों में प्राप्त संस्कृति द्वारा हमारी आकांक्षाये, लालसाये, हृदय की उदारता, प्रकृति के साथ जीवन का लगाव, पारस्पारिक संबंध, सामाजिक लगाव आदि स्पष्ट होते हैं। प्रसंगवश रामदरश मिश्र ने लोकगीतों के सम्बन्ध में लिखा है कि ''वे आंचलिक जीवन के अभिन्न अंग है और लेखक उनका नियोजन

बाहरी चमत्कार के लिए नहीं करता है। बल्कि वहाँ के जीवन के आंतरिक रस को उद्घाटित करने के लिए करता है।''(56)

लगभग यही भाव हम पुंडलीक नायक के उपन्यास 'अच्छेव' में महसूस कर सकते हैं क्योंकि बिना लोकगीतों के गोवा के धालो और शिमगो संबंधी लोकोत्सव का वर्णन अधूरा रह जायेगा।

5.23 लोकनृत्य एवं लोककला

वैसे तो लोकजीवन में नृत्य और गायन साथ-साथ में होता है। जहाँ नृत्य है वहाँ गायन भी है। लेकिन सभी गीत-गायन नृत्य पर आधारित नहीं होते। लोकनृत्य हमारे लोक जीवन में प्रसन्नता और आल्हाद के क्षण लेकर उपस्थित होते हैं। विभिन्न त्योहारों एवं पर्व पर किया गया आयोजन समता एवं सहयोग के भाव को बढावा देता है। कभी-कभी मनोरंजन के लिए सामूहिक नृत्य एवं गायन का कार्यक्रम रखा जाता है तो कभी लोकोत्सव के एक महत्वपूर्ण अनुभाग के रूप में नृत्य का आयोजन होता है जिसमें सभी नर-नारी उमंग एवं उत्साह से भाग लेते हैं।

'अच्छेव' उपन्यास में होली के अवसर पर सन्मिलित रुप से होनेवाला नृत्य एवं गायन संबंधी आयोजन छोटे एवं बडे का आपसी भेद-भाव भुला देता है। तत्संबंधी वर्णन हैं कि ''मेळांत जाणटे, नेणटे, जुवान, भुरगे सगळे आयले. 'धनच्या कटर घूमऽऽ' च्या तालार पावलं पडूंक लागली तळा वयल्यान मेळे नावेलेचे वाटेक लागो 'ओ बले भय्या' आनी 'शबै शबै करीत मेळ धुळ्ळ माड्डीन वेताळा देवळांत पावलो खेळे नाचूंक लागले-

वेताळा देवाची उंचउंचा देवळा
भांगराच्या कळसावयर
सोबती चंवरा''(57)

जिसका हिन्दी भावानुवाद है- 'मेले में बड़े-बूढ़े, छोटे-बडे, जवान और बच्चे नर और नारी सभी आये हैं। 'घणच्या कटर घूमऽऽ' वाद्य की आवाज के ताल पर सभी के पैर थिरकने लगे । उपर से मेला नावेली के रास्ते पर निकल पड़ा 'ओ बले भय्या' और 'शबै, शबै गाते हुये जमीन-धक्कड को रोंदते हुये वह मेला बेताल मंदिर में पहुँच गया। वहाँ सभी दल-समूह संयुक्त रुप से नाचने लगे,

वेताल ईश्वर की ऊँचे ऊँचे मंदीर
सुवर्ण कलश पर
शोभायमान झलना चंवर का।

इस नृत्य में बडे-छोटे के भेद भाव को भुलाकर वातावरण आनंदपूर्ण

एवं उल्हासमय होकर नृत्यमय हो जाता, कृष्ण की रासलीला पर छोटीसी एकांकी तथा गोपियों द्वारा किये गये नृत्य और उसके बाद गोवा के एक प्रसिद्ध लोकनृत्य 'दीपनृत्य' का उल्लेख भी 'अच्छेव' उपन्यास में उपलब्ध है। 'दिवली' दीप माथे पर सात बातियों से जलाकर रखा जाता है और उसके बाद सभी हावभाव बिना दीप हाथ में धर अभिनय कायिक मुद्राओं द्वारा किए जाते हैं। गोवा प्रांत में 'धालोनृत्य' के साथ 'फुगडी' भी विविध प्रकारों से खेली जाती है जिसमें औरतें तथा लडकियाँ चक्राकार में एक ताल पर तालियाँ बजाते हुये घुमती हैं और साथ साथ विभिन्न गीत गाती हैं। उन गीतों में पौराणिक तथा सामाजिक संदर्भ सन्निहित होते हैं-

''का क्रिशणा, मागशी बाळा रडोनी
आई मला दी गे हाडोनी''
'क्या कृष्ण माँगते हो रोंकर
माँ मुझे आकाश दे दो लाकर'(58)

उसमे कृष्ण की विविध माँगों को यहाँ व्यक्त किया जाता है। सामाजिक संदर्भों को ध्यान में रखते हुये यह फुगडी गीत प्रासंगिक माना जा सकता है।

पांच निम्मू पिकले वारी/ वास गेला लांब दूरी/
सकाळचे पारी शेट येयलां दारी/ शेय येवून माळ्येर गेला।(59)

इस फुगडी नृत्य में म्हार्दोळ की कलावंतीण गायन एवं नृत्य (देवदासी) वाली नारियों के पास जानेवाले धनिकों का वर्णन किया है जिसका प्रतीकात्मक वर्णन हैं-

''पांच लिंबू बगीचे में पके है/ उनकी गंध बहुत दूर-दूर तक फैली है/ सुबह सुबह धनिक आया है और उसे माले पर ले गया है।'' फुगडी नृत्य विभिन्न प्रकार के होते हैं और उसके नृत्य गीतों में सामाजिक समस्याओं तथा नारी की वेदना आदि को अभिव्यक्त किया जाता है।

लोककला के तौर पर दशावतारी नाटक खेला जाता है जिसमें कच-देवयानी के प्रसंग का कलात्मक उल्लेख मिलता है। कहना न होगा कि इन विविधवर्णी लोकगीतों तथा लोकनृत्यों ने कोळंब के परिवेश को यथार्थ अभिव्यक्ति देने में बड़ा योगदान दिया है। 'अच्छेव' उपन्यास में ग्रामवासियों के सुख-दुख का निरुपण हुआ है साथ ही लोकोत्सव और उनकी आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति हुयी है। वास्तव में लोकगीत मन की सहज भावना से अनुस्यूत होते है अतः उनमें कृत्रिमता और कूटनीति के लिए कोई स्थान नहीं होता। इन लोकगीतों में रचयिता का निजी व्यक्तित्व न रहते हुये भी मानव-मन की सहज वृत्तियाँ प्रतिबिम्बित होती है।

गोवा-कोंकण क्षेत्र में पुण्डलीक नायक की ख्याति एक प्रसिद्ध रंगकर्मी

और लोकधर्मी रचनाकार की है। 'अच्छेव' उपन्यास में जहाँ एक ओर विभिन्न लोकनृत्य, लोकगीत और लोक संस्कृति की प्रतिच्छाया परिलक्षित होती है वहाँ दूसरी ओर उनके 'गुणाजी' उपन्यास में लोकजीवन और लोक शैली के अनुरुप यात्रा-प्रसंग में किसी देवस्थान पर सुपारी और नारियल रखने का आग्रह गुणाजी की पत्नी के संबोधन एवं प्रेरकतत्व में दिखायी पडता है।(60) गुणाजी एक सरलमना ग्रामीर-गड़रिया है जो वायुवान यात्रा में किसी देवस्थान को न पाने की स्थिति में अपना 'नारियल एवं सुपारी वाला प्रतीक विधान बैठने के स्थान पर रख देता है।

शोधप्रबंध की सीमाओं में कहा जा सकता है कि विवेच्य कथाकार पुंडलीक नायक की रचनाधर्मिता, लोकसंस्कृति और लोकचेतना से परिपूर्ण है। उनके 'अच्छेव', 'वसंतोत्सव आनी दायज' और 'गुणाजी' नामक उपन्यासों में गोवा के आंचलिक जीवन सम्बन्धी विभिन्न दृश्य उपलब्ध होते हैं। लब्धप्रतिष्ठ रंगकर्मी होने के नाते वे अवचेतन में भी यहाँ की लोकसंस्कृति को बिसार नहीं पाते है। पूर्व अनुच्छेद 5.21, 5.22 और 5.23 में उनके कथासाहित्य में व्यवहृत लोककथा, लोकगीत, लोकनृत्य और लोककला आदि का सम्यक विवेचन करने का प्रयास हमने किया है।

मार्कण्डेय के कथासाहित्य के बनिस्वत पुंडलीक नायक का कथासाहित्य लोकसंस्कृति के विभिन्न अंगों से अधिक रंगारंग है। लोकगीतों का अनुवाद शाब्दिक अर्थ और लय में संभव नहीं होता, कोंकणी भाषा में अनुनासिक स्वर और उच्चारण की अपनी प्रविधि है, तो हिन्दी लोकगीतों का मिजाज विरह भावनाओं और जीवन की त्रासदी से परिपूर्ण है। विवेच्य कथाकारों के साहित्य में जनजीवन का संघर्ष, संवेदनात्मक अनुभूति और मार्मिक भावों का प्राधान्य है । उनका साहित्य लोकमानस के चेतन और अवचेतन पक्ष का अवगाहन करता है।

अगला अध्याय मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के कथासाहित्य की समानता और विषमता सम्बन्धी आधारभूत सामग्री का विवेचनकार्य होगा।

सन्दर्भ सूची : पंचम अध्याय

1.	शिवप्रसाद सिंह	:	आचंलिकता और आधुनिक परिवेश	पृ.115-116
2.	लक्ष्मणराव सरदेसाय	:	कथाशिल्प	पृ.42
3.	हरिश्चन्द्र नागवेकर	:	आस्वादन	पृ.36
4.	वेदप्रकाश अमिताभ	:	भाषा जनवरी-फरवरी 2000	पृ.80
5.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.7
6.	पुंडलीक नायक	:	वसंतोत्वस आनी दायज	पृ.94
7.	ज्ञानचन्द गुप्त	:	आंचलिक उपन्यास : संवेदना और शिल्प	पृ.29
8.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.97-98
9.	पुंडलीक नायक	:	पिशान्तर	पृ.8
10.	पुंडलीक नायक	:	मुठय	पृ.7
11.	उत्तमभाई एल् पटेल	:	आंचलिक उपन्यासो में ग्राम्य जीवन	पृ.47
12.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.19
13.	चंद्रशेखर कर्ण	:	आंचलिक हिन्दी कहानी	पृ.56
14.	मार्क्स एंगेल्स	:	कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र	पृ.38-39
15.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.29
16.	पुंडलीक नायक	:	मुठय	पृ.30
17.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.85
18.	रामदरश मिश्र	:	हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा	पृ.191
19.	देवेश ठाकुर	:	'मैला आंचल' की रचनाप्रक्रिया	पृ.60
20.	पुंडलीक नायक	:	पिशान्तर	पृ.8
21.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.60
22.	शिवप्रसाद सिंह	:	आंचलकिता और आधुनिक परिवेश	पृ.126
23.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.32
24.	कर्णसिंह चौहान	:	समकालीन यथार्थवाद	पृ.121
25.	नगरने जैन	:	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास	पृ.19
26.	श्री ब्रजविलास	:	हिन्दी उपन्यास में नये प्रयोग	
	श्रीवास्तव	:	आलोचना जनवरी 56	पृ.17

27.	ज्ञानचंद गुप्त	:	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना	पृ.232
28.	किरण बुडकुले	:	साहित्य नियाळ	पृ.62
29.	मार्क्स एंगेल्स	:	कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र	पृ.39
30.	रोहिताश्व	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता	दि.7/4/03
31.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.115
32.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.103
33.	पुंडलीक नायक	:	मुठय	पृ.34
34.	वही	:	वही	पृ.61
35.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.106
36.	ज्ञानचन्द गुप्त	:	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना	पृ.207
37.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्पविधि	पृ.93
38.	ज्ञानचन्द्र गुप्त	:	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना	पृ.208-209
39.	बच्चन सिंह	:	आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द	पृ.118
40.	शशिभूषण सिंहल	:	हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ	पृ.119-120
41.		:	हिन्दी साहित्य कोश	पृ.685-86
42.	इन्दिरा जोशी	:	हिन्दी उपन्यासों मे लोकतत्व	पृ.12
43.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.100
44.	वही	:	वही	पृ.101
45.	वही	:	वही	पृ.127
46.	मृत्युंजय उपाध्याय	:	भाषा- मार्च-अप्रैल 2002	
47.	डॉ. रवीन्द्र भ्रमर	:	हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व	पृ.6
48.	ज्ञानचंद्र गुप्त	:	स्वातंत्र्योत्तर	पृ.229
49.	जयंती नायक	:	आमोणे एक लोगजीण	
50.	सं.-बा.द. सातोस्कर	:	गोमन्तकाची प्रतिमा,खंड पहिला,	पृ.10
51.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.46-47
52.	देवेश ठाकुर	:	मैला आंचल की रचना प्रक्रिया	पृ.78
53.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.70-71
54.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.71

55. पुंडलीक नायक(सं) : समकालीन कोकणी लघुकथा पृ.71
56. : हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा पृ.203
57. पुंडलीक नायक : अच्छेव पृ.72-73
58. वही : वही पृ.47
59. वही : वही पृ.49
60. पुंडलीक नायक : गुणाजी पृ. 36

-o-o-o-

6. मार्कण्डेय और पुंडलीक नायक का कथा साहित्य: समानता और विषमता

मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य के सम्यक अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में आंचलिक कथासाहित्य की परम्परा पाँचवे दशक के मध्य के आसपास प्रारम्भ हुई और विगत पचास वर्षों में कोंकणी में आठवें दशक के प्रारम्भ में।

हिन्दी में आंचलिक कथासाहित्य की लम्बी एवं सदृढ परंपरा कायम है। प्रेमचन्द को आंचलिक कथाकार नहीं कहा जा सकता लेकिन ग्रामीण जीवन एवं उस सामाजिक यथार्थ को सर्वप्रथम अभिव्यक्ति देने संबंधी उनकी विशेषता को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता। पर गाँव का चित्रण उनका साध्य नहीं था साधन भर था लेकिन आंचलिक कथासाहित्य में अंचल का चित्रण साधन नहीं बल्कि साध्य बनकर आता है। वहाँ परिवेश प्रधान होता है पात्र गौण।

प्रेमचन्द का उद्देश्य मूलत: समाजसुधार का रहा है, और इसी कारण उन्होंने समाज का यथार्थपरक वर्णन करने के लिए वहाँ के परिवर्तित ग्रामजीवन

के पात्रों के माध्यम से परिवेश एवं पात्रों की सृजना की । कहना न होगा कि 'गोदान' का होरी, 'निर्मला' उपन्यास की निर्मला, 'कफन' कहानी के घीसू माधव, 'पूसकी रात', 'सद्गति', 'ठाकूर का कुआँ' आदि कहानियों के पात्र मूलतः सामाजिक यथार्थ एवं अंचलो की समस्याओं को चित्रित करते हैं तथा यही तथ्य फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी और शिवमूर्ति के कथा साहित्य के लिए लागू होता है, जिनके पात्र भारतीय जन जीवन में प्रतिनिधि पात्र हैं।

विवेच्य कथाकारों - मार्कण्डेय और पुण्डलीक नायक के कथा साहित्य में कृषक जीवन, खेतिहर, मजदूर और निम्नवर्ग के पात्रों एवं ग्राम परिवेश का प्राधान्य है। वे भारतीय मनीषा और लोक संस्कृति के उन्नायक रचनाकार माने जा सकते हैं।

कभी इन्द्रनाथ चौधुरी ने भारतीय साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में स्वाकारा है कि " भारतीय परिवेश नाना प्रांतीय, भौगोलिक, सामाजिक, लोक-सांस्कृतिक, प्रांतीय भाषाओ, साहित्यों एवं साहित्यिक संस्कृतियों की क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं में संबध्द एक खास विस्तृति का परिचय देता है। भारतीय साहित्य विचारधारओं, प्रभावों एवं परिणामों के फलस्वरूप अपनी-अपनी साहित्यिक पहचान कायम कर लेता है। उसकी अपनी एक अनुभूति है जो हमेशा अपने सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ी रहती है।"(1)

स्वातंत्र्योत्तर आलोचना साहित्य के भारतीय विद्वानों में सर्वप्रथम दार्शनिक सांस्कृतिक विचारक अरविन्द ने अपने पुस्तक 'इंडियन लिटरेचर' में समस्वार्थता के तत्वों के निर्देश के आधार पर भारतीय साहित्य की अवधारणा के निर्माण का सफल प्रयत्न किया था। उन्होंने वैदिक काल से लेकर भक्तिकाल तक के भारतीय साहित्य के केंद्रीय स्वर, रूप तथा सौंदर्यत्यक मूल्य का पता लगाया और भारतीये के सांस्कृतिक मन की अभिव्यक्ति के रूप में उसे स्वीकृति दी। प्रस्तुत संदर्भ में कृष्णा कृपलानी का कथन रहा है कि विभिन्न भाषाओं एवं युगों में रचित भारतीय साहित्य के बदलते हुए प्रारूप के बावजूद कुछ तत्व दूसरों की अपेक्षा विशिष्ट प्रमाणित हुए हैं और जिन्हें काल नष्ट नहीं कर सका है। इनमें से एक है एक असीम सत्ता की प्रखर अनुभूति जो एक प्रकार से भाववादी संदर्भ एक भाववादी कला दृष्टि है।

स्वातंत्र्योत्तर कालीन जीवन में आदिमानव प्रगतिशील रचनाकारों ने प्रसंगानुसार अपने पात्रों की भयावह मनःस्थिति , अंधविश्वास, ईश्वरी शक्ति के विश्वास आदि को अभिव्यक्ति दी है। इस तरह हमारी साहित्यिक परंपरा में एक अन-टूटा (नैरंतर्य) दिखाई पड़ता है और साथ ही हमारी आधुनिकता में प्राचीनता

की प्राणशक्ति स्पष्ट उभरती हुई प्रकट होती है, आज नाना प्रकार के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक कारणों से भारतीय साहित्य की प्राणशक्ति या उसके मूलस्वर पर दबाव पड़ा है परंतु फिर भी यह मूलस्वर अपने जटिल विन्यास में अब भी विद्यमान है।

''तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत हमे केवल एकता के तत्व ही नहीं बल्कि विविधता के तत्वों को भी ध्यान में रखना पड़ेगा क्योंकि समस्वार्थता के तत्वों से निर्मित एक सूत्रता आबद्ध भारतीय परंपरा को स्वीकार करते हुए विभिन्न भाषाओं में लिखनेवाले हमारे लेखकों की स्वकीयता भी महत्वपूर्ण है ।''(2)

त्रिभुवन सिंह ने भी प्रेमचन्द की दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए प्रसंगवश विचार व्यक्त किये है कि ''प्रेमचन्द जी उन उपन्यासकारों में सर्व प्रथम रहे जिनकी दृष्टि महलों की ओर न जाकर सबसे पहले झोपड़ियों की ओर गयी, जिन्होंने टूटी-फूटी झोपड़ियो में पुआलों पर पड़ी तड़पती हुई भारतीय आत्मायें देखी, फटे चीथड़ो मे सरल और स्वाभाविक यौवन के सौष्ठव का अनुभव किया और दरिद्रता की चक्की में पिसने वाले दीन जनों में महलों सी प्रेम की पीर पायी।''(3)

इसी प्रगतिर्शील परंपरा की देन मार्कण्डेय को मिली है। वैसे आंचलिक उपन्यासों की भी सुदृढ परंपरा मार्कण्डेय से पूर्व मिलती है जो मार्कण्डेय के लिए आधारभूमि थी। नागार्जुन, रेणु, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, शैलेश मटियानी, विवेकी राय आदि द्वारा रचे गये उपन्यासों में नयी चेतना का रुप उभरा है। इससे ज्ञात होता है कि हिन्दी साहित्य में आंचलिक कथासाहित्य की परम्परा है। हिन्दी साहित्य में आंचलिक कथासाहित्य की परंपरा मार्कण्डेय से पूर्व अपना रुप धारण कर चुकी थी। सामाजिक और आंचलिक उपन्यासों की महत्वपूर्ण उपलब्धि के संबंध में दंगल झाल्टे के विचार है '' प्रेमचन्द, अज्ञेय, जैनेन्द्र, रेणु से लेकर राही मासूम रजा, धर्मवीर भारती, मन्नू भंडारी, अमृतलाल नागर, प्रभाकर माचवे तक और उसके आगे ममता कालिया, राजकमल चौधरी, रामदरश मिश्र, हिमांशु जोशी, रमेश बक्षी, महेन्द्र भल्ला तथा बदीउज्ज़माँ आदि पीढ़ियों को छूता हुआ अनेक नए आयामों, नए प्रयोगों से गुजरता हुआ हिन्दी उपन्यास उपलब्धियों के शिखर की ओर अग्रसर है। न केवल कथ्य अपितु शिल्प शैली तथा अनुभूति के स्तरों में भी हिन्दी उपन्यासों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं।(04) सिर्फ हिन्दी उपन्यासों में ही नहीं बल्कि कहानियों में भी सघन जीवन यथार्थ के अनुभवों को व्यापक धरातल पर अभिव्यक्ति मिली है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी ने अपेक्षा से कही अधिक मुखरता, प्रौढ़ता एवं विकास के अनेक अनछुए क्षितिज खोजकर जीवन सत्य को तीव्र अभिव्यक्ति प्रदान की है। बीसवीं शताब्दी के कथा साहित्य की सुदृढ एवं सशक्त परंपरा मार्कण्डेय से पूर्व विद्यमान थी लेकिन पुंडलीक नायक ने आंचलिक लेखन

संबंधी परंपरा की शुरूआत कोंकणी भाषा साहित्य में की है। उनका कथा साहित्य आंचलिकता की दृष्टि से परिपूर्ण माना जा सकता है। जिसकी चर्चा विगत् दूसरे अध्याय में की गयी है। पुण्डलीक नायक के कथालेखन के पूर्व कोंकणी गद्य-साहित्य में शणै गोंयबाब और लक्ष्मणराव सरदेसाय का नाम ही महत्वपूर्ण माना जायेगा। उनके समानान्तर लेखकों में उदय भेंब्रे, चंद्रकांत केणी, नागेश करमळी, पांडुरंग भांगी, दामोदर मावजो, शीला कोळंबकर, महाबळेश्वर सैल, एन् शिवदास, गोकूळदास प्रभू आदि के नाम महत्वपूर्ण है।

पुण्डलीक नायक ने अपने पूर्ववर्ती कथाकारों शणै गोंयबाब, लक्ष्मणराव सरदेसाय के लेखन से आधार दृष्टि ग्रहण की है पर शिल्प- शैली संबंधी नयी दिशाओं का सृजन स्वयं ही तराशा है। उनकी खासियत यह है कि वे अपने संवेदनात्मक (अनुभव) विश्व में गोता लगाकर आंचलिक साहित्यरूपी मोतियों को ढूँढ़ लाते है जो कोंकणी कथा साहित्य रूपी माला को सुंदर एवं परिपूर्ण बनाने मे समर्थ है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि मार्कण्डेय को हिन्दी साहित्य जगत की समृद्ध, विशाल और संस्कृतिपरक कथा परम्परा का दाय मिला है, वही पुण्डलिक नायक को कोंकणी भाषा साहित्य की परती जमीन तोड़कर एक गोताखोर की साधना के समान अनुभूत सत्य को शब्द-शिल्प में नये सिरे से ढालना पड़ा है। कोंकणी साहित्य में आंचलिक कथासाहित्य की शुरूआत क्षीण गति से होने के बावजूद पुंडलीक नायक का कथासाहित्य आंचलिकता की दृष्टि से गोवा के अंचलो का भौगोलिक, प्राकृतिक स्वरुप, रीतिरिवाज, लोकसंस्कृति को व्यक्त करने में कही भी संवेदनात्मक अभाव महसूस नहीं करता। हिन्दी साहित्य के समानान्तर कोंकणी साहित्य उतना समृद्ध नहीं माना जा सकता है लेकिन आंचलिकता और परिवेश की दृष्टि से मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' उपन्यास की अपेक्षा पुण्डलीक नायक का 'अच्छेव' सर्वथा श्रेष्ठ माना जा सकता है। आंचलिक धरातल पर गोवा का प्राकृतिक परिवेश, छोटे से कोळंब गाँव- अंचल की लोककथा, वहाँ के खनिज व्यवसाय के कारण बदलते हुए रीतिरिवाज, गाँव में मनाये जानेवाले तीज-त्यौहार, वहाँ की भाषा का अन्यान्य कोंकणी प्रदेशों की भाषा से अलगाव एवं लेखक (पुण्डलीक नायक) द्वारा यथार्थ परिवेश से पाठक को परिचित कराने का प्रयत्न है तथा असली कथोपकथन हमें एक श्रेष्ठ आंचलिक कथा का आभास कराता है - अपनी सम्प्रेषणीयता और सोद्देश्यता से मंत्रमुग्ध कर देता है जो मार्कण्डेय के अग्निबीज उपन्यास के प्रभाव से कई गुना बेहतर है। क्योंकि उसे सृजनात्मक विकास के लिए ऐतिहासिक अवसर और कालगत अन्तराल कम मिला है।

भारतीय साहित्य के विभिन्न प्रदेशों के विभिन्न भाषा-भाषी रचनाकारों

के विचारधारात्मक और सांस्कृतिक स्तर पर एकरुपता पायी जाती है। इन्द्रनाथ चौधुरी के मतानुसार ''भारतीय साहित्य की एकरुपता के दो कारण है (1)एक ही स्रोत से प्रेरणा ग्रहण करना। वह मूलस्रोत है, संस्कृत साहित्य, महाकाव्य, पुराण जातक, लोकसाहित्य, दार्शनिक साहित्य, कला एवं संगीत। (2) लगभग एक ही प्रकार की आवेगात्मक तथा बौद्धिक अनुभूतियों से प्रेरित साहित्य का निर्माण होना (उदाहरणार्थ:राधाकृष्णन, Contemporary India Literature, भूमिका) इसके परिणाम स्वरूप हमारी साहित्यिक परंपरा में एक अनटूटा (अनवरत) नैरन्तर्य दिखाई पड़ता है और स्पष्ट उभरी हुई प्रकट होती है।''[5]

शोध प्रबंध की सीमा में कहा जा सकता है कि रेणु, शिवप्रसाद सिंह (हिन्दी), मास्ति व्यंकटेश अय्यंगार, यु आर. अनंतमूर्ति (कन्नड), विश्वनाथ सत्य नारायण और रामचन्दर (तेलगु) तथा मार्कण्डेय व पुण्डलीक नायक की लेखकीय चेतना के अणु-कण वस्तुत: भारतीय लोक साहित्य और लोकजीवन की सांस्कृतिक अन्त:चेतना से अनुस्यूत है। इसीलिए वे अपने कथासाहित्य में लोकप्रचलित विश्वासों, आस्थाओं, मान्यताओं, रीति-रिवाज, टोने-टटके और लोक आस्थाओं के प्रसंग उकेरते रहते हैं। कहना न होगा कन्हैयालाल मुंशी और विष्णू खांडेकर (मराठी) ने परशुराम और ययाति उपन्यासों में पुराण साहित्य से आधार ग्रहण किया है जो भारतीय जन चेतना के मिथक कोश का अनिवार्य अंग है।

6.1 युगीन परिवेश: समानता एवं विषमता

मार्कण्डेय एवं पुण्डलीक नायक के कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन एक प्रकार से भारतवर्ष के दो विभिन्न प्रांत, स्थल, परिवेश-पात्र और उनकी मन:स्थितियों का विवेचन है। मार्कण्डेय ने अपने कथालेखन की शुरुआत पाँचवे दशक के प्रारंभ में की है। भारतवर्ष के स्वाधीनता संघर्ष के वे दर्शक ही नहीं रहे है, बल्कि एक सक्रिय साम्यवादी चेतना के कार्यकर्ता भी रहे हैं। इसलिए 'अग्निबीज' उपन्यास में गांधीवादी विचारधारा और समाजवादी विचारधारा के अंत:संघर्ष को पाठक और आलोचक सहज ही अनुभव कर सकते हैं।

पुण्डलीक नायक ने अपनी किशोरावस्था में पुर्तगीज शासन के ध्वंस और अवशेषों को जाना था। उनके सामने गोवा के नवनिर्माण की, औद्योगिक सभ्यता के आक्रमण से अभाव की अत:श्चेतना प्रबल रही है। विवेच्य कथाकारों के युगीन परिवेश में लगभग तीस वर्षों का अंतराल है,लेकिन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को वे समाजवादी आस्थाओं से जानना पहचानना और रेखांकित करना चाहते हैं। विचारधारात्मक स्तर पर, लोकसांस्कृतिक चेतना

के स्तर पर, उनमें समानता पायी जाती है। विवेच्य कथाकार उत्तरप्रदेश और कोंकण -गोवा प्रदेश की लोकधर्मी चेतना से जुड़े हुये हैं। उनका कथा साहित्य आंचलिकता के ताने-बाने से भरा हैं। वे गोर्की, लुशुन और प्रेमचन्द की परम्परा में सांसारिक जीवन के सजीव पात्रों का निर्माण करते है, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी और जैनेद्र की तरह काल्पनिक पात्रों और मन:स्थितियों का सृजन नहीं करते जीवन संघर्ष में हारते, टूटते बिखरते और पुनः जीवन संघर्ष में तत्पर पात्रों को वे शब्द रूप में उकेर देते हैं।

मार्कण्डेय कृत 'अग्निबीज' के 'साधोकाका', 'हंसा जाई अकेला' का हंसा तथा पुण्डलीक नायक कृत 'अच्छेव' का कथानायक पंडरी, 'दायज' का रणजीत आदि मानवीय विवशताओं, एषणाओं, आस्था-अनास्था के भावों के सजीव पात्र है। वे अपने युगीन परिवेश का प्रतिनिधित्व करनेवाले सजीव पात्र महसूस होते हैं। कलात्मक यथार्थवाद के आधारपर यही विवेच्य कथाकारों की विचारधारात्मक और सांस्कृतिक चेतना सम्बन्धी समानता है ।

विवेच्य कथाकारों के कथासाहित्य की विषमता यही है कि मार्कण्डेय ने उत्तरप्रदेश के मैदानी इलाकों और खेतिहर जीवन को अपने रचनावस्तु का केन्द्र बनाया है, तो पुण्डलीक नायक ने कोंकण और गोवा आंचल के मछुआरों के जीवन और श्रमिक मजदूरों के संघर्ष को अपने लेखन का आधार रुप माना है। सामान्यत: कोंकणी कथासाहित्य में सामाजिक, राजनैतिक उपन्यास प्राप्त होते हैं लेकिन कटु होते हुये भी सत्य यह है कि कोंकणी में आंचलिक उपन्यासों की कमी महसूस होती है। इस भाषा में ऊँगलियों पर गिने जानेवाले आंचलिक उपन्यास होते हुए भी 'अच्छेव' में अभिव्यक्त अंचल एंव परिवेश समग्रता में मुखरित हो उठा है। भौगोलिक परिवेश- कोळंब की सीमाये, वळवय, नावेली, पाळी, उजगांव, रुमड, करंजाय आडपय, धोंगरे आदि गावों की समीपता, चारों ओर पानी से घिरा हुआ, यह कोळंब अंचल अपने आप में अनूठा क्षेत्र है। इसकी लोककथा में पांडवों का अज्ञातवास काल में आगमन होने तथा तालाब का एक रात में एक बाती से निर्माण कार्य का प्रमाण भी 'आबू' पात्र द्वारा 'निजण्धर' (legend) में दिया गया है।

कोळंब के लोगों की वेशभूषा वहाँ के रीतिरिवाज, त्यौहार, उनका हिन्दू-पंचांग के अनुसार लोक-उत्सव मनाना आदि गोवा प्रदेश की अपनी विशिष्ट लोकसंस्कृति के अनुकूल ही है। मार्गशीर्ष माह से 'अच्छेव' उपन्यास का प्रारम्भ होता है जिसमें प्रति सोमवार को चौक में एकत्र होकर भजन करने का जिक्र हुआ है। पौश माह में मालनी पोर्णिमा का उत्सव तथा धालोत्सव वर्णन, फाल्गुन माह में होली पर्व, चैत्र माह में गुडी पाड़वा(युगा), सत्यनारायण की पूजा, कर्म, भाद्रपद माह में गणेश चतुर्थी और उसके नवें दिन 'बारस' का उत्सव आदि का विवेचन

लेखक ने विस्तार पूर्वक ही नहीं बल्कि काल क्रमानुसार किया है।

उसके बीच-बीच में मार्गशीर्ष माह के शुरु में 'वायंगण' संबंधी खेती के लिए जमीन की मशक्कत, चार महीनों के बाद खेती की मलनी, वैशाख माह में बरसात ऋतु के आगमन से पूर्व धन-धान्य का 'पुरामेंत' (एकत्र करना) खनीज उत्पादन से कृषि-व्यवसाय में आया नैराश्य भाव तथा सभी उत्सवों के मनाने में समय, उत्साह तथा विश्वास की कमी आदि का यथार्थपरक चित्रण पाया जाता है। अगले वर्ष की सत्यनारायण की पूजा में पारंपरिक दशावतार नाटक के स्थान पर ट्रक-ड्राइव्हरों द्वारा मंचित सामाजिक नाटक, परंपरा से चली आयी पूजा में खाना बनाने तथा उनके लिए उपयुक्त चीजों का आदेश देना, सत्यनारायण कथा वाचन में शामिल होने के लिए वक्त का न होना आदि परिवर्तन कोळंब के निवासियों में औद्योगिक जीवनशैली और धनप्राप्ति की लालसा के कारण आया है।

सम्पूर्ण दक्षिण भारत की विभिन्न भाषाओं-तेलगु, कन्नड, मलयालम, तुलु एवं तमिल आदि के साहित्य में 'चेम्मीन' उपन्यास को छोड़कर कोई अन्य उपन्यास अपने समुद्र अंचल के परिवेश का यथार्थ चित्रण नहीं रच पाया है। 'अच्छेव' उपन्यास एक ओर औद्योगिक विकास की विषमता को दर्शाता है तो दूसरी ओर गोवा के एक विशिष्ट अंचल कोळंब (जो वळवय, नावेली, पाळी और रुमड गाँव के बीच एक लघु द्वीप की तरह है।) को वह शब्दों में मूर्त रूप देने का प्रयास करता है। पुण्डलीक नायक को यह अहसास रहा है कि रीतिरिवाज, संस्कार, लोकव्यवहार में आये हुए बदलाव को हम कोळंब के अलावा अन्य किसी अंचल में प्राप्त नहीं कर सकते। वस्तुतः कोळंब ऐसा अंचल है जिसमें उनके अपने रीतिरिवाज पर्व, त्यौहार, लोकसंस्कार, अंधविश्वास, धार्मिक परम्पराएँ एवं मान्यताएँ मौजूद है। 'अच्छेव' उपन्यास को हम पूर्णतः आंचलिक कृति मान सकते है। मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में भले ही विचारधारा तथा प्रगतिशील चेतना संबंधी कथ्य की समानता नारी आदि विषयक प्रगतिशील दृष्टि की समानता होते हुए भी 'अग्निबीज' एवं 'अच्छेव' उपन्यास में आंचलिकता की दृष्टि से असमानता पायी जाती है। तुलनात्मक अध्ययन में साम्य ही मायने नहीं रखता बल्कि विषमता की भी अपनी महत्ता होती है।

'अग्निबीज' उपन्यास में रामपुर-सेतपुर की सामाजिक समस्याओं, आर्थिक विषमता, ऊँच-नीच के बीच की खाई, युवा-वर्ग की चेतना, राजनीतिक स्थितियाँ, अन्य क्षेत्रीय अंचलों में भी समान धरातल पर दृष्टिगोचर होती है। इसलिये सुधी समीक्षकों ने 'अग्निबीज' उपन्यास को आंचलिक नहीं माना होगा जिसकी चर्चा विगत अध्याय चतुर्थ में की गयी है।

लेकिन 'अग्निबीज' उपन्यास की संरचना आंचलिक उपन्यास जैसी ही है। कारण रामपुर-सेतपुर को जोडनेवाली पोखर बजमा, मानिकपुर बनारस से उन गाँवों की निकटता आदि से भौगोलिक परिवेश, बजमा में आयी बाढ़ तथा जलपक्षी मछलियों के पकडने दृश्य, गांव का प्रकृति सौंदर्य आदि का स्वाभाविक वर्णन, गाँव में प्रचलित रीतिरिवाज, श्यामा की शादी के अवसर पर निभाये जानेवाली रस्मों-रिवाजों का सूक्ष्मता से वर्णन, उस समय गाये जानेवाले लोकगीत आदि 'अग्निबीज' को सामाजिक, राजनैतिक विकास यात्रा से कही अलग आंचलिकता की कोटि में लाकर खडा करते हैं।

सुधी पाठकों को ज्ञात है कि कोई भी रचनाकार अपनी रचना प्रक्रिया में पूर्णतः न तो 'विचारधारा' का आग्रह अपनाता है और न ही शिल्पविधा के अन्तर्गत परिवेश और 'अंचल' को केन्द्र बनाता है। मार्कण्डेय एक ओर प्रगतिशील प्रवृत्ति के यथार्थवादी कथाकार है तो दूसरी ओर मनोविश्लेषणात्मक स्तर पर गाँव अंचल से जुडाव के कारण रचनाशैली में आंचलिक कथाकार है। लेकिन शिवकुमार मिश्र अपने विचारधारात्मक आग्रह के कारण उनके प्रगतिशील तत्वों पर ही जोर देते हुए कहते हैं कि " मार्कण्डेय का 'अग्निबीज' उपन्यास सीधे आजादी के बाद के ग्रामीण जीवन की तहों में पहुँचता है और ठेठ मानवीय संदर्भों को लिए हुए यातनाग्रस्त मनुष्यता के प्रति मुखातिब होता है। यह उसकी यातना के कारणों को उन तहों के भीतर से उभारता है जो ग्रामीण समाज में सदियों से चढ़ी हुई हैं और आज तक जिनका क्रम बदस्तूर जारी है। आजादी आज के ग्रामीण समाज के लिए उतना ही बड़ा धोखा है जितना वह नगर की अभिशप्त मनुष्यता (आधुनिकता) के लिए है। मार्कण्डेय का यह उपन्यास इस धोखे को भी उजागर करता है और रोशनी की उन ताकतों की ओर संकेत करता है जो धोखे के इस जाल को छिन्न-भिन्न करते हुए यातनाग्रस्त मनुष्य को उसकी सही मंजिल की ओर ले जाने में समर्थ है।"(7)

कहना न होगा कि शिवकुमार मिश्र 'अग्निबीज' उपन्यास की समीक्षा में उपन्यास के मुख्य तत्व आंचलिकता और परिवेश को अनदेखा कर देते हैं। प्रकारान्तर में यही हाल कोंकणी के लेखक पुण्डलीक नायक के कथा लेखन का है, वहाँ आलोचकगण उनके प्रकृति सौन्दर्य संबंधी चित्रण की बात करते हैं पर उनके प्रगतिशील तत्वों को अनदेखा कर जाते हैं।

6.11 आंचलिक परिवेश

गोवा निसर्गतः सुंदर एवं मनोहारी प्रदेश है। नदी, सागर, तालाब, कुलागर आसमान को छूते हुयी नारियल के पेडों की कतारे, सीशम, आम, कटहल,

जामुन आदि ऊँचे पेडों की घनी छाया तथा जंगल पहाड की ढलान पर काजू के छोटे-बडे पेड़, बीच-बीच में बहनेवाले झरने ऊँचाई से गिरनेवाले प्रपात दूर तक फैले हुए खेत, उनमें से उडनेवाली बगुले की पंक्तियाँ आदि का विलोभनीय दृश्य गोवावासियों के लिए सुपरिचित दृश्य है। गोवा की प्राकृतिक परिवेश की अपनी समृद्धता के कारण पुंडलीक नायक स्वभावतः प्रकृतिचित्रणों में माहिर कथाकार बन गये है। उतनी उत्कृष्टना मार्कण्डेय के प्रकृतिवर्णन में परिवेश के अभाव के कारण नहीं पाते है। गाय-गोरु और भेड़ बकरियों की रखवाली करना गोवा के अंचलों का अभिन्न घटक है। सुबह ही सुबह गाय गोरूओं को लेकर सभी ग्वाले जंगल की ओर चल पडते है। ''सद्चेवरी सगळ्यांली गोरवां रानाची वाट माड्डोवंक लागली. आंगावयली मुसकां झाडीत शेपड्यों वयर करून वाटेकुशिच्या झिलींत रिगू लागली. पाडकांच्या कानांत सकाळचे वारे रिगलें, आवश्यक सोडून ती चबणुकां मारूंक लागली. देवान भिजिल्ल्या धुल्लार गेतांच्यो रांगोळ्यो उदेल्यो. एखादी गाय मदीच वजऱ्यावरी पानेवंक लागली. ...... गोरवांचे धेंकर, पाडकांचे हांबेवप, राखण्यांची पदां, फालां आनी कुकाऱ्यांनी सगले वाटे-तिटेक जाग आयली. एकामेकांची कुथां काडीत, गाळी संवीत सगळ्यांचो मेळो दोंगरार वड़ाकडेन पावलो।''(8) जिसका हिन्दी मे भावानुवाद इस प्रकार है- ''रोज की तरह सबके गाय-गोरु चरागाह की तरफ जाने लगे। बदन पर बैठे हुए बारीक जीव-जंतुओं को झाडते हुये अपनी पूँछ ऊपर कर वे पगडंडी के पास वाले झाड्-झंखाड में घूँसने लगे। बछेड़ों के कानों में सुबह की हवा स्फूर्ति भर रहीं हैं। वे माताओं को छोड़ मटरगश्ती करने लगे। ओस से भीगी जमीन पर गाय-बैलों के पावों के खुर से रंगोली चित्रित होने लगी। बीच में ही कोई गाय झरने की तरह दूध देने लगी। गाय गोरुओं का डकारना, बछडों का हुँकारना, ग्वालों के गीत गाने से संपूर्ण राह जाग्रत हो गयी। ग्वालों और गड़रियों द्वारा एक-दूसरों पर व्यंग्य कसते हुये गालियाँ बरसाते हुये उन सभी जनों का मेला पहाड पर पहुँचा।''

'कुळागर' पुंडलीक नायक के जीवन-स्थली का अविभाज्य अंग है जिसका वर्णन उन्होंने अनेक कहानियों में सुंदर एवं रेखाचित्रात्मक शैली में किया है। 'पारज' कहानी में चित्रित कुळागर इसप्रकार है- ''कुळागरात थंड वारे खेळूंक लागता. पाणवठ्यावयले रातराणयेंचो वास सगळ्याक परमळता. रातकिडे रडटात. केळिंच्या पांचव्या चारवटार चान्ने तिकतिकता, चारवटांतल्यान वाट काडीत मुळसणांत रीग करता. शेण सारयल्या आंगणात चान्ने अचळय देवता. कुशिच्या माड्यांच्यो सांवळ्यो रांगोळ्यो कश्यो आंगणात शिंपडटात वाऱ्याच्या झोताबरोबर चित्रां बदलतात.''(9) जिसका हिन्दी अनुवाद है ''कुळागर में शीतल हवा डोल रही है। पोखर के पास खिली रातरानी की खुशबू वातावरण में फैल रही है। झींगुर की

आवाजें झंकृत हो रही है। केलों के हरे पत्तों पर चांदनी चमचम करती है और पत्तों के अंदर से रास्ता तलाशती बूंद वृक्ष की मूल जड़ो की तरफ बढती है। गोबर से लिपे-पुते आंगन में चाँदनी हल्के से उतरती है, पडोस के सुपारी-वृक्षों की छाया रंगोली की तरह आंगन में बिखरी हुयी है, हवा का रुख बदलने से रंगोली के चित्र बदलते है।''

इस तरह अनेकानेक वर्णन पुंडलिक नायक के कथासाहित्य में अनायास ही कल्पना के विभिन्न रुपों में यथार्थपरक ढंग से उपलब्ध होते हैं। प्रकृति और परिवेश के चित्रण विवेच्य कथाकार अपनी आंचलिक परिस्थितियोंनुसार करते हैं जिसका उल्लेख विगत प्रथम अध्याय में किया गया है। 'महुए का पेड़'(10) और 'माड'(11) कहानी में महुए का संबंध उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश की जनता से है और 'माड' याने नारियल वृक्ष गोवा की प्राकृतिक सुषमा में चार चाँद लगाते है। कहना न होगा कि विवेच्य लेखक अपने-अपने परिवेश के अनुसार प्राकृतिक परिवेश और संदर्भ का निर्माण करते हैं। अंत में महुए एवं माड का जीवन प्रकारान्तर से वहाँ के सामाजिक शोषण एवं आधुनिकता की प्रक्रिया के कारण खत्म हो जाता है। 'महुए का पेड़' सामंती संस्कृति के फलस्वरूप कट जाता है तो 'माड' खनिज व्यवसाय से प्रकृति में आये बदलाव के कारण उजाड दिया जाता है। पर्यावरण के शोषण से नारियल वृक्ष अपनी निर्माण-शक्ति खो देता है। लेखक यहाँ 'माड' के प्रतीक से क्षणिक सुख की कामना, सांस्कृतिक अध:पतन, पारंपारिक जीवन एवं मूल्यों के ऱ्हास की अवधारणा को व्यक्त करता है। 'महुए के पेड़' में ठाकुर स्वार्थप्रेरित दृष्टि से पेड़ को काटकर उस पेड़ से लाभ कमाना चाहता है। यहाँ भी सांस्कृतिक अध:पतन, जीवनमूल्यों के प्रति बदलती दृष्टि व्यक्त होती है। लेकिन नारियल के पेड़ों का नष्ट होना, औद्योगिकता और खनिज व्यवसाय के परिणाम स्वरूप जमीन में उपजती बंजरता भी है। जमीन की अनउपजाऊ और शक्ति हीन होने से नारियल वृक्ष खड़े तो हो पा रहे हैं लेकिन उनकी उत्पादन क्षमता विकसित नहीं हो पाती है। कहानी में कथ्यगत विवेचन है ''आनी तेन्नाच्यान माडाक कळ्ळे कि कंबरभर तें किल्या मिनाच्या फातरांनी गळ्यामेरेनची शक्त खुटून घेतल्या सर्वस्वाचे शोशण चल्लां. पाळां-मुळां शुश्क करून वडयल्यांत कितें निर्माण करपाचें बळगेंच ना केलां''(12) जिसका हिन्दी भावानुवाद इस प्रकार है- उस वक्त नारियल वृक्ष को पता चला कि उसकी कमर तक छाये हुये खनिज पत्थरोंने उसकी प्राण शक्ति को छीन लिया है। उसके सर्वस्व सार का शोषण किया गया है। उसकी मूल-जड़े शुष्क हो गयी हैं। अब कुछ निर्माण करने की ताकत नारियल वृक्ष में शेष नहीं रही है।

6.12 अंधविश्वास एवं वर्ण व्यवस्था

विवेच्य लेखक अलग-अलग परिवेश मे जी रहे हैं, संस्कृति की भिन्नता दोनों प्रदेशों में है फिर भी समर्थ साहित्यकार समानधर्मी होते हैं। उनकी समानधर्मी सोच का लक्ष्य है मानवीय मूल्यों की स्थापना और सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास।

ग्रामीण अंचलों में रुढ़ियों एवं अंधविश्वासों का बोलबाला रहता है। मार्कण्डेय एवं पुण्डलीक नायक के प्रदेशगत अंतर और परिवेश में रीतिरिवाज लोकाचार, अंधविश्वास संबंधी अंतर और अलगाव पाया जाता है। लेकिन दोनों का दृष्टिकोण एक है। मार्कण्डेय की 'नीम की टहनी' और पुंडलीक नायक की 'खळ' कहानी अंधविश्वास संबंधी भावनाओं पर आधारित है। 'नीम की टहनी' में महामारी से प्रभावित वातावरण, गाँव के यथार्थ संदर्भों को तल्खियत से सामने लाता है तथा परंपरा से चले आये हुए अंधविश्वासों को तोड़ने से कुमार की मृत्यु को दर्शाता है। पुंडलीक नायक की 'खळ' कहानी में 'पागो' तथा उसके परिवार का भूख से बिलखना,'खळ' की पूजा किये बिना धान चुराने के फलस्वरूप पागों का पगला जाना आदि से लेखक द्वय दर्शाना चाहते कि अंधविश्वासों को तोडा नहीं जा सकता है। पात्रों को उसका फल भुगतना पडता हैं। दोनो लेखक समाज के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। वे सामाजिक व्यवस्था से पूर्णतः परिचित है साथ ही अंचल विशेष के भोले-भाले लोगों की मानसिकता से भी परिचित हैं। मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक ने अंधविश्वासों से जकड़े हुए लोगों का यथार्थ चित्रण समान धरातल पर किया है। दोनों कहानियों के उद्देश्य में वैषम्य जरुर है, कुमार अपनी प्रेमिका के प्रति समर्पित दृष्टि अपनाता है तो पागो पारिवारिक मूल्यों तथा आर्थिक विपन्नता के कारण पागल हो जाता हैं जो उन स्थितियों एवं परिवेश का स्वाभाविक परिणाम जान पडता है।

भारतीय साहित्य की आंचलिक कथाओं में वर्णव्यवस्था की कठोरता अपने दारूण रूप से उभर कर सामने आती हैं। हमारे प्राचीन समाज में वर्ण-व्यवस्था अपने कड़े नियमों से बंधी थी। वर्णव्यवस्था और जातीयता के ये बन्धन स्वातंत्र्योत्तर काल में भी शिथिल नहीं हो पाये है। अंचलों में आज भी जातिव्यवस्था से संबंधित अत्याचार एवं अन्याय मौजूद है। वेदप्रकाश अमिताभ के अनुसार ''जाति प्रथा की कुरुपता कभी जातिगत श्रेष्ठता का दंभ बनकर व्यक्त होती है, तो कभी जाति-निष्ठा के आगे राजनीति, राष्ट्र और मानवता के प्रति निष्ठाओं के दुर्बल होने की विसंगति के रुप में उभरती है। 'जातिवाद' का रुप धारण करके जातिनिष्ठा न केवल मानवीय मूल्यों और आदर्शों के विरोध में खड़ी होती है, अपितु स्वार्थ, अन्याय, अत्याचार आदि को खुला समर्थन देती दिखायी देती है। हमारे आंचलिक

उपन्यासों में दिखाया गया है कि आधुनिकता के दबाव और प्रगति की आहट के बावजूद जाति-प्रथा का गुंजलक और कसता गया है।''(13)

पुंडलीक नायक के 'वळख' (पहचान) कहानी में 'काजुलो' के हरिजन होने की पहचान, उसके प्रति आदरसम्मान की भावना को मिटा देती है। मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' उपन्यास में साधोकाका के घर की चौखट पर खड़ा रहना, दुलरा आजी की निम्न वर्ग के प्रति हीनता की भावना संबंधी प्रसंग तथा (मार्कण्डेय कृत) 'हलयोग' कहानी में मुशीजी को निम्न तथा उच्चवर्ण के बच्चों को साथ-साथ पढ़ाने के लिए दिये गये प्रोत्साहन के कारण उन्हें 'हलयोग'(14) की सजा देना आदि से यह तथ्य उजागर होता है कि दोनों लेखकों की सोच समान दिशा में प्रवाहित है। मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक ने जातिगत असमानता, धार्मिक पाखण्ड, परंपरागत रुढ़िवाद आदि से आंचलिक जनजीवन का कारूणिक एवं सटीक चित्रण किया है।

रचनाकार द्वय अपनी रचनाओं में वर्णाश्रम व्यवस्था के दोष, जमीन्दार-वर्ग के शोषण और निम्नवर्ग के हताश भाव को दर्शाने के साथ-साथ उनमें उभरती हुयी प्रतिरोधात्मक शक्ति को भी अपनी-अपनी प्रतिबद्धता से रेखांकित करते हैं जिसका प्रभाव मार्कण्डेय की 'हलयोग' 'हंसा जाई अकेला' कहानियाँ और पुण्डलीक नायक की 'पारज' और 'वळख' कहानियोंपर है।

विवेच्य कथाकारों के आंचलिक कथासाहित्य में विचारधारात्मक स्तर पर जाति प्रथा के प्रति अस्वीकृती पायी जाती है। मार्कण्डेय के कथासाहित्य में जिसप्रकार जातिप्रथा, सवर्णो का निम्नवर्णियों के प्रति रवैया, हरिजनों का शोषण आदि का बड़े पैमाने पर यथार्थ धरातल पर चित्रण हुआ है उसी प्रकार पुण्डलीक नायक भी वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रतिरोध अपनी रचनाओं में सशक्त रुप से करते हैं। पुंडलीक नायक वर्णाश्रम व्यवस्था के दो प्रसंगों का जिक्र करते हैं, यथा 'पारज' कहानी में बुधो'ग्वाले' का सामाजिक मान्यताओं के कारण पलायन, दूसरे 'वळख' कहानी में हरिजन काजुलो की अवमानता और सामाजिक विसंगतियाँ आदि। लेकिन मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' उपन्यास में अन्य आंचलिक उपन्यासों (रागदरबारी, आधा गाँव, अलग-अलग वैतरणी, जल टूटता हुआ) के समान आजादी के बाद दलितों के भीतर विकसित होती हुयी चेतना को दर्शाया गया है। मुसई को गिरफ्तार करने के बाद साधोकाका के नेतृत्व में गांववाले उसका विरोध ही नहीं करते है बल्कि मुसई को छुड़ाकर गाँव में ले जाते है। सागर एवं वैकुंठी को पंडित द्वारा मूर्गा बनानेपर छात्रों का झुंड उनकों अत्याचारों से मुक्ति दिलाता है।

सारांश रुप में कहा जा सकता है कि मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' उपन्यास में बदलते राजनीतिक, सामाजिक संदर्भों की कथा जरुर है। लेकिन उनके पात्रों

का प्राकृतिक परिवेश से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। प्राकृतिक परिवेश के फलस्वरूप पात्रों का परिवर्तन वैचारिक गतिविधियों तथा आर्थिक स्तर में बदलाव नहीं है। उनके साहित्य में परिवेश एवं मनुष्य सम्बन्ध निहित है लेकिन संवेदनात्मक स्तर पर उतनी गहराई नहीं है।

हिन्दी के बहुत से लेखक पहाड़ी या रेगिस्तानी इलाके या विभिन्न नदियों के अन्तरंग इलाकों से आये हैं, प्रकृतिवर्णन का अभाव भी उन में नहीं है लेकिन यह समझना मुश्किल है कि एक स्वतंत्र सत्ता या चरित्र के रुप में प्रकृति और मानवीय जीवन को ले कर एक भी ऐसी कृति नहीं दिखती जिस की तुलना अर्मेस्ट हेमिंग्वे की 'ओल्डमैन एंड द सी', जान स्टेनबेक के 'ग्रेप्स ऑफ द रेथ' और 'द पर्ल' या कावाबाता के 'साउंड ऑफ द माऊंटेन' और 'स्नो कंट्री' तथा कोबो एबे के 'दि वमन इन दि ड्यून्स जैसी कृतियों से की जा सके। प्रस्तुत प्रसंग में नंदकिशोर आचार्य का स्पष्ट मत इस संदर्भ में रहा है कि "ऐसा नहीं है कि हिन्दी में श्रेष्ठ रचनाओं का अभाव है या उन्हें विदेशी कृतियों के समकक्ष नहीं रखा जा सकता। मैं फिलहाल प्राकृतिक परिवेश के साथ एक विशेष प्रकार के रिश्ते को लेकर लिखी गयी कृतियों के सन्दर्भ की परिधि में ही अपनी बात रख रहा हूँ।[15] पर नंदकिशोर आचार्य यह बात भूल रहे है कि समुद्री तट के जन-जीवन पर तक्षी शिवशंकर पिल्ले (संभवतः चेम्मीन) और पुण्डलीक नायक की 'अच्छेव' जैसी श्रेष्ठ औपन्यासिक रचनाएँ उपलब्ध हैं जो दक्षिण प्रदेश के अहिन्दी भाषी लेखक रहे हैं।

6.2 पात्र एवं चरित्र की विशिष्ट मनःस्थिति

आंचलिक कथासाहित्य में प्रायः सभी चरित्र वातावरण और परिवेश की छाया में पलते है जो व्यक्तिपरक न होकर वर्ग परक भी होते हैं। उसमें प्रायः कोई परंपरागत केंद्रिय पात्र या नायक अथवा खलनायक आदि नहीं होते है। अंचल की विविधता को समग्रता में चित्रित करने के लिए रचनाकार को अनेक प्रकार के पात्रों की बनावट में स्थानीय आचार-विचार एवं लोकसंस्कृति भी परिलक्षित होती है। आंचलिक रचनाओं में संवेदनशील एवं जीवंत चरित्र होते हैं जो समाज के विभिन्न वर्गों की प्रवृत्तियों, संस्कारों एवं महत्वाकांक्षाओं को भी परिवेश के अनुसार रूपाकार प्रदान करते हैं।

6.21 पारिवारिक पात्र

मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य में परिवेशगत पात्रों का चित्रण हुआ है। वे पात्र आंचलिकता विशेष के लोक संस्कार एवं महत्वाकांक्षा

के माध्यम हैं। वे अपने मूल्यों एवं सामाजिक नीति नियमों को मानकर चलनेवाले पात्र भी हैं। जैसे पति अथवा पत्नी के मरने के उपरांत बच्चों की जिम्मेदारी, उनका लालन-पालन जीवित पत्नी अथवा पति को करना पडता है और यह पारिवारिक बंधन निभाना भारतीय संस्कृति का अंग है। उत्तर प्रदेश अथवा गोवा की संस्कृति में पूर्णतः अलगाव नहीं हो सकता, कारण सम्पूर्ण भारतीय प्रदेशों की लोकसंस्कृति, लोकमान्यताओं और आधुनिकता से अनुप्रेरित जीवनशैली में प्रकारान्तर से थोड़ा बहुत बदलाव हो सकता है पर पूर्णतः अलगाव-बोध नहीं है। इसलिये मार्कण्डेय कृत 'धूरा' कहानी में माँ पति के मृत्यु के उपरांत कष्ट सहकर अपने बच्चे को बडा करती है। क्योंकि वे बच्चे उसके भविष्य के लिए आधार बनेंगे। लेकिन मंगरु बड़ा होकर उसको अपमानित करता है, तब माँ को दुर्व्यवहार सहना पड़ता है। इसी प्रकार पुंडलीक नायक की कहानी 'खाटीक' (खटिक) में भी पिता अपने बेटे की परवरिश उसकी माँ का देहांत होने के बाद करता है। इतना ही नहीं जान से प्यारे दो बैलों को अपने बेटे की शादी करने के लिए बेच देता है और उसकी शादी होते ही वह बहु तथा पुत्र द्वारा 'वधिक' कहकर धक्के देकर बाहर निकाल दिया जाता है। विवेच्य लेखकों ने पारिवारिक मूल्यों को बचाने के लिए अंचल के पात्रों को सहज, स्वाभाविक एवं गतिशील रुप में प्रस्तुत किया है जिनमें सन्तानों द्वारा पारिवारिक मूल्यों में आयी गिरावट को चित्रित किया गया है।

मार्कण्डेय की 'धूरा' नामक कहानी के अंत में मँगरु के पश्चात्ताप द्वारा कहानी को आदर्शवादी परिणति प्रदान की है। जो संभवतः गांधीवादी विचार-दर्शन के हृदय परिवर्तनवाले सिद्धान्त का क्रिया रुप माना जा सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि माता-पिता से जुड़े हुये पारिवारिक मूल्यों के हेरफेर को खारिज नहीं करना चाहते है। पुरानी-पीढ़ी के प्रति अश्रद्धा, अवज्ञा और अपमान का समर्थन मार्कण्डेय ने अपने कथासाहित्य में नहीं किया है। पुंडलीक नायक ने 'खाटीक' (खटिक) कहानी में कुश्टा की मानसिकता एवं बेटे के दुर्व्यवहार से कहानी का अंत किया है जो वर्तमान समाज का यथार्थपरक जीवन है। साथ ही अंचल के चरित्रों की बदलती हुयी मानसिकता, माता-पिता संबंधी पारिवारिक स्वरुप, बंधुत्व, पतिव्रत रिश्ते-नातेदारी आदि पर गहराते संकट की प्रतिच्छाया को पुंडलीक नायक ने दर्शाया है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में अंचलों तथा ग्रामों के वातावरण में काफी परिवर्तन आया। फलस्वरुप बदली हुई मानसिकता के साथ नये जटिल चरित्र विकसित हुए। परंतु परंपरागत सामंती संस्कारों के तहत जीनेवाले पात्रों के भोगविलासी जीवन में कहीं कोई कमी नहीं आयी। मार्कण्डेय की 'उत्तराधिकार' कहानी में स्वतंत्रता

के बाद जोगेश सिंह के माध्यम से सामंत वर्ग की वास्तविकताओं का उद्घाटन किया गया है। नारी उन के लिए भोग्या मात्र है। जमींदारी प्रथा की समाप्ति की घोषणा के उपरांत भी अंचलों में नजर आती हैं।

विवेच्य कथाकारों ने युवावर्ग की मानसिकता का चित्रण भी अपनी रचनाओं में किया है। उदाहरणतः मार्कण्डेय की 'उत्तराधिकार' नामक कहानी में अगर 'उत्तराधिकार' का प्रश्न उठाकर कहानी की समाप्ति होती है तो पुंडलीक नायक का प्रगतिशील दृष्टिकोण स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक तथा व्यक्तिगत संघर्ष में अस्तित्व के लिए लड़ने वाली 'नारीवर्ग की चेतना', 'दायज' उपन्यास में व्यक्त होती है। मृदुला द्वारा रणजीत का खून करना, एक ओर सामंतवादी प्रवृत्ति के अत्याचारों को नकारना है तो दूसरी ओर नारी की मुक्ति को देश-काल परिवेश की आवश्यकता मानकर आत्मरक्षा हेतु महिषासुर मर्दिनी का रुप धारण कर लेना है।

शोध प्रबंध की सीमा में हम केवल विवेच्य कथाकारों के कथासाहित्य पर आंचलिक तत्वों के अनुरुप तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें यह रेखांकित करना आवश्यक मानते है कि मार्कण्डेय और पुण्डलीक नायक नारी-मनोविश्लेषण और मातृत्व बोध की प्रवृत्ति के भी सक्षम रचनाकार है। वैसे ही माँ की ममता की छाँव अपनी सन्तानों पर समान रुप से होती है पर कमजोर एवं व्यसनों से ग्रस्त पुत्र के प्रति उसके मन में विशेष वात्सल्यभावना छुपी रहती है। मार्कण्डेय कृत 'माई' कहानी की माई एवं पुण्डलीक नायक के 'दायज' उपन्यास की माई दोनों अपने व्यसनों से ग्रस्त पुत्र के प्रति विशेष लगाव दर्शाती है। इस तरह चरित्रगत समान मनःस्थितियाँ दोनों रचनाकारों के आंचलिक कथासाहित्य में व्यक्त होती है। मार्कण्डेय के मुंशीजी- सामन्ती परिवार एवं संस्कारों में जीते है तो 'अच्छेव' उपन्यास में आबू द्वारा उद्धृत कहानी के सामंतवादी प्रवृत्ति एवं भोगविलासी बाबा गांवस 'साबुन' कहानी का बेरोजगार राजेश हो या 'भाग्योदय'(16) का पढलिखकर नौकरी के लिए घूमनेवाला अशोक पात्र हो, दरअसल दोनों पात्रों की व्यथा एक जैसी ही है। राजेश अपनी माँ को भेजी गयी चिट्ठी में लिखता है "शहरों के चिकने लोगों का राज है जो सिफारिश और घूसपर जीते हैं।"(17) तो'भाग्योदय'कहानी का पात्र अशोक भी महसूस करता है कि राजनेताओं के आश्रय से ही नौकरी मिल सकती है।

मार्कण्डेय कृत 'सवरइया' कहानी के निश्चल और आत्मीय भाव के पात्र 'बैल' हो अथवा पुण्डलीक नायक 'खाटीक' में व्यक्त बैलों की व्यथा संबंधी प्रसंग जिससे आम पाठक विवेच्य लेखकों द्वारा वर्णित प्राकृतिक दृश्यों एवं प्राणी

मात्रों के प्रति लगावात्मक अभिरुचियों से प्रभावित हो सकते हैं।

भारतवर्ष एक सामासिक संस्कृति का देश है जिसमें आधुनिकता संबंधी उत्पादन शैली और उपभोक्ता वर्ग की जीवनशैली से विभक्त वर्ग समाज परिलक्षित किया जा सकता है और प्राचीन परिपाटी के अनुकूल वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

6.22 चरित्रों का वैविध्य

मार्कण्डेय और पुण्डलीक नायक की रचनाओं में वर्ण और वर्ग के संक्रमण के साम्य और वैषम्य को भी परिलक्षित किया जा सकता है। मार्कण्डेय कृत 'अग्निबीज' उपन्यास में राजनैतिक भ्रष्टाचार और कूटनीतिज्ञ तथा सामंती संस्कारों का प्रतिनिधि पात्र ज्वालासिंह है तो त्याग-बलिदान करनेवाला तथा नैतिकमूल्यों के लिए सबकुछ दाँव पर लगाने वाला पात्र स्वतंत्रता सेनानी साधोकाका भी है। अंचलों की विभिन्न समस्याओं के बीच दिशाहीन समाज में अनंत दीप के चार बातियों की तरह श्यामा, सागर, मुराद और सुनीत पात्र हैं, जिनको माध्यम बनाकर मार्कण्डेय गाँव में परिवर्तन भाव को दर्शाना चाहते हैं। शिवकुमार मिश्र ने इस संबंध में अपने विचार इस तरह व्यक्त किए हैं- " गाँवों की जिन्दगी में जिस संभावित बदलाव को मार्कण्डेय उपन्यास में रेखांकित करना चाहते हैं और जिसके सूत्र वे गाँवों में उभर रही वास्तविकता के बीच से उठाते हैं जाहिर है कि इस बदलाव का माध्यम वे उग रही संभावनाओं में किशोरों और तरुणों की नई पीढ़ी में तलाशते हैं और इसी मंतव्य से वे उपन्यास की केन्द्रीय बुनावट में गाँव के चार किशोरों के क्रियाकलापों, आचरण तथा उनकी निर्मित हो रही एक सर्वथा भिन्न मानसिकता को स्थान देते हैं।"(18) कहना न होगा कि शिवकुमार मिश्र भविष्य की कर्णधार पीढी के सकारात्मक प्रयत्नों को अपनी समीक्षा में रेखांकित कर रहे हैं।

'अग्निबीज' उपन्यास के अन्तर्गत भाई तथा भागो बहिन के चरित्र भी महत्वपूर्ण है। 'महात्मा की सुझाई राह पर सत्य और अहिंसा के सहारे खादी का प्रचार करना और लोगों को आत्मनिर्भरता और स्वदेशी के लिए प्रेरित करना भाई का काम है।' वे गांधीवादी आदर्शों को परिचित कराकर लोगों को देश के यथार्थ स्वरूप से परिचित करवाना चाहते है। लोगों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आश्रम में बे चरखे के प्रयोग पर बल देते हैं। उनके अनुसार स्वदेशी का संबंध व्यकित की चेतना से है।

भाई नामक पात्र में राजनीतिक महत्वाकांक्षा नहीं है लेकिन एक गहरा सामाजिक जुडाव है जिससे वे अलग नहीं हो सकते। समाज में व्याप्त विषमताओं,

अन्याय और विकृतियों से वे बेहद दुःखी है। लेकिन आज समाज में यह देखा जाता है कि राजनीति ही समाज की बुराईयों की जड है। समाज में व्याप्त विषमता, अत्याचार, अन्याय सही नेतृत्व के बिना दूर नहीं हो सकता। क्या भाई राजनीति से उदासीन रहने के कारण समाज को सही रास्ते पर लाने में कामयाब हो सकते हैं? बाकर, मुसई महतो निम्नवर्ग के शोषित पात्र हैं जिन्होंने आजादीपूर्व देखा हुआ सपना कहीं टूट कर बिखर चुका है। मुसई महतो का जीवन भी आर्थिक अभावों से ग्रस्त है। उसके मन में साधोकाका के प्रति असीम श्रद्धा भाव है। झूठे आरोप में गिरफ्तार करने पर भी दृष्टिकोण प्रेम का परिचायक है।

इसप्रकार 'अग्निबीज' उपन्यास के अंचल को केंद्र में रखते हुए लिखा है जिसमें चरित्रों के विकास के साथ साथ वहाँ की संस्कृति, पोखरों से जुडा हुआ लोगों का संबंध, वहाँ के रीतिरिवाज, शादी के प्रसंग पर गाये जानेवाले गानों से बजमा नदी के छोरों पर बसा आंचलिक परिवेश सर्जीव हो उठा है।

'अच्छेव' उपन्यास भी 'कोळंब' ग्राम की आर्थिक समस्याओं, राजनीतिक विसंगतियों और लोकसंस्कृति के अनुरूप गीत-गायन, नृत्य, शिगमोत्सव और 'धालो' आदि नृत्य का विवेचन प्रस्तुत करता है जो एक प्रकार से आंचलिक कथ्य एवं शिल्प अपनाये हुए है तो दूसरे प्रकार से परम्परा और आधुनिकता की टकराहट को रेखांकित करता है। पर प्रस्तुत विवेचन के संदर्भ में यह जरुर कहा जायेगा कि कथा की सीमाओं में विभिन्न पात्रों का चरित्रचित्रण स्वाभाविक रुप से नहीं हो पाता। कथानक की समाप्ति पर ज्यादातर पात्र निर्जीव प्रमाणित होते है। चूँकि आंचलिक उपन्यासों में 'परिवेश' ही पात्र बन जाता है इसलिये उसके निर्जीव होने का खतरा नहीं रहता अन्यथा अन्त में जाकर कथा को समेटते-समेटते पात्र गतिशील न रहकर स्थूल हो जाते है। डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर भी मानते है कि ''कथा में रोचकता, उत्सुकता, जिज्ञासा, उलझन, गुंफन और चमत्कृति उत्पन्न करने की फिक्र में चरित्र लेखक के हाथ के कठपुतले बन जाते हैं, चरित्रों में स्थूलता आती है, जीवंतता और स्वतंत्रता खत्म हो जाती है।''(19) इसी मत की पुष्टि गोपालराय भी करते है- ''अधिकांश कथानकों का अंत विवाह या मृत्यु में होता है और पात्र या तो मरने के लिए या विवाह करने के लिए बाध्य किए जाते हैं। यह कथानक का अंतर्निहीत दोष है कि वे अंत में बुझ जाते हैं, निर्जीव हो जाते हैं।''(20)

विवेच्य उपन्यासों का कथानक 'अग्निबीज' एवं 'अच्छेव' इसी श्रेणी में आते हैं- 'अग्निबीज' में श्यामा का विवाह तथा 'अच्छेव' में 'नानू' की मृत्यु से कथानक निर्जीव हो जाता है। प्रगतिशील श्यामा का अनदेखे, व्यसनाधिन युवक से विवाह करना प्रकारान्तर से 'श्यामा' की तेज रोशनी को जैसे बीच में ही बुझाना

है और दूसरी ओर 'नानू' की मृत्यु से कोळंब की युवापीढी के आशावाद की समाप्ति दर्शायी गयी है। इन दोनों उपन्यास के कथानक का निर्जीव होने का साम्य भाव ही है लेकिन कहीं कहीं यह महसूस होने लगता है कि आंचलिक कथासाहित्य चरित्रप्रधान नहीं होता वह परिवेश प्रधान होता है। 'अग्निबीज' राजनीतिक, सामाजिक यथार्थ को रामपुर-सेतपुर की मर्यादाओं में चित्रित कर रहा है और जो नारी कमाती नहीं है, न ही छबिया की तरह जिसका जन्म निम्न वर्ग में हुआ है। इस संदर्भ में वक्तव्य प्रस्तुत है - ''बचपन से भूख की लड़ाई में जूझने वाले वर्ग में जन्मी थी। वह जीविका के लिए संघर्ष करती है। मेहनत-मजदूरी द्वारा रोटी कमाने में लगे हरिजनों और निम्नवर्ग की स्त्रियाँ पति की गुलामी का बोझ कहाँ ढोती है? कल को आदमी से नहीं पटी, तो वे अपने घर, पति अपने घर। जब शरीर ठठाकर (मेहनत) ही दो रोटी कमानी है, तब किसी की धौंस क्यों सहें? पति रोटी कमाने के श्रम से पत्नी को मुक्त करके परमेश्वर बन गया है।''(21) उच्च वर्ग की मानमर्यादा का शिकंजा लडकियों को कसता रहता है और इसी को अभिव्यक्त करने के लिए श्यामा की शादी ही कथानक के अंत में आयी है।

पुण्डलीक नायक कृत 'अच्छेव' उपन्यास में 'नानू' की मृत्यु द्वारा लेखक अपनी परंपरा से चली आयी हुयी कृषि परम्परा को ठुकराने तथा खनिजोद्योगों द्वारा प्राप्त पैसों की लालसा में आकंठ डूबे हुये व्यक्ति की चेतनाहीन स्थिति को व्यक्त कर रहा है। आधुनिकता और औद्योगिकता को अपनाकर जितनी आरामदायी जिंदगी व्यतीत की जा सकती है उतनी ही वह मशीनरी के निष्प्राण होने के कारण व्यक्ति की मृत्यु का कार्य कारण भी बनती है। औद्योगिक उत्पादन की विषमता और पारस्परिक कृषिउद्योगों के विनाश से परिवेश के दुष्परिणामों के प्रति लेखक सचेत करना चाहता है।

विवेच्य कथाकारों ने अपनी रचनाओं में वातावरण और परिवेश को महत्व दिया है और विभिन्न वर्गों, प्रवृत्तियों के सकारात्मक और नकारात्मक पात्रों की मन:स्थितियों से भारतीय प्रदेश की विभिन्नता और सांस्कृतिक एकता को रेखांकित किया है।

6.3 आंचलिक जनजीवन और रचनागत प्रतिबद्धता

हिन्दी कथासाहित्य में आंचलिक कथालेखन की एक समूह और जीवन्त परम्परा रही है, जिसमें 'उदयशंकर भट्ट' के 'सागर, लहरें और मनुष्य', उपन्यास से लेकर नागार्जुन, रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, शानो, शिवमूर्ति, शैलेश मटियानी, संजय आदि की रचनाओं को परिगणित किया जा सकता है जिनमें

से प्रत्येक रचनाकार ने अपने-अपने प्रदेश-क्षेत्र, अंचल-विशेष के विषमताओं को अपनी विचारधारा, संकल्पना एवं प्रतिबद्धता के अनुसार चित्रित किया है।

कोंकणी कथासाहित्य का परिदृश्य भी इससे विलग नहीं है। कोंकण गोवा के जनजीवन को शणै गोंयबाब, चन्द्रकांत केणी, पुण्डलीक नायक और महाबळेश्वर सैल आदि ने विभिन्न गाँवों-क्षेत्रों के रसायन से उसे अभिव्यकित और अस्मिता प्रदान की है। वास्तव में जनजीवन के जितने संघर्षपूर्ण दृश्यांश ग्राम-अंचलो में उपलब्ध होगे मेलों, त्यौहारों, पर्वो-परिपाटियों, लोकविश्वास-अनुष्ठान शादी-विवाह, सगाई-न्यात आदि में उतने महानगरीय जीवन की नकली आवरण भरी सभ्यता में वे उपलब्ध नहीं हो सकते है जहाँ स्वार्थवश भ्रष्टाचार ही है और आडम्बर के साथ अहम भाव भी।

सामान्य रुप से माना जाता है कि आधुनिक युग में अधिकांश लेखक सामाजिक स्थितियों एवं आंतरिक अनुभूतियों से कृति का सृजन करता है। अतः साहित्य या कला का अभिव्यक्ति पक्ष सामाजिक जीवन के प्रभावों से अछूता नहीं होता है। रामविलास शर्मा ने भी लेखक के इन्द्रियबोध और भावजगत के बारे में कहा भी है कि ''मनुष्य अपने भावजगत् की रचना स्वयं रचता है किन्तु वह इस कार्य को देशकाल की किन्हीं परिस्थितियों में ही संपन्न करता है और ये परिस्थितियाँ उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं होती। भावों की व्यक्तिगत अनुभूति के कारण उसके लिये-उनकी वस्तुगत सत्ता को स्वीकार करना कठिन होता है। बाह्य जगत् का इंद्रियबोध और मनुष्य के मन का भावजगत् एक ही यथार्थ के दो पक्ष हैं जो एक दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र न होकर परस्पर सम्बद्ध है।''(22)

परंतु भौगोलिक विभिन्नता, प्रादेशिक अन्तराल, रीति-रिवाज और लोक संस्कृति का अन्तर भी किसी लेखक की अपनी विशिष्टता के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं होता है। अगर मार्कण्डेय उत्तर प्रदेश के निवासी होने के कारण मैदानी इलाकों और खेतिहर, श्रमिक जीवन के अनुभवों को कथा रुपकों में प्रस्तुत करेंगे तो पुण्डलीक नायक कोंकण गोवा के समुद्री तट के वासी होने के कारण नदियों, पहाड़ों और समुद्र की लहरों का जिक्र अवश्यम्भावी रुप से करेंगे। इसीलिए शिशिर कुमारदास ने कहा भी है कि ''ये सारे लेखक एक ही परंपरा से जुड़े होने पर भी निराले ढंग से एक-दूसरे से भिन्न भी हैं। अतः भारतीय साहित्य की एकता उसके इस वैविध्य के कारण और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।''(23)

स्वातंत्र्योत्तर दौर के उपन्यास साहित्य को कभी-कभी वर्गीकृत रुप में देखने का प्रयास किया जाता है। जिनमें प्रमुख है- सामाजिक उपन्यास (मन्नु भण्डारी कृत 'आपका बण्टी', उषा प्रियम्वदा कृत 'रुकोगी नहीं राधिका' आदि) ऐतिहासिक उपन्यास (राहुल सांकृत्यायन कृत- जय यौधेय, रंगनाथ तिवारी कृत 'देवगिरी

बिलावल' आदि) राजनैतिक उपन्यास (भीष्म सहानी कृत 'तमस', मन्नू भंडारी का 'महोभोज') अस्तित्ववादी चेतना के उपन्यास (अज्ञेय कृत 'अपने-अपने अजनबी', मोहन राकेश कृत 'अंधेरे बंद कमरे' आदि) मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास (राजकमल चौधरी कृत 'मछली मरी हुई' और राजेन्द्र यादव कृत 'कुलटा' आदि) आंचलिक उपन्यास (नागार्जुन कृत 'वरुण के बेटे', मार्कण्डेय कृत 'अग्निबीज' रेणु कृत 'मैला आंचल' आदि)।

पर यह तयशुदा बात है कि नगरों कस्बों और महानगरों की विषमता में ही नहीं बल्कि अंचलों में भी औद्योगिकरण और मशीनीकरण के दुष्परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं। ''औद्योगिकरण तथा मशीनीकरण के फलस्वरूप आदमी एक विशेष प्रकार का अकेलापन महसूस कर रहा है वह मानो मशीन का एक पूर्जा बनकर रह गया है। आदमी अपने आप कुछ कर नहीं पाता, वह मिसफिट बन गया है, वह अकेला है और तनाव में जिंदगी जी रहा है। उसकी दुनिया एक अर्थहीन दुनिया बन चुकी है- विघटित मूल्य हीनता की।''(24) जिसका संकेत बहुत कम रचनाकार अपने उपन्यासों में रेखांकित कर पाते हैं। फिर भी पुंडलीक नायक ने 'अच्छेव' उपन्यास में पात्र पंडरी के माध्यम से उसकी अर्थहीन दुनिया को चित्रित किया है।

आंचलिक उपन्यासों के कथ्य और शिल्प-पक्ष के अंतर्गत अलगावबोध के संकेत रेणु, शानी नागार्जुन, मार्कण्डेय, (हिन्दी भाषा साहित्य में) तथा पुंडलीक नायक और महाबळेश्वर सैल (कोंकणी भाषा साहित्य में) की रचनाओं में पाये जाते है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि के सन्दर्भ में सत्यपाल चुघ के विचारानुसार ''कहीं-कहीं अंचल स्वयं एक जीवंत विशिष्ट पात्र, समूह पात्र है और शेष सभी पात्र उसकी सामूहिकता के अंग है- मानो असंख्य पात्र स्वयं नहीं है, किसी के लिए हैं। इन असंख्य पात्रों का प्रतिनिधि प्रमुख पात्र शास्त्रीय शब्दावली में नायक की अंचलरुपी महानायकता के अधीन रहता है। इस तरह यह 'अंचल' पात्र सारे कथानक पर छाया रहता है और सभी पात्रों को संचालित करता रहता है।''(25)

कहना न होगा कि मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' उपन्यास तथा पुंडलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में क्रमशः उत्तर प्रदेश के रामपुर, सेतपुर का 'अंचल' तथा गोवा के 'कोळंब' का ग्राम्यांचल उपन्यास संरचना में विशिष्ट स्थान पाता है वैसे आंचलिक उपन्यासों में पात्रों की भरमार होती है। पर क्या किया जाये आंचलिकता को 'समग्रता' में उभारने हेतु पात्रों का आधिक्य होना स्वाभाविक है। 'अग्निबीज' उपन्यास में अलग-अलग कोणों से, अंचल विशेष की विभिन्न प्रवृत्तियों को रुपायित करने के लिए पात्रों का चुनाव किया गया है।

पात्रों की अधिकता तथा विस्तृत कॅनवास पर चित्रित इन घटनाओं में कहीं कहीं सुसम्बद्धता दिखाई नहीं पडती। रामदरश मिश्र के अनुसार- ''आंचलिक उपन्यास की गति एक दिशा में नहीं चारों दिशाओं में होती है। वह स्थान की अपेक्षा समय में जीता है। लेखक कभी इस कोण पर खड़ा होता है, कभी उस कोण पर, कभी ऊंचाई पर, कभी नीचाई पर। इसमें अनेक पात्रों की आवश्यकता रहती है, हर पात्र की सत्ता महत्व की है। इनमें से कोई पात्र एक-दूसरे के निमित्त नही होता, वे सब अंचल के निमित्त होते हैं। इस उद्देश्य को न समझ पाने के कारण ही लोगों को कथानक का, पात्रों का, सांस्कृतिक पक्षों का बिखराव दिखता है, उनमें एकसूत्रता और दिशागामिता नहीं दिखती।''(26)

पुंडलीक नायक कृत 'अच्छेव' उपन्यास में कोळंबवासियों की कई सारी संवेदनाओं को रेखांकित किया गया है। पुण्डलीक नायक द्वारा चित्रित विभिन्न चरित्रों को हमने भी कभी देखा होगा ऐसा हमें प्रतीत होता है, उन्होंने बड़ी सहजता एवं सरलता से कोळंब गाँव के विभिन्न वर्गों एवं वर्णों के पात्रों का चित्रण किया है। उतना किसी लेखक ने अभी तक कोंकणी भाषा में नहीं किया था।

पुंडलीक नायक कृत 'अच्छेव' उपन्यास में कोळंबवासियों की कई सारी संवेदनाओं को रेखांकित किया गया है ऐसा हमें प्रतीत होता है। प्रकाशकीय वक्तव्य के आधारपर- 'अच्छेवांतल्या कोळंब गांवांत आमी सगळे पावल्यात : थंय भोंवल्यात पंडरीक, आबूक, येश्याक, रुक्मिणीक मेळ्ळयात. तांचेकडेन उलयल्यात पुणून पुंडलीकाकडेन ते जितल्या मेकळेपणान उलयतात तितले आमचे कडेन केन्ना उलयल्यात व्हय? तांणी आपली सुखां-दुख्खां, निर्शेण्यो खर्शेण्यो हावेत, उत्फरके आमच्या मुखार इतले नितळसागेन केन्ना मांडल्यात व्हय? गोंयच्या खंयच्याच मराठी, पुर्तूगीज, इंग्लेज आनी कोंकणीय बी बरण्याकडेन ते अशें इतले नागडें-उगडे आनी धोंगा-पोंगा सयत उबे रावंक नाशिल्ले. पयलेच खेपे तांका पुंडलीकाच्या रुपान कोण तरी आपलोसो मनीस मेळ्ळा आनी तांकां वाचा फुटल्या-ते जशे 'आसात' तशेच हांगा दिश्टी पडटात''(27)

जिसका भावानुवाद है- 'अच्छेव' में वर्णित 'कोळंब' गाँव हमारा परिचित है, वहाँ हम घूमें-फिरे हैं, पंडरी, आबू, येशो, रुक्मिण आदि से हमने भेंट-वार्ता की है। लेकिन पुंडलीक के साथ वे जितनी सहजता के साथ वार्तालाप करते है उतना हमारे साथ उन्होंने कभी संवाद स्थापित किया है? उन्होंने अपने सुख-दुःख, आशा-निराशा, जीवन की विपन्न अवस्था, इच्छाएँ, क्रोध आदि भाव कभी हमारे सामने इतनी निर्मलता से व्यक्त किये हैं? गोवा के किसी भी मराठी, पुर्तगीज, अंग्रेजी और कोंकणी रचनाकार के पास इतने नंगधडंग, ऊबड-खाबड, रुप-विरुप के पात्र एक साथ उपलब्ध नहीं है। पहली बार पुंडलीक नायक के

रुप में उन्हें अपना कोई (वाचक-Naratar) मिला और उन पात्रों को वाणी मिली है। वे 'जैसे' है 'वैसे' ही उपन्यासगत संरचना में दृष्टिगोचर होते हैं।''

कहना न होगा कि पुंडलीक नायक ने कोळंब के अंचल का सामाजिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक, धार्मिक आदि स्थितियों के चित्रण में मनुष्य मात्र को यथावत रूप में चित्रित किया है।

6.31 प्रगतिशील दृष्टिकोण

सुधी विद्वानों को ज्ञात है कि प्रगतिशील दृष्टिकोण मानवतावादी विचारधारा का समर्थन करता है। समाज की समस्त भावनाओं, परम्पराओं तथा नैतिक मान्यताओं एवं उसके विभिन्न अंगों का नियमन समाज की आर्थिक स्थितियों के अनुरुप होता है। इसलिए प्रगतिशील दृष्टिकोण शोषित एवं शोषक के अंतराल को खत्म करने की इच्छा से उसके संघर्ष को यथार्थ रुप में दर्शाता है। शासक वर्ग के नृशंसतापूर्ण व्यवहारों एवं अत्याचारों से समाज के शोषित वर्ग को मुक्त कराता है। सुमित्रा त्यागी के अनुसार ''विभिन्न अंचलों में निम्नवर्ग का अन्याय के विरुद्ध प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण, रुढिगत, धार्मिक, सामाजिक मान्यताओं के प्रति विरोध तथा उन्नति की आशा का प्रगतिशील दृष्टिकोण, पिछड़ेपन का अनुभव और जन-जागृति की नवीन चेतना की अभिव्यक्ति आंचलिक उपन्यासों में यथार्थवादी धरातल पर हुई है।''(28)

विविध ग्राम्य-अंचलों में श्रमिक एवं कृषक वर्ग ने पूँजीपति शोषण एवं जमींदारी प्रथा के उन्मूलन का प्रयास किया है, तथा जनसामान्य ने आत्मनिर्भरता को ही अपनी उन्नत्ति का मूलाधार माना है। समाज के यथातथ्य रुप को स्वीकार कर उसके दुर्गुणों एवं दूषित वातावरण को नष्ट करने या उसमें सुधार लाने का प्रयत्न इस समय अंचलों में बड़े पैमाने पर हो रहा है। दंगल झाल्टे के अनुसार-''अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की भावना आंचलिक उपन्यासों में निरी क्रांतिकारी ढंग की न होकर, पिछडे अंचलों में सर्वांगिण उन्नत्ति कराने की प्रगतिशील चेतना के रूप में हुई है।''(29)

मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक ने प्रगतिशील विचारधारा को अपनाते हुए जमींदार-भाटकारों के अत्याचार और उनके विरूद्ध संघर्ष को चित्रित किया है। मार्कण्डेय की प्रसिद्ध कहानी 'बीच के लोग' में मनरा द्वारा यथास्थिति बनाये रखनेवाले फ़उदीदादा का विरोध किया जाता है। बुझावन महतो की जमीन हड़पनेवाले हरदयाल तथा महाजन का विरोध करने के लिए मनरा और बचवा के माध्यम से नयी पीढ़ी की शक्ति ऊभरकर आ रही है। वे समाज की यथास्थिति में, पारंपारिक ढाँचे में बदलाव की अपेक्षा करते है, फउदी दादा संघर्ष को रोकने में असफल रहते है और कहते है, ''हम लोग चलते हैं, अब से मोर्चे पर कभी नहीं आयेंगे,

शरीर बहुत थक गया है।" तो मनरा कहता है, "जरुरत तो ऐमी ही है। अच्छा हो कि दुनिया को जस-की-तस बनाये रखनेवाले लोग अगर हमारा साथ नहीं दे सकते तो बीच से हट जाएँ, नहीं तो सबसे पहले उन्हीं को हटाना होगा, क्योंकि जिस बदलाव के लिए हम रण रोपे हुए हैं, वे उसी को रोके रहना चाहते है।"(30)

यह वह प्रगतिशील चेतना है जों गाँव में परिवर्तन चाहती है तथा शोषणमुक्त समाज के निर्माण में सहायक है। यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि "मनुष्य के विचार उसकी सामाजिक स्थिति को प्रतिबिम्बित करते है, इसीलिये वर्गों के भिन्न दृष्टिकोण उनकी भिन्न विचारधाराएँ होती हैं। किन्तु मानव चेतना में यह क्षमता है कि वह इस सामाजिक स्थिति से ऊपर उठ सके। चिंतन की भौतिक सीमाओं से ऊपर उठकर अपेक्षाकृत स्वतंत्र स्तर पर विकसित हो सके।"(31) कहना न होगा कि 'अग्निबीज' उपन्यास में मनरा का व्यक्तिगत धरातल पर चेतनापरक स्वर पूँजीवादियों के खिलाफ प्रगतिशील दृष्टि को दर्शाता है।

सुधी विद्वान जानते है कि आंचलिक उपन्यासों में कथानक अत्यंत भिन्न होता है वह बिखरा हुआ तथा साथ-ही-साथ जटिल भी होता है। मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' उपन्यास में आजादी के बाद की जनचेतना और उसके विकास को चित्रित किया है। "सम्पूर्ण समाज जीवन की विभिन्न सामयिक विसंगतियों, विषमताओं और जटिलताओं की भी सशक्त अभिव्यक्ति है।"(32) 'अग्निबीज' उपन्यास के फ्लैप पर प्रकाशक ने भी इसी वक्तव्य को स्पष्ट किया है कि "समकालीन परिस्थितियों की पहचान के लिये जनता के जीवन की प्रमुख कसौटी के रुप में प्रस्तुत करके 'अग्निबीज' उस खोज को आसान ही नहीं बनाता वरन् आपको पूरे समाज की वर्ग विसंगतियों के बीच ला खड़ा करता है।"(33)

हरिजन तथा उनके बच्चों की दयनीय अवस्था, भूपतियों द्वारा शोषण, आर्थिक तंगी की वजह से विविध विपत्तियों का सामना करना, गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव एवं उसके निरर्थक तत्व, स्वार्थी प्रवृत्तियों से नख से शिख तक आकंठ डूबा हुआ ज्वालासिंह जैसा राजनीतिज्ञ चुनाव का यथार्थ आदि सामाजिक एवं आंचलिक विभिन्न पहलुओं को मार्कण्डेय ने यथार्थ अभिव्यक्ति प्रदान की है। आग लगने की घटना से ग्रामीण जीवन में व्याप्त जाति-पाँति के कारण उत्पन्न आक्रोश एवं प्रतिशोध की चरमसीमा है। आर्थिक तंगी से छबिया बैलों के गोबर से अनाज जुटाती है, मकई के पिसान से जो बाहर फेंकने लायक है उसकी रोटियाँ बनायी जाती है। कितने ही दिन भूखे पेट सोना पड़ता है। उसमें गांधीजी द्वारा सुझाये हुये मार्ग पर चरखा चलाकर आराम से जिंदगी जी सकते है लेकिन हरिजन सूत काते तों भूपतियों के दरवाजे पर खटेगा कौन? भागो बहन द्वारा इस तथ्य के यथार्थ को रेखांकित किया है।-आदर्श कोरी कल्पना के नींव पर नहीं टिक सकता। आप

बस यह मानकर चलते है कि आदमी को ऐसा करना चाहिए। हरिजन यदि सूत काते तो उनकी बहुत सी समस्यायें सुलझ जायेंगी पर आपने कभी यह भी सोचा है कि वे कब कातें, कैसे कातें? सुबह से शाम तक उनका पूरा परिवार भूपतियों के दरवाजे पर खटने के लिए बाध्य है। अपने बच्चों को स्कूल भेजने पर उनकी पिटाई इसलिये की जाती है कि सारे हरिजन बच्चे स्कूल चले जायेंगे तो मालिकों के जानवर कौन चरायेगा?''(34) निलहों द्वारा किये गये अत्याचार में सूरज की बेदम मार से मृत्यु हो जाती है। ऐसे अनेक अत्याचारों का रामपुर-सेतपुर तथा वहाँ के लोग गवाह है फिर भी जनजीवन की मान्यताओं में राजनैतिक, सांस्कृतिक दृष्टि में बदलाव नहीं आ पाया है।

पुंडलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास की कथावस्तु में विशेषकर कोळंब ग्राम में खनिज व्यवसाय के कारण परिवर्तित चेतना का कथ्य उभरकर आया है। यह परिवर्तन मनुष्य को प्रभावित कर रहा है साथ ही साथ वहाँ की संस्कृति, रीतिरिवाज, प्रकृति में भी आमूलचूल बदलाव हुआ है। यथा ''पुंडलीक बाबांचे लिखणेक गांवगिन्या जिणेच्या खंयच्याय आंगाची उपेक्ष करीन दिसना, सण-परबो, रीत-रविसो, विश्वास-अंधविश्वास व्यसनां-लती, पूजा पनस्कार, गाळी-फस्ती, होरावण्यो-उकलास, देव-देवचार, सांगण्यो-कागाळ्यो, घाडी-भगत खेळ-नाटकां अशा असंख्य तासांनी गांवचे सांस्कृतीक दायज तर तांणी वाचप्याक पेश केलांच, पूण हेवरवीं कश्टकरी समाजमनाचो सूर सांपडावपाचोय यत्न केला. ह्या संस्कृतीक तासांचो समाजावेलो खोल प्रभाव, वाचप्याक थंयच्या समाजमानसाकडेन वळख करूंक आनी ताचेवटेन समजिकायेन पळोवंक मजत करता अशेतरेन त्या समाजांत घडून येवपी स्थित्यंतरा तो सर्वार्थान समजूंक पावता आनी तांचे परिणाम आवळुंकूय पावता।''(35) जिसका भावानुवाद है कि पुंडलीक बाब की लेखनी आंचलिक जीवन के किसी भी पात्र की उपेक्षा नहीं करती। त्यौहार-उत्सव, रीति-रिवाज, विश्वास-अंधविश्वास, व्यसन, गाली-गलौज, पूजा-अर्चना, देवी-देवता, भूत-प्रेत, शैतान-ईश्वर संबंधी मान्यता, ओझा-तांत्रिक, खेल-नाटक ऐसे अनेक उपक्रम व दृश्य उन्होंने गाँव की संस्कृति की पूर्णता को दशनि के लिए पाठकों के सम्मुख पेश किये हैं। इन्हीं संदर्भों से सामाजिक मन-मानस का सुर मिलाने का प्रयत्न किया है। इन सांस्कृतिक वर्णनों का समाज पर पाया जानेवाला गहरा प्रभाव, पाठक को उस सामाजिक वर्ग से पहचान करने तथा सहानुभूतिपूर्वक देखने में मदद करता है। इस तरह पाठक इस समाज में विघटित स्थितियों को हृदयंगम कर सकता है तथा उसके परिणामों से परिचित होता है।

'अग्निबीज' उपन्यास में मार्कण्डेय अपनी प्रतिबद्धता से रामपुर-सेतपुर के अंचल से जुड़कर उत्तर भारत के इलाकों में ग्रामीण जीवन की समस्याओं से

जूझनेवाले प्रताड़ित लोगों का यथार्थ चित्रण करते हैं। यह महसूस होता है कि इस अंचल की समस्याओं, राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक जागृति को, अन्य प्रदेशों से जोड़ा जा सकता है। लेकिन उस प्रदेश की लोकरीतियाँ, रीति-रिवाज, पोखर से जुड़ी जिंदगी एवं संस्कार, लोकगीत क्षेत्रीय जीवन की पहचान है जिसकी चर्चा विगत चतुर्थ अध्याय में की गयी है।

पुंडलीक नायक कृत 'अच्छेव' का कथानक कोळंब का क्षेत्रीय जीवन तथा सामजिक, सांस्कृतिक पहलुओं से जुड़ा हुआ है। उपन्यास का कथातत्व, कोळंब के परिवेश से संबंधित है। कोळंब अंचल ही कथानक का नायक है उसके इर्द गिर्द संपूर्ण कथातत्व घूमता रहता है। पंडरी जमीन पर हल-चलाता है, उसे उपजाऊ बनाता है । उसे उपजाऊ बनाने के लिए किये गये प्रयत्न, उसकी संघर्षपूर्ण जीवन में साफ झलकता है। लेकिन वहीं पंडरी खेती छोड़कर खनिज व्यवसाय अपनाता है और अपना घर-परिवार का विनाश कर डालता है। सारांशत: 'अच्छेव' उपन्यास के अंत में पंडरी को आर्थिक दृष्टि से विपन्न सामाजिक दृष्टि से हीन, उपेक्षित नैतिक दृष्टि से गिरा हुआ और मानसिक दृष्टि से टूटा हुआ निराश, हताश और निरुपाय दर्शाया है।

खनिज उद्योग से खेती, जमीन, जल, जंगल जीवन में क्रांतिकारी बदलाव आया है, जो खेती सुंदर सजीव रुपों में थी वहाँ वह निर्जीवता लाया है "मुखावयली आंबुल्ली मरुन तिजी नावनिशाणी लेगीत उरूक नाशिल्ली. कातऱ्यों केगदी बेणून वडयिल्ल्यो. तांची फकत मुळां दिसताली. तळ्याचे सकयले वटेन एक हळदुवोच ट्रक तळ्याधडेर अजस्त्र बेबो कसो उबो आशिल्लो. दोगजाण ताजेर उदक शिंपडावन धुताले. धुल्लाचें उदक तळ्यांत देंवतालें. ऑयल, डिझेलाची चक्रां उदकार चकचकताली. ताज्यान ते पळोव नजो जालें. ताणें नदर फाटीं घेतली.तो आतां उठून चलपाक लागतलो आशिल्लो इतल्यान ताजी नदर मुखावयल्या सांतोणाचेर पडली सांतोणाचें ऊंच उबार माथें तशेच मळबाक भिडिल्ले आशिल्ले पुण तांतूंत आदिचों नेट नाशिल्लो. कात झडिल्लेवरी तो रुख दिसतालो. कोळंबाचेर ताजी नदर पुण आदी सारको तो आंग-आंग पालोवंक नाशिल्लो तटस्ततायेन सगळे मोन्यानी पळयतालो कोळंबाच्या सुख-दु:खाकडेन ताजो आतां कसलोच संबंद उरुक नाशिल्लो"[36] हिन्दी भावानुवाद है- सामनेवाला आम का छोटा पेड़ मर चुका है उसका नामोनिशान मिट गया है। कटिला केवडा काट डाला गया है। उसकी सिर्फ जड़े बची है। पोखर के नीचे की ओर पीला ट्रक तालाब के किनारे अजस्त्र मेंढक जैसे खड़ा था । दो जन उसपर पानी डाल रहे थे जो तालाब के पानी में मिल रहा था, ऑयल, डिझल से प्रभावित निर्मित चक्र पानी पर चमचमा रहे थे। उससे वह देखा नहीं गया। उसने नजरें

घुमायी और वह चलने ही वाला था तो उसकी नजरें सामने वाले सांतोण पर पड़ी। सांतोण का ऊँचा सिर आकाश तक छाया हुआ जरुर था लेकिन उसमें वह खुमारी नहीं थी। वह पेड़ त्वचा पर झुरियों की तरह वीभत्स दृष्टिगोचर हो रहा था। 'कोळंब' पर उसने दृष्टि डाली थी लेकिन पहले की तरह उसमें किसलय कोंपल प्रस्फुटित नहीं हुए थे। वह तटस्थ भाव से सब कुछ देख तो रहा था लेकिन कोळंब के सुख-दु:ख से उसका कोई सम्बन्ध रहा नहीं था।

जंगल, जमीन, जल और उसके बदलाव जीवन में आया हुआ प्रदूषण शंकर की सोच से प्रगट होता है। 'कोळंब' की दुर्दशा, संस्कारों में, त्यौहारों में सोच-विचार में आये हुए परिवर्तन से कृषि खेती छोड़कर खनिज व्यवसाय के पीछे भागने के परिणाम स्वरुप आया है जिसको यथार्थ रुप से चित्रित करने की चाह लेखक की अन्तरात्मा में रहीं है।

विवेच्य लेखकों में विभिन्नता इस दृष्टि से है कि रामपुर-सेतपुर के अंचल के व्यापक कथातत्व को अन्य उत्तर भारतीय, मध्यप्रदेश, बिहार, राजस्थान आदि प्रदेशों में महसूस किया जा सकता है, लेकिन कोळंब(गोवा) की इस व्यथा को संभवत: केरल व आंध्रप्रदेश के अलावा अन्य क्षेत्रों में कोई महसूस नहीं कर सकता है। संभवत: कोळंब वासियों को ही खनिजोद्योग के परिणाम भुगतने हैं। वहाँ का संपूर्ण परिवेश एवं क्षेत्रीय जीवन ही इससे प्रभावित है।

पुंडलीक नायक की 'जैत' कहानी में भाटकारों (पूंजीपति वर्ग) के अत्याचारों का विरोध करते हुए युवा वर्ग को दर्शाया है। इस कहानी में भाटकार जानु नामक पात्र को बहुत पीटता है। इसलिये गांव के चौक पर युवावर्ग के प्रतिनिधि विजय के नेतृत्व में यह निर्णय लिया जाता है कि भाटकार की भाट (नारियल वृक्ष के समूह) में कोई काम नहीं करेगा तथा उसको सभी लोगों के सामने माफी माँगनी होगी। इस तरह गाँव के श्रमिक व मजदूर भाटकार पर बहिष्कार डालते हैं।

वर्तमान दौर में पूंजीपति वर्ग- भाटकारों के अन्यायों के विरुद्ध आवाज उठाने की शक्ति नयी पीढी में आ गयी है। विजय इस अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाकर एक प्रकार से रचनाकार के प्रगतिशील दृष्टिकोण को ही व्यक्त करता है। वस्तुत: मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक की वैचारिक चेतना में समानता है लेकिन पुंडलीक नायक ने उसके व्यावहारिक पक्ष को सक्षमता से चित्रित किया है।

'जैत' कहानी के कथ्य के अनुरुप युवा प्रतिनिधि विजय के मना करने पर भाटकार के यहाँ नारियल तोड़नेवालों अथवा घरेलू काम पर मजदूर नहीं जाते। लक्ष्मीकांत द्वारा घर पर आकर बुलाने के बावजूद वे लोग मना करते हैं। आर्थिक संकट का और कोई समाधान जुटा न पाने से जानु बहुत परेशान हो जाता है

और भाटकार के पास पुनः काम करने के लिए चला जाता है। यहाँ कहानी एक अलग मोड पर खडी है। जहाँ तक जमीन का सवाल है वहाँ मार्कण्डेय ने 'बीच के लोग' कहानी में युवावर्ग द्वारा जमीन पर कब्जा कर लिया है, लेकिन जिनकी जमीन ही नहीं है वे गाँव में गुजारा कैसे कर सकते हैं? भाटकार के यहाँ काम करनेवाले मजदूर एवं पाडेली (नारियल के पेड से नारियल तोडनेवाले) तो दैनिक मजदूरी पर जीते है, उनके सामने और कोई रास्ता नहीं है। इसलिए पुंडलीक नायक की कहानी में आर्थिक अभावग्रस्तता से जानु पुनः भाटकार के यहाँ चला जाता है।

वास्तव में प्रगतिशील चेतना भूखे रहकर नहीं आ सकती, अपने बच्चों के पेट में दानापानी डालने के लिए कोई काम तो करना होगा। अतः कहीं विवश होकर अन्याय सहना पडता है जो एक प्रकार से यथार्थवादी चित्रण लगता है अपनी प्रतिबद्धता में पुंडलीक नायक की 'भागेलपण' कहानी में 'गोदुलो' पात्र अपने भाटकारों के अत्याचार से संत्रस्त है। चार पीढ़ियों पूर्व से जो जमीन (भाट) गोदूलो के पूर्वजों की थी वह उसके अशिक्षित होने से भाटकार फ़ायदा उठाकर गोदुलों की जायदाद हड़प लेता है। बच्चे की पढ़ाई पर रोक लगाने से गोदुलों परेशान हो जाता है और अपने लड़कों को पढ़ाने के लिए 'भागेलपण' पर ठोकर मारता है। अपने बच्चे एवं पत्नी को लेकर दूसरे प्रदेश में चला जाता है। पर यह चेतना पात्र के व्यक्तिगत धरातल पर रेखांकित हुयी है, सामूहिक चेतना के विकास स्तर पर नहीं।

6.32 नारी पात्र और प्रगतिशील चेतना

शताब्दियों से शोषित पीडित नारी अब स्वातंत्र्योत्तर भारत में अपनी स्वतंत्रता एवं समानाधिकार के प्रति सचेत ही रही है। सामाजिक समस्याओं के बावजूद नारी की प्रगतिशील चेतना संबंधी जागृति का वर्णन मार्कण्डेय एवं नायक दोनों अपने कथासाहित्य में करते रहे हैं। मार्कण्डेय के आंचलिक कथासाहित्य में नारी वर्ग द्वारा भारतीय संस्कृति का निर्वाह पूर्णतः किया हुआ मिलता है। 'अग्निबीज' में श्यामा जैसी तेजस्वी नारी पात्र अपने प्रगतिशील विचारों के बावजूद कहीं भी शील की भ्रष्टता या अपनी शालीन संस्कृति का त्याग का अवसर नहीं देती। वह भारतीय रीतिरिवाज, कुलाचार और उसकी-शील मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती।

पुंडलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य में नारी-चेतना, स्वतंत्रता के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण व्यक्त होता है। यहाँ पर कतिपय नारियाँ भारतीय संस्कृति का निर्वाह जरुर करती है लेकिन जहाँ तक 'अच्छेव' के नारीचरित्र है

उनमें भोगविलास की दृष्टि ही ज्यादातर दिखाई देती है। रुक्मिणी, केंसर अपने क्षणिक सुख के लिए नैतिक मानमूल्यों को दाँव पर लगाती है। 'अच्छेव' उपन्यास में पति-पत्नी के रागात्मक संबंध उनसे जुडे पतिव्रत की भावना या सतीत्व की एकनिष्ठता आदि नैतिक मूल्यों का ह्रास दिखाया गया है। 'वसंतोत्सव' उपन्यास में भी पुरुष वर्ग का अनैतिक आचरण स्पष्टत: नजर आता है। पुण्डलीक नायक के यहाँ ड्राइव्हर के लिए कुआँरी कन्यायें भोगविलास की सामग्री बनी हुयी है। नशे में धूत ड्रायव्हर जब चाहे तब नारियों का शोषण या उपभोग कर सकता है। 'अच्छेव' की नारी पात्र केंसर भी ड्रायव्हर की वासना का शिकार हो जाती है, परिणामस्वरुप वह गर्भपात की शिकार बनती है और अंतत: 'मानुयल' के साथ भाग जाती है। क्या आधुनिकता हमारी विवाह संस्था पर आघात कर कुआँरी के कौमार्य भाव एवं यौन शुचिता पर प्रश्नचिह्न लगा रहा है इस तरह सामाजिक संस्कृति का अध:पतन, नीतिमूल्यों में गिरावट प्रकारान्तर से पूंजीवादी व्यवस्था के विकास के प्रतीक खनिज व्यवसाय के कारण आयी है।

विवेच्य लेखकों ने आंचलिक समस्याओं और तद्जनित जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। प्राकृतिक परिवेश, चरित्रों की विशिष्ट मन:स्थितियाँ एवं उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण में अधिकांशत: साम्य एवं कतिपय वैषम्य पाया जाता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि अलग-अलग परिवेश में जीनेवाले दो लेखक मूलत: भारतीय संस्कृति से जुडे हुए हैं, उनके संस्कार एक है। भारत में कही स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों में मोटे तौर पर एक जैसी समानता है अत: इन विकासात्मक स्थितियों में लेखक समान धरातल पर सोच रहा है जिससे उनमें समानता का भाव अधिक दृष्टिगोचर होता है।

मानव मुक्ति को अपना प्रतिपाद्य मानने और समता, समानता, सत्य, न्याय और सद्भाव आदि मूल्यों को महत्व देने के परिणामस्वरूप आंचलिक उपन्यासों का मूल्य-बोध स्पष्टत: प्रेमचंद की कथा-परंपरा और हिंदी उपन्यास की मुख्य धारा के प्रगतिशील सोच के मेल में है। मार्कण्डेय तथा पुंडलीक नायक भी इसी यथार्थवादी सोच में साहित्यसृष्टि करते हैं।

लेकिन कथासाहित्य की परंपरा में कतिपय अलगाव भी है। वैसें हमारे यहाँ ग्राम्य समाज की यथार्थवादी चित्रण की भावभूमि प्रेमचन्द ने रची थी। उषा डोंगरा के अनुसार ''ग्राम्य जीवन की जिस यथार्थवादी भूमिका का निर्माण प्रेमचन्द ने किया उसे वर्तमान समकालीन उपन्यासकारों ने तो अपनाया ही है। इससे आगे की पीढ़ी के उपन्यासकारों को भी एक बनी-बनायी भूमिका प्राप्त हुई''(37)

भारतवर्ष के खनिज उद्योगों में शामिल सभी प्रदेशों के मजदूरों की स्थिति लगभग एक जैसी ही है। रमेश वेळुस्कर के विचारानुसार भी बिहार के

कोयला खदानों में अभ्रक और लोह कणों की खदानों में परंपरा और आधुनिकता तथा नये और पुराने मूल्यों की टकराहट देखी जा सकती है। कर्नाटक के कोलार माईन्स में, आन्ध्रप्रदेश के सिखूर कागज नगर और भद्राचलम के पास की कोयला खदानों में भी लगभग 'अच्छेव' उपन्यास जैसी आधुनिकता की विध्वंस प्रक्रिया को अपनानेवाली परिस्थिति और परिवेशगत त्रासदी देखने को मिलती है।(38)

गोवा प्रांत के सूर्ला, डिंगणे, शिरसई, पाळी, कुळे, सावर्डे, कोळंब, आदि क्षेत्रों में (आयरन ओर) लोहकणों के खनिज माईन्स खदानों का उत्पादन कार्य विगत पाँच छह दशकों से जारी है। वास्तव में खनिज व्यवसाय ने परंपरागत कृषि उत्पादन की प्रणाली में बदलाव की स्थिति निर्मित की है जिसके परिणाम स्वरूप श्रमिकों और मजदूरों की आर्थिक स्थिति में सुधार आया है। ट्रांसपोर्ट यातायात, आम मजदूर-सुपर वायजर, प्रबंधक और मैनेजर जैसे पदों की नये रोजगार की स्थिति निर्मित हुयी है। लेकिन औद्योगिक उत्पादन के परिणाम सकारात्मक ही नहीं होते हैं उसके साथ संयुक्त परिवारों में बिखराव, मान-मूल्यों में बदलाव और मानवीय संवेदनाओं की ऱ्हास की स्थिति भी निर्मित होती है। भाटकार और मुंडकार के सम्बन्ध सामंतवादी उत्पादन प्रणाली (Fudal Elements) के सम्बन्ध रहे है।

प्रसंगवश रोहिताश्व के विचारानुसार ''अच्छेव' उपन्यास में पूँजीवादी उत्पादन शैली की विषमता और मानवीय रिश्तों के खातमे की बात आधुनिकता और औद्योगिकता की अपनी स्वत: प्रक्रिया के अनुरुप हुयी है। कारण जहाँ भी नयी उत्पादन शैली और आर्थिक बदलाव की स्थिति निर्मित होती है वहाँ समाज का पारंपारिक ढाँचा टूटता है। 'अच्छेव' उपन्यास के अंतर्गत किन पात्रों की मन:स्थितियों में बदलाव आया है यह शोधपरक विवेचना का विषय हो सकता है।''(39)

विगत पंचम अध्याय में जैसे 'मार्कण्डेय और पुंडलीक नायक का कथासाहित्य: आंचलिक परिवेश एवं लोकजीवन' संबंधी विवेचन किया गया है। वहाँ प्रस्तुत षष्ठ अध्याय में विवेच्य कथाकारों की वैचारिक प्रतिबद्धता के अनुकूल युगीन परिवेश संबंधी समानता और विषमता का चित्रण हुआ है। साथ ही चरित्रगत मन:स्थितियाँ रेखांकित कर आंचलिकता संबंधी वैशिष्ट्य को अभिज्ञापित किया गया है।

शोधप्रबंध की संकल्पनानुसार अगला सप्तम अध्याय विवेच्य कथाकारों के कथासाहित्य में व्यवहृत भाषा-शिल्प-शैली विवेचन का प्रारुप है।

-o-o-o-

सन्दर्भ सूची : षष्ठ अध्याय

1.	इन्द्रनाथ चौधुरी	:	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका	पृ.76
2.	वही	:	वही	पृ.77
3.	त्रिभुवन सिंह	:	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.69
4.	दंगल झाल्टे	:	उपन्यास समीक्षा के नयें प्रतिमान	पृ.22
5.	इन्द्रनाथ चौधुरी	:	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका	पृ.101
6.	उषा डोंगरा	:	हिंदी के आंचलिक उपन्यासों का लोकतात्विक विमर्श	पृ.142
7.	शिवकुमार मिश्र	:	सही इतिहास की पहचान: अग्निबीज कलम अंक 1982	पृ.120
8.	पुंडलीक नायक	:	मुठय	पृ.21
9.	वही	:	वही	पृ.98
10.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.131
11.	पुंडलीक नायक	:	मुठय	पृ.82
12.	वही	:	वही	पृ.82
13.	वेदप्रकाश अभिताभ	:	हिन्दी अनुशीलन अप्रैल 86	पृ.139
14.	मार्कण्डेय	:	वर्तमान साहित्य	पृ.271
15.	नन्दकिशोर आचार्य	:	साहित्य का परिवेश	पृ.31
16.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.7
17.	मार्कण्डेय	:	महुए का पेड़	पृ.57
18.	शिवकुमार मिश्र	:	सही इतिहास दृष्टि की पहचान: अग्निबीज कलम 1992	पृ.114
19.	चन्द्रकान्त बांदिवडेकर	:	उपन्यास: स्थिति और गति	पृ.6

20.	गोपाल राय	:	उपन्यास का शिल्प	पृ.20
21.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.171
22.	रामविलास शर्मा	:	आस्था और सौंदर्य	पृ.26
23.	The diversity of Indian literatrue become more significant because of its unity. Sisir Kumau Das, 'The Idea of an jndian literature' ragaratha (1573)			पृ.15
24.	इन्द्रनाथ चौधुरी	:	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका	पृ.108
25.	सत्यपाल चुघ	:	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधी	पृ.557
26.	रामदरश मिश्र	:	हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा	पृ.189-190
27.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव प्रकाशकीय वक्तव्य	
28.	सुमित्रा त्यागी	:	हिन्दी उपन्यास: आधुनिक विचारधाराएँ	पृ.157
29.	दंगल झाल्टे	:	नये उपन्यासों में नये प्रयोग	पृ.41
30.	मार्कण्डेय	:	बीच के लोग	पृ.49
31.	रामविलास शर्मा	:	आस्था और सौंदर्य	पृ.30-31
32.	उषा डोंगरा	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का लोकतात्विक विमर्श	पृ.143
33.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज भूमिकांश	
34.	वही	:	वही	पृ.11
35.	किरण बुडकुले	:	साहित्य निपाळ : अंतरंग आनी काया रुपो	पृ.62
36.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.185
37.	उषा डोंगरा	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का लोकतात्विक विवर्श	पृ.54
38.	रमेश वेळुस्कर	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता	4/4/03
39.	रोहिताश्व	:	शोधकर्त्री की निजी वार्ता	12/4/03

-o-o-o-

सप्तम अध्याय
भाषा-शैली एवं शिल्पविधान

समर्थ रचनाकार अपनी संवेदनाओं, भावनाओं, विचारों और काल्पनिक अनुशंसा हेतु एक निजी भाषा का विकास करता है जो जन सामान्य की भाषा से अलग हाती है। विवेच्य कथाकारों ने अपनी कथात्मक रचनाओं में क्षेत्र-विशेष की भाषा-बोली, भाव-भंगिमा, लोकोक्ति, मुहावरों की विलक्षणता को साकार किया हैं।

वास्तव में भाषा-शैली ही अभिव्यक्ति संबंधी सम्प्रेषणीयता का माध्यम होती है। ''मनुष्य के पास अभिव्यक्ति के जितने भी साधन हैं उनमें सबसे अधिक समर्थ, नमनीय एवं रमणीय साधन भाषा है। कविता में भाषा अभिव्यक्ति का सबसे प्रमुख तत्व है। भाषा काव्य का कितना प्रमुख तत्व है, इसका अनुमान काव्य की उन परिभाषाओं से लगाया जा सकता है जिनमें भाषा के विशेष प्रकार के उपयोग को ही काव्य कह दिया गया। आचार्य विश्वनाथ के लिए वाक्यं रसात्मकं काव्यम् है।(1) पंडितराज जगन्नाथ के लिए भी रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम् है।(2) कॉलरिज के लिए 'पोयट्री, द बेस्ट वर्ड्स इन द बेस्ट ऑर्डर' है।(3) मलार्मे

की मान्यता है कि ''कविता विचारों (आइडियाज) से नहीं, शब्दों से बनती है।''[4] आई.ए.रिचर्ड्स के लिए कविता 'भाषा का संवेगात्मक प्रयोग' (इमोटिव यूज) है।[5] कविता की इन परिभाषाओं में 'शब्द' या 'भाषा' पर इतना अधिक बल दिये जाने से स्पष्ट है कि भाषा काव्य का सबसे प्रमुख तत्व है।''

काव्य भाषा और औपन्यासिक भाषा का आपसी स्तर पर गहरा सम्बन्ध है, संस्कृत काव्यशास्त्र में कविता से तात्पर्य गद्य-पद्य और चम्पूविधा से रहा है। चम्पू से तात्पर्य वह है जिसमें गद्यात्मक वृत्तांत हो और बीच-बीच में गीत-गायन शैली का प्रयोग हो। लेकिन बाद में गद्यलेखन को ही कवि/ रचनाकार की कसौटी मान लिया गया है। औद्योगिक उत्पादन और आधुनिकता ने गद्य की विविध विधाओं को मूर्त रुप प्रदान किया है, जिनमें प्रमुख हैं - कथा, कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोतीज, वृत्तांत आदि।

भाषा से जुड़ा हुआ एक अनिवार्य पक्ष शैली विशेष का है। ''शैली अभिव्यक्ति की विशिष्ट पद्धति होती है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने भावों और विचार की अपेक्षा अपने को अधिक अभिव्यक्त करता है। अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में कवि/ रचनाकार का उद्देश्य, स्वभाव, दृष्टिकोण, जीवन-प्रणाली, आस्था-विश्वास, संदेह आदि व्यक्त होते चलते हैं। यहीं उसकी अस्मिता होती है। इसमें केवल मानस की ही अभिव्यंजना नहीं होती, बल्कि संपूर्ण जीवन प्रणाली की होती है।''[7]

प्राचीन एवं मध्ययुगीन काव्य में विभिन्न काव्य-शैलियों-पैटर्न-सवैय्या-कुंडली-छप्पय-रोला दोहा- कवित्त आदि का विवेचन प्राप्त होता था। रुप विन्यास के स्तर पर महाकाव्य, प्रबंध काव्य और खण्ड काव्य की चर्चा होती थी।

आधुनिक कालखण्ड में अनुभूति, अभिव्यक्ति और संवेदनाओं के प्रारुप जटिल होते गये हैं, कथा, कहानी और उपन्यास के स्वरुप में भी परिवर्तन आया है। हम लोग सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक उपन्यास या कहानी के स्वरुप की चर्चा सुनने के आदि रहे हैं। लेकिन युगीन परिवेश और युग बोध के अनुरुप आंचलिक कथा-उपन्यास, महानगरीय कथा-उपन्यास, जैसे नये पद पाँचवे दशक से प्रयुक्त हो रहे है। नयी कहानी, नयी कविता के तर्ज पर उपन्यास विधा को भी महाकाव्यात्मक उपन्यास की संज्ञा दी गयी है, जिसकी ताईद राल्फ-फॉक्स ने उपन्यास और लोकजीवन (Novel & the People) में की है।[8]

7.1 भाषा एवं शैली विद्यान

कोई भी भाषा भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति का साधन होती है जो अपने स्तर पर सम्प्रेषणीयता का सशक्त माध्यम होती है। शब्द एवं वाक्यों की सहायता से विचारों एवं भावों की सूक्ष्मतम एवं सशक्त अभिव्यंजना होती है। साहित्य के प्रांगण में वस्तुपक्ष की समीक्षा के साथ-साथ भाषाशैली का अध्ययन भी जरुरी है। डॉ. रोहिताश्व के विचारानुसार- ''किसी भी कलाकृति में वस्तु और रुप अलग-अलग नहीं होते है, बल्कि दोनों मिलकर एक समग्रता का; जिसे रचना कहते हैं उसका निर्माण करते हैं पर विवेचन की सुविधा के लिए उन्हें अन्तर्वस्तु, भाषा शैली, शिल्प माध्यमों के अनुखण्डों में देखा जाता है।''(9)

भाषा का प्रयोग कथासाहित्य में या तो रचनाकार की ओर से रहता है या उसमें नियोजित उसके पात्रों की प्रयोगधर्मिता के कार्य-कारण से। रचनाकार वर्णनशैली में तथा पात्र अपने संवादशैली में भाषा का सतर्क प्रयोग करते हैं। विभिन्न रचनाकारों के द्वारा मूल उद्देश्य, कथ्य, वातावरण एवं विषय की दृष्टि से भाषा का प्रयोग होता है इसलिये विभिन्न विधाओं के रूप अथवा उपन्यास -कथाओं की भाषा एक समान नहीं होती है।

परिवेशगत प्रभाव के कारण आंचलिक कथासाहित्य में प्रयुक्त भाषा स्वत: प्रयोगधर्मिता, आंचलिक भाषा-शैली का निर्माण करती है। वह सामान्य जीवन-प्रवाह में प्रयुक्त सपाटबयानी न होकर लोकभाषा के सन्निकट होती है तथा उन्हीं आंचलिक स्वरों को व्यक्त करती है जिसके कारण स्वरुप भाषातत्व ही अन्य तत्वों से मुखर होता है। आंचलिक साहित्य की भाषा की अनिवार्यता यह है कि अंचल को समग्रता में चित्रित करने के लिए आंचलिक भाषा का उपयोग करना चाहिए। बहुत से भाव और संवेदनाएँ ऐसी होती है जो उस अंचल विशेष की भाषा एवं बोली के बिना व्यक्त नहीं हो सकती। इसलिए रहन-सहन, आचार-विचार, संस्कृति संबंधी विशिष्टता को चित्रित करने के लिए भी लोकभाषा अनिवार्य है। नगीना जैन के अनुसार ''भाषा की एक बहुत बड़ी शक्ति यह है कि उसमें वहाँ के लोगों के संस्कार उनकी अनुभूतियाँ उनके सुख-दु:ख, रीति-रिवाज, आचर-विचार आदि व्यक्त होते है जो उसके अस्तित्व का द्योतक होता है।''(10)

कहना न होगा कि क्षेत्र विशेष की भाषा का उपयोग आंचलिक कथासाहित्य के चित्रण को विश्वसनीय बनाता है। उनकी संवेदना, अनुभूति और भाषा का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध होता है जिससे भाषा सीधे परिवेश और जीवन यथार्थ को संप्रेषित करती है। डॉ. दंगल झाल्टे के अनुसार- ''आंचलिक उपन्यासों में अंचल की विशिष्ट लोकभाषा का सर्जनात्मक प्रयोग किया जाता है जिसके कारण

परंपरागत घिसी पिटी एवं निर्जीव भाषा को एक नयी संचेतना प्राप्त हुई है। ग्रामीण लोक-जीवन की दुर्लक्षित भाषा के मूलद्रव्य 'और' को आंचलिक उपन्यासकारों ने नयी शक्तिमत्ता, अर्थवत्ता एवं मूल्यवत्ता प्रदान कर अंचल की यथार्थ पहचान के रुप में प्रयुक्त किया।''(11)

आंचलिक कथासाहित्य में निर्जीव भाषा को नयी संचेतना प्रदान करने के लिए पात्रों के आपसी संवादों की भाषा ही आंचलिक नहीं है बल्कि लेखक अपनी अभिव्यक्ति संबंधी भाषा में भी आंचलिक शब्दों का प्रयोग करता है। भाषा यहाँ ऊपर से आरोपित तत्व नहीं है, वह सर्जन की आवश्यकता होती है। ''आंचलिक उपन्यास में उपन्यासकार की भाषा तथा वार्तालाप की भाषा का प्रमुख अन्तर मिट जाता है, जितना कम यह अन्तर होता है भाषा उतनी ही अधिक आंचलिक उपन्यास के अनुकूल होती है।''(12)

भाषा को स्थान, क्षेत्र, प्रांत-प्रदेश विशेष से जोड़ते हुए आंचलिक कथासाहित्य में वहाँ की बोली, उपबोली, उच्चारण के लहजे को उनके संकेत, बिंब, प्रतीक एवं रंग-व्यंग्य आदि के साथ अपनाया जाता है क्योंकि ''भाषा ऊपर से ओढ़ी हुई चीज नहीं होती, वह स्थान-विशेष के लोगों के संस्कारों और अनुभूतियों के साथ अनिवार्यत: जुड़ी होती है। अत: कुछ शब्द और मुहावरे आदि वहाँ के जीवन सत्यों के साथ जुड़े होते हैं कि वे सत्य-विशेष के साथ स्वत: लगे हुए चले जाते हैं।''(13)

भाषा की प्रेरणा, मूलाधार तथा साध्य सम्प्रेषणीयता है, सम्प्रेषण के लिए आवश्यक है, भाषा की मूल सामग्री ध्वनि और ध्वनि को व्यक्त करने के लिए शब्दों का चयन वांछित अर्थ के लिए पदों और वाक्यों की योजना।''(14) आंचलिक उपन्यासों में कथ्य को आकार देने में भाषा महत्वपूर्ण साधन है जो अन्य कथासाहित्य से भिन्न धरातल पर प्रस्तुत होती है। इसलिए उसकी विभिन्नता के आयामों का अध्ययन करना जरुरी है। आंचलिक एवं अन्य कथासाहित्य में विभिन्नता निम्नांकित मुद्दों से आती है-

1.क्षेत्र-विशेष की भाषा एवं बोली का प्रयोग।
2.लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग।
3. लोकगीतों का प्रयोग।

7.11 क्षेत्र-विशेष की भाषा एवं बोली का प्रयोग

आंचलिक कथासाहित्य अपने प्रतिपाद्य में श्रेष्ठ नहीं होता बल्कि अपने शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। अंचल या परिवेश ही किसी उपन्यास का

नायक होने के कारण उसका परिचय उसके निवासी, उसके पेड़-पौधे, उसके जीव-जन्तु वहाँ का रहन-सहन, रीति-रिवाज, प्रथायें, धार्मिक-विश्वास, राजनीतिक, सामाजिक स्थितियाँ जितना प्रदान करते है उसके कई गुना अधिक परिवेशगत परिचय वहाँ की भाषा ही प्रदान करेगी। अत: आंचलिक कथाकार आंचलिक भाषा एवं स्थानीय बोली का दामन थामकर अपने कथ्य को प्रस्तुत करते हैं। अलग दृष्टिकोण से दृष्टिपात करें तो -''स्थानीय रंगत से ही किसी अंचल का स्वरूप उभारता है, इस स्थानीय रंगत के कारण एक अंचल दूसरे अंचल से भिन्न और अलग दिखायी देता है। अंचल विशेष की स्थानीय रंगत को उभारने के लिए आंचलिक उपन्यासकार लोकतत्वों का विपुलता के साथ प्रयोग करता है। उनमें लोकभाषा बोलियों, उपबोलियों का स्थान महत्वपूर्ण होता है।''(14)

आंचलिक जीवन से सम्बद्ध पात्र अपनी बोली को ही संवादों का माध्यम बना सके तो उसकी स्वाभाविकता बनी रहती है। वैसे भी आंचलिक कथासाहित्य में पुरानी तथा निर्जीव पड़ती हुई नागर भाषा को आंचलिक सन्दर्भों एवं स्वरों में नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। विशेष प्रकार की अनुभूति को व्यक्त करने के लिए विभिन्न पात्रों के माध्यम से लेखक को साहित्यिक शब्दावली के स्थान पर स्थानीय बोली का प्रयोग करना पड़ता है क्योंकि ''इस भाषा में उनकी आदिम लालसा, प्रेरणाएँ तथा दैनंदिन जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ, खाना-पीना, प्रेमाभिव्यक्तितक अधिक सहजता एवम् पूर्णता से व्यक्त हो सकती है। उनके लोकोच्चारण उनके शिक्षा-स्तर की अभिव्यंजना के साथ, हास्य की सामग्री भी जुटा सकते हैं। सामूहिक संवाद भी आंचलिक उपन्यासों की पृथक विशेषता है। ऐसे संवादों के प्रयोग से लेखक व्यक्ति विशेष का शील प्रकाशन नहीं संपूर्ण स्थानीय समाज की व्यंजना करता है।''(15)

संवादों में प्रयुक्त भाषा के कारण ही आंचलिक जीवन संबंधी उपन्यास के पात्र अपनी विशिष्टता तथा क्षेत्रीय आंचलिकता का प्रतिभास देते हैं। भाषा स्वरूप में शब्दों का सर्वोपरि स्थान होता है। ''क्योंकि लिखित रुप में परिमार्जित शब्द ही भाषा के रुप में पढ़े जाते है और बोलचाल में सहज बोली के शब्द ही सुने जाते हैं और कोश में इन आंचलिक शब्दों का ही अस्तित्व दिखलायी पड़ता है।''

विवेच्य कथाकारों के 'अग्निबीज' एवं 'अच्छेव' का परिवेश ग्रामीण है अतएव उनमें ग्रामीण शब्दों का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। भोजपुरी, उर्दू,मगही, कोंकणी, मराठी व पुर्तगीज भाषा के आम शब्दों एवं जुमलों का प्रयोग विभिन्न पात्र करते हैं। हम इन विभिन्न शब्द प्रयोगों का निम्नांकित विभाजन कर सकते है। साधारण शब्द, आगत शब्द, निर्मित शब्द, ध्वन्यात्मक शब्द आदि।

साधारण शब्द - आमतौर पर आंचिलक उपन्यासों की भाषा में साधारण शब्दों की भरमार होती है। उनके पात्र सामाजिक स्थिति के अनुसार अपनी बोली-बानी के शब्द प्रयुक्त करते है- जैसे चितकबरी, ललछहट, खैरी, मेटमैली, सिल्ली, गड़ेरिया, गरुर, छान्ह, डिबरी,मरकहा, बीहन, बतकही, नाबदान, सिहरावन, मड़ई, चमरौधा, मरकिनौना, सरकंडे, सरपत, झलफलाह, निबकाना, सुराज, चुमौना, सुभाव, गमछा, जेहल, पोटली, चौपट, दुआर, छाँह, कथरी आदि।

आगत शब्द - मार्कण्डेय तथा पुंडलीक नायक ने देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग तोड़-मरोड़कर उच्चारण सुविधा के अनुसार बदलकर प्रस्तुत किया है। उनके कथा साहित्य में हम लोग अंग्रेजी, अरबी, फारसी, तथा पुर्तगीज शब्दों का प्रयोग पाते है- जैसे टिक्कट, पाल्टी, टक्टर, टूववेल, कपटन, मिलिटरी, कंगरेसी, टेसन, रिक्शा, परमिट, मिनिस्टर, थरमस, ट्रेन, आदि

पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में तावेर्न (बार-मधुशाला) अल्मारी आदि पोर्तुगीज एवं पोस्ट, ट्रक, ड्राइवर, टेबल आदि अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग मिलता है।

निर्मित शब्द - मार्कण्डेय ने अपने कथासाहित्य में हिन्दी अंग्रेजी के शब्दों को, अंचल-विशेष की देशज भाषा के अनुरुप निर्मित कर आंचलिक रुप प्रदान किया है। यथा मर्जाद, जेहल, सोहबत, मीटिन, जलूस, पाल्टी, भाखन, बिड़ला, सन्नेस, सोसलिट, अन्हार, जैहिन्न, सन्स्कीरत, हिरदय, तिरवेनी, अतमा, पवित्तर आदि। इन शब्दों को अपनी सुविधानुसार अंचल के विभिन्न पात्रों ने अपने संवादों में अपनाया व प्रयोग किया है।

ध्वन्यात्मक शब्द - परिस्थिति एवं परिवेश के अनुकूल शब्दों का संयोजन एवं प्रयोग लेखक द्वय का अपना वैशिष्ट्य है। वातावरण के अनुसार शब्दसंयोजन में ध्वनि-सौंदर्य का ध्यान भी रखना पड़ता है। मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक ने प्रसंगानुसार अपने साहित्य में निम्नलिखित ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया है- छलछलायी आँखे, हुआँ-हुआँ, डकारना, छपक-छपक, सप्-सप्, चूँ-चूँ, रुन-झुन......रुन..झुन...झुनुक-झुनुक.. झुन, कुत्तों की झाँव-झाँव-आँवऽ, चिक्-किच्... किर्र् चिड़ियों के झुंड का उड़ना आदि।

कहीं-कहीं सार्थक ध्वनियों के साथ निरर्थक शब्द तथा पुनरुक्ति भाव दृष्टिगोचर होता है। संभवतः मार्कण्डेय ने अर्थबोध की व्यंजकता को प्रभावशाली बनाने के लिए सामासिक एवं अनुरणात्मक शब्दों का चयन किया हो लेकिन पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में इसप्रकार के शब्दों का अभाव महसूस किया जा सकता है। मार्कण्डेय के कथासाहित्य में निम्न शब्द अक्सर उपलब्ध होते हैं- खेत-बेत, छुट्टी-उट्टी, लुढ़कती-पुढ़कती, लिपिड़-चिपिड़, असगाँव-पसगाँव, गड्ड-मड्ड,

चुर-मुर, तीरथ-बरन, जोत-बोत, लेकिन-वेकिन, खर्च-वर्च, शादी-ब्याह, धान-पान, तर-त्यौहार, खोज-खाज, आटा-दाल, रोये-कलपे, चिरई-चुरमुन, आवा-जाही, हँसी-चिबोला, छुवा-छिरका, ऊसर-पापर, राँड-रेवा, खसरा-खतौनी, मैली-कुचैली आदि। जो आम बोलचाल की बोली-बानी में मुख-सुख या उच्चारण की सहजता के प्रतीक है।

सुधी विद्वानों को ज्ञात होगा कि मार्कण्डेय की आंचलिक भाषा में जहाँ उत्तर भारत के जन समाज में प्रचलित अरबी-उर्दू-हिन्दी की शब्दावली मिलती है वहाँ पुंडलीक नायक की आंचलिक भाषा में अंग्रेजी व पुर्तगीज शब्दों के प्रयोग को पाया जाता है। पुंडलीक नायक ने गाँव के किसान और उनके संस्कारों को चित्रित करने के लिए खेती से सम्बन्धित अनेक शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया है जैसे तरवो (छोटे-धान के पौधे), वारयों (खेती, सब्जी उगाने की जगह), मरड(पहाड़ी जमीन), पोट्र(धान के पौधे में बीज की अवस्था), करड(तृण) नड्णी-काड्णी (खेत से धान के अलावा उगे हुये पौधे निकालना) आदि।

मार्कण्डेय तथा पुंडलीक नायक ने अपने कथासाहित्य में आवश्यकतानुसार अंचल विशेष की बोली बाली को अपनाया है। दुलरा आजी,गोपी आजी, मुसई महतो, बैकुंठी(अग्निबीज) फउदी(बीच के लोग) जसवन्ती(भूदान) आदि पात्रों की विशिष्ट बोली से उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता तथा स्थान विशेष के समाज की व्यंजना होती है। उदाहरण स्वरुप दुलरा आजी और चन्दाबहू का संवाद का प्रारुप इसप्रकार है- ''मुदा मैं समवा को का कहूँ। बियाह-दान की उमिर हुई, लड़की की जात लाज-हया सीखती है, सीना-पुरना करती है, लेकिन वह तो जब देखो बस कापी-किताब लिये तखत पर बइठी, बाकरवाले से बतियाती रहती है। साधो उसका हाथ पियर कराय चुके, बहु रानी कुछ सोचो तुम लोग आखिर में पड़ेगा तुम्हारे ही सिर।''(16)

उत्तर प्रदेश के केन्द्र इलाहाबाद मिर्जापुर (पूरबिया क्षेत्र) की आचंलिक भाषा दुलराआजी, गोपी आजी, निम्नजात के मजदूर तथा बूढ़ो आदि के माध्यम से प्रयुक्त हुई है लेकिन चंदा बहू, ज्वाला बाबू, श्यामा मुराद, सागर भाई, भागोबहन आदि शुध्द हिन्दी (परिमार्जित दिल्ली-मेरठ की भाषा)का प्रयोग करते हैं। बैकुंठी मछुआरा है और उसकी भाषा अपने व्यवसाय से सम्बन्धित है- जैसे ''बैकुंठी ने उसे एक गमछा थमाते हुए कहा- थोड़ा झिंगवा बच गया था। कलुआ का पौरा अइसा नसुड्ढा है कि दो दिन में मछरी ही नहीं पड़ी आज मैंने उससे कहा, ससुर तुम घर बइठो, और मैं रातभर अकेले पहरे पर खड़ा रहा। दो सेर झिंगवा पड़ गया था।''(17)

7.111 मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग

सामान्य अर्थ का बोध न कराकर किसी विशिष्ट अर्थ का बोध करानेवाले लघु वाक्यांश को मुहावरा कहते हैं जिसकी सार्थकता संक्षिप्त शब्दों और गहरी अर्थवत्ता में होता है। किसी कहानी या घटना से निकली हुई बात या वाक्यांश बाद में लोकोक्ति अथवा कहावत बन जाती है। आंचलिक भाषा, मुहावरों एवं कहावतों के सटीक और प्रसंगगर्भ प्रयोग द्वारा समर्थ एवं सर्जनात्मक बन पड़ती है। इनके प्रयोगों से ही आंचलिकता के रंग को उभारा जाता है जिससे भाषा में नवीनता एवं लालित्य प्रवाहित होता है। आदर्श सक्सेना के अनुसार ''आंचलिकता के हल्के-गहरे रुप शब्दों के लोक-प्रचलित रूपों तथा आंचलिक भाषा के शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों के विस्तृत प्रयोगद्वारा प्राप्त किये जाते है।''[18]

आंचलिक भाषा में मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोगद्वारा अंचल के पर्वों, उत्सवों, परंपराओं, व्यथा, विश्वास, संघर्ष, प्रकृति के रंगों को समग्रता में चित्रित किया जाता है। पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप में लेखक के वर्णन-विश्लेषण की भाषा में सर्वत्र मुहावरों-लोकोक्तियों का प्रयोग विविधता और ताजगी लाता है यथा –

(अ) ''बलराम बोलता ही चला जा रहा था और काकी की आँखों में सावन-भादों की झड़ी लग गयी थी''[19]

(ब) कलट कलट कर मर जाना[20], गुड़ गोबर करना[21], जोंक की तरह चिपक जाना, लाई लगाना[22]

मुहावरों के साथ कहावतें भी आंचलिक प्रदेशों की खास पहचान होती है। यहाँ पोर्तुगीजों का राज्य था, उनके जाने के बाद यहाँ की अस्मिता, संस्कार, रीति-रिवाज, न्याय-व्यवस्था में परिवर्तन आया है। कहीं-कहीं पुर्तगीजों का नामोनिशान ही मिट गया है। जिसकी साक्ष निम्न कहावते हैं-

1) ''ते फिरंगी गेले आनी ते उंडेय गेले''(वो पोर्तुगीज गये और उनके साथ 'पाव' भी गये)

2) तोंडाची बातां आनी भीक मागोन खातां (कामधंदा न करते हुए भीख माँगकर खाना)

3) पिके जाल्यार पिके, ना जाल्यार गुरु बसला भिकेक (लाभ हुआ तो हुआ नहीं तो भीख माँगना)

4) ''मोग आसल्यार खंय हुन वोडे घाटार पावतात''(ममता माया है तो गरम-गरम पुडियाँ घाट पर पहुँचती है)[23]

प्रस्तुत अध्ययन के संदर्भ में कहा जा सकता है कि मार्कण्डेय की तुलना

में पुंडलीक नायक की भाषा में ताजगी है। अन्य कोंकणी लेखकों की तुलना में पुण्डलीक नायक के कथा साहित्य में एक नूतन-भाषा शिल्प, एक नयी भाषिक संरचना और नये-अनूठे शाषायी संसार की सृष्टि करके जनभाषा, लोकभाषा, आंचलिक बोलियों को अभिव्यंजित किया है जिससे कोंकणी की साहित्यिक भाषा में नयी जान तथा ताजगी का संचार हुआ है। मुहावरों एवं कहावतों का खेती, ग्रामजीवन के व्यवसाय, औजार तथा उस प्रादेशिक खुबियों के लिए प्रयोग हुआ है। रचनाकार की गहरी एवं तीव्रानुभूति जन-जीवन की पकड़ लिए हुए है जिसके कारण स्वरुप भाषा में भी जीवंतता का अखंड निर्झर प्रवाहमान है। विविध मुहावरों का उपयोग इनकी विशिष्टता है और आंचलिक भाषा की पहचान भी 'अच्छेव' उपन्यास में प्रयुक्त मुहावरों के रूप में इसप्रकार है -

आयत्या धोलार तोणी मारप[24] (मेहनत न करना)
तोंडान शेण घालप[25] (मुँह में गोबर डालना)
जिबेक हाड नाशिल्या सारको उलोवप[26] (कुछ भी बोलना)
शिताफुडे मीठ खावप[27] (दूसरो द्वारा पूछे बिना बताना)
दात वोंठ किल्लप[28] (गुस्सा करना)
व्हावत्या व्हाळार हात धुवप[29] (बहती गंगा में हाथ धोना)

7.112. लोकगीतों का प्रयोग

लोकगीतों की परिभाषा एवं स्वरुप पर विगत चतुर्थ एवं पंचम अध्यायों में चर्चा की गयी है। मार्कण्डेय तथा पुंडलीक नायक दोनो ने अपने कथासाहित्य में लोकगीतों का सम्यक प्रयोग किया है। 'अग्निबीज' उपन्यास में श्यामा की शादी में लावा परछवाने के बाद बहन का विवाह-दान करना होता है, जिसमें भाई को पानी की धार धीरे-धीरे छोड़नी होती है। सुनीत पानी की धार बिना टूटे गेडुआ से छोड़ रहा है उस समय यह लोकगीत गाया जाता है-

"गेडुआ उठावत भइया हथवा न काँपै
टुटै न पनिया की धार"[30]

विवाह का वातावरण उत्साह और आशा-आकांक्षा, करुणा-बिछोह के समवेत भाव का होता है। आज ब्याह का गीत भी दुलरा आजी गम्भीर स्वर में गा रही है...

"आटन छोडलूँ, मैं पाटन छोडलूँ
छोडलूँ भधरिया की गोद
एहि सेंधुरा के कारण बाबा

छोडलूँ मैं देस तिहार''(31)

इस लोकगीत में सारे स्त्री-समाज के हृदय में भावनाओ के कारण आंखों में लबालब भरे आँसू छलकते हुये दिखाई देते है..

''हटिये त सेन्हुरा
महंग भइनै बाबा, चुनरी भइल अनमोल
एहि सेन्हुरा के कारण बाबा
छोडऊ मैं देस तिहार''(32)

मार्कण्डेय की अपेक्षा पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में लोकगीतों की प्रधानता है। मुख्यतः गोवा के प्रसिद्ध धालोत्सव के गीतों को उन्होंने 'अच्छेव' उपन्यास में प्रयुक्त किया है...

''सात समिद्रां भायर एक कांदळीचे झाड ग
सवायशिणी नारी आमी कांदळां खुटूं गेल्यो गे
हातांत फणी तेझे फांटीर विणी गो
हुंबऱ्यार बसोन नार काय चिंता करी गो
म्हायेरा वयता नार वांगड सोदी गो-''(33)

जिसका भावार्थ यही होगा कि

''सात सागर पार एक कांदळ का झाड
सुहासिनी नारी हम निकालने गये कांदळ
हाथ में कंगवा उसके पीठ पर चोटी
बैठ दहलीज पर किसी सोच में पड़ी नारी
मैके जाने के लिए साथ ढूँढती है नारी''

पुंडलीक नायक का कथासाहित्य लोकगीतों के कुशल संयोजन से सराबोर है। अंचल के लोक व्यवहार तथा त्योहार-उत्सव-पर्व के अनुकूल उन्होंने लोकगीतों को अशिक्षित समाज के माध्यम से प्रस्फुटित किया है। लोकगीतों में अपने-आप गेयता आ जाती है जिसमें मानव का उल्हास भी मुखरित होता है और दर्द भी फूट पड़ता है। आदर्श सक्सेना के अनुसार ''इन लोकगीतों के साथ एक अन्य विशेषता स्वतः ही जुड जाती है- कुशल संगीतज्ञों का आलाप उनके स्वर से भले ही न हो परंतु भावावेग, उत्साह और उमंग की तान उनमें जरूर होती है जो लोक-वाद्यों की ध्वनि के साथ मिलकर ऐसी सरल तथा मधुर अभिव्यक्ति बन जाती है जिसमें भावुक पाठक रस-मग्न हो जाता है।''(34)

7.12 विषयवस्तु और शैली-शिल्पविधान

विषयवस्तु और शिल्पविधान का आत्यन्तिक संबंध होता है। पर किसी भी कलाकृति की विषयवस्तु या अंतर्वस्तु उसका कथ्य ही नहीं होती है, बल्कि वह मूल्य-सृजन की प्रक्रिया भी होती है, जिन्हें कृति-रचना की पूरी प्रक्रिया में रचनाकार सिरजता है, पाठक अपनी सौंदर्यबोधात्मक को चीन्हता है। "वैसे यह सर्वविदित धारणा है कि वस्तु का मतलब कथ्य, 'थीम', विषय 'टापिक', सामग्री, सब्जेक्ट, कण्टेण्ट, अन्तर्वस्तु, 'इनर-कण्टेन्ट' या सन्देश 'मेसेज' में से एक है। अवश्य ही ये अवधारणाएँ वस्तु के महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग हैं, लेकिन इनमें से किसी एक को या इनके गणितीय योग या कुल योग को, संकलन को, पूर्णतया वस्तु समझना भी भूल होगी। वैसे सरलीकरण के लिए वस्तु को कथ्य या विषय इत्यादि में सामान्यीकृत किया जा सकता है, किन्तु उसे केवल इसी में 'अपघटित' 'रिड्यूस' या सरलीकृत नहीं किया जाना चाहिए।''[35]

वास्तव में शैली व्यक्ति की अभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग है। प्रत्येक मनुष्य जन्मतः प्रवृत्ति स्वभाव से अलग-अलग प्रवृत्ति का होता है। अतः उसकी अपनी स्वतन्त्र शैली होती है। शैली अंग्रेजी शब्द 'स्टाइल' का पर्यायवाची शब्द है। हिन्दी साहित्य कोश में शैली को इसप्रकार परिभाषित किया है- ''शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।[36] कतिपय विद्वान भारतीय काव्यशास्त्र के रीति शब्द को हिन्दी के शैली शब्द का समानार्थी मानते है तो कुछ विद्वानों में मतभेद भी पाया जाता है जैसे आ.सीताराम चतुर्वेदी का कथन है- ''कुछ लोगों ने रीति को ही शैली मान लिया है किंतु रीति केवल काव्य-रचना का एक ढंग है इसके विपरीत शैली वह साधन है जो वाणी की अभिव्यक्ति में अभिन्न आकर्षण शक्ति का संचार करे। वामन ने पदों की विशेष रचना को रीति (विशिष्ट पद-रचना रीति) माना है किंतु गुणों के आधार पर दी हुई विशेष पदरचना की इस रीति को शैली के विशिष्ट और व्यापक रुप से सर्वथा भिन्न मानना चाहिए।''[37]

7.121 यथार्थवादी और भावात्मक शैली

शैली मनुष्य की संपूर्ण अभिव्यक्ति का ढंग होने से लेखक की पहचान भी होती है। अतः यह शैली उसके विचार, भाव, कल्पना, संस्कार, स्वभाव, प्रतिभा और जीवन दृष्टि के अनुरुप अभिव्यक्ति पाते है।[38]

पाश्चात्य विद्वानों ने भी शैली तत्व को व्याख्यायित किया है जिससे प्रमुखतः दो तत्व दृष्टिगोचर होते है। लेखक का व्यक्तित्व तथा भाषिक संरचना

किसीने उसे 'वैयक्तिक' गुण माना है। टी. मरे उसे वैयक्तिक गुणों के आधार पर स्वीकार करते है। उनके अनुसार ''शैली भाषा का वह गुण है जिसके द्वारा लेखक की अनुभूति या विचारधारा की यथातथ्य अभिव्यक्ति संभव है।''(39)

शैली तथा शिल्प में भी अंतर है शिल्प की परिभाषा आगे स्पष्ट की जायेगी। इतना कहना उचित है कि शिल्प-विधा का सम्पूर्ण ढांचा है तो शैली अभिव्यक्ति की 'रीति'। शैली शिल्प विधिको प्रस्तुत करने का सशक्त अंग है। इसलिए शिल्प का क्षेत्र व्यापक है और शैली का क्षेत्र सीमित। इसप्रकार ''शैली व्यक्तिपरक होती है, शिल्प वस्तु परक। साहित्यकार की रुचि उसके शिल्प को प्रभावित करती है परन्तु उसके अनुरुप ही शिल्प का निर्माण नहीं हुआ करता है, अनुकरण होता है। जबकि शैली कथाकार की समुचित रुचि के अनुरुप नियोजित होती है।''(40)

डॉ. नगीना जैन के अनुसार, ''आंचलिक उपन्यासों में प्रमुखत: दो शैली प्रयोग दिखाई देते है। 'विचारात्मक या यथार्थवादी और दूसरा भावात्मक। सामान्यत: विचारात्मक या यथार्थवादी शैली विवरणात्मक एवं व्यंग्यात्मक होती है और भावात्मक शैली आलंकारिक एवं चित्रोपम होती है।(41)

मार्कण्डेय का 'अग्निबीज' तथा पुंडलीक नायक का 'अच्छेव' सामान्यत: यथार्थवादी शैली में लिखे गये उपन्यास है, लेकिन इसमें अनेक स्थलों पर भाव-प्रवण शैली का सफल प्रयोग हुआ है। यथा ''लड़की राकस की जात है और बारह बरस बीता नहीं कि परिवार के सीने पर पत्थर की तरह वह भार बन जाती है। माँ की आँखों में आँसुओं से माड़ा पड़ने लगता है। बाप दर-दर की ठोकर खाता है। दहेज के लिए कर्ज लेता है। जमीन बेचता है। कोई खाली हाथ लड़की को घर में लेगा भी क्यों? क्या होती है लड़की? एक नहीं तो दूसरी मिलेगी। जिसके पास धन-दौलत है, उसके लड़के के लिए लड़की की कहाँ कमी है। लेकिन यह तो मैं अपने वर्ग की बात कहने लगी। छबियां और हिरनी जैसियों को महीने भर बाद मायें खेत की मेड पर सुलाकर रोपनी करने लगती है। धूप-वर्षा के कुछ महीनों बाद परिवार यह भूल ही जाता हैं कि बच्चे हैं कहाँ? एक मुट्ठी अनाज के लिए, दो कौर भोजन के लिए वे ठोंकरें खाने लगते हैं। कभी तालाब के किनारे मछली मारते हैं, कभी सिंहाडा बीनते हैं, कभी करेम और बधुआ का साग खोटते हैं। मार खाते हैं लेकिन रोते नहीं। मान-अपमान वे जानते ही कहाँ हैं? नन्हें-नन्हें बच्चे-बच्चियों की शादी कर देते हैं। छबिया को मैंने अनाज दाँते बैलों का गोबर जुटा कर उसे धोते और अनाज निकालते कितनी ही बार देखा है।''(42)

श्यामा के भाषण में जितना यथार्थ परक स्थितियों का विवरण है, उतनी ही वह भावात्मक शैली भी है। गरीबों, हरिजनों के प्रति श्यामा की सोच उनकी असहाय, विवश, पीड़ित जिंदगी को देखते हुए ऊभरी है। श्यामा के नस-नस में

उनके प्रति सहानुभूति दृष्टिगोचर होती है। जिस प्रकार मार्कण्डेय मनुष्य की पीड़ाओं का भावप्रवण शैली में चित्रण करते है। पुंडलीक नायक उसी प्रकार प्रकृति में समरस हो जाते है। 'अच्छेव' में ऐसे अनेक स्थल है जहाँ प्राकृतिक भावप्रवणता नजर आती है। ''नावेलेच्या मड्डांतली शेता सामकी करपल्ली. धिंपरभर लेगीत वाडूंक पावूं नाशिल्ली. पोटांत पोटूर येवंक आनी पावसान घास मारिल्लो. आख्खे नखेत्र सुकें सडसडीत गेल्लें मड्डाचो पाचवो कोर वोतांत बावून हळडुवो जाल्लो. आनी कांय काळान मरड करपून गेल्लें, पोटांतलो आंगूर भायर येंवचे आदींच भितल्ले भितर करपून गेल्लो.''(43) भावानुवाद है कि ''नावेली की पहाड़ी खेती सूख गयी थी, पाँव तक भी बढ़ नहीं पायी थी। बीज निकलते वक्त ही बरखा ने घात किया है पूरा मौसम (नक्षत्र) सूखा गया। पहाड़ी खेती का हरा रंग धूप से पीला पड़ गया और थोडे दिनों के बाद सूख भी गया था। गर्भ से बीजांकूर निकलने से पूर्व ही अंदर ही अंदर सूख गया था। इस भावप्रधान शैली से उन्होंने 'अच्छेव' उपन्यास की पात्रा केंसर तथा प्रकृति की तुलना की है। केंसर के पेट में पलती हुयी नाजायज संतान के अंकुर को वैद्य की दवा से कुचलना और खेती के बीजोत्पादन से पहले सूख जाने की समानता दर्शायी गयी है।

चरित्र-चित्रण संबंधी विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग भी आंचलिक उपन्यासों में पाया जाता है। चरित्र को उद्घाटित करने हेतु वार्तालाप शैली का भी सहारा लिया जाता है जैसे साधो काकाका चरित्र भाई तथा मुसई महतो द्वारा व्यक्त होता है। 'अच्छेव' में आबू एवं मास्टर के वार्तालाप से दोनों की चारित्रिक खूबियाँ स्पष्ट नजर आती है। मास्टर स्पष्ट वक्ता, शिक्षित, अच्छे-बुरे की पहचान रखनेवाले है तो आबू अशिक्षित, सदा गालियों से बातचीत करने का ढंग उनमे है। सुनहले भविष्य की कल्पना तो वे करते है लेकिन गाँव की मानसिकता तथा सोच से बिल्कुल अन्जान है। इन सभी का वार्तालाप शैली में बखूबी चित्रण किया गया है।

7.122 वार्तालाप

वार्तालाप में जैसी विविधता आंचलिक उपन्यास में प्राप्त होतीं है वैसी अन्यत्र नहीं हो सकती क्योंकि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्र स्वयं की मानसिकता का बयान करता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक स्थितियों में ही व्यक्ति विशेष का चित्रण होता रहता है। इन उपन्यासों में परिवेशगत मानसिकता के साथ-साथ ऐतिहासिक स्थितियों में भी प्रदेश का मूल्यांकन संभव होता है अत: आंचलिक उपन्यासों में वार्तालाप से विभिन्न स्थितियों में उन चरित्रों को उभारना है।

'अच्छेव' में आबू और मास्टर के बोलने का ढंग अलग है तो अग्निबीज में ज्वालाबाबू और बिसेसर की शैली अलग है। मुसई महतो, बाकर वैकुण्ठ के

वार्तालाप में भी वर्ग वैविध्य होने से साफ अंतर झलकता है।

'अच्छेव' उपन्यास में आबू एवं मास्तर के वार्तालाप तथा ड्रायव्हर मानुयेल एवं नानू के संवादों में विविधता प्राप्त होती है "ह्या दिसानी शाळेक येवपाक उशीर करतात. शिंयाक लागून उठनात सकाळी फुडें"

उठनात कशे? उठोवंक जाय भैझवच्यांक. सांगोक जाय आवय बापांयक मास्तर, हांव सांगतां आयज सगळ्या वाड्यार पयल्या कोंब्या सादार शेणकांक धरून उठोवपाक लायतां सगळ्यांक. फांतोडेर उठपाक शी? दांत कडकड्या ह्या शिंयान जात्रा चुकयना मादरचोद"(44)

अनुवाद "इन दिनों में स्कूल आने में देरी होती है, ठंड से सुबह नहीं जागते।

कैसे नहीं उठते है? जगाना ही चाहिये..... मां-पिता को बताना चाहिए मास्तर, मैं बताता हूँ आज पूरे गाँवमेंमुर्गे की बाँग पर चोटी पकडकर उठाने के लिये कहता हूँ। सुबह ठंड लगती है और दाँत बजती इस ठंड में जत्रा मे जाना नहीं छोडते मादरचोद।"

संपूर्ण पृष्ठ पर गालियों की बौछार से आबू के संवाद गाली-गलौज में जारी रहते हैं तो मास्तर की शिष्ट भाषा का परिचय मिलता है।

कभी कभी आंचलिक उपन्यासों में वार्तालाप की संयोजना अभिनव रूप में की जाती है। आंचलिक उपन्यासों में पूरे-पूरे पृष्ठ में बिना किसी का नाम लिये वार्तालाप चलता हैं, उस अभिनव योजना से लेखक पाठक को उन स्थितियों तथा समस्याओं से अवगत कराना चाहता है-

"मार्गशिर्श म्हट्ल्यार शिंयाचो कुडकुडो.'
'पुण आमच्या वळवय गांवापरस चड हांगा.'
'हांगा गांवा सकयल, वांयगण ते खातीर सुमारा भायर पडटा. तुमकां चड बादलें दिसता.'
'चे, च म्हाका पास्सो ना तसो. घरा लेगीत हांव. फात्यार उठपी एक पुडवें कांमुल्ल्यार म्हाजें भागता,(45)

जिसका हिन्दी में अनुवाद है-

"मार्गशीर्ष याने ज्यादा ठंड'
'लेकिन हमारे वळवय गांव से भी ज्यादा ठंड है, यहाँ'
'ठंड की ज्यादा मात्रा है, आपको बहुत महसूस होती है।'
'नहीं, नहीं! मुझे परवाह नहीं है वैसे. घर में भी मैं सुबह उठता हूँ एक धोती ओढ़ने से मेरा काम चल जाता है।"

ऐसी बाते नाम लिये बिना संपूर्ण पृष्ठ भर चलती रहती है।

''काळखांतून कोणा जाणट्याचो आवाज आयलो..... रुक्मीणीली रोवणी आयज कित्याक उल्ली जाण्गं?'

'रोव येयलोना दिसता'

आज रुक्मीणीलो सोमार न्हू चौखेर!''

जिसका हिन्दी अनुवाद है - 'अंधेरे में किसी वृद्‌ध की आवाज आयी'.... रूक्मीणीकी रोवणी आज क्यों नहीं हुयी मालूम है?

''लगता है, बीजांकुर नहीं निकले।'

'आज रुक्मिणीजी का सोमवार है ना चौकपर''

पानी भरनेवाली वार्तालापों से रुक्मीणी के घर की यथार्थ स्थितियों का उद्‌घाटन लेखक ने किया है।

वार्तालाप के अलावा कथा को आगे विकसित करने में विशिष्ट पात्रों का स्वभाव-चित्रण तथा अन्य चरित्रों का रेखांकन भी आंचलिक उपन्यास करता है। सक्सेना के अनुसार ''वार्तालाप की पात्रानुकूलता, मनोवैज्ञानिकता कथा को गति देने की क्षमता, संक्षिप्तता, स्वाभाविकता आदि किसी भी आंचलिक उपन्यास में देखे जा सकते है।''(47) वार्तालाप शैली से आंचलिक उपन्यास की रचनाप्रक्रिया प्रभावित है अतः समस्त परिवेशगत स्थितियों, तथा चारित्रिक विशिष्टताओं को इस शैली से अभिव्यक्ति मिलती है। 'अग्निबीज' उपन्यास में चुनाव की स्थितियों में जनमत में हिलोरे उठ रही है। जनमत द्वारा चुनाव में शामील पार्टियों के अच्छे-बुरे व्यवहार को देखकर यह वार्तालाप सुनाई पडता है।

''अब जिसे देखो मेटी लेकर दौड़ा है। जैसे गाय पेन्हा गयी हो।''

- नही तो किसीको कहीं पता नहीं था। अंग्रेज का नाम सुनकर कँपकपी छूटती थी और लाल पगड़ी देखकर लोग कोठिला में लुक जाते थे।

-भइया, जो कँगरेस ने किया, का कोई दूसरा करेगा? अब भला देखो नगेसर को। जिनगी भर अफसरों की चापलूसी करते रहे, अब चले हैं चुनाव लड़ने।

-अरे पुलुस का दलाल है ससुरा। रोज दरोगा टिका रहता है उसकी कोठिया में। जब सोसलिट की यही खान है, तब फिर ज्वाला बाबू में का खोट है।''(48)

इस जनमत में किसी का नाम नहीं है फिर भी रामपुर की चुनावी-स्थितियों को उजागर कर रही है। इन अंतरंग शैली के पश्चात् बाह्य-शैली के प्रयोग के आधार पर भी आंचलिक कथासाहित्य का विवेचन किया जा सकता है।

सुधी विद्वानों को ज्ञात होगा कि आंचलिक कथासाहित्य में आत्मकथात्मक, इतिवृत्तात्मक, पूर्वदीप्ति, रेखाचित्रात्मक, चेतनप्रवाही, व्यंग्यात्मक डायरी, गीति

आदि शैलियों का मिला-जुला प्रयोग किया जाता है।

'अग्निबीज' एवं 'अच्छेव' उपन्यास में आत्मकथात्मक तथा डायरी शैली का प्रयोग नहीं किया गया है। लेकिन पूर्वविवेचित शैली-विधान में से अन्यान्य शिल्प शैली के माध्यम से विवेच्य लेखकों ने अपनी अलग पहचान कायम की है। मार्कण्डेय द्वारा रचित 'सेमल के फूल' उपन्यास में डायरी शैली तथा पुण्डलीक नायक के 'गुणाजी' उपन्यास में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

7.123 इतिवृत्तात्मक

इतिवृत्तात्मक शैली में लेखक परिवेश का इतिवृत्त प्रस्तुत करता है। प्रत्येक उपन्यास में अल्प या वृद्ध रूप में कमोबेश मात्रा में इतिवृत्तात्मक वर्णन रहता है जिससे आंचलिक उपन्यास अछूता नहीं रह सकता। यह विवरण प्रभावोत्पादकता बढाने में मदद करता है। 'अग्निबीज' में परिवेश को इतिवृत्तात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। बजमा की कथा इसप्रकार वर्णित हुयी है- ''सूरज की जवान बीवी बजमा उसी रात अपनी महीने भर की बच्ची को टोकरी में पुरइन के पत्तों पर सुलाकर, टोकरी सिर पर लिए इसी तालाब में उतर गयी। सुबह बच्ची उसी टोकरी में हाथ-पाँव हिलाती किनारे लग गयी, लेकिन बजमा की जल समाधि अंतहीन हो गयी।''(49) इस कथावर्णन से 'बजमा' नामक नदी की उत्पत्ति बतायी है।'अच्छेव'में शिगमोत्सव (होली) की पूर्णिमा का वर्णन है- ''शिगम्याचे पुनवेराती तळ्यावयले आंबुल्ले आडसाक सुपायेदो चंद्रीम कोळंबाक दोळे घालूंक लागलो. तळ्याच्या बायकुलांत ताजें बेस बरें पडबिंब पडलें. उदकार ल्हारां उठनाफुड़ें चांन्रे उदकार चांदी कशें चकचकूंक लागले. तिनसांजचे कातरीर सगळ्यांच्या घरांतल्यान तेलसाणिचो सुरबूस वास सुटूंक लागलो. चंद्रीमाच्या रुपकारासारके वांटकुळेच वडे कायलींत उतरूंक लागले.''(50)

जिसका हिन्दी अनुवाद है ''होलीं की पूर्णिमा में रात्री को पोखरी के पास छोटे आम के पीछे से सूप जैसा चाँद कोलंब को आँख मारने लगा। पोखरी में पड़ा हुआ उसका प्रतिबिंब जो पानी पर उठनेवाले हिलोरों से चांदनी के समान चमकने लगा। शाम के वक्त सभी घरों से पूड़ियों के तलने की गमक चारों ओर फैली है। चांद जैसी गोलाकार पूड़ियाँ कढ़ाई के गरम तेल में तली जा रही हैं। (यहाँ चाँद और पूड़ियों के गोलाकार रूप का सांकेतिक प्रयोग दृष्टव्य है।)

कभी-कभी विवरणात्मक शैली द्वारा अनावश्यक वर्णन, विचारों, विसंगतिपूर्ण स्थितियों के वर्णन में उपन्यास बोझिल हो जाता है। विवेच्य कथाकारों के आंचलिक उपन्यास इसकी अतिशयता से अलग है।

7.124 पूर्व दीप्ति शैली

फ्लैश बॅक अथवा पूर्वदीप्ति शैली- पात्रों की स्मृति के द्वारा अतीत की घटनाओं को प्रकाशित किया जाता है। ''इसके अंतर्गत घटनाओं तथा प्रसंगों को तत्काल न दिखाकर उपन्यास के किसी विशिष्ट पात्र की स्मृतियों में लौटाकर दिखाया जाता है।''(51) पर आंचलिक उपन्यास पूर्ण रुपेण इस शैली में नहीं रचा जाता बल्कि पात्रों को या परिवेश को महत्वपूर्ण सन्दर्भों को उससे सम्बन्धित किया जाता है। जैसे आबू पात्र का पूर्वदीप्ति शैली में 'कोळंब' की कथा तथा 'बाबा गांवस' की कथा कहना आदि । बारस की घटना को भी पूर्व दीप्ति शैली में ही जाहिर किया गया है। ''वाजंत्री आनी लोक न्हंयेधडेर रावले, वरसासारके घाडी आनी हांव बावल्याचो पांटलो घेवन उदकाकडेन गेले. हांये घाड्याच्या माथ्या वयलो पांटलो सकयल दवल्लो. घाडी म्हण, 'कसली तरी घाण येता' ... कवद्याच्या उजवाडान आमी बावल्याक उखलूंक ओणंव घांतलो आनी-'

आनी?

आनी किते पळयतलो ! बावल्याक हेऽऽ येद्दे शेपाड्याचे किडे हुसहुसताले''(52)

जिसका भावार्थ है कि वाजंत्री और लोग दर्या-किनारे रहे। हर साल की तरह घाडी (ओझा-तांत्रिक) और मैं गुड्डे की टोकरी लेकर पानी के पास गये। मैंने घाडी के सिर की टोकरी उतार कर नीचे रखी। 'घाडी ने कहा था, कैसी बदबू आ रही है।' ... मशाल के रोशनी में गुड्डे को निकालने के लिए झुके और

और?

और देखा तो, गुड्डे (कों) बड़ी-बड़ी पूँछवाले कीड़े बिलबिला रहे थे।''

इस घटना को फ्लैश बॅक में रेखांकित कर प्रसंग के चित्रण में निर्मित जो रहस्य था वह आगे के पृष्ठों में जाहिर हो जाता है। मास्टर और आबू के संवादों से घाडी उसका पागलपन और बारस की पूर्वपरंपरा से चली आयी मान्यताओं के अनुसार पूजा अर्चना का न होना आदि से अवगत कराने के लिए पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया है।

फ्लैश बॅक शैली का 'अग्निबीज' में भी प्रयोग हुआ है। भाई द्वारा साधोकाका की स्थिति से अवगत कराने के लिए तथा श्यामा द्वारा संघर्षमय जिंदगी को रेखांकित करने के लिए- ''जेल से अदालत में पेशी के लिए ले जाते समय किसी पुलिस अधिकारी ने बात-बात में ही महात्मा गांधी को एक भद्दी गाली दे दी थी। साधो काका ने झपटकर उसका गला दबोच लिया था और लाख कोशिश करने पर भी उन्होंने उसे नहीं छोड़ा था। तब उनके हाथों में रस्सियाँ डालकर

खींचा गया था और किसी तरह उस अधमरे अफसर को उनकी पकड़ से छुड़ाया जा सकता था। उसके पहले काका के शरीर पर बन्दूकों के कुन्दों से बेतरहा मारा गया था, जिससे उनकी कनपटियों के ऊपर सिर खुल गया था और जाँघ तथा पिंडलियों का मांस आलू के भर्ते की तरह हो गया था। फिर बेहोशी की हालत में ही उन्हें भी अस्पताल पहुँचा दिया गया था। वहाँ धीरे-धीरे कई महीनों में उनकी चेतना तो वापस आ गयी लेकिन जुबान मारी गयी थी।''(53)

विवेच्य घटना से साधो काका का गांधी के प्रति असीम श्रद्धा भाव दृष्टिगोचर होता है। अपनी परवाह न करते हुए पुलिस अफसर पर हाथ उठाना उनकी हिंमत और साहस वाले भाव को भी व्यक्त करता है। श्यामा को अपनी भोगी हुयी परिस्थिति उसे अभी कुछ क्षण पहले घटी हुयी घटनाओं की तरह मस्तिष्क में कौंधती रहती है। सगे चाचा ज्वालासिंह द्वारा किये गये अत्याचारों को वह सुनीत को बताना नहीं चाहती है। यथा ''क्या उसे बता दे कि मेरी गर्भवती माँ तेरे बाप के चलते दर-दर की ठोकरें खाती रही? .....क्या वह बता दे कि बयालीस में जब पुलिस मेरा घर फूँक रही थी और जानवर खोलकर ले जा रही थी तो तेरा बाप पुलिसवालों के लिए गोश्त और शराब का प्रबन्ध कर रहा था? ... वह मुसई तथा बाकर चाचा जैसे दीन-हीन लोगों का पेट काट कर जुटाई गयी रोटियों पर जीती रही थी।''(54)

इन घटनाओं का सिलसिला श्यामा और उसके परिवार पर पड़ी विपदाओं के पहाड को ही दर्शाता है। ऐसी अनेक घटनायें श्यामा के माध्यम से 'अग्निबीज' उपन्यास के अन्तर्गत फ्लैश बॅक शैली में प्रस्तुत हुई है। चेतन प्रवाह शैली का प्रयोग पात्रों के मन में उठनेवाले विचारों को प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है। अतीत की घटना से जुड़े हुये वास्तविक या अवास्तविक घटना प्रवाह को चेतना के गहरे एवं तीव्र प्रवाह के साथ मानसपटल पर उभारा गया है। यह शैली फ्लैश बॅक से जुडी है, क्योंकि प्रत्येक पूर्वदीप्ति (फ्लैश बॅक) चेतना प्रवाह है लेकिन प्रत्येक चेतना प्रवाह फ्लैश बॅक नहीं होता है।

7.125 रेखाचित्रात्मकता

'रेखाचित्र' में व्यक्ति को केन्द्र बनाकर उसका रंगरुप, आकार-प्रकार, प्रवृत्ति, शील, स्वभाव, चाल-ढाल और वेशभूषा आदि के पक्ष को उभारा जाता है। आंचलिक कथासाहित्य में अधिकांशत: इस शैली का प्रयोग हुआ है। पात्रों के बहिरंग चित्रण में आंचलिकता और वहाँ की सृष्टि से जुड़े पेड़-पौधों एवं परिवेश का गहरा प्रभाव पाया जाता है। चरित्रों की गरीबी तथा उनकी अमीरी उनकी वेशभूषा से व्यक्त होती है। गरीबी में ही जीनेवाले हरिजन सागर का रेखांकन इस

प्रकार किया है-

"गले में गमछा लपेटे और फटी हुई बनियान लटकाये, सबसे पीछे खड़ा सागर उनका पुराना परिचित था। दरवाजे पर खड़ा बार-बार नाक सुडक रहा था। वह अपने साथियों की तरह अन्दर जाकर चटाई पर नहीं बैठा।''(55)

प्रकारान्तर से सागर की वेशभूषा से उसकी गरीबी, नाक के सुडकने में उसकी शारीरिक कमजोरी तथा पीछे खड़ा रहने या अन्दर चटाई पर न बैठने से अस्पृश्यता की दर्दनाक स्थिति उभरकर आती है।

साधोकाका का स्वभाव उसकी लाचारी में बहते हुए आँसुओं से अक्षमता, अथाह नदी का बिम्ब प्रस्तुत कर उनकी मन की सहीं स्थितियों से अनजान होने के तत्व को रेखांकित किया है। यथा ''काका की आँखे डबाडब भरी हुई है, उसने कितनी ही बार आँसुओं में उभ-चुभ इन आँखों को देखा है- बढ़ी हुई अथाह नदी की तरह उनका आवेग वही समझ सकता है, जिसने लाचारी के आँसू झेले हों।''(56)

बड़बड़ाती लकुटिया टेकती, लुढ़कती-पुढ़कती आती हुई गोपी काकी(57) की आदते और उसके साथ-साथ बुढ़ी अवस्था का जिक्र किया है। कहीं-कहीं वेशभूषाएँ भी अलग-अलग वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। श्यामा द्वारा पहनी हुयी धोती, सुनीत द्वारा साफ धुला हुआ, बारीक खादी का कुर्ता-पायजामा(58) तथा मुराद ने 'आधी बाँह का गज्री का छोटा कुर्ता और दोकछी ऊँची धोती''पहिन रखी थी। उसका यह कपड़ा बुनाई से ले कर सिलाई तक खुद बाकर के अपने हाथ का किया हुआ था।''(59)

ज्वालासिंह का पुत्र सुनीत चूंकि उच्चवर्ग से है तो कुर्ता पायजामा पहनना उसकी शानो शौकत को दर्शाता है। 'अच्छेव' उपन्यास में गुजीर प्रसाद बाबू का रेखाचित्र नायक ने खींचकर उनकी गुजराती व्यावसाय को साक्षात सामने खड़ा किया है। ''गुबगुबीत पोले.साळकाच्यो पाकळ्यो कशे काळे कुळकुळीत मिश्यांजोड. आंगांत धिपरा मेरेन खोमीस ताजेर भांगराचे बुतांव बोल्सांत जाडजूड पटी. वयर दोन लापीस पावला मेरेन लुंगी कशे धवें पुडवें बादिल्ले पायांत सोबीत बरे विणयेच्यो आनी दाट तळव्यांच्यो व्हाणो. केंस फाटल्यान वळयल्ले. ताणें लायिल्ल्या वासाच्या तेलाचो घमघम भितर सरतानाच पंडरीक आयिल्लो. शेतांत मेरेर बसता तसले धवे फुल्ल बळारी सारको तो सोफ्यार बशिल्लो. बळारीवरीच आपल्या भोंवतणयां नदरो घुंवडायतलो ताजे कुशीक बशिल्लो रिस्काद मुस्तायकेंतलो बाबुसो बळारी म्हऱ्यांन कावळो कसो दिसतालो.''(60)

जिसका भावानुवाद है 'गदराये गाल, कमल की पँखुडियों जैसी काली काली मूँछे, बदन के उपर कमीज उसपर सोने के बटन, जेब में मोटी नोटबुक, उपर दो पेन्सिल पैरो तक नीचे लुंगी की तरह, सफेद धोती बंधी हुई, पैरो में

सुंदर और जाड़े तलुअे की चप्पल, बाल पीछे की ओर बनाये हुए, उसने लगाये खुशबुदार तेल की खुशबू अंदर आते ही पंडरी को महसूस हुई है। खेती के बाँध पर बैठे सफेद बगुले की तरह वह सोफापर बैठा था, बगुले की तरह अपनी नजर इधर उधर घुमा रहा था, उसकी बगल में बैठा रेखाओं से भरा शर्ट पहनकर 'बाबुसो' पात्र बगुले के सामने कौआ नजर आ रहा था।

आबू की गरीबी, अकेले रहने से पूरे गाँव को अपना मानना, पोखरी के पानी पर ही चार-चार दिन बिना कुछ बनाये गुजारना और घर की दैन्यावस्था में आबू की वेशभूषा से किसी गाँव में देखे हुये बुढ़े की याद अचानक आती है-

''वाड्यावयल्या पयल्या कोंब्याचो साद कानांर पडलो तेन्ना आबू हांतुणावयलो उठलो- उशा कुशीक पडिल्लो माथ्याचो रुमाल ताणे माथ्याक सारको वेटकाळयलो. कंबरा सकयल देंविल्ली रुप्याची मूज वयर ओडली काश्टेचो तांबडो लेंस सारको केलो फाटल्यान मुजीक खोवन गांठ माल्ली. उकत्या आंगांर तुवालो भोवडायलो आनी तसोच दाव्या खांदार वडयलो दाव्या हाताची धिगी करुन तो उठलो कोनशाचो दांडो उजव्या हातांत घेतलो.''(61) जिसका हिन्दी में भावानुवाद है- गाँव के पहले मुर्गे के बाँग पर आबू उठा। तकिये के पास पड़ा हुआ रुमाल उठाकर सिर पर बांधा। कमर के नीचे की 'मूंज' ऊपर खींची। 'काश्टी' का लाल रुमाल ठीक किया, उसे पीछे खींचकर गाँठ मारी। खुले बदन पर टॉवेल फेरा और बायी भुजापर डाला. बाये हाथ पर भार डालकर वह उठा और कोने में रखा हुआ डंडा दाये हाथ में लिया।

इससे आबू का रहन-सहन, ठंड में भी खुले बदन घूमना, उसका पहनावा, उसकी स्थिति आदि का यथार्थ चित्रण पुण्डलीक नायक ने किया है। व्यक्तित्व के इस रेखांकन में सूक्ष्मता, स्वाभाविकता, सजीवता को अनिवार्य मानकर अंचल के रूपायन को प्रभावशाली बना दिया है।

7.126 पत्रात्मक शैली

पात्रों की आन्तरिक भावनाओं का खुले रूप से प्रकाशन करना पत्रात्मक शैली शैली का प्रमुख कार्य है। घटना के दौरान या तद्नंतर लिखे हुये पत्रों के माध्यम से रचनाकार उस पात्र की मानसिकता को रेखांकित करता है। मार्कण्डेय ने इस शैली का प्रयोग 'अग्निबीज' उपन्यास की पात्र छबिया द्वारा किया है। कलकत्ता भाग जानेपर श्यामा को लिखे पत्रद्वारा वह अपनी विवशता, स्थितियों का बयान करती है- ''मैं जानती हूँ श्यामा बहिन कि वहाँ लोग तरह-तरह की बातें कर रहे होंगे। बाबू की नाम हँसायी भी हुई होगी। लेकिन मेरे सामने इसके सिवा कोई चारा ही नहीं रह गया था। मैं मरना नहीं चाहती थी।''(62)

छबिया की प्रगतिशीलता, पुरानी मान्यताओं को ठुकराना अपनी मन की सुनना, झूठी मर्यादा के बोझ में दबाकर घिसट-घिसट कर जीवित रहनेवाली लड़कियों से अलग उसका व्यक्तित्व है।

गीतिशैली का प्रयोग आंचलिक उपन्यासों की जान है। उसका विवेच्य लेखकों ने प्रयोग किया है, जिसका इसी अध्याय में विवरण दिया है। मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक ने भाषा-शैली के प्रयोग के द्वारा आंचलिक सौंदर्य एवं भाषा संबंधी रूप-परिवर्तन को अभिज्ञापित किया है, साथ ही साथ विवेच्य लेखकों ने पात्र-परिवेश, भाव-स्थिति, संवेग और विचार आदि प्रस्तुति के अनुरुप यथार्थवाद, भावात्मक, वार्तालाप, इतिवृत्तात्मक, पूर्वदीप्ति, रेखाचित्रात्मक और पत्रात्मक शैली का प्रयोग भी विभिन्न कथात्मक रचनाओं में किया है। वे आंचलिकता के आग्रही रचनाकार नहीं है बल्कि आंचलिक परिवेश उनकी रचनाओं में स्वत: ही पात्र-परिवेश की स्थिति के अनुरुप संरचनात्मक रूप अख्तियार करता है।

7.2 शिल्प-विधान सम्बन्धी विवेचन

किसी भी साहित्यिक विधा में कथ्य के साथ शिल्प का महत्व द्वन्द्वात्मक स्तर का होता है। बिना शिल्प के कोई भी कलाकृति विशिष्ट रूप धारण नहीं कर सकती। चाहे वह कहानी हो या उपन्यास। प्राय: शिल्प शब्द को रचना, क्रिया कौशल एवं कला कौशल के अर्थ में स्वीकार किया गया है। किसी भी कलाकृति का स्वरुप शिल्प पर निर्भर होता है- ''शिल्प का सम्बन्ध किसी भी वस्तु या कृति के निर्माण से ही है। वस्तु प्राकृतिक हो या मानव निर्मित, उसमें शिल्प का होना नितान्त आवश्यक है। रचना में तो घटनाओं या प्रसंगों की सजावट शिल्प के द्वारा ही की जाती है। अत: रचना-प्रक्रिया को जिन उपरणों से सजाकर सुन्दर बनाया जाता है, वही रचना का 'शिल्प है।''[63]

''शिल्प का अर्थ सामान्यत: निर्माण होना है। कवि अपनी आन्तरिक अनुभूति, विचारधारा और सौन्दर्यबोध को कोई भी रुप देने के लिए स्वतंत्र होता है। किन्तु जिन उपादानों को जोड़कर वह अपनी अनुभूति, भावबोध और सौन्दर्यबोध को निश्चित रूपाकार देता है उसकी गणना शिल्प के अंतर्गत ही होती है।''[64]

शिल्प पर रचना की सौन्दर्यानुभूति निर्भर होती है। सौन्दर्यानुभूति के साथ-साथ अन्यान्य अनुभूतियों को सुन्दर बनाने का कार्य शिल्पद्वारा होता है। कैलास वाजपेयी के अनुसार ''शिल्प में वस्तु (विषय और अनुभूति) की अभिव्यक्ति होती है। अपनी कलाकृति में कलाकार साक्षात्कार किए गए सौन्दर्य तथा(भावपरक) सत्य को न केवल अभिव्यक्त करना चाहता है अपितु उसे इस तरह अभिव्यक्त

करना चाहता है कि वह एक सम्पूर्ण सफल सार्थक तथा सुन्दर कलाकृति बने।''(65) लेकिन साक्षात्कार किये गये सौन्दर्य को दो विभिन्न लेखकोंद्वारा अनुभूत करने पर उनकी कलाकृति विशेष में भिन्नता आ जाती है। इतना ही नही किसी एक लेखक द्वारा किया गया सारा सृजन भी एकसा नहीं होता। उसमें देशकाल, अनुभूति की तीव्रता के कारण कृति में फर्क होता है। कृतियों में अंतर मानसिक प्रक्रिया तथा सांसरिक जगत के फलस्वरूप आता है।

लेखक की मानसिक प्रक्रिया इतनी महत्वपूर्ण है कि क्रोचे सहजानुभूति को ही अभिव्यंजना मानते है। अमूर्त स्तर पर मानसिक सृष्टि को ही वास्तविक सृजन मान लिया है। लेखक के मन में बीज-भाव उत्पन्न होते ही रचनात्मक मानसिक प्रक्रिया आरम्भ होती है इसी का संयोजन उसको कृति में रुपायित करने तक कलात्मक स्तर पर करना होता है। थोड़े समीक्षक संयोजन करने में तथा भाव या विचारों के रुपायित करने के ढंग में अंतर नही मानते, लेकिन रेणु शाह ने 'शिल्प विधान' एवं 'शिल्पविधि' के स्वरूप को बतलाते हुये दोनों के अंतर को भी रेखांकित किया है। ''वस्तुतः विधि का अर्थ-नियम, सिद्धान्त कानून से है और विधान शब्द का अर्थ नियोजन, संयोजन, अन्विति, प्रबन्ध-व्यवस्था आदि से है। ... शिल्प का अर्थ है रचना या कार्य और विधि का अर्थ है कार्य की प्रणाली जिसे टेकनीक के रुप में भी माना गया है और शिल्प-विधान शब्द कौशलपूर्ण रचना का प्रबन्ध अथवा व्यवस्था के अर्थ का द्योतक है। किसी भी रचना का प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कौशलपूर्ण संयोजन व्यवस्था अथवा प्रबन्ध शिल्प विधान कहलाता है।''(66) डॉ. उषा सक्सेना ने भी इसी मंतव्य को अन्य शब्दों में रचा है कि ''शिल्प विधान शब्द किसी कलाकृति के संयोजन या प्रबन्ध के भाव को प्रकट करता है जबकि शिल्पविधि के अन्तर्गत किसी भी कलाकार की समग्र रचनाओं में विद्यमान सामान्य रचना के नियमों और प्रवृत्तियों को रखकर देखा जा सकता है।''(67)

शिल्पविधान के अन्तर्गत यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि ''जिस प्रकार वस्तु और रूप के सम्बन्ध अपने शत्रुतापूर्ण अंतर्विरोधों में एक दूसरे की सहवर्तिता में विकसित नहीं होते बल्कि एक दूसरे का प्रतिरोध करते हैं। सामान्यतः वस्तुगत रूप में 'रूप-वस्तु' के अन्तर्विरोधों को झुठलाना और नकारना चाहता है और वस्तु के अंतर्विरोध 'रूप' के छद्म को तोड़कर स्पष्ट होना चाहते हैं। अतः 'वस्तु' पक्ष के पक्षधर रचनाकार अपनी विचारधारात्मक प्रतिबद्धता के निर्वाह में वस्तु के उपयुक्त 'फार्मरूप' को प्रयोग कर लेते हैं।''(68) कहना न होगा कि मार्कण्डेय ने विचारधारात्मक स्तर पर गांधीवाद बनाम समाजवाद के आपसी अंतर्विरोध को कथ्य के स्तर पर चुना है। उसी प्रकार उन्होंने उपन्यासगत संरचना में आंचलिकता

रुप-शैली को ही अभिव्यक्ति के माध्यम के रुप में ग्रहण किया है। यहीं हाल पुंडलीक नायक का है- 'अच्छेव' उपन्यास में परंपरागत कृषि-विधान और औद्योगिक परिवर्तन के अत:संघर्ष कथ्य के स्तर पर रुपायित हुये है। तो रूप शैली, शिल्प के आवरण के लिए उन्होंने क्षेत्रीय अंचल कोळंब गोवा के लोकजीवन के रूप में आधार ग्रहण किया है। 'विचारधारा' और 'परिवेश' के आपसी अंत:संबंध ही कथ्य और शिल्प के प्रासंगिक रुप बने है।

शिल्पविधि के अंतर्गत विभिन्न तत्वों को स्वीकार किया गया है। ''साधारणत: उपन्यास का अध्ययन कथावस्तु, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, देशकाल या परिवेश, कथोपकथन, (संवाद) भाषा-शैली, उद्देश्य आदि तत्वों के आधारपर किया जाता है।''(69)

प्रकारान्तर से कहानी का भी अध्ययन इन्हीं शिल्प-तत्वों के आधारपर किया जाता है लेकिन दोनों में पर्याप्त अंतर है। कहानी में किसी एक घटना या जीवन की झलक प्रस्तुत होती है तो उपन्यास में वृहत जीवन विन्यास को केन्द्र में रखा जाता है जिसमें चारित्रिक विकास के लिए स्थान रहता है। कहानी में इसकी गुंजाईश नहीं होती क्योंकि कहानी में चरित्रों की संख्या कम रखनी पडती है जो कहानी मे कलेवर की दृष्टि से अनिवार्य होती है। वार्तालाप, वातावरण के संबंध में उपन्यास की शिल्पविधि का अनुसरण किया जा सकता है।

आंचलिक कथासाहित्य स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न तत्कालीन परिस्थितियों के फलस्वरूप रचा गया है। हर देश की विभिन्नता, रहन-सहन, खानपान, संस्कृति को मद्देनजर रखकर रचे इस साहित्य के शिल्प विधान के अंतर्गत उपर्लिखित तत्वों के तहत् चर्चा करेंगे।

7.21 कथा शिल्प

आंचलिक कथासाहित्य में विषयवस्तु क्षेत्रीय या आंचलिक तत्व की होती है अर्थात वह किसी क्षेत्रविशेष से ही संबद्ध होती है। आंचलिक उपन्यासों में कथा का संगठन तथा एकसूत्रता नहीं पायी जाती और न ही कथा सृष्टि का कोई स्वरूप हो सकता है क्योंकि अंचल विशेष की संस्कृति, रीतिरिवाज, धर्म, विश्वास आदि को चित्रित करना लेखक का मकसद होता है। आदर्श सक्सेना के विचारानुसार ''आंचलिक कथा में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति होती ही नहीं उसमें बिखराव की प्रवृत्ति होती है क्योंकि उसका उद्देश्य अंचल के जीवन को उसके समग्र रूप में प्रस्तुत करना होता है। इस बिखराव में भी एकरूपता नहीं होती।(70)

कथा का पारम्परिक स्वरूप कथासाहित्य में बन गया था उसमें आदि-मध्य और अंत जैसी सीमायें होती थी लेकिन आंचलिक कथासाहित्य में कथागत

बिखराव के कारण ऐसी अवस्था दृष्टिगोचर नहीं होती। सामान्य पाठक वर्ग को कथागत बिखराव के कारण कथानक का अभाव सा लगता है - ''आंचलिक उपन्यासों का कथानक इतना जटिल होता है कि उसके तंतुओं अथवा सूत्रों को अलगाकर देखा नहीं जा सकता। वह समग्र अंचल की कथा होती है। वह न केवल किसी व्यक्ति विशेष की बल्कि आंचलिक परिवेश के फूलों, पौधों, जमीन, मिट्टी,बोली, रीति-रिवाजों, लोकगीतों, लोककथाओं, त्योहारों, जलवायु आदि समस्त फलक की कहानी होती है। इसके कथानक का उद्देश्य एवं लक्ष्य आंचलिक जन-जीवन का समग्र आलेखन करना होता है। फलस्वरुप आंचलिक उपन्यासों में कथानक कीविविधता, बिखराव, वस्तुनिष्ठता एवं विसंगति आदि उसके दोष नहीं माने जा सकते प्रत्युत ये सब अपनी अलग विशिष्टता ही प्रदर्शित करते हैं।''(71)

उपन्यासों में कभी-कभी विस्तृत फलक पर दो सौ वर्षों के कालखंड को समेटती हुयी तथा कहीं-कहीं दस-पन्द्रह वर्षों के अंतराल को रेखांकित करती हुयी कथावस्तु दृष्टिगोचर होती है। मतलब कालखंड की मर्यादा किसी भी अन्य उपन्यासों की तरह आंचलिक उपन्यास के लिए भी नहीं है। बहुआयामी, बहुरुपी कथा में बिखराव एवं विछिन्नता के प्रतिभास के कारण इन उपन्यासों पर जटिलता, दुरुहताकाआरोप भी लगाया जाता है लेकिन वह आरोप कथासूत्रों की विभिन्नता तथा आंचलिक स्वरुप को ध्यान में रखते हुए नजरअंदाज किया जा सकता है। रामदरश मिश्र का मत इस दृष्टि से उपयुक्त हैं- ''इन उपन्यासों में कथागत बिखराव का आभास होता है। समग्रता को समंजित करने, अपने पक्षों को बांधने, कोण वैविध्य के समवाय, अनेक जीवनस्तरोंको एक साथ रखने, समाज और व्यक्तिचेतना के अनेक सूत्रों को संगठित करने के बहुमुखी प्रयत्नों में विच्छिन्नता का प्रतिभास स्वाभाविक ही है। यहाँ बाह्य संगठन देखने की चेष्टा न्यायोचित नहीं है क्योंकि इनका संगठन आंतरिक हो सकता है।''(72) इस अंतस को जानने की प्रवृत्ति से ही आंचलिक उपन्यास के कथातत्व को समग्रता में हृदयंगम किया जा सकता है।

'अग्निबीज' उपन्यास में साधोकाका, श्यामा तथा ज्वालासिंह के कथानकों के साथ-साथ अन्य कथातत्व भी शामिल हुये हैं। इस उपन्यास में जीवन की राजनीतिक सामाजिक समस्याओं को केन्द्र में रखने से महसूस होता है कि साधोकाका से जुड़ी हुयी कथा ही केन्द्रीय कथा है क्योंकि ''कथागत बिखराव में कथा की अनेक दिशाएँ होती है और उनके अनेक पात्र जीवन गत बिखराव में पात्र कम होते हैं परन्तु जीवन की नाना अवस्थाएँ उद्घाटित हो जाती है। हम यह भी कह सकते हैं कि प्रथम प्रकार के बिखराव में उपन्यास सामाजिक प्रतीत होता है और दूसरे प्रकार के बिखराव में चरित्र-प्रधान। प्रथम में केन्द्रीय कथा नहीं मिलती, द्वितीय में किसी एक पात्र की कथा केन्द्रीय कथा होने का आभास देती है परन्तु

वह आंचलिक जीवन के उद्घाटन का माध्यम मात्र होती है क्योंकि वह पात्र अन्य पात्रों की तुलना में विशिष्ट स्थिति रखता है ।''(73) रचनाकार श्यामा, सागर, सुनीत, मुराद, छबिया, नन्हकी, मुसई, बाकर, भागो बहन, हरगोन सिंह आदि अनेक पात्रों की छोटी-बड़ी कथायें मिलकर रामपुर-सेतपुर के ग्राम जीवन को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं। विवेच्य उपन्यास की कथा-योजना इस प्रकार की है कि इसमें कोई भी आधिकारिक कथा नहीं है न ही प्रासंगिक कथा। श्यामा की कथा आधिकारिक होने का आभास जरुर पैदा करती है लेकिन साथ ही जुड़ी हुयी भागो बहन एवं भाई की और ज्वालासिंह की कथा उतना ही महत्व प्राप्त करती है। पुंडलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में पंढरी की कथा आधिकारिक कथा के बीजसूत्र वहन करती है लेकिन आबू, नानु, मास्तर की कथाएँ अपने स्वरुप में गौण कथायें कदापि नहीं है। इस उपन्यास में पंढरी का जितना महत्व है उससे कई गुना अधिक महत्व आबू का है। इसमें सामाजिक जीवन संस्कारों का परिवर्तित रूप, औद्योगिकरण, उससे उत्पन्न समस्याओं का भी उद्घाटन होता है जो अन्य पात्रों से कहीं ज्यादा प्रभावी है।

'अग्निबीज' में राजनीतिक, सामाजिक जीवन की समस्यायें केन्द्र में है। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ में अंधा हो गया है। साधोकाका मुसई महतों आदि ऐसे चरित्र है जो इन स्वार्थी लोगों के विरोध में हमेशा चेतन रूप से सामने आते है। शोषक वर्ग छुआ-छूत का विरोधी है, इसलिए अस्पृश्यता निवारण के तहत निम्नवर्ग द्वारा खाना बनाकर परोसने की घटना यहाँ उद्घृत है। आर्थिक स्थिति सबकी खराब है, दो-चार लोग पैसेवाले अन्यथा सभी कृषक या मजदूर। ऐसी स्थितियों में पेट के लिए अनाज जुटाना मुख्य कार्य है कोई अन्य प्रेरक चेतना जागृत होने पर भी वे लोग उसमें शरीक होने की स्थिति में नहीं है। चरखा चलाना उनकी आजीविका का साधन बन सकता है लेकिन जमींदारों के यहाँ खटते दिन पूरा नहीं पड़ता। ऐसी जीवन-विभीषिका उस दौर के समाज में थी जिससे लगता है कि देश की स्वतंत्रता का ग्राम्यावस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

7.22 पात्र एवं चरित्र-चित्रणगत शिल्प

''पात्रों का प्रस्तुतिकरण एवं उनका चरित्र निरुपण उपन्यास की प्राथमिक आवश्यकता होती है।'' कथानक को अपना विशिष्ट रूप भी पात्रों के विशिष्ट चरित्र के कारण ही प्राप्त होता है।''(74) कहीं कहीं पात्र के लिए चरित्र की अवधारणा प्राप्त होती है जैसे- ''चरित्र अथवा पात्र को कथा का मेरुदण्ड माना गया है। मुझे लगता है कि पात्र सामान्य जीवन से चुने जाते है और लेखकीय उद्देश्य से उन पात्रों को चारित्रिक विशिष्टताओं से कथानक को पुष्ट करने हेतु अनुरूप

बनाया जाता है।''(75)

आंचलिक उपन्यास में भी अन्य उपन्यासों के पात्रों समान ही उच्चवर्ग, मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग से पात्र रूपायित होते हैं, परन्तु ग्राम समाज वर्तमान सभ्यता तथा आधुनिकता से दूर अपनी विशिष्ट जीवन पद्धति में जीता है फलस्वरुप निम्नवर्गीय पात्रों का ही चारित्रिक विकास सम्भव है। निम्नवर्ग के थोड़े पात्र सामान्य तथा थोड़े विशिष्ट होते हैं। आंचलिक उपन्यासों में निम्नवर्गीय विशिष्ट चरित्रों में कुछ विशेषतायें ऐसी होती है जिनसे अंचल की प्रगति तथा नवनिर्माण की लालसा प्रगट होती है। 'अग्निबीज' में सागर ऐसा चरित्र है जो समाज के आमूलाचूल परिवर्तन की इच्छा मन में रखते हुये भी संस्कारों की परंपरागत बेड़ियों से जकड़ा हुआ है। तो उसकी बहन छबिया इन सबको त्यागकर ब्राह्मण हुडदंगी से शादी कर कलकत्ता निवासी बनी और चटखल में काम करके स्वावलंबिनी बनती है। कहना न होगा कि अनाज दाँते-बैलों के गोबर से दाने जुटाने वाली छबिया का चारित्रिक विकास 'अग्निबीज' में महत्वपूर्ण है।

आंचलिक उपन्यासों में वैयक्तिक स्तर पर किसी चरित्र को विशेष महत्व प्रदान नहीं किया जाता बल्कि परिवेश और स्वयं की विशिष्टता से आंचलिक जीवन में चरित्रों को वैशिष्ट्य प्राप्त होता है। देवेश ठाकुर के विचार से ''पात्र देशप्रधान होने के बावजूद आंचलिक उपन्यासों में चरित्रों का अपना विशेष महत्व होता है।''(76)

विवेच्य कथाकारों के उपन्यासों में पात्रों की भरमार हैं- 'अग्निबीज' में साधोकाका, श्यामा, मुराद, सागर, सुनीत, भाई, भागो बहन, ज्वालासिंह, चंदा बहू, मुसई महतो, बाकर, गोपी आजी, दुलरा आजी, बैकुण्ठी, हरगोन सिंह, भीम भाई, मुंशी, छबिया, हुडदंगी, पारस, बिसेसर, विन्देसरी पांडे, बैजू, द्वारिका सिंह, बलराम यादव, सुदेश भाई, खेलावन चाचा, पथरु, धनिकलाल, बिन्दा भगत हिरनी, विन्देश्वरी पांडे, थानेदार, बिसराय, सोन्हू, सोभू सिंह, आदि। इसी प्रकार पुंडलीक नायक के 'अच्छेव' उपन्यास में पंडरी, रुक्मिण, केंसर, नानु, आबू, शंकर, सावळो, मास्तर, बाबुसो, नरसिंह, जयदेव, देवकी, दत्ताघाडी, मानुयेल, येसो, शाणू, सुपरवायझर, गुजर आदि पात्र मुख्य है।

उपर्युक्त सभी चरित्र बनकर उपन्यासों के कथ्य को, पाठकों के मनमस्तिष्क को अपने साथ प्रवाहित करते हैं और अपनी विशिष्टताओं से आंचलिक जीवन और परिवेश का साफ-सुथरा दृश्य प्रस्तुत करते हैं। प्रसंगवश कहना होगा कि 'चरित्र कल्पना' की दृष्टि से रेणु के उपन्यास सर्वाधिक महत्व प्राप्त करते है लेकिन इसी परम्परा में मार्कण्डेय भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। चरित्र-चित्रण, शिल्प में मार्कण्डेय की एक विशेषता की ओर सहज ध्यान चला जाता है। पात्रों के बहिरंग चित्रण

में आंचलिकता का गहरा प्रभाव पाया जाता है। ऐसे चरित्रों को अंचल के विशिष्ट गंध, रुप रंग वाली प्रकृति से मार्कण्डेय गढते है। जैसे मटर सी आँखे और आलू सी नाक, सीने पर उगे हुए बाल किसी भींट पर उगी हुई घास, भालू के से बाल[77] कटहल के कोये की तरह बड़ी-बड़ी आँखे[78] नेवले की तरह गर्दन[79] उपन्यास गत विवेचन में कहीं कहीं पात्र की वेशभूषा से उसके किसी राजनीतिक पक्ष में होने या किसी राजनीतिक उद्देश्य के प्रचार करने का कारण स्पष्ट करते हैं। जैसे "सुदेश जी के अलीगढ़ी पायजमे, लम्बे कुर्ते और चश्मा जड़ित चेहरे से अंदाज लगा था कि सुदेश जी नये प्रशिक्षित विनोबावादी थे।"[80]

श्यामा के आंतरिक एवं बाह्य सौंदर्य की अनुपम छाप हैं विवेच्य उपन्यास में दिखायी पडती है। यथा उसके सिर के रुखे बाल, पीछे एक काले धागे से कसकर बँधे थे। नीचे का लटकता, खुला हिस्सा मकई के खूहे की तरह उड़ रहा था। उसके नन्हें कंचनवर्ण चेहरे की दीप्त आँखे भागो बहिन का हृदयतल तक बेधती चली गयी।[81]

यहाँ जितनी लिबास की सादगी है, उतना ही चरित्र का सीधा-साधापन प्रतियोगिता में भाग लेनेवाली श्यामा में है। लेकिन यौवन की हल्की सी दस्तक उसे परिवर्तित करती हैं "छः महीने पहले उसके हाथ की सिली, छोटी सी लाल रंग की चोली आज उसके शरीर पर अट नहीं रही थी। उसने किसी-किसी तरह कस कर उसके बटन लगाये फिर धोती सँभालकर इस तरह पहनी कि वह उसकी कांचनवर्ण, क्षीण काया पर भारी न पड़े। घने, काले बालों को काठ की कंधी से सहेज कर बालों से ही बनी गछनी से कस कर बाँध लिया। कुछ छोटे बाल छिटक कर अगल-बगल छूट गये थे उन्हें वैसे ही छोड़ दिया किसी निबिड़ अन्धकार में जलते हुए एकान्त दीप की तरह श्यामा के इस रुप-लावण्य का वर्णन कर कोई कवि वाणी के मन्दिर में अमरत्व पद का सहज अधिकारी हो सकता था।"[82] यहाँ अनायास कालिदास की शकुंतला स्मरण आती है जिससे उसका नाम आज भी अमर है।

शादी के वक्त श्यामा का सौन्दर्य और निखर कर आता है। शादी के विविध रस्मों को निभाते हुये श्यामा हल्दी-तेल से सनी धोती पहनकर बाहर निकलती है तब मार्कण्डेय उसकी सौन्दर्य-आभा का इसप्रकार वर्णन करते हैं- "श्यामा के रूप-लावण्य को डूबते सूर्य की सुनहरी किरणों ने इस तरह ज्योतिर्मय बना दिया था कि दूर से देखने पर लगता जैसे कोई सोने की सजीव मूर्ति पश्चिम के लाल आसमान की ओर बढ़ती चली जा रही हो।"[83]

शादी के बाद माँग में भरे हुए सिन्दूर का लालित्य सुनीत देखता ही रह गया तब श्यामा का सौंदर्य एवं उसकी पवित्रता बढती है। "जैसे स्वर्ग की

कोई देवी धरती पर उतर आयी है।''(84) श्यामा के बाह्यसौंदर्य को बचपन से शादी तक वर्णित किया है और इस वर्णन में मार्कण्डेय श्यामा के सौंदर्य को निखारते हुये उसे आम लड़की से स्वर्ग की देवी की उपमा से सजाते है।

आंतरिक सौदर्य में श्यामा का चरित्र उसके संघर्ष को व्यक्त करता है, श्यामा संवेदनशील, समझदार है, छोटी उम्र में ही परिपक्व बुद्धि से सबपर प्रभाव डालती है। यथार्थ-जमीन पर पैर रखकर हवाई सपने देखने के बजाय परिस्थितियों से संघर्ष करती है। ''श्यामा देखने में बच्ची थी, वर्ना सारे व्यवहार वह माँ की तरह करती थी।..... उसमें बालपन की उतावली और उन्माद का क्लेश भी नहीं था। बोलती इस तरह जैसे मुँह से फूल झड़ रहे हों। किसी का विरोध करती तो लगता उसे सबसे ज्यादा जानती है। बहुत रुककर समझ कर बोलने की आदत उसने इतनी कम उम्र में कैसे सीख ली, वह सबके लिए आश्चर्य की बात थी।''(85) वह तेजस्विनी है प्रगतिशील है, लेकिन आंचलिक संस्कारों में बंधी श्यामा के आगे विवाह के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं बचता है।

पुंडलीक नायक ने अपने विभिन्न उपन्यासों में सामान्य और विशिष्ट चरित्रों को रेखांकित किया है। जिसमें पंडरी, रुक्मिणी, आबू आदि विशिष्ट चरित्रों की विभिन्न संवेदनाओं की तह में पहुँचकर उन्होंने जिस प्रकार वर्णन किया है, उससे लगता है कि कोई परिवेश, पात्र, संवेदना पुर्जे-पुर्जे खोल रहा है। उन्होंने प्रत्येक वर्ग की मानवीय संवेदनाओं का यथार्थ और आलोचनात्मक रूप उपस्थित किया है। कोंकणी के अन्य लेखकों की तुलना में पुंडलीक नायक के विभिन्न पात्रों में प्राणवत्ता, जीवनशक्ति, जिजीविषा के लिए लड़ने की कला दृष्टिगोचर होती है। 'अच्छेव' में कथा का कोई सबल मेरुदण्ड न रहने पर भी कथाकार जीवन-चरित्रों की रेखायें स्पष्ट कर देता है।

'कोळंब' ग्राम के विभिन्न प्रकार के वर्ग-पात्रों को पुंडलीक नायक ने मुखर रुप दिया है पर अशिक्षित, गँवार, सीधे-सादे किसान को केन्द्र में रखा है। ये पात्र अंचल विशेष की बहुविध-गतिविधि दर्शाने और रोचकता को बढ़ाने में सार्थक हैं। आबू नामक पात्र गाँव की भलाई तथा लोगों द्वारा संस्कृति के निर्वाह का चहेता है। पंडरी खेती-व्यवसाय, श्रम की महत्ता से 'कम काम और भरपूर दाम' की ओर बढ़ता है। तालाब से पानी भर कर ले जाते वक्त घर की औरतों की बातें, जिसमें घर-घर की खबरें (समाचार) बढ़ा-चढ़ा कर फैलाना-जो दृश्य आज गाँवों में नजर आता है इन पात्रों द्वारा कथा को अग्रसर करने में मदद मिलती है।

केंसर, नानु, शंकर और नरसिंह आदि बच्चों द्वारा खेले गये खेल में भी प्रतीकात्मकता है। खेती का व्यवसाय छोड मीन व्यवसाय करना तथा शंकर

में बाबुसों के चरित्र को ध्वनित करना-जिससे छोटे बच्चे बड़ों का अनुकरण करते है जिसका विपरीत परिणाम भी दर्शाया है। रुक्मिण और बाबुसो के अनैतिक सम्बन्धों का परिणाम केंसर तथा उसके भाई नानु पर हुआ जिससे उनकी यौवनावस्था में वे भी अनैतिक सम्बन्ध रखने में न कोई झिझक महसूस करते है न ही सामाजिक रीति मर्यादा। 'अच्छेव' उपन्यास में सभी चरित्रों को,सामाजिक यथार्थ, औद्योगिकरण से आयी विद्रुपताओं में बदलती मनोवृत्तियों को चित्रित किया है। अंचलों के बदलते हुए जनजीवन और उनके जीवन मूल्यों ने मनुष्य जीवन को बहुत अधिक जटिल बना दिया है। बदली हुयी मानसिकता के अनुरुप पात्रों को चित्रित करने के कारण छोटे से छोटा पात्र भी विश्वसनीयता लिये हुए है। प्रसाद गुजीर, मानुयेल ड्रायव्हर, देवकी आदि की चरित्र-सृष्टि भी कथातत्व में अपनी महत्ता बनाये हुए हैं। इन पात्रों को निकालने से उपन्यास की संवेदनशीलता में फर्क आ सकता है। इस प्रकार उन्होंने जो भी प्रमुख चरित्र रचे है, वे अपने आन्तरिक गुणों के कारण स्वतः ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मार्कण्डेय का 'सेमल के फूल' उपन्यास एक रोमांटिक बोध का उपन्यास है जिसमें प्रेम की आदर्शवादी स्थिति की परिकल्पना, विरह में ही आत्मतोष का भाव व्यक्त हुआ है जो एकप्रकार से काल्पनिक चित्रण ही है। उसकी तुलना में पुंडलीक नायक का 'वसंतोत्सव' और 'बांबर' उपन्यास यौन अतृप्ति का उपन्यास है। वासनात्मक सम्बन्ध ही प्रमुख कथ्य है। 'सेमल का फूल' जहाँ आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद का उपन्यास है वहाँ 'वसंतोत्सव' एवं 'बांबर' प्रकृतवाद (Naturalism) भावना के उपन्यास प्रतीत होते हैं।

विवेच्य कथाकार भाषा शैली, उपमान, मुहावरें, लोकोक्ति और लोकगीत के समर्थ प्रयोग कर्ता है। लेकिन उनकी शिल्पगत श्रेष्ठता 'अग्निबीज' और 'अच्छेव' उपन्यास में ही प्रगट हो पायी है।

7.23 परिवेश का अनुवर्ती शिल्प

यह स्वीकृत तथ्य है कि "एक कलाकार अपनी प्रतिबद्धता में अन्तर्वस्तु में क्रांतिकारी समाजवादी हो सकता है, सौन्दर्यशास्त्र के अतिरिक्त हर क्षेत्र में मार्क्सवादी लेनिनवादी हो सकता है और अपने प्रत्येक कलात्मक सृजन को समाजवादी अंतर्वस्तु से सम्पृक्त करने को संकल्पित हो सकता है- फिर भी वह अयथार्थवादी रूप-कला की रचना कर सकता है।"(86)

प्रगतिशील आस्थाओं में विश्वास रखते हुए भी मार्कण्डेय 'सेमल के फूल' में प्लेटोनिक रोमान्स की सृष्टि करते है और उसे आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद की रचना बना देते है। पर यह उनके शौर्य भाव का, युवावस्था का, पारंपारिक

कुलीनता वाद का, गाँव के रिश्ते-नाते का 'परिवेशगत' उपन्यास रहा है। इसी प्रकार पुंडलीक नायक का 'गुणाजी' उपन्यास का पात्र गुणाजी अपनी चरवाहा संस्कृति, गाय-गोरु की देखभाल करनेवाले ग्वालो समाज का प्रतिनिधि पात्र है। इन दोनों उपन्यासों में परिवेश ही कथ्य बन गया है और पात्र उसके गौण रुप में है लेकिन हमारे आम पाठक पात्रों पर ज्यादा ध्यान देते हैं, परिवेश पर कम।

यह तय है कि व्यक्तियों के समुह से समाज निर्मित होता है। समाज के निर्माण में व्यक्तियों के साथ साथ वातावरण भी अनिवार्य तत्व है। बिना परिवेश के समाज संवेदना शून्य हो जायेगा। मनुष्य और उसका जीवनक्रम परिवेश से संचालित होता है। आंचलिक उपन्यासों में भौगोलिक परिवेश अन्य उपन्यासों की तुलना में महत्वपूर्ण होता है। भौगोलिक विशेषतायें मानव जीवन को तथा प्रकारान्तर से समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। आदर्श सक्सेना के विचारानुसार ''जहाँ अन्य प्रकार के उपन्यासों में केवल वातावरण अथवा भौगोलिक एवं सामाजिक के अभौतिक रूप को ही महत्व दिया जाता है वहाँ आंचलिक उपन्यासों में भौतिक तत्व को भी समान महत्व प्राप्त हो जाता है।[87]

इस भौतिक तत्व को महत्व प्राप्त होने से आंचलिक उपन्यासों के शिल्प में नवीनता आयी है। अपने उद्देश्य के अनुसार भौगोलिक वातावरण तथा परिवेश की सृष्टि करने से आंचलिक उपन्यास ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से अलग अपनी पहचान कायम कर सके हैं।

आंचलिक उपन्यासों का पूर्ण बोध उसके परिवेश के परिचय से ही होता है। किसी भी घटना का घटनास्थल होता है। विना स्थान के कोई घटना घट नहीं सकती अतः प्रामाणिक रचना के लिए स्थान या परिवेश महत्वपूर्ण हो जाता है। इस सम्बन्ध ने डॉ. त्रिभुवन सिंह का मत भी विचारणीय है- ''जिस प्रकार प्राण को आस्तिक प्रदान करने के लिए शरीर की रचना होती है जिनमें न जाने कितने विधायक तत्व समन्वित होते हैं... घटनाओं, पात्रों और उनके कार्य कलापों को विश्वसनीयता एवं स्वाभाविकता प्रदान करने का कार्य उपन्यासों में देश-काल और वातावरण के द्वारा ही सम्भव हो पाता है।''[88]

देश-काल और वातावरण का सृजन अंचल के रीतिरिवाज पर्व-त्यौहार, मान्यताएँ, आदि द्वारा किया जाता है। मार्कण्डेय तथा पुंडलीक नायक ने अपने विभिन्न उपन्यासों में परिवेश के बहुआयामी स्वरुप को अनुभव, प्रामाणिकता के साथ चित्रित करके सजीव बना दिया है। रामपुर-सेतपुर तथा कोळंब का परिवेश जिससे दोनों लेखक जुड़े हुये है अर्थात् वे उसी मिट्टी के साथ पले है उस अंचल के हर एक परिवर्तन से वाकिफ हैं। खेत-खलिहानों, पहाड़-पर्वत की श्रेणियों तथा बाग-बगीचों आदि से उनका घनिष्ट संबंध रहा है। उस गाँव के प्रति नेह-छोह,

धरती की छुअन संवेदनाओं-भावनाओं से आजीवन जुड़े रहे हैं। उसी को उन्होंने 'अग्निबीज' तथा 'अच्छेव' में चित्रित किया है। मार्कण्डेय के कथासाहित्य में प्राप्त भौगोलिक परिवेश की चर्चा विगत अध्याय में की गयी है तथा पुंडलीक नायक के आंचलिक परिदृश्य तथा उसके भौगोलिक प्रवृत्ति का अध्ययन भी पंचम अध्याय में किया जा चुका है।

जीवन सम्बन्धी विचारधारा ही किसी कृति को श्रेष्ठ या निकृष्ट बनाती है। हवा में महल खड़ा करने के बजाय किसी ठोस विचारधारा पर आंचलिक उपन्यास टिका रहता है। 'आंचलिक उपन्यास का लक्ष्य सम्पूर्ण अंचल के जीवन की विशिष्टता को स्पष्ट करना होता है। अत: उपन्यासकार की कथा आंचलिक जीवन की समस्याओं की कथा होती है और उसके पात्र विशिष्ट प्रकृति के होते हैं। इन्हीं के माध्यम से उपन्यासकार जीवन एवं जगत् संबंधी अपने विचारों को स्पष्ट करता है।''(89)

विचार सरणियों के प्रति लेखक की प्रतिबद्धता रहती है, युगीन परिस्थितियों से ही विचारसरणी पनपती है। क्योंकि कोई भी रचनाकार अपने युगबोध से विलग होकर यशस्वी नहीं बन सकता है। विचारप्रणालियों का प्रभाव उनके साहित्य पर अवश्यम्भावी होता है। देश में चल रही हलचलों से बिना प्रभावित हुये कोई भी लेखक साहित्यसृष्टि नहीं कर पाता।

मार्कण्डेय ने यथार्थवादी अभिरुचि से समाज और मनुष्य को चित्रित किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में समाज के बदलते रूपों को पूरे तेवर के साथ अभिव्यक्त किया है। शिवकुमार मिश्र का कथन भी है कि ''वस्तुत: मार्कण्डेय में यथार्थ का एक समग्र तथा संश्लिष्ट बोध है। उनमें भरपूर मानवीय संवेदना के साथ-साथ वस्तुगत यथार्थ को ग्रहण करते है और उसे अपनी सर्जना में बिना किसी आवेश या उतावली के निहायत प्रामाणिक ढंग से चित्रित कर सकने का संयम इनमें है। अपने मानवीय सरोकारों को मनुष्य के हित में कला के संपूर्ण तकाजे के साथ एक निष्कर्षात्मक परिणति तक ले जाने का शऊर भी उनमें है और यह कार्य एक सच्चे यथार्थवादी रचनाकार की तरह उनके यहाँ अधिकांशत: व्यंजना के धरातल पर संपन्न हुआ है।''(90)

मार्कण्डेय के कथासाहित्य में अभिव्यक्त प्रगतिशील विचारधारा दुनिया को जानने-समझने की दृष्टि अपने पाठक वर्ग को देती है। आचंलिक कथाकार के रूप में भी वे समस्त अंचल का विविधांगी दर्शन करवाते हैं तथा उस रचना संसार में,गहराई में गोता लगाने के लिए भी बाध्य करते हैं। ताँकि पाठक वर्ग उस गोताखोर की तरह मोती की आशा से अन्य सांसारिक मुश्किलों का सामना करने हेतु तैयार रहने के लिए बाध्य हो सके। स्वयं मार्कण्डेय भी ''कोई उलझन या भटकाव उत्पन्न नहीं करते इसका प्रधान कारण यही है कि मार्कण्डेय ने रचना

या विचारधारा के अंत:संबंधों का अध्ययन किताबी स्तर पर नहीं वरन् ठेठ जिंदगी के भीतर धंसकर किया है। जिंदगी पर, विचारधारा पर और दोनों से रूप ग्रहण कर सामने आती हुई रचना पर उनकी पकड़ कुछेक अपवादों को छोड़कर एक लंबे समय को तय करनेवाली रचनाशीलता के संदर्भ में जो स्वाभाविक भी है, इतनी मजबूत है कि विचलन का सवाल ही नहीं उठता।''(91)

उनकी विचारधारा पर गांधीवाद का प्रभाव पाया जाता है लेकिन उसकी निस्सारता भी व्यक्त करने में उतने ही सफल रचनाकार है। सारांशत: कह सकते है कि मार्कण्डेय मार्क्सवादी विचारों के प्रेरक- परंपरागत मान्यताओं के प्रति असहमति परक दृष्टि, राजनीतिक धरातल पर पूँजीवादी व्यवस्था की समाप्ति की चाह, तथा वर्गहीन समाज की स्थापना के प्रेषित है। इसी दृष्टि से 'अग्निबीज' उपन्यास में अंचल विशेष के अन्तर्गत व्याप्त विषमताओं को समाप्त करने हेतु विविध प्रयास करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

पुंडलीक नायक की विचारधारा भी प्रकारान्तर से महात्मा गांधी, कार्ल मार्क्स, काकासाहेब कालेलकर आदि से जरुर प्रभावित रही है। उनका साहित्य आत्मानुभव और यथार्थबोध से प्रेरित है। जन्म से ही संवेदनशील होने के कारण गाँवो की संस्कृति को उन्होंने कथा का आधार बनाया है। धूल-धूसरित, निम्नवर्ग के पिछड़े लोग, अनचीन्हें गाँवों की त्रासद कथाओं को उन्होंने समग्रता से चित्रित किया, जिसमें मानवतावाद को, (मनुष्य को जीवन का सबसे बड़ा सत्य मानकर चलना)अपना रुढ़ियों के प्रति आक्रोश तथा समाजवादी व्यवस्था के प्रति रुझान आदि को प्रमुखत: साहित्य में दर्शाया है। पुण्डलीक नायक की सोच ग्रामीणों की शोषित एवं असहाय जिंदगी से जुड़ी है। शोषण का अन्त कोई व्यवस्था या शक्ति नहीं हो सकती वहाँ स्वयं लोगों को विरोध करना पड़ेगा। विजय के माध्यम से 'जैत' कहानी में इसी स्वर को फूट पड़ता दिखाई देता है लेकिन व्यवस्था के सामने अपनी आर्थिक विवशता में सिर झुकाना पड़ता है। 'अच्छेव' में 'आबू' के माध्यम से शिक्षित समाज से विरोध की ताकत एवं सुधार की प्रवृत्ति जगाने की चाहत वे रखते हैं।

सारांशत: पुंडलीक नायक इसप्रकार गाँव के यथार्थ से रुबरु होकर अपनी वैयक्तिक संवेदनाओं एवं वैचारिकता से आंचलिक जीवन का पर्दा फाश करते हैं। कोई काल्पनिक आशावादी दृष्टि न देकर वे यथार्थ स्तर पर चेतना जगाने का कार्य तो करते है जिससे पाठक उन स्थितियों पर सोचने के लिए विवश हो जाता है और परिवर्तन का भी चेतना पथ को अख्तियार करता है।

मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक की कहानियों के मूल में मनुष्य और उसका यथार्थ विद्यमान है। उसकी विविध समस्याओं का यथार्थ चित्रण दोनों की

कहानियों में हुआ है। जौनपुर की धरती की वास्तविकता तथा गोवाभूमि की यथार्थ स्थितियों का मूल्यांकन कहानियों द्वारा हुआ है। कहानी शिल्प द्वारा भी लेखक द्वय वस्तुगत एवं रुपगत वर्णन करते हैं। किसी चरित्र की गहराई कहानी में उतनी सम्भव नहीं है फिर भी 'गुलरा के बाबा', 'शवसाधना' द्वारा गुलरा के बाबा का चरित्र मार्कण्डेय के बाबा की याद दिलाता है। तथा 'शवसाधना' में ढोंगी साधु की करतुतों का पर्दाफाश किया है। पुंडलीक नायक की 'माड़' कहानी 'साळू' के चरित्र 'पाज्ज' की विठाबाय, 'भोंवर' में अनिल की मानसिकता यह थोडी ऐसी कहानियाँ है जिसमें ग्रामांचल की हर एक धड़कन, बदलती हुयी नैतिकता, मानसिक द्वन्द्व आदि को व्यक्त करती है।

दोनों की कहानियों में लोकजीवन की रुढ़ि, श्रद्धाओं का चित्रण समग्र रुप से हुआ है, मार्कण्डेय की 'नीम की टहनी', 'शवसाधना' पुंडलीक नायक की 'अग्निदिव्य', 'कासय', 'खळ', कहानियाँ अंधविश्वासों और रुढ़ियों के साथ सामाजिक रुढ़ियों पर प्रहार करने हेतु चित्रित हुई है।

अत: संपूर्ण कथासाहित्य में अंचल की छबि प्रस्तुत करने हेतु शिल्प का महत्वपूर्ण योगदान है यह निश्चितरुप से कहा जा सकता है। नगीना जैन के अनुसार **''शिल्प के द्वारा ही उपन्यासकार अपनी कथावस्तु का गठन चरित्रांकन सम्वाद, परियोजना, वातावरण, रुप नियोजन, विचार का संचालन भाषा और शैली का प्रयोग करता है अत: शिल्प कौशल उपन्यास की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।''**

7.3 बिंब एवं प्रतीक विधान

आधुनिक कथा साहित्य में बिम्बविधान का पर्याप्त रुप से विचार हुआ है। बिम्ब की अनेक व्याख्याये की जाती है- उनमें कतिपय व्याख्याओं पर विचार करना प्रासंगिक ही होगा। यथा सी. डे. लेविस जहाँ बिम्ब को एक प्रकार का शब्द चित्र मानते है,[92] टी. एस. हुल्में वहाँ बिम्ब को वस्तुओं के आन्तरिक सादृश्य का प्रत्यक्षीकरण मानते है।[93] सुसान के लैंगर के विचारानुसार ''जहाँ बिम्ब ऐन्द्रिय माध्यम के द्वारा आध्यात्मिक अथवा तार्किक सत्यों तक पहुँचने का एक मार्ग होता है।''[94] वहाँ जार्ज वैली के अनुसार ''बिम्ब एक अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्रचना होता है।''[95] जब कि एलेनटेट बिम्ब को दो विरोधी संवेदनाओं अथवा अनुभूतियों के आन्तरिक तनाव-टेन्शन रुप में स्वीकारते हैं।[96] परन्तु प्रस्तुत विवेचन के संदर्भ में कोलरिज के कल्पना-सिद्धान्त पर विचार करते हुए आई. ए. रिचर्डस ने बिम्ब की परिभाषा निर्धारित की है ''बिम्ब एक दृश्य

चित्र, संवेदना की एक अनुकृति, एक विचार एक मानसिक घटना, एक अलंकार अथवा दो भिन्न अनुभूतियों के तनाव से बनी एक भाव स्थिति कुछ भी हो सकता है।''(97)

बिम्ब किसी अप्रस्तुत वस्तु का मानसिक या काल्पनिक रुप है। बिम्बों द्वारा लेखक किसी वस्तु, घटना, व्यापार गुण, विशेषता, विचार आदि साकार तथा निराकार पदार्थों और मानसिक क्रियाओं को इन्द्रिय ग्राह्य या प्रत्यक्ष बनाता है। काव्य में अप्रस्तुत वस्तु के मानसिक या काल्पनिक रूप को बिम्ब कहते हैं उसी प्रकार गद्य में भी मानसपटल पर निश्चित आकार न बनाने वाले भाव या विचार को किसी वस्तु अथवा गोचर रूप से संप्रेषणीय बनाया जाता है। अर्थ को स्पष्ट करना, भाव को संप्रेषित करना, वस्तु या घटना को प्रत्यक्ष कराना, रूप, सौंदर्य या गुण को हृदयंगम बनाना आदि व्यापार भी बिंबविधान से सिद्ध होते हैं। आंचलिक कथासाहित्य में भी अंचल को प्रत्यक्ष कराने हेतु लेखक द्वय ने अनेक बिम्ब रचे हैं। उदाहरण स्वरुप मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' उपन्यास के शीर्षक में ही बिम्ब पाया जाता है । प्रसंगवश लड़की को विदा करना भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। माँ-बाप के लिए लड़की परायी थाती है, वे उसे पाल-पोस कर बड़ा करते है लेकिन एक दिन उसको वह घर त्यागना पड़ता है जिसे सुंदर बिम्ब मे रुपायित किया है- ''आँगन के पुष्प बिरवे की तरह शोभाशील होने पर भी पुष्पित होते हैं। वह उस सुगन्ध की भाँति हो जाती है जो एक न एक दिन पवन वेग से उड़कर कहाँ की कहाँ जा पड़ती है।''(98) श्यामा को विदा करना माँ-पिताजी के लिए कष्टकर प्रतीत होता है।

बिम्बयोजना में सबसे प्रभावी कार्यवस्तु या घटना को प्रत्यक्ष कराता है। परानपुर में जाड़ा बढ़ गया है सुबह की ओंस में पाँव लथपथ हो रहे हैं। इस अप्रत्यक्ष जाड़े को प्रत्यक्ष कराने हेतु मार्कण्डेय ने इस प्रकार बिंब ... परक रचना की है–''उनके पाँव ओस में लथपथ हो रहे थे और सर्दी असंख्य चीटियों की तरह काट रही थी।''(99)

बिम्बविधान से प्रमुखत: अंचलो की अप्रत्यक्ष अनुभूति को चित्रित किया जाता है। श्यामा एवं मुराद में प्यार का हल्का सा रंग उभर कर आया है, दोनों एक-दूसरे से अंचल की मानसिकता, जाति-पाँति का भेदभाव, बड़े-छोटे का तनाव आदि से भावनायें व्यक्त नहीं कर पाते। लेकिन जब भी मुराद के मन को यह प्रेमभावना स्पर्श करती है 'फफाई हुई बजमा के चाँदनी-सिक्त जल-विस्तार' के बिम्ब को आँखों के समक्ष उभरते दिखाया गया है। दोनों महसूस कर रहे हैं कि यह प्रेमभावना उनके अन्तर्मन में जन्म ले चुकी है।

गोवा के अधिकांश क्षेत्र व अंचल अब भी आधुनिकता की रोशनी से

परे है, जहाँ का परिवेश कृषिप्रधान है। यथार्थ चित्रण और विश्वसनीय पात्रों की रचना में भाषा-शैली तथा उसके उपादान अंचल को 'समग्रता' में उभारने के लिए सहायक उपादान होते हैं। बिम्बों के रुपायन से पुंडलीक नायक भावों के साथ-साथ चरित्रों का उद्‌घाटन भी करते है। 'भाग्योदय' नामक कहानी में धर्मा और उसकी पत्नी सरकारी विकास की योजन के हकदार बनते है। उनके घर में मुफ्त में बिजली जलाने हेतु मंत्रीगण घर में प्रवेश करते है तब उनकी अवस्था डरे,सहमे हुये पशुपंछियों से अलग नहीं है। नायक ने इसप्रकार व्यक्त किया है-''धर्मा आनी ताची बायल हांत पांय कांबरुन कडेन उबी आशिल्ली तशीच उल्लीं कुपांच्या गडगडान कांचवेल्ली कोंबयेची पिलां कशी''(100) जिसका अनुवाद इस प्रकार है- ''धर्मा और उसकी पत्नी हाथ पांव बांधे वैसे ही खड़े रहे जैसे बादलों की गड़गड़ाहट से घबराये मुर्गी के चूजें । यहाँ ग्राम्यजनों की विवशता का कारुणिक चित्र उपलब्ध होता है।

भिवा की व्यक्तिरेखा को साकार करने हेतु शीशम के पेड़ और उसके रूप,रंग का बिम्ब प्रस्तुत किया है

''भिवा एक शेतकार,.... शिशाच्या लाकडाची काळसाण तशीच घटसाण, झाडाचे गुंज कशे सुटिल्ले पोट''(101) जिसका हिन्दी में भावानुवाद है ''भिवा एक खेतिहर, शीशम की लकड़ी का कालापन, वैसा ही शक्तिमान वृक्ष की गाँठ जैसा पेट।''

बिम्बयोजना का यह रूप किसी चरित्र के व्यक्तित्व का प्रत्यक्षीकरण कराता है। इन बिम्बों की प्रस्तुति में अनुभूति की तीव्रता, सघनता और भाषा की सृजनशीलता का उत्कृष्ट रूप भी झलकता है।

7.32 प्रतीक

साहित्य क्षेत्र में किसी भाव या विचार का प्रतिनिधित्व करनेवाले शब्द को 'प्रतीक' कहते है। प्रतीक के बारे में कई परिभाषाए उपलब्ध है। प्रतीक का आशय स्पष्ट करते हुए रेनेवेलेक और आस्टिन वेरेन लिखते हैं कि 'प्रतीक एक ऐसी वस्तु है जो किसी वस्तु की ओर संकेत करती है, पर एक प्रस्तुतीकरण के रूप में उसके अपने स्वरूप की ओर ध्यान देने की अपेक्षा होती है।'(102)

हरद्वारीलाल शर्मा के अनुसार 'प्रतीक ही अमूर्त को मूर्त रूप प्रदान करता है। प्रतीक के माध्यम से ही रंगरेखा रहित अव्यक्त वेदना या मानुष 'अर्थ' या आत्मलोक आकार पाता है, व्यक्त होता है'' (103) प्रतीक के माध्यम से ही रचनाकार अपनी भावनाओं को अर्थ संगुफन भाव से व्यक्त करता है। बच्चन सिंह ने प्रतीक शब्द को इस प्रकार परिभाषित करते हुए कहा है कि''जब किसी वस्तु

का कोई एक भाग पहले गोचर हो फिर आगे उस वस्तु का ज्ञान हो तब उस भाग को 'प्रतीक' कहते है। (104)

भगीरथ मिश्र के अनुसार" अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत भाव, विचार, क्रिया-कलाप देश,जाति,संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है तब वह प्रतीक कहलाता है।"(105) बिम्ब एवं प्रतीक में निकटता है। वैसे डॉ. रोहिताश्व के अनुसार प्रतीक के संबंध मे ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि प्रतीक बिम्ब का सर्वाधिक निकटवर्ती शब्द है। बिम्बों से ही प्रतीक का आविर्भाव सम्भव माना गया है। वस्तुत: प्रतीक अपने मूल में बिम्ब होता है, जो कल्पना की मूर्तता में, बार-बार प्रयुक्त होकर निश्चित अर्थ का वाहक बनने पर प्रतीक रूप में निर्मित हो जाता है।" (106)

आंचलिक कथा साहित्य में मार्कण्डेय ने ज्यादातर प्रतीकात्मक लेखन नहीं किया है। 'अग्निबीज' में सीता, द्रौपदी, रामकृष्ण, अर्जुन, भीष्म(पृ. 107) लक्ष्मण रेखा आदि परम्परागत प्रतीकों को युग की आवश्यकतानुसार उपयोग किया गया है। समाज में निम्नजाति की छबिया लापता होती है, हिरनी की हत्या आदि समाज के सत्य है। उस समाज में भारतीय संस्कृति की महान नारी प्रतीकों को उभारकर परिवर्तन लाने की सम्भावनायें शेष नहीं है। कन्या के जन्म से ही जहाँ कुल में खोट आ जाती है उस परिवेश में इन की महत्ता के गुण गाकर कोई फायदा नहीं है। मुराद द्वारा बुनी हुयी रेशम की लाल साडी, उसके बुनते वक्त मुराद का अक्सर भटक जाना तथा रेशमी फूलों को गलत बुनना आदि से मुराद की श्यामा के प्रति भावनाओं में प्रतीकात्मकता व्यक्त होती हैं।

'हंसा जाई अकेला' में रामलीला का विखंडन, राम एवं लक्ष्मण को रावण द्वारा मार गिराना, सामजिक अन्याय एवं प्रतिक्रिया को प्रतिकात्मक रुप से व्यक्त करता है। इसी कहानी में हंसा और सुशीला के प्रेमसम्बध प्रकारान्तर से मेनका एवं विश्वामित्र के प्रतीक से व्यक्त होते है - "मेनका के कंधे पर विश्वामित्र के उलम्ब बाहु"(107)

पुंडलीक नायक ने भी विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग साहित्य को संम्प्रेषणीय बनाने के लिए किया है। उनकी 'माड' कहानी पूर्णत: प्रतीकात्मक है जिसमें नारियल के पेड़ से खुशाली रामा की तुलना की है लेखक ने प्रतीकात्मक रूप से खनिज व्यवसाय के फलस्वरूप नारियल वृक्ष में आया हुआ परिवर्तन, फलोत्पादन करने में अक्षमता, उसका सूखना इन सबका खुशाली से तादात्म स्थापित करते हुए अभिव्यक्त किया है- " माड ऊंच उबार तसोच तो तेखोडयों माडाचे फाटिचे इंद्रधनूं जाला तसोच पावलाची किरंगळी आनी ताळयेचें तेमूक धरून चवळेची सांग कसो

काळान ताका भेंडान वागायला. माडाच्या चुडटेन-चुडटेचे व्हीर मेजूंक येतात तश्यो ताच्यो कावुलकाटको बोरी मेजूंक मेळटात.'' (108) जिसका हिन्दी भावानुवाद है- नारियल का पेड़ जैसे ऊँचा है वैसे ही खुशाली रामा लम्बा है। दोनों कमर में झुक गये हैं। नारियल जैसा ही वह दुबला-पतला हो गया है। साळू नारियल की छाया न मिलने पर 'मेणकुंबयो' (एक छायादार वृक्ष) की छाया में आराम करती है मतलब अपने पति खुशाली रामा को शारीरिक सुख की प्राप्ति न होने पर ट्रक ड्रायव्हर के संग यौन सम्बन्ध स्थापित करती है। यहाँ नारियल एवं मेणकुबयो की प्रतीकात्मकता से आज की नारी का यौनसुख प्राप्ति की ओर उठाया गया कदम है।

'अच्छेव' उपन्यास में 'सांतोण' (एक पेड़) कालपुरुष को प्रतीक बनकर उभारा है।(110) पीपल वृक्ष का जलना अशुभ का सूचक है, यहाँ वासना के प्रतीक रुप में पीपल का जलना मान लिया है। मछुआरे को कासय (बडा कछुआ) का मिलना शुभ है उसकी पूजा कर उसे फिरसे पानी में छोडना उनकी परंपरा रही थी। उनके सुख-समृद्धी की निशानी थी, लेकिन आर्थिक परेशानियों से ग्रस्त रामा 'कासय' का बेचकर प्रादेशिकता की सीमा से हटकर वैश्विक धरातल अपनाता है। 'पाज्ञ'कहानी जीवन में आनेवाले चढाव उतार में एक सासारिक नारी के चारित्रिक हनन का प्रतीक अभिव्यक्त हुआ है। ऐसे अनेक प्रतीक पुंडलीक नायक के आंचलिक कथासाहित्य को प्रभावशाली बनाते हैं। उनके कथा साहित्य में 'काला बिलाव', 'बिल्ली', 'डंठल, 'बळार'(बगुला), 'गाय', 'गधा' आदि प्रतीकों की भरमार है।

पुंडलीक नायक की 'काणी एका माजराची' प्रतीकात्मक कहानी है। जिसमें बिल्ली एवं रघु की भौजाई की प्रतीकात्मकता व्यक्त होती है। बिल्ली एक ऐसा जीवमात्र है जो रघु की भौजाई की ओर संकेत करता है। बिल्ली के बच्चे को जैसे बिलॉव मार डालता है; वैसे ही विधवा भौजाई रघु से तीन बार गर्भ धारण करती है और नष्ट करती है। जैसे बिलाँव बिल्ली के पिल्ले का खुनी है वैसे ही उसका जेठ भी खुनी है। बिलाँव उसको भोगने के बाद पलायन करता है और उसके पिल्ले होने बाद मार डालता है। रघु भौजाई के साथ यौन संबंध स्थापित कर उसको गर्भ को मार डालने की दवाई पिलाता है- ''आनी मागीर आपूण फुज्ञो काडतलो. ताकून भोगून नामा निराळो. माजर मात अशें शक्त हुलपिल्या सारके; बावून पार्ते जावन पडिल्ल्या दसणी फुलासारके'' जिसका हिन्दी में अनुवाद है- बिलॉव बिल्ली को भोगकर भाग जाता था, भोग के बाद विरक्त, लेकिन बिल्ली शक्तिहीन, गलित-गात्र पड़ी रहती थी, जैसे बासी जास्मिन फुल की तरह।'' विगत विवेचन स्पष्ट होता है कि बिल्ली और रघु की भौजाई में समानता है। रघु की भौजाई भी शक्तिहीन, संवेदनहीन बन चुकी है जो शक्तिशाली रघु का विरोध नहीं कर पाती।

पुंडलीक नायक ने ग्राम्य जीवन का देखा ही नहीं भोगा भी है और अभिप्रेत वस्तु, भाव या अर्थ का संकेत करने के लिए वे उपयुक्त आधार के प्रतीकों का चुनाव करते हैं।

मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक दोनों के लेखन में प्रतीकात्मकता का उपयोग परिवेशानुसार हुआ है। मार्कण्डेय के कथा साहित्य में परम्परागत प्रतीकों का जहाँ प्रयोग हुआ है वहाँ पुंडलीक नायक के कथा साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक अपने अंचल के भौगोलिक तथा जीवन विषयक परिवेश के हैं। परिचायक प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग भी नायक ने नये दृष्टिकोण से किया है। सांतोण, पीपल वृक्ष, पाज्ञ आदि प्रतीक नयी संभावनाओं को जन्म दे रहे है। सांतोण पेड़ होते हुये भी मानवीय भावनायें एवं सन्दर्भउससे जुड़े हुये है। इसमें 'आबू' के निधन कर उसके पत्तों का झरना जैसे दु:ख से परिपूर्ण आँसुओं का झरना है, 'वसंतोत्सव' उपन्यास में पीपल का जलना भी एक तरह से भोगविलासी पुरुष के नाश का प्रतीक है।

पुंडलीक नायक के प्रतीकों में सांकेतिक रूप उभरकर आया है। वे सूक्ष्म से सूक्ष्म मानवीय अभिव्यक्ति को 'बिलाव', 'गाय' आदि प्रतीकों से सूचित करते हैं जिसका प्रमाण'बुकलो'(बिलाब) और 'बळजबरी' कहानियाँ है ।

o-o-o-o-o

सन्दर्भ सूची : सप्तम अध्याय

1.	विश्वनाथ	:	साहित्य दर्पण	पृ.19
2.	प्रेमस्वरुप गुप्त	:	रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन	पृ.34
3.	गुलाबराय	:	सिद्धान्त और अध्ययन	पृ.46
4.	आर्कीबाल्ड मौक्लीश	:	पोयट्री एण्ड एक्सपीरियन्स	पृ.231
5.	रिचर्डस्	:	प्रिंसिपल ऑफ लिट्रेरी क्रिटिसिज्म	पृ.267
6.	हरदयाल	:	आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प	पृ.4
7.	बच्चन सिंह	:	आधुनिक आलोचना के बीज शब्द	पृ.107
8.	राल्फ फॉक्स	:	उपन्यास और लोकजीवन	पृ.7
9.	रोहिताश्व	:	समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.262
10.	नगीन जैन	:	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास	पृ.83
11.	दंगल झाल्टे	:	नये उपन्यासों में नये प्रयोग	पृ.38
12.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि	पृ.261
13.	रामदरश मिश्र	:	हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा	पृ.228
14.	नगीना जैन	:	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास	पृ.46
15.	जवाहर सिंह	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्पविधि	पृ.216
16.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.122
17.	वही	:	वही	पृ.32
18.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि	पृ.262
19.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.153
20.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.428
21.	वही	:	वही	पृ.477
22.	वही	:	वही	पृ.137
23.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.11,14, 20,45
24.	वही	:	वही	पृ.21

25.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.112
26.	वही	:	वही	पृ.112
27.	वही	:	वही	पृ.142
28.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.138
29.	वही	:	वही	पृ.1304
30.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.182
31.	वही	:	वही	पृ.169
32.	वही	:	वही	पृ.170
33.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.47
34.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि	पृ.335
35.	रोहिताश्व	:	समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.252
36.	धीरेंद्र वर्मा	:	हिन्दी साहितय कोश भाग 1	पृ.681
37.	सीताराम चतुर्वेदी	:	हिन्दी साहित्य सर्वस्व	पृ.510
38.	रेणु शाह	:	फणीश्वरनाथ रेणु का कथाशिल्प	पृ.15
39.	मरे मिडल्टन	:	द प्राब्लेम ऑफ स्टाइल	पृ.71
40.	रेणु शाह	:	फणीश्वरनाथ रेणु का कथाशिल्प	पृ.15
41.	नगीना जैन	:	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास	पृ.50
42.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.108
43.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.166
44.	वही	:	वही	पृ.28
45.	वही	:	वही	पृ.28
46.	वही	:	वही	पृ.37
47.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि	पृ.308
48.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.112
49.	वही	:	वही	पृ.17
50.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.73
51.	दंगल झाल्टे	:	उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान	पृ.85
52.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.103
53.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.12

54.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.12
55.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.9
56.	वही	:	वही	पृ.28
57.	वही	:	वही	पृ.39
58.	वही	:	वही	पृ.99
59.	वही	:	वही	पृ.99
60.	पुंडलीक नायक	:	अच्छेव	पृ.20
61.	वही	:	वही	पृ.25
62.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.151
63.	शोभा वेरेकर	:	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास	पृ.18
64.	रोहिताश्व	:	समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.260
65.	कैलाश वाजपेयी	:	आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प	पृ.19
66.	रेणु शाह	:	फणीश्वर नाथ रेणु का कथा शिल्प	पृ.4-5
67.	उषा सक्सेना	:	हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास	पृ.112
68.	रोहिताश्व	:	समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य	पृ.254
69.	शोभा वेरेकर	:	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास	पृ.37
70.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि	पृ.128
71.	दंगल झाल्टे	:	नये उपन्यास : नयी प्रणालियाँ	पृ.33
72.	रामदरश मिश्र	:	हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा	पृ.190
73.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि	पृ.129
74.	वही	:	वही	पृ.173
75.	रेणु शाह	:	फणीश्वरनाथ रेणु का कथा-शिल्प	पृ.46
76.	देवेश ठाकुर	:	मैला आंचल : रचना प्रक्रिया	पृ.105
77.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.211
78.	वही	:	वही	पृ.212

79.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.224
80.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.92
81.	वही	:	वही	पृ.10
82.	वही	:	वही	पृ.98-99
83.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.160
84.	वही	:	वही	पृ.185
85.	वही	:	वही	पृ.38
86.	आनन्द कुशवाहा	:	सोशलिस्ट आर्टिस्ट लीग, बुलेटिन	पृ.262
87.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि	पृ.204
88.	त्रिभुवन सिंह	:	हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग	पृ.286
89.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और शिल्पविधि	पृ.238
90.	शिवकुमार मिश्र	:	दर्शन साहित्य और समाज	पृ.183
91.	वही	:	वही	पृ.183
92.	सी डे लेविस	:	दी पोएटिक इमेज	पृ.19
93.	टी. एस. हुल्मे	:	स्पेक्युलेशन	पृ.281
94.	सुझान के लैंगर	:	प्राब्लेम्स ऑफ आर्ट	पृ.132
95.	जार्ज वैली	:	पोएटिक प्रोसेस	पृ.83
96.	एलेन टेट	:	सेलेक्टेड एक्सेस	पृ.83
97.	आई.ए. रिचर्डस	:	कालरिज आन इमेजिनेशन	पृ.34
98.	मार्कण्डेय	:	अग्निबीज	पृ.128
99.	वही	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.485
100.	पुंडलीक नायक	:	अर्दूक	पृ.5
101.	पुंडलीक नायक	:	मुठय	पृ.16
102.	रेने वेलेक एवं आस्टिन वारेन (अनु. पालीवाल)	:	साहित्य-सिद्धांत	पृ.249
103.	हरद्वारीलाल शर्मा	:	साहित्य और कला	पृ.37
104.	बच्चन सिंह	:	आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द	पृ.61-62
105.	भागीरथ मिश्र	:	काव्यशास्त्र	पृ.263

106.	रोहिताश्व	:	समकालीन कविता मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.300
107.	मार्कण्डेय	:	मार्कण्डेय की कहानियाँ	पृ.281
108.	पुंडलीक नायक	:	मुठय	पृ.9
109.	पुंडलीक नायक	:	मुठय	पृ.28
110.	राजू नायक (सं.)	:	वेंचीक पुंडलीक	पृ.211

-o-o-o-

उपसंहार

आंचलिक कथा साहित्य में विवेच्य लेखकों का योगदान

हिन्दी और कोंकणी कथासाहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि कथासाहित्य की एक लम्बी, सशक्त परंपरा है। लगभग सौ वर्षो से सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आंचलिक, महानगरीय कथारचनायें हिन्दी में उपलब्ध रही हैं। विगत् पाच-छः दशकों से आंचलिक कथासाहित्य अस्तित्व में आया है जिसकी सशक्त परंपरा नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, उदयशंकर भट्ट, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, शैलेश मटियानी, शिवमूर्ति और मैत्रेयी पुष्पा आदि ने निर्मित की है।

आंचलिक कथासाहित्य में रेणु, मार्कण्डेय और शिवप्रसाद सिंह की पहचान लोकजीवन, लोकसंस्कृति और जिजीविषा के संदर्भ में रेखांकित होती रही है। रेणु और शिवप्रसाद सिंह पर कई सारे आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हुये लेकिन मार्कण्डेय के कथासाहित्य की चर्चा कम हुई है। प्रस्तुत शोधप्रबंध ज्ञान की विलुप्त साधना को रेखांकित करने का एक सारस्वत प्रयास है। मार्कण्डेय के उपन्यास 'सेमल के फूल' और 'अग्निबीज' रोमांटिक और यथार्थवादी धारणाओं को पेश करते हैं।

मार्कण्डेय के विभिन्न कहानी संग्रह -'पानफुल', 'भूदान', 'माही',

'सहज और शुभ', 'बीच के लोग' आदि अपनी यथार्थवादी अभिरूचि और लोकसंस्कृति की पहचान को अभिव्यक्त करते हुये ग्रामीण और शहरी जीवन के परिप्रेक्ष्य को उजागर करते है। रेणु जहाँ बिहार के जनजीवन और लोकसंस्कृति को विभिन्न पात्रों और मन:स्थितियो से रेखांकित करते है, वहाँ मार्कण्डेय मिर्जापुर, इलाहाबाद, गोरखपुर, बालिया और कानपुर आदि क्षेत्रीय जीवन को विभिन्न पात्रों और परिवेश के माध्यम से आम पाठकों को परिचित कराते रहे है। हिन्दी के आंचलिक कथासाहित्य में रेणु, मार्कण्डेय, नागार्जुन और शिवप्रसाद सिंह के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

कोंकणी कथासाहित्य में सावंतवाडी, मँगलौर कारवार और कोंकण -प्रदेश-गोवा के जन जीवन को अभिव्यक्ति मिली है। कोंकणी भाषा साहित्य की एक सुदीर्घ परंपरा रही है जिसके रचनाकार बम्बई-महाराष्ट्र, गोकर्ण, कारवार, कर्नाटक और रत्नागिरि से लेकर सावंतवाडी, पत्रादेवी, बांदा, म्हापसा, पणजी, वास्को, फोंडा, मडगांव आदि क्षेत्रीय अंचलो में सक्रीय रहे हैं। लक्ष्मणराव सरदेसाय, मनोहरराव सरदेसाय, उदय भेंब्रे, जेम्स मोरायस, ओलिविन्यु गोमिश, पुंडलीक नायक, मीना काकोडकर, महाबळेश्वर सैल आदि ने समय-समय पर आंचलिक जन-जीवन और उनके अंत:संघर्ष को अभिव्यक्ति दी है।

विवेच्य तुलनात्मक अध्ययन में मार्कण्डेय उत्तर प्रदेश की लोकसंस्कृति का प्रतिनिधित्व करते है तो पुंडलीक नायक कोंकण-गोवा अंचल की जन-चेतना और लोकेषणा को क्षेत्रीय पात्रों, जात्राओं मेलों, पर्वों और त्यौहारों के माध्यम से रेखांकित करते है। पुंडलीक नायक के कथासाहित्य में उपन्यास और कहानी संग्रह का वैविद्य आम पाठकों को विमुग्ध करता है - 'बांबर', 'अच्छेव', 'वसंतोत्सव आनी दायज', 'गुणाजी' (उपन्यास) और 'पिशान्तर', 'मुठय', 'अईक'(कहानीसंग्रह) अपनी विविध वर्णी रंगछटाओं से भारतीय कथासाहित्य के ओजस्वी और संघर्षशील रुप को पेश करते है। विवेच्य कथाकारों के तुलनात्मक अध्ययन से भारतीय संस्कृति की 'विविधता में एकता', और एकता में विभिन्न लोकोत्सव, लोकजीवन, लोकेषणा के स्वरुप सबंधी विशेषतायें रुपायित होती हैं।

शोध प्रबंध की सीमा में तुलनात्मक अध्ययन के स्वरुप, क्षेत्र एवं संभावित प्रतिमानों का विवेचन किया गया है। आंचलिक कथा साहित्य की परंपरा और विकास की दशा और दिशा को भी स्पष्ट करने का प्रयास रचा गया है। भारतीय जनजीवन के दो विभिन्न भाषा-भाषी रचनाकार मार्कण्डेय एवं पुंडलीक नायक के जीवन को भी आम पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत किया गया है।

मार्कण्डेय के कथासाहित्य में आंचिलक परिवेश एवं लोकजीवन के

विविध परिदृश्यों को दर्शाने के साथ-साथ हमने पुंडलीक नायक के कथा साहित्य में अभिव्यक्त लोकसंस्कृति और लोकजीवन को विवेचित करने का प्रयास किया गया है। विवेच्य कथाकारों के रचनात्मक साहित्य में अभिव्यक्त युगीन परिवेश की समानता और विषमता को भी दर्शाने का प्रयास किया गया है। उत्तरप्रदेश और गोवा की लोकसंस्कृति को 'अग्निबीज' और 'अच्छेव' जैसे उपन्यासों के माध्यम से रेखांकित करने का प्रयास सुधी पाठकों को नवीन रसास्वाद का आधार प्रदान कर सकता है। कहना न होगा कि आंचलिक जनजीवन के संबंध में मार्कण्डेय और पुंडलीक नायक की प्रतिबद्धता मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग के पात्रों के प्रति अनुभव की जा सकती है।

विवेच्य कथाकारों के कथासाहित्य की भाषा शैली एवं शिल्प विधान की चर्चा शोध प्रबंध के अंत में प्रस्तुत की गयी है। उनकी रचनाओं में व्यवहृत बिंब एवं प्रतीक-विधान संबंधी विवेचन भी अपनी सीमा रेखाओं में किया गया है। प्रस्तुत तुलनात्मक अध्ययन संबंधी कार्य अपने स्वरुप क्षेत्र में नवीन सम्भावनाओं का द्वार है, जो भारतीय संस्कृति की विभिन्नता में सांस्कृतिक एकता को रेखांकित करने का सारस्वत सोपान है।

o-o-o-o-o

संदर्भ - ग्रंथ सूची

क्रं	रचनाकार	शीर्षक	प्रकाशक	वर्ष/संस्क.
1.	अना म्हांबरो (सं)	स्वतंत्र गोंयातली कोंकणी कथा	कोंकणी भाषा मंडळ मडगाव, गोंय	1980
2.	अय्यप्पा पणिकर के	स्पॉट लाईट आन कम्परेटिव्ह इंडियन लिटरेचर	कलकत्ता	1992
3.	आदर्श सक्सेना	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधी	सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर	1971
4.	आदित्य प्रसाद त्रिपाठी	औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षाएँ	अनुभव प्रकाशन, कानपुर	1981
5.	आनंद प्रकाश	हिन्दी कहानी की विकास प्रक्रिया	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	1997
6.	आनंद पाटील	तौलानिक साहित्य: नवे सिद्धांत आणि उपयोजन	साकेत प्रकाशन औरंगाबाद	1998
7.	इन्द्रनाथ चौधुरी	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली	1982
8.	इन्द्रनाथ मदान	आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य	राधाकृष्ण प्रकाशन	1978
9.	इन्दिरा जोशी	हिन्दी उपन्यासों में लोकतत्व		
10.	उमा शुक्ल (सं)	साहित्यिक शोध प्रविधि एवं व्याप्ति	अरविंद प्रकाशन	1990
11.	उत्तमभाई पटेल	आंचलिक उपन्यासों में ग्राम्य जीवन	क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स कानपुर	1999

12.	उषा डोंगरा	हिन्दी के आंचलिक का लोकतात्विक विमर्श	अनुभव प्रकाशन	1994
13.	उषा सक्सेना	हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास	शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद	1972
14.	कर्ण सिंह चौहान	समकालीन यथार्थवाद	वितोशा प्रकाशन दिल्ली	1996
15.	कमलेश्वर (सं)	भारतीय शिखर कथा कोश		
16.	कलावती प्रकाश	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का लोकतात्विक अध्ययन	ज्ञानपूर्णा प्रकाशन जयपुर	1990
17.	काल मार्क्स	इकानोमिकल एण्ड फिलासाफिकल मेन्युस्क्रिप्टस		1944
18.	किरण बुडकुले	साहित्य नियाळः अतरंग आनी कायारूपां	ओम श्री दत्त पद्मजा प्रकाशन, काणकोण	1998
19.	कुमार विमल	काव्यानुशीलनः आधुनिक अत्याधुनिक		
20.	कैलास वाजपेयी	आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प	आत्माराम एण्ड सन्स	1963
21.	गोपाल राय	उपन्यास का शिल्प	बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना	1973
22.	गंगा प्रसाद विमल	आधुनिकताः साहित्य के संदर्भ में	दि मैकलिमन कं. ऑफ इंडिया लि., नई दिल्ली	1978
23.	चन्द्रशेखर कर्ण	आंचलिक हिन्दी कहानी	चित्रलेखा प्रकाशन अलाहाबाद	1977
24.	चन्द्रकांत बांदिवडेकर	आधुनिक हिन्दी उपन्यास सृजन और आलोचना	नेशनल प्रकाशन	1996
25.	चन्द्रकान्त बांदिवडेकर	उपन्यासः स्थिति और गति	पूर्वोदय प्रकाशन	1977
26.	जवाहर सिंह	हिन्दी के आंचलिक की शिल्पविधि	नेशनल पब्लि. दिल्ली.	1986

27. जयंती नायक	लोकबिंब	कोंकणी अकादमी, गोंय	1998
28. जयंत कुलकर्णी(सं)	वोवळा	सागरदीप प्रकाशन कारवार	1997
29. जार्ज लुकाच	स्टडीज इन युरोपीयन रियालिज्म	रुपा एण्ड कं कलकत्ता	1987
30. जोसेफ टी. शिपले	डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटररी टर्म्स	रूपा पब्लिकेशन	
31. त्रिभुवन सिंह	हिन्दी उपन्यास: शिल्प और प्रयोग	हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणासी	1973
32. त्रिभुवन सिंह	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	हि. प्र. सं. वा	2022
33. देवीशंकर अवस्थी	नई कहानी और प्रकृति	हि. प्र. सं. वा	
34. देवेन्द्र सत्यार्थी	ब्रह्म पुत्र	एशिया प्रकाशन नई दिल्ली	1956
35. देवेश ठाकुर	मैला आँचल की रचना	वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली	1987
36. दंगल झाल्टे	उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	1987
37. दंगल झाल्टे	नये उपन्यासों में नये प्रयोग	प्रभात प्रकाशन दिल्ली	1994
38. धनंजय वर्मा	आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय	विद्या प्रकाशन मन्दिर	1681
39. धीरेन्द्र वर्मा(सं)	हिन्दी साहित्य कोश	ज्ञानमंडल वाराणसी	संवत् 2020
40. नगेन्द्र	साहित्य का समाज शास्त्र	अक्षर प्रकाशन नई दिल्ली	1976
41. नगेन्द्र	तुलनात्मक अध्ययन	नॅ. प. हा.न.दि.	1985
42. नगीना जैन	आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास	अक्षर प्रकाशन नई दिल्ली	1976
43. नागार्जुन	बलचनमा	किताब महल इलाहाबाद	1956

44.	नागार्जुन	वरूण के बेटे	किताब महल इलाहाबाद	1957
45.	नामवर सिंह	इतिहास और आलोचना	राजकमल प्र.	1978
46.	निर्मल कुमारी	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में प्रगतिशीलता	संजय बुक सेंटर वाराणासी	1982
47.	निरुपमा भट्ट	स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक हिन्दी कहानी	राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली	1992
48.	नेमिचन्द जैन	बदलते परिप्रक्ष्य	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	1968
49.	प्रकाश वाजपेयी	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास	नन्दकिशोर एव संस चौक वाराणासी	1962
50.	प्रियदर्शिनी तडकोडकर	पुंडलीक नारायण नायक साहित्य सूची	केदार प्रकाशन गोंय	1999
51.	पुंडलीक नायक	बांबर	जाग प्रकाशन प्रियोळ, गोंय	1976
52.	पुंडलीक नायक	पिशान्तर	साहित्य प्रकाशन मडगाव	1977
53.	पुंडलीक नायक	मुठय	सेवा समिती प्रकाशन, मडगाव	1977
54.	पुंडलीक नायक	अच्छेव	जाग प्रकाशन प्रियोळ गोंय	1977
55.	पुंडलीक नायक	वसंतोत्सव आनी दायज	अपुरबाय प्रकाशन वळवय, फोंडा, गोय	1985
56.	पुंडलीक नायक	अर्दूक	अपुरबाय प्रकाशन वळवय, फोंडा, गोय	1985
57.	पुंडलीक नायक	गुणाजी	अपुरबाय प्रकाशन वळवय, फोंडा गोंय	1998
58.	पुंडलीक नायक(सं)	समकालीन कोंकणी लघुकथा	नॅशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली	1998
59.	प्रेमचंद	गोदान	लोकभारती प्रकाशन सं इलाहाबाद	2001
60.	प्रेम भट्नागर	हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिवेश	अर्चना प्रकाशन जयपूर	1968

61.	फणीश्वर नाथ रेणु	मैला आंचल	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	1959
62.	फणीश्वर नाथ रेणु	दीर्घतपा	बिहार ग्रंथ कुटीर पटना	1961
63.	बच्चन सिंह	आधुनिक हिन्दी आलोचना के शब्द	राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली	1983
64.	बा. द. सातोस्कर	गोमंतकाची प्रतिमा		प्र.खंड
65.	बंशीधर	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास सिध्दान्त और प्रक्रिया		
66.	भ. ह. राजूरकर(सं)	हिन्दी अनुसंधान का स्वरूप	नेशनल बुक ट्रस्ट दिल्ली	
67.	भगीरथ मिश्र	काव्यशास्त्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन वारणसी	1984
68.	मधुरेश	हिन्दी कहानी: अस्मिता की तलाश	आधार प्रकाशन	1997
69.	मनोहरराय सरदेसाय	हिस्ट्री ऑफ कोंकणी लिटरेचर	साहित्य अकादमी	2000
70.	मरे मिल्टन	द प्राब्लेम ऑफ स्टाईल	ऑक्सफोर्ड युनिव्हर्सिटी,लंदन	1952
71.	महाबळेश्वर सैल	काळी गंगा	राजहंस वितरण पणजी	1996
72.	महेन्द्र चतुर्वेदी	हिन्दी उपन्यास: एक सर्वेक्षण	नैशनल हाऊस दिल्ली	1962
73.	मार्क्स एंगेल्स	कमुनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र	प्रगति प्रकाशन मास्को	1982
74.	मार्कण्डेय	कहानी की बात	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	1984
75.	मार्कण्डेय	सेमल के फूल	नया साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद	1997

76. मार्कण्डेय	अग्निबीज	नया साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद	सं 2000
77. मार्कण्डेय	मार्कण्डेय की कहानियाँ	लो.प्र,इलाहाबाद	2002
78. मृणाल पाण्डे	स्त्री:देह की राजनीति से देश की राजनीति तक	राधाकृष्ण प्रकाशन नयी दिल्ली	1987
79. मृत्युंजय उपाध्याय	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास	चित्रलेखा प्रकाशन इलाहाबाद	1989
80. रघुवीर सिन्हा शकुन्तला सिन्हा	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यों से प्रयाण	दि मैकमिलन नई दिल्ली	1980
81. रमेश कुन्तल मेघ	क्योंकि समय एक शब्द है	लोकभारती इलाहाबाद	1975
82. रवीन्द्र भ्रमर	हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व	भारतीय साहित्य मन्दिर	प्र.स.
83. राजकमल चौधरी	मछली मरी हुई	राजकमल	
84. राजू नायक(सं)	वेंचीक पुंडलीक	को.भा.मं.गोंय	1999
85. रामदरश मिश्र	पानी के प्राचीर	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी	1961
86. रामदरश मिश्र	हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	1968
87. रामदरश मिश्र(सं)	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास	वाणी प्रकाशन दिल्ली	1984
88. रामविलास शर्मा	आस्था और सौंदर्य	किताब महल इलाहाबाद	
89. रामविलास शर्मा	गाँधी आम्बेडकर लोहिया और भारतीय इतिहास कि समस्याए	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	2000
90. राल्फ फॉक्स	उपन्यास और लोकजीवन अनु:नरोत्तम नागर	पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली	1979
91. रेने वेलेक,वारेन ऑस्टीन	थियरी ऑफ लिटरेचर	हार्मन्डस्वर्थ,पेंग्विन	1954
92. रेणू शाह	फणीश्वरनाथ रेणु का कथाशिल्प	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर	1990

93. रोहिताश्व	समकालीन कविता मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	प्रभा प्रकाशन इलाहाबाद	1986
95. रोहिताश्व	मार्क्सवादी सौदर्यशास्त्र की भूमिका	रा. प्र, नई दिल्ली	1994
96. लक्ष्मण दत्त गौतम	आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना		
97. लक्ष्मणराव सरदेसाय	कथाशिल्प	जाग प्रकाशन	1977
98. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	स्वांतत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	1996
99. लालिमा वर्मा	फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों की भाषा का शैली शास्त्रीय अध्ययन	जानकी प्रकाशन पटना	1988
100. विमल नागर	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास सामाजिक एवं सांस्कृतीक संदर्भ	प्रेरणा प्रकाशन मुरादाबाद	1985
101. विवेकी राय	हिन्दी कहानी: समीक्षा और संदर्भ	राजीव प्रकाशन	1985
102. वेदप्रकाश अमिताभ	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	1997
103. शशिभूषण सिंहल	उपन्यास का स्वरुप	कैलास पुस्तक सदन, ग्वालियर	1975
104. शिवकुमार मिश्र	दर्शन साहित्य और समाज	पीपल्स लिटरेसी महिया महल दिल्ली	1981
105. शिवकुमार मिश्र	यथार्थवाद	मैकमिलन, न. दिल्ली	
106. शिवकुमार मिश्र	साहित्य और सामाजिक संदर्भ	कला प्रकाशन दिल्ली	1977
107. शिवप्रसाद सिंह	आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद	न.प.हा.न.दिल्ली	1988
108. शिवप्रसाद सिंह	आधुनिक परिवेश और नवलेखन	संजय बुकसेंटर वाराणासी	1996

109.शैलैश मातियानी	हौलदार	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली	1961
110.शोभा वेरेकर	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास	पीयूष प्रकाशन दिल्ली	2001
111.सच्चिदानंद राय	हिन्दी उपन्यास: सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना	राजीव प्रकाशन अलोपी बाग, इलाहबाद	1979
112.सत्यपाल चुघ	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि	लो. प्र. इलाहाबाद	1968
113. सुमित्रा त्यागी	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में जीवन दर्शन	साहित्य प्रकाशन दिल्ली	1978
114.सुरेन्द्र प्रताप यादव	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना	भावना प्रकाशन दिल्ली	1992
115.सुरेन्द्र प्रसाद	मार्कण्डेय का रचना संसार	क्वालिटी बुकस रामबाग, कानपुर	2001
116.ह. क. कडवे	हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रकृति	अन्नपुर्णा प्रकाशन गांधीनगर,कानपुर	1978
117.हरदयाल	आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प	सरस्वती प्रेस इलाहाबाद	1987
118.हरिशचन्द्र नागवेकार	आस्वादन	गोमंतकार प्रकाशन मडगाव	1987
119.ज्ञानचन्द गुप्त	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना	अभिनव प्रकाशन दिल्ली	1974
120.ज्ञानचन्द गुप्त	आंचलिक उपन्यास : संवेदना और शिल्प	अभिनव प्रकाशन दिल्ली	1975

-o-o-o-

पत्र - पत्रिकाएँ

आजकल	: सितंबर 1989
आम्बेडकर विशेषांक	: फरवरी 1991
आलोचना	: जनवरी 1956, जनवरी 1966
कथादेश	: फरवरी 2002
Comparative literature	: Volume 47 / 1985
कल के लिए	: अक्टूबर, दिसम्बर 1996
कलम	: मार्च 1982
गगनांचल	: विश्व हिन्दी अंक
गोमांचल विशेषांक	: नवम्बर 1992
तेवर	: फरवरी 2003
बिंदु	: वर्ष 6, संयुक्तांक विशेषांक
भाषा	: जनवर- फरवरी 1999, मार्च-अप्रैल 2002
मूल्यांकन	: मार्च 1985
समालोचन	: सौंदर्य शास्त्र विशेषांक
साहित्य अमृत	: अप्रैल 2003

परिशिष्ट-1

नामवर सिंह से साक्षात्कार

वृषाली (प्रश्न) मांद्रेकर : मार्कण्डेय का पूरा नाम क्या है?

नामवर (प्रतिउत्तर) सिंह : मार्कण्डेय सिंह है- जाति के क्षत्रिय है।

वृषाली मांद्रेकर : सिंह नाम का उपयोग क्यो नहीं किया?

नामवर सिंह : समाजवादी विचारों के होने के कारण अपने को जातिपाँति से अलग मानते थे। और ये मार्कण्डेय हमारे यहाँ बहुत प्रचलित नाम है। मार्कण्डेय सिंह नाम के एक अन्य लेखक भी है।

वृषाली मांद्रेकर : मार्कण्डेय से आप कबसे परिचित है?

नामवर सिंह : मार्कण्डेय को मैं 1950 के आसपास से जानता हूँ, 1950 में जब मैं एम.ए. कर रहा था और मार्कण्डेय इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी.ए. करने आये थे। मार्कण्डेय कमलेश्वर, दुष्यंत कुमार तीनों एक साथ रहते थे छात्रावास में, प्रगतिशील लेखक संघ की बैठकों में यह तीनों हुआ करते थे। मैं भी बनारस से इलाहाबाद जाता था। तब से मैं परिचित हूँ। आरंभ में मार्कण्डेय लोकगीत गाते थे वे जौनपूर के रहनेवाले थे वहाँ की अवधी भाषा है, आरंभ में यहीं के लोकगीत सुनाया करते थे। बाद में जिनके घर में वे रहते थे - श्रीकृष्ण दास वे पत्रकार थे। अंग्रेजी पत्रिका 'अमृतबाजार' का हिन्दी संस्करण 'अमृत' निकलता था उसके संपादक थे। शहर के सामाजिक जीवन में वे सक्रिय थे और बहुत लोकप्रिय थे। उनकी पत्नी सरोज मेरे गाँव की होने के कारण मेरी बहन थी इसलिए मेरा सम्बन्ध उनके परिवार से जुड़ा। सन् 1947 में सरोजनी की शादी होने के कारण मैं उनके घर (इलाहाबाद) आने जाने लगा था। एम. ए. करने के बाद मार्कण्डेय छात्रावास छोड़कर उनके 'घर' रहने आये। बगल में अमृतराय, ओंकारनाथ आदि साहित्यकार रहते थे। उन तमाम लोगों में श्रीकृष्णदास तथा सरोज के कारण मैं निकट आया। सन् 1950 से करीब-करीब 40 साल वे उनके साथ रहे। पहले अकेले थे बाद में अपना परिवार भी साथ ले आये। दो बेटियाँ और पक्का याद नहीं दो बेटे थे, उनके भाई भी पढ़ने के लिये आ गये थे। उनके पिताजी थे। वहीं रहते हुए उनका साहित्यिक जीवन शुरू हुआ। 'पानफूल' कहानी संग्रह जिसकी कहानियों में ताजगी थी, उसकी प्रसिद्ध कहानियाँ 'गुलरा के बाबा', 'हंसा जाई अकेला' आदि ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित है। बाद में चलकर के मार्कण्डेय का कमलेश्वर दुष्यंत से उतना अच्छा संबंध नहीं रहा जितना अच्छा संबंध इनका अमरकान्त शेखर जोशी से रहा।
मार्कण्डेय 'कल्पना' में 'साहित्य धारा' नाम से कॉलम लिखते थे और कहानियाँ भी लिखते थे। प्रगतिशील लेखक संघ के बडे सक्रिय और उत्साही

कार्यकर्ता थे । इलाहाबाद में उन दिनों दो संस्थायें सक्रिय थी एक 'परिमल' जिसके केन्द्र में धर्मवीर भारती थे, प्रगतिशील लेखक संघ, जिसके केन्द्र में भैरवप्रसाद गुप्त, प्रकाशचंद्र गुप्त और पहाडी, युवा साहित्यकार थे। श्रीकृष्णदास के साथ ही पत्रिका में काम करते थे अमरकान्त और शेखर जोशी । चूँकि मार्कण्डेय ने नौकरी नहीं की उनकी रुचि भी नहीं थी प्रयत्नभी नहीं किया इसलिये कहना चाहिए की 'नया साहित्य' नामक स्वतंत्र प्रकाशन उन्होंने शुरु किया। यह लघु प्रकाशन था उसमें अमरकांत, कमलेश्वर तथा शेखर जोशी आदि के कहानी संग्रह छापे।बाद में कुछ और किताबे भी छापी। बहुत दिनों के बाद 'कहानी' नाम की पत्रिका 'सरस्वती' प्रेस से प्रमेचन्द ने निकाली थी। प्रेमचन्द उसके संस्थापक थे प्रेमचन्द की मृत्यु के बाद श्रीपतराय उसकी देखभाल करते थे, हंस वही से निकली, बाद में हंस का संपादन इनके छोटे बेटे अमृतराय ने किया। सन् 38 से 'कहानी' पत्रिका निकली तीन या चार साल के बाद बंद हो गयी। इलाहाबाद में फिर श्रीपतराय ने 1955 से 'कहानी' पत्रिका निकाली उनके साथ में संपादन में सहयोग देने का कार्य भैरवप्रसाद गुप्त करते थे। स्वयं कथाकार थे, संपादन का अच्छा अनुभव था, तथा प्रगतिशील लेखक संघ के कर्मठ सदस्य थे । प्रगतिशील लेखक संघ के कारण मार्कण्डेय, अमरकान्त, शेखर जोशी निकट आये। इनकी कहानियाँ भैरवप्रसाद गुप्त ने इस पत्रिका में छापी। इसी पत्रिका में मार्कण्डेय ने एक स्तंभ लिखा 'कहानी की बात' नामक। कई कहानीकारों- जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय पर बहुत अच्छे लेख लिखे थे। मैने भी उसमें लेख लिखे। राजकमल प्रकाशन से 'नयी कहानी' पत्रिका निकाली जिसमें संपादक के रूप में भैरवप्रसाद गुप्त थे । उसमें मैं 'हाशियेपर' स्तंभ लिखता रहा और मार्कण्डेय 'कहानी की बात', इसलिए मेरी समझ से मार्कण्डेय कहानीकार तो है ही, कहानी के आलोचक भी है। वहीं बाद में 'कहानी की बात' पुस्तकरूप में प्रकाशित हुई। बाद में कहानी लेखन मद्धिम पड़ गया अंतिम दिनों में एक 'कथा' नामक त्रैमासिक निकाला, काफी समय से अंक निकलते थे, बहुत अच्छे संपादक भी थे मार्कण्डेय जी।

लेखक, प्रकाशक, संपादक, समालोचक के रूप में प्रसिद्ध हुए और ऐसा आदमी जिसे आमदनी का कोई ज़रिया नहीं, उनको कोई पुरस्कार या सम्मान नहीं मिला, निजी साधनों के बल पर भरे पूरे परिवार को शहर में चलाते थे। कुछ गाँव में खेती बाडी थी- पिताजी कुछ भेजते थे, कुछ अपनी कमाई- बेटे बेटियों को पढ़ाया भाई यों को पढ़ाया, बेटी डॉक्टर बनी, इन जिम्मेदारियों को निभाते हुए काम करते रहे। दबाव ज्यादा रहा उनपर इसका नतीजा यह हुआ कि चार-पाँच साल हुए उनको लगा कि दिल की बीमारी हुई। समाजवादी विचारों के होने के कारण मुलायमसिंह और अमरसिंह उनके साथ थे- इन लोगों ने मदद की। अपोलों में बायपास सर्जरी हुई, और सफल रहा फिर

स्वस्थ हुए। घर की समस्या भी थी, दूसरा घर लिया, बादमें शासन की मदद से दूसरा मकान भी उनको मिला। लेकिन एक बार बीमारी होने पर, आपरेशन के बाद स्वास्थ ठीक-ठाक है लेकिन लेखन कम हो गया है।

वृषाली मांद्रेकर : उनका कोई नया संग्रह निकल रहा है?

नामवर सिंह : संपूर्ण कहानियों का संग्रह लोकभारती से निकाल रहे है। नयी कहानियों का संग्रह भी प्रकाशित होगा, जो कहानियाँ प्रकाशित नहीं हुयी है उनको भी प्रकाशित करने का विचार है।

वृषाली मांद्रेकर : उनपर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव था और बाद में प्रगतिशील विचारधारा की ओर बढ़ गये इसपर आपके क्या विचार है?

नामवर सिंह : ऐसा है कि आरंभ में उनके सम्बन्ध जौनपुर के कांग्रेसी नेताओं से थे जो गांधीवादी , समाजवादी और कम्युनिस्ट भी थे। लेकिन मेरी समझ से वे किसी राजनीतिक पार्टी के सदस्य से जुडे नहीं थे । उन्होंने विचारों को कहीं स्पष्ट रूप से लिखा नहीं लेकिन मोटे तौर पर सेक्युलर और प्रगतिशील विचारों के वे लेखक थे और रहे है। परिवर्तन उन लोगों का होता है जो अच्छी तरह गांधीवादी रहे हो और फिर कहीं समाजवाद में आये हो, किसी दूसरी विचारधारा की ओर बढ़े हो।

वृषाली मांद्रेकर : उनकी 'हंसा जाई अकेला' कहानी में हंसा गांधीवादी विचारधारा का प्रतीक बनकर नहीं आया है? आपको क्या लगता है?

नामवर सिंह : उन्होंने बचपन से जो कुछ देखा था उसका चित्रण किया है, सहानुभूति से। इसलिये ऐसे चरित्र भी लिये है जो कि एक जमाने में बड़े राष्ट्रवादी थे। आदर्शवादी, देशभक्ति त्याग, आदि से परिपूर्ण सच्चरित्र लिये है जिनका बाद में पतन भी हुआ है। समाज में जैसे लोग मिले है- उनका चित्रण जैसे के तैसे किया है। उसके यथार्थ का चित्रण किया।

वृषाली मांद्रेकर : अग्निबीज उपन्यास को आंचलिक न कहकर थोड़े समीक्षक ग्रामीण जीवन के आधार पर लिखा उपन्यास मानते है, उसपर आपका क्या मत है?

नामवर सिंह : देखिए यह आंचलिक और ग्रामीण ये दोनों शब्द ऐसे है जिनमें स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं है। आंचलिक हिन्दी ने नया शब्द चला था हिन्दी में इस्तेमाल नहीं होता था तो प्रेमचन्द से थोड़ी भिन्नता दिखाने के लिए ग्रामीण जीवन के स्थान पर आंचलिक कह दिया और यह समझ लिया कि अंचल याने किंसी क्षेत्र विशेष की भाषा, संस्कृति जैसे पूर्णिया जिला लिया उन्होंने। उस हिसाब से मार्कण्डेय जौनपूर के रहने वाले थे उन्होंने उस क्षेत्रविशेष को लिया, इसलिये कहना चाहे तो आंचलिक कहे या चाहे ग्रामीण कहे।

वृषाली मांद्रेकर : लेकिन वहाँ की भाषा, लोकगीत आदि से वह आंचलिक ही हो है ।

नामवर सिंह : हाँ, अगर कोई आदमी कहना चाहे तो आंचलिक उनको कह दे, और आंचलिकता से कोई जीवन दर्शन प्रगट होता है तो उससे बचने के लिए ग्रामीण लेखक कहते। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है, वे यथार्थ को चितेरे है,

आरंभ में संघर्ष कम है और बाद में परिवर्तन आया है। मुख्यत: वे कहानीकार है, ग्रामजीवन के आधार पर लिखा है, 'वर्तमान साहित्य' का यह विशेषांक दो भागों में था। जिसका संपादन रविन्द्र कालिया ने किया था उसमें उनकी 'हलयोग' नामक कहानी छपी थी- गाँवों में किसानों पर होने वाले अत्याचार तथा दमन की कहानी है सजा देने के लिए उसको हल में बांध दिया यह कहानी दलितों की है, अत्याचार के विरुद्ध प्रतिकार, गुस्सा, आक्रोश प्रतिरोध की भावना परवर्ती कहानियों में दृष्टिगोचर होती है। बाद के दिनों में उनका संबंध जनवादी लेखक संघ से हुआ जिसमें थे भैरवप्रसाद गुप्त, शेखर जोशी- 'मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की राजनीति से प्रभावित होकर परवर्ती कहानियों में संघर्ष की मात्रा बढ़ी। संघर्ष और विचारधारा की प्रधानता होने के कारण कहानी-कला की क्षति हुई। यह आम धारणा है, और यह सही है मार्कण्डेय पहले वाली कहानियों के लिए ही याद किए जायेंगे, परवर्ती कहानियों के लिए नहीं।

परिशिष्ट-2

श्री पुंडलीक नायक से साक्षात्कार

वृषाली (प्रश्न) मांद्रेकर : ऐसा सुना जाता है कि आपका बचपन ग़रीबी एवं संघर्ष में बीता, क्या यह सही है?

पुंडलीक (प्रतिउत्तर) : नायक बिल्कुल सही है, क्योंकि जिस परिवार में मेरा जन्म हुआ उसमें जीवन जीने के लिए विविध समस्याओं तथा दु:खों का सामना करना पड़ा। भाई-बहनों के इतने बड़े परिवार को अकेले पिता की मेहनत पर गुजारा करना पड़ रहा था। छ: बच्चों के लिए जीवन निर्वाह का साधन जुटाना उनके लिए भी मुश्किल था। इसलिए बचपन से अनेक छोटे-मोटे काम करता रहा। गाय-गोरुओं की रखवाली करना, गोबर जुटाना और उसे बेंचना, बरसात के पहले मिर्ची के छोटे-छोटे पौधे उगाकर तथा उनको बेंचकर रोजी-रोटी का साधन जुटाता था।

वृषाली मांद्रेकर : आपकी शिक्षा का प्रारंभ कब हुआ?

पुंडलीक नायक : मैंने दस साल के बाद मराठी पाठशाला में प्रवेश किया।

वृषाली मांद्रेकर : आपने साहित्य-लेखन की शुरुआत कब और कैसे की?

पुंडलीक नायक : पन्द्रह-सोलह साल की उम्र में मैं मराठी साहित्य पढ़ने में रुचि लेने लगा। मराठी के पेंडसे, थोरात, माडगुळकर आदि ग्रामीण लेखकों के साहित्य को पढ़ता रहा। उसी के दौरान व्यंकटेश माडगुळकर की 'पोळा' कहानी ने मुझे विशेष रुप से प्रभावित किया और अन्त:करण में लिखने की प्रेरणा जागृत हुई। मेरे लेखन का आरंभ मराठी कहानी 'कहाणी एका मांजरीची' से हुआ।

वृषाली मांद्रेकर : इसी प्रकार की एक कहानी कोंकणी में भी है-

पुंडलीक नायक : 'काणी एका माजराची' हाँ। 'मुठय' कहानी संग्रह में यह कहानी सकलित है।

वृषाली मांद्रेकर : 'जमींदारों के प्रति विद्रोह' आपकी कहानियों में परिलक्षित होता है, इस पर आपके क्या विचार है?

पुंडलीक नायक : मैं अपने परिवेश तथा निजी जिंदगी से बहुत प्रभावित हूँ। बचपन से जमींदार एवं मजदूर का संघर्ष मैंने देखा एवं अनुभव भी किया है। हमारा परिवार चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था के शिकंजे में जकड़ा हुआ था। मेरे पिताजी तथा अन्य भाई भाटकारों (जमींदारों) के कहने पर हर काम करने के लिए तैयार रहते थे। वे उनका खून चूँसते थे, लेकिन उन्होंने कभी विरोध नहीं दर्शाया। लेकिन मैं यह अत्याचार बर्दाश्त नहीं कर पाया। भाटकारों के घृणित, बर्बर, नृशंस कृत्यों का मैंने विरोध किया, और इन्हीं अनुभवों को कथासाहित्य द्वाराचित्रित किया।

वृषाली मांद्रेकर : आपका साहित्य लेखन किसी व्यक्ति या वाद से प्रभावित रहा है?

पुंडलीक नायक : प्रभावित नहीं कह सकते, लेकिन इन्हीं दिनों मार्क्सवादी साहित्य से मैं परिचित हुआ, और मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित होने लगा था, शायद

		इसीलिए शोषक-शोषितों का संघर्ष कहानियों में अपने आप उभरकर आया है।
वृषाली मांद्रकेर	:	'अच्छेव' उपन्यास में चित्रित 'आबू' जैसी कोई व्यक्ति आपको यथार्थ जीवन में भी मिली हैं?
पुंडलीक नायक	:	इसमें अनुभव किए हुए दो-तीन व्यक्ति चरित्रों को एकसाथ मिलाया गया है। जो वास्तविक जीवन में गाँवों में मैने महसूस किया था उसी का चित्रण है। समाज में परिवर्तन आया है और इसका बूरा प्रभाव किसान एवं खेती पर पड़ा इसके परिणाम स्वरूप खेती नष्ट हुयी और किसान दिशाहीन हो गए। इन स्थितियों का यथार्थ चित्रण मैंने अपने उपन्यास में किया है। मैंने अपने वास्तविक जीवन में आबू जैसे दो-तीन व्यक्तियों को देखा था उन्ही का मिलाजुला रूप आबू के चरित्र के माध्यम से दर्शाया है।

परिशिष्ट-3

डॉ. सुब्रत लाहिडी से साक्षात्कार

वृषाली (प्रश्न) मांद्रेकर	:	मार्कण्डेय का जीवन, साहित्य एवं विचारधारा एक दूसरे से सम्बन्धित है या नहीं?
सुब्रत (प्रति उत्तर): लाहिड़ी		हाँ, जरूर हैं, आजादी के बाद मोहभंग की स्थिति उनके भी जीवन में आयी थी। यह मोहभंग ग्रामीण भारतीय परिप्रेक्ष्य में अधिक दिखायी देता है। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक चारों परिप्रेक्ष्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं जिनमें उनकी जनवादी विचारधारा के दर्शन होते हैं। आशा-निराशा का द्वन्द्व भी उनके साहित्य में नजर आता है। इसी जनवादी विचारधारा से उनका जीवन प्रभावित है। साहित्य में चरित्र विश्वसनीय नजर आते है। समय-सत्य या समय का यथार्थ मार्कण्डेय में प्रतिबिम्बित होता है। क्योंकि साहित्य की सृष्टि में इसी जीवन के यथार्थ को, चरित्र एवं परिवेश के माध्यम से उजागर किया जाता है। मार्कण्डेय के चरित्र में विश्वसनीयता है क्योंकि उनमें दोष भी है और गुण भी है, जिसमें क्रिया और प्रतिक्रिया होती रहती है।
वृषाली मांद्रेकर	:	आंचलिकता से आप क्या समझते हैं?
सुब्रत लाहिड़ी	:	लोकजीवन, लोकसमाज और लोकसंस्कृति को (Dipict)करते है। भौगोलिक परिवेश में जीवन के विशेष संदर्भों को रेखांकित करते है।
वृषाली मांद्रेकर	:	मार्कण्डेय ग्रामीण जीवन के कथाकार है या आंचलिक?
सुब्रत लाहिड़ी	:	रेणु जैसी आंचलिकता का विस्तार मार्कण्डेय में नहीं मिलता है। जैसे रेणु के कथासाहित्य में प्रकृति भी चरित्र के रूप में आयी है। और मार्कण्डेय में प्रकृति का मानवीकरण नहीं हुआ है बल्कि जीवन को आंशिक रूप में प्रकृति प्रभावित करती है। Stream of Conciousnes (चेतना प्रवाह) चरित्रों में दिखाई देता है। लेखक और पात्र, पात्र और चरित्रों की मानसिकता में परिवर्तन, लेखक के जीवनानुभवों का प्रतिबिंबन, भौगोलिक परिवेश की आंचलिकता, जीवन संदर्भ इसी चेतना प्रवाह से जुड़े हुए है। उनको 'अग्निबीज' उपन्यास एवं थोड़ी कहानियाँ 'मधुपुर के सिवान का कोना', 'बीच के लोग' आदि आंचलिकता की कोटी में रखा जा सकता है।
वृषाली मांद्रेकर	:	चरित्र चित्रण करते वक्त सामाजिक व्यवस्था से टकराव किस प्रकार होता है?
सुब्रत लाहिड़ी	:	'अग्निबीज' की श्यामा हो या, 'मधुपुर के सिवान का कोना' का 'बेचेन' हो सब जन व्यवस्था से टकराते है और कोई हल नहीं निकाल पाते। सामाजिक व्यवस्था के सामने झुकना पड़ता है। श्यामा मुराद, को चाहते हुए भी उससे शादी न कर पारंपरिक मानमर्यादा का निर्वाह करती है। बेचेन आँख फूटे मुन्न के साथ अपनी बेटी की शादी करता है। कहीं भी व्यवस्था का विरोध नहीं कर पाता। ऐसा माना जाता है कि मार्कण्डेय के साहित्य के अनेक पड़ाव है। इन विभिन्न पड़ावों में पहले और दूसरें संग्रहों की कहानियों में परिस्थितियों के सामने झुकनेवाले चरित्र है, बीच के पड़ाव की कहानियों के चरित्रों में संघर्ष का

स्वर है और अंतिम पड़ाव में सामूहिक धरातल पर विरोध दर्शाया गया है। उन्होंने बड़ी कटुता और कठोरता के साथ व्यंग्य किया है। उनकी कहानियों में छटपटाहट, घुटन है वहाँ टूटन भी है। भीतर ही भीतर टूटने का स्वर भी है। अनुभवों में जब कठोरता आती है तब व्यक्तिगत धरातल पर विरोध न रहकर सामूहिक धरातल पर विरोध (बीच के लोग) दर्शाया है।

वृषाली मांद्रेकर : चरित्र निर्माण किसप्रकार होता है?

सुब्रत लाहिड़ी : मनुष्य के चरित्र का निर्माण परिवेश से होता है। वह किस तरह से करवट लेता है वह भी परिवेश तय करता है। उनके पात्रों में निर्जनता आती है। परिवेश तो रोमांटिक है जलपंछी भी साथ है लेकिन श्यामा-मुराद एक दूसरे का साथ नहीं दे पाते। परिवेश के साथ-साथ भाषा के संस्कार से चरित्र निर्मित होते है, खास व्यक्तियों की बोली एवं भाषा का रूप निर्माण होता है।